जब बहार आई

लेखक
श्री शिवकुमार ओझा

विद्या मन्दिर लिमिटेड, नई दिल्ली।

प्रकाशक
विद्या मन्दिर लिमिटेड
[illegible], नई दिल्ली

प्रथम संस्करण
१९५६

गोदल्स प्रेस
नई दिल्ली

अनुक्रमणिका

मैं कितना स्पष्ट देख सकता हूँ—वह जामुन की डाल, तीन पेड़ एक साथ, एक कतार में, विशाल। उनकी डालें पकी हुई जामुनों से लदी पड़ी थीं। मैं पश्चिम वाले पेड़ की दक्षिणी डाल पर से काली काली जामुनें तोड़कर बड़ी सावधानी से किसी के आंचल में टपका रहा था। पर वह थी कौन? मुन्नी, हमारे गोंड माली की लड़की। तब मैं बारह का था, वह दस की। हम दोनों साथ खेलते, साथ खाते; परन्तु घर में नहीं, केवल बाग में, मां व भैया के डर के मारे—कहीं देख लें छुटो जाति की लड़की के साथ खाते तो बस मेरी पूरी मरम्मत हो जाती। खेलते खेलते हार जाने पर उसका झोंटा (उसके बाल) खींचकर भाग जाना तो मेरी सहज आदत थी। फिर उसकी गालियों की बौछार।

और मैं अभी भी उसे देख रहा हूँ—मुन्नी का मैला आंचल व उसमें टपकते काले काले जामुन। एकाएक क्या देखता हूँ—मुन्नी की आंखें ईंटभट्ठ की ओर मुड़ीं तथा उनमें भय व घबराहट छा गई। पत्तों की ओट से मैंने पूछा, "क्या है, मुन्नी?"

बोली, "वो है महुआ, कुम्मू!"

[illegible] हम [illegible]। "तू भाग जा," मैंने कहा।

वहीं की वहीं वह खड़ी रही, हिली नहीं। बोल उठी, "तुम उतर आओ, [illegible]!"

वह समझ गई थी, आज मेरी मरम्मत होगी। मैंने आव देखा न ताव। डाल की जड़ के पास आकर कूद पड़ा—ईंटों के ढेर पर जो नीचे था। वे ईंटें भी किसी नए कुएँ की अभिलाषा थीं। ईंटों के ढेर से [illegible] रहा था कि एक ईंट ऊपर से खिसकी व ढड़-ढड़ाती [illegible] हाथ पर आ पड़ी। अनामिका कुचल गई, सारा हाथ लहूलुहान हो गया। मुन्नी हक्की-बक्की रह गई, आंचल के जामुन बिखर गए। उस अंगुली का मैं घाव भी देख रहा हूँ, अभी भी। खून व जामुनों के [illegible], काले [illegible], [illegible]!

उसने आगे बढ़कर मेरे हाथ के खून को अपने आंचल से पोंछना शुरू

किया। सारा आँचल खून से लथपथ होगया, परन्तु उंगली का खून बन्द न हुआ। तब तक मैया बड़े खेत के मोड़ पर दिखाई दिये। मैंने झट से हाथ धूल के ढेर में घुसेड़ दिया व एक हाथ से धक्का देते हुए बोला, "भाग मुन्नों, आज खैर नहीं।"

वह भागी अपने घर की ओर, मैं भागा अपने घर की ओर। बीच में एक बार पीछे झांका—न जाने मैया को महाकाल की भांति आते हुए देखने के लिये, या बिखरी जामुनों को धूल में लोटते हुए।

अपने घर के दरवाजे से घुसते हुए मैंने दूर पर देखा कि मुन्नों अपने घर की खिड़की (पिछले दरवाज़े) से घुस रही थी। मैं चिल्लाया, 'मां!' वह दौड़कर आई और लहू-लुहान हाथ देख दंग रह गई।

"कैसे हाथ कुचल लिया रे? खून तो बहुत गिर चुका है।"

"बस, पूछ मत मा, मैया!"

इतना कहना था कि मैया आगये। वे गरजे, "पेड़ पर चढ़ना न छोड़ेगा? मां, यह जामुन के पेड़ पर फिर चढ़ा था!" और इतना कह कर दो तमाचे जड़ दिये। मैं मा के आंचल में चिपक गया। मा बिगड़ी।

बोली, "छोड़ो भी, उसका हाथ तो देखते नहीं!"

इसके बाद तो मेरी खूब खातिर हुई। मैया ने मेरा हाथ अच्छी तरह धोकर, टिंचर लगा, पट्टी बांध दी। फिर लंगड़े आम, जो उसी दिन उन्होंने मंगवाये थे, लाकर पहले मुझे काटकर दिये। उन मीठी मीठी आम की फाकों का स्वाद अभी भी मेरी जीभ पर है! मां तो मुझे गोद में लिये देर तक रोती रही। फिर मैया ने भी प्यार किया। भयराज धर्मराज बन गये।

केवल एक खटका मेरे मन में बना रहा—मुन्नों का क्या हुआ?

मैया तो काम से फिर बाहर चले गये। इतने में मुन्नों की मा उसे लिये हुए आई। उसकी वह भयभीत मुद्रा, नीची निगाहें—मैं चित्रकार होता तो ज्यों का त्यों चित्र उतार देता।

सुर्जी की मां बोली, "मा जी, कुमार भैया ने मेरी बेटी के आंचल में सारी लाल स्याही फैला दी, हम गरीब आदमी रोज रोज़ कपड़ा कहां पायेंगे ? यह देखिये न !"

उसने सुर्जी का खून से भरा आंचल फैलाकर दिखाया। मैं एक बार फिर भय से कांपा, पर सुर्जी के इस मोहक झूँठ पर मेरे भीतर हंसी बिखरी पड़ती थी; शायद वह भी होंठ भींचे, नीची निगाह किये, हंसी बमुश्किल पी रही थी।

मैंने सिर उठाकर मां का मुंह जो देखा तो वह मन्द मन्द मुस्करा रही थी। फिर तो क्या था, मैं हंस पड़ा व सुर्जी भी। उसकी मा हक्की-बक्की रह गई। मेरी मा बोली, "नहीं रे, वह लाल स्याही नहीं है। कुम्मू ने उंगली, न जाने कैसे, कुचल ली। शैतान है न, सुर्जी के आंचल में पोंछ दिया होगा।"

अब तो सुर्जी की भी जुबान हिली—"नहीं मां जी, मैंने ही पोंछा था; खून बन्द करने के लिये कुम्मू ने कुछ नहीं किया।"

"पर अभी से इतना झूँठ कैसे सीख गई रे ?" कहते कहते मा उठी व बक्स से एक नौ गज की साड़ी लाकर सुर्जी के हाथ पर रख दी।

उस समय सुर्जी के खिले खिले गाल व बड़ी बड़ी विहंसती आंखें देखते ही बनती थीं, गो कि बायीं गाल पर उंगलियों के निशान ज्यों के त्यों थे।

उसके कुछ दिन बाद मेरी उंगली अच्छी तो हो गई, परन्तु निशान न गया। सुर्जी ने भी वह खूनी पल्ले वाली साड़ी पहनना न छोड़ा, न जाने ग़रीबी के कारण या...... ।

स्कूल में ड्रिल होते समय 'बायें घूम' व 'दायें घूम' की आज्ञा पर, भूल न हो जाय, इसलिये मैं अंगूठे को सदा अनामिका के गड्ढे में टटोल लेता था कि यही तो बायां हाथ है, व दाहिना शायद दूसरी ओर हो। इसके अतिरिक्त आज तक इस गड्ढे की कोई उपयोगिता मुझे मालूम न हुई।

पर आज इस चिकित्सालय के कमरे में लेटे लेटे यह गड्ढा सजीव

हो उठा, अपनी सारी कहानी कहने के लिये। यही एक मात्र निशानी है सुर्जों की स्मृति की।

संसार के इस विशाल मानव-वन में सुर्जों कहां खोगई, मैं नहीं जानता। आज वह कहीं जीवित भी है या नहीं, सो भी नहीं जानता। उसकी शादी हुई होगी, कोई दूसरी ही सुर्जों आचल में जामुन या बेर समेट रही होगी, पर मैं क्या जानूं।

वह तो दो साल बाद ही, गांव के गंगा में बह जाने पर, मा-बाप के साथ 'पूरब' देश चली गई, रोजी व रोटी की तलाश में।

मुंह अंधेरे में ही वह दौड़ो दौड़ी आई थी मेरे पास। मुझे झकझोर कर जगाया व बोली, "कुम्मू, मैं पूरब जा रही हूँ, बाबू के साथ।"

"तो मैं क्या करूं ?"

"ढोल बजाओ और क्या !"

मैंने झट उसके बाल पकड़कर जोर से खींचे। वह 'माई रे' करके कराही व मेरी बाईं कोख में एक घूँसा मारकर भाग गई।

यही हमारी विदाई थी। उसके जाने के बाद मैंने पेड़ पर चढ़ना व जामुन तोड़ना छोड़ दिया। यों ही दिन भर मारा मारा फिरता, जेठ की जलती दोपहरी में न भूख लगती, न प्यास। रह रहकर कोख में दर्द होता, दर्द का भान होता।

और आज भी लगता है, मैं अपने तख्त पर बैठा हूँ चौदह वर्ष का व सुर्जो घूंसा मारकर वह भागी, वह गई। दर्द आज भी सालता है नये सिरे से।

* * * *

हां, तो कल मेरा 'ऑपरेशन' है न, 'क्लोरोफॉर्म' दिया जायगा—बेहोशी की दवा—मृत्यु की गोद में तो एक बार जाना ही है, फिर लौटकर आऊं न आऊं, क्या पता। शायद इसीलिये आज इतनी पुरानी याद उभर आई है स्मृति-पट पर, और न जाने कितनी भीड़ लग गई है प्रकाश में आने के लिये।

यह लीजिये, मेरी नर्स आगई। वे बड़ी बड़ी आंखें, भूखी भूखी सी व मन्द मन्द हास। पता नहीं यही इसकी आदत है या उसे दर्जे के बीमार के साथ यों ही बर्ताव सिखाया गया है। जो भी हो मुझे क्या? इसके आते ही मेरे चारों ओर एक मीठी सर्दी छागई। दिल भी तन-मन सिहर उठा। मैंने अभिवादन किया पहले, पर जवाब कुछ न देकर वह तो शरमा गई व आंखें झेंप गईं। यह क्या, यह तो शायद शिष्टता के भीतर न हो। पर मैं तो यों ही सब को अभिवादन करता हूँ, भला इसमें झेंपने की क्या बात है।

सोचता हूँ इसकी आंखें तो किसी की आंखों से मिलती-जुलती हैं। भला इसका नाम क्या है? मिस ज्योत्स्ना? मिस कल्पना? नहीं...... नहीं......मिस माया......पर जो भी हो, मैं तो मुंह में 'थर्मामीटर' डाले मौन हो रहूं। मेरी आंखें उसकी बड़ी बड़ी आंखों पर गड़ गईं। इस समय मैं लाभ में हूँ, कारण बदले में वह मुझे नहीं देख सकती; उसकी निगाहें कलाई में चमकती नन्ही सी घड़ी की सुई पर टिकी हैं व पतली उंगलियां मेरी कलाई पकड़े हैं।

बस यह स्वप्न सा व्यापार केवल आधे मिनट का है या एक। परन्तु इतने में ही सारे तन की नसें तन गईं व विचित्र सिहरन मुझ में छागई और मैं मिस ज्योत्स्ना या मिस माया या मिस कल्पना के स्पर्श को भूल, महीनों पहले किसी के स्पर्श की मिठास को अनुभव कर ओतप्रोत होगया। क्षण भर के लिये तो मैं अपने को भूल ही गया। फिर नर्स ने ही छेड़ा—

"रात को नींद नहीं आई?"

सोचा होगा यह सवेरे सवेरे भला क्यों ऊंघ रहा है। मैंने अलसाते हुए कहा, "आपके स्पर्श में गर्मी बहुत है।"

वह तो मारे लाज के सिमट गई। मुस्कान को पीने के प्रयत्न में गालों पर कटोरे बन गये।

मुझे अभी भी यों भूला भूला सा गुमसुम देखकर बमुश्किल वह बोली, "आप समाधि लगाते हैं?"

"मैं! नहीं तो, पर किसी किसी को देखकर यों ही समाधि लग जाती है।"

वह फिर झेंपी व बोली, "आपका खून लेना है 'टेस्ट' के लिये। डाक्टर अभी आते होंगे, मुझे पहले भेज दिया है।"

"अरे, बाप रे बाप, तो तुम मेरा खून चूसने आई हो, जोंक कहीं की।"

फिर तो वह हंसते हंसते लोटपोट होगई। इतने में डाक्टर आगया। हम दोनों को हंसते देख मुस्कराया। वह बोली, "मि० कुमार, मुझे जोंक कहते हैं, खून चूसने वाली।"

डाक्टर बोला, "खैर समझो, मुझे नहीं कहते; यह खिताब तुम्हीं को पहले मिल गया।"

मैंने कहा, "नहीं, डाक्टर साहब, आसाम में काली जोंकें होती हैं। एक बार एक काली जोंक मेरे बायें पाव में चिपक गई सो इतना खून चूसा, इतना खून चूसा कि अभी भी काला निशान बाक़ी रह गया है, पर यह जोंक तो काली नहीं।"

"गोरी है।" कहकर नर्स खिलखिलाकर हंस पड़ी। इसी बीच वह मेरे बायें हाथ की बीच की उंगली के सिरे पर शायद स्पिरिट मलती रही। मेरी बेसुध स्थिति में यह ध्यान ही न रहा कि यह कौन सी उंगली है। जब डाक्टर ने सुई चुभोकर उंगली दबाई तो खून टपटप निकल पड़ा. उंगली के दोनों ओर से, जहां सुई चुभोई थी वहा से तथा दूसरी ओर नाखून की जड़ से भी।

मैंने आह भरी। नर्स घबराई और डाक्टर ने उंगली उलटकर देखी कि नाखून काला पड़ा हुआ था। उससे भी खून निकल पड़ा था। उसने दुःख-प्रकट किया। वह बोला, "आपने पहले क्यों नहीं कहा कि इस उंगली में चोट है।"

उसने सावधानी से खून लिया ताकि दोनों प्रकार के खून एक दूसरे से मिल न जायं। वह स्याह-सोख साथ लाया था। मैंने उसमें दूसरा खून पोंछ दिया। नर्स तथा डाक्टर चले गये पर वह स्याह-सोख!

* * * *

लाल लाल रक्त के दाग टप टप टपक रहे हैं मेरी आँख और मैं उनमें देख रहा हूँ सुर्जी का लाल लाल दामन रक्त से भीगा हुआ—नहीं, नहीं, नीरा का रक्तस्राव देख रहा हूँ—

इरविन अस्पताल का वह पलंग जिस पर अपनी इकहरी, लंबी सी सर्जीव काया लिये नीरा पड़ी होगी, आँखों में कितनी करुणा होगी, कितनी बेबसी!

और 'अपेण्डिसाइटिस का ऑपरेशन', खून बन्द होने को नहीं आता, प्रयत्न बराबर हो रहे हैं, पर रक्तस्राव बन्द नहीं होता।

● ● ● ●

और न थमती है यह वर्षा। आकाश सारा मानो समुद्र हो रहा है, समुद्र न जाने कैसे उछलकर आकाश की छाती पर चढ़ बैठा है, परन्तु वहां से धक्का खाकर नीचे गिरा पड़ता है, गिरा पड़ता है, थमने का कहीं नाम नहीं। दो दिन दो रात में अठारह इंच वर्षा! प्रलय का ही तो दृश्य है-! काश यह जल लाल होता! तब तो आकाश का खून हो जाता न? नहीं, आकाश आज बहा रहा है क्योंकि नीरा का रक्तस्राव बन्द नहीं होता।

मैं समाचार पाकर घबरा जाता हूँ, पसीने से तर—सोचता हूँ, सोचता हूँ, परन्तु सब कुछ उमड़-घुमड़ कर अस्पष्ट हो जाता है, आकाश में घिरे बादलों सा! अन्त में एक तार लिखता हूँ जवाबी, अस्पताल के सर्जन के नाम व नौकर को आवाज़ लगाता हूँ। वह भी कहीं ऊंघ रहा होगा, दोपहर का खाना सब का समाप्त होगया था न। यह तो तीसरे पहर की निद्रा का समय है—साहब का, नौकर का।

फिर आवाज लगाता हूँ, कोई आहट नहीं; बस मूसलाधार पानी की आवाज़ बराबर आरही है। झट कमरे से बाहर निकलता हूँ, आदतन पल्ला पीछे धकेलकर बन्द कर देता हूँ और लीजिये पिस गई मेरे दाहिने हाथ की बिचली उंगली, झट टिकली बराबर काला निशान बन गया—न जाने किस के मांग की टिकली!

अभी कुछ चोट सी नहीं मालूम होती, एक विचित्र संतोष की सांस

लेता हूँ, परन्तु ऐसा क्यो? क्या इससे नीरा का रक्तस्राव बन्द हो जायगा?

* * * *

इस घटना को हुए भी आज कुछ दिन होगये। नाखून धीरे धीरे उतरेगा ही। क्रिया धीमी है परन्तु निरंतर जारी है और मैं इस कमरे में लेटा कभी अनामिका के गड्ढे को देखता हूं व कभी मध्यमा के काले उतरने वाले नाखून को। एक में मुर्गी का रक्तप्लावित आंचल दिखाई देता है तो दूसरे में नीरा का कभी न बन्द होने वाला रक्तस्राव।

———

है. कोई मुझे निरंतर देखता रहता है, मेरी ओर ताकता रहता है, प्यार से, उत्साह से·········।

* * * *

ये बटन और वह शाम जब इन्हें खरीदा था। ओह, मैंने कब खरीदे थे? इन्हें तो नीरा ने ले दिया था। कर्नॉट प्लेस में हम दोनों निकले थे। दिसम्बर का मास था। हां, दिसम्बर ही तो! दिन सुहावना था, धूप प्यारी प्यारी फैली थी, सो भी कई दिन की बूँदाबाँदी के बाद निकली थी; इसलिये मन मोहे लेती थी, परन्तु हवा तीर की तरह देह के आर-पार होने वाली थी। खैर थी, हम दोनों ने काफ़ी गर्म कपड़े पहन रखे थे और बहुत पास पास चलते भी थे, इसलिये ठंडक कम महसूस होती थी।

दोपहर के भोजन के पश्चात् हम गाड़ी में निकल पड़े कर्नॉट प्लेस। बड़े दिन की चहल-पहल देर तक देखते रहे।

कर्नॉट प्लेस वैसे तो सदा बहार की तरह बराबर ही हराभरा रहता है, पर आज की बात ही कुछ और थी। 'ग्रीटिंग कार्ड' की दूकानों पर सब से अधिक भीड़ थी। हम लोग भी कुछ कार्ड खरीदने उधर ही जम गये।

नीरा तो सहज शैतान है न! जिस किसी देशी या विदेशी मेम को ज़रा शानदार व खूबसूरत पाती झट बोलती, "मिस्टर कुमार, आपका परिचय इनसे करा दूं, मैं इनको जानती हूं, ये 'प्रोस्पेक्टिव' हैं।

इतने सुहावने समय में इन बाज़ारों में एक अजीब गर्मी छाई रहती है। तीर से चुभने वाले जाड़े के बावजूद भी नव-जवान खूबसूरत चेहरों पर ज़रा आँखें सेंकते हुए चलने के आदी हो गये हैं। पता नहीं, यह सौंदर्य-पूजा केवल एकांगी ही है या दूसरे पक्ष को भी इसमें भीतर ही भीतर कुछ दिलचस्पी रहती है।

हम दोनों एक दूकान पर खड़े कार्ड चुन रहे थे कि एक पंजाबी गोरे जवान आकर नीरा की बगल में खड़े होगये व कार्ड देखने लगे। कार्ड तो वे क्या देख रहे थे, नीरा की रूप-सुधा जनाब पी रहे थे। नीरा ने भाप

ही तो लिया। झट बोली, "ए मिस्टर, इधर क्या देखते हैं, किसी आईने की दूकान पर जाइये न।"

बेचारा इतना घबराया कि झट वहां से हटा, खीझ भरता हुआ, क्योंकि आसपास के दो-चार आदमी ठठाकर हँस पड़े थे।

दूकान से हटने पर मैंने कहा, "नीरा, तुम बड़ी ढीठ हो।"

बोली, "इसमें ढीठ होने की भला क्या बात है? वैसे तो सभी थोड़ी बहुत आँखें सेंकते हैं। कौन मना करता है, पर जनाब, ये तो ऐसे घूरकर ताक रहे थे कि बस जैसे पी ही जायेंगे। यह भी कोई बात रही?"

"तो तुम जानती हो कि सभी जवान थोड़ी-बहुत आँखें सेंकते हैं क्यों?"

"जानती क्यों नहीं, रोज रोज तो यही देखती हूं, कर्नाट प्लेस में। यह तो मामूली सी बात है। जनाब, ये लोग राह-चलती लड़कियों को जान-बूझकर बगल से धक्का देते निकल जायेंगे, या बाह छूते हुए, नहीं तो साड़ी का पल्ला ही सही, कुछ नहीं तो बहुत पास से गुजरने से इत्र की मीठी सुगन्ध का एक झोंका तो मिल ही जायगा······।"

"और उनकी रात की नींद हराम कर देगा, क्यों?"

वह हंस पड़ी।

"तुम तो अब बड़ी समझदार हो गई हो व शायद सयानी भी।"

"यह दिल्ली है, मि॰ कुमार, यहां पर ये चीजें जबरदस्ती सिर पर लाद दी जाती हैं, कोई लड़की चाहे या न चाहे।"

"अच्छा, तुम यह बताओ, क्या लड़कियों को भी यह छेड़खानी पसन्द आती है?"

"यह तो अपनी आदत व विनोद-प्रियता पर निर्भर है, पर मैं इतना जरूर कहूंगी कि आजकल बहुत बुरा नहीं लगता।"

इतना कहते कहते वह झेंप सी गई। न जाने कैसा रंग उसके कपोलों पर छा गया। मैंने जो उसकी ओर देखा तो वह दूसरी ओर ताकने लगी। ऐसा लगा मानों झेंप मिटाने के ही लिये वह बोली, "यह तो खैर

समझिये कि राह-चलने ये मनचले जवान किसी को पकड़कर चूम नहीं लेते।"

"ऐसा करते भी हों तो क्या पता!"

इस पर हम दोनों ठठाकर हंस पड़े। बात की दिशा बदलने के लिये शायद वह बोली, बराण्डे की एक छोटी सी दूकान को देखकर, "आपके लिये कफ़ के बटन लेने हैं न? चलिये ले लें, वह रही दूकान।"

हम दोनों को इतनी छोटी सी दूकान पर आने की कृपा करते देख दूकानदार ने तपाक से सलाम किया, "सलाम साहब, सलाम मेम साहब, क्या पेश करूं खिदमत में?"

वह तो एक सांस में ही सब कुछ कह गया। वैसे मेम साहब कहे जाने की तो नीरा आदी थी, परन्तु एक नवजवान साहब के साथ होने पर 'मेम साहब' कहे जाने पर—विशेष कर जिस निगाह से देखकर, जिस लहजे में उस दूकानदार ने कहा—नीरा पल भर के लिये निराले असमंजस में पड़ गई, पर तुरन्त संभल गई व बोली, "कमीज के कफ़ के बटन चाहियें।"

बहुत सारे बटन दूकानदार ने पेश किये। नीरा हर एक में कुछ मीन-मेख निकालती रही। मुझसे भी एक-आध बार सलाह ली, परन्तु मैंने कोई भी सलाह देने से इन्कार किया। जब सुरुचि की सजीव प्रतिमा स्वयं चुनाव कर रही हो मेरे कफ़ के बटनों का, तो मैं भला उसमें अपनी अज्ञानता का परिचय क्यों देता।

नीरा को मेरी रुचि का पता न जाने कैसे लग चुका था। इन लड़कियों को शायद भगवान ने सूंघकर समझ जाने की एक छठी इन्द्रिय दे रखी है जो लड़कों को नहीं मिलती। ये बहुत कुछ तो सूंघकर ही समझ जाती हैं, कब, कैसे, कोई नहीं जानता।

खैर, एक सादा, अत्यन्त श्वेत पर चमकीला व खूबसूरत बटन चुना गया जिसमें गोल काली धारी किनारे पर डली थी। मुझे भी खूब जंचा।

जब हम लोग चलने को हुए तो दूकानदार बोला, "हुजूर, मेम साहब

के लिये चूड़ियां ! जोड़ा सलामत रहे।"

ओह, ज़रा आप देखते नीरा के सारे चेहरे पर छाया हुआ क्रोध। वह तमतमा उठी। मुझे लगा कि सेण्डल निकालकर दूकानदार को मार बैठेगी ; परन्तु नहीं, सभ्यता ने इन लड़कियों को बहुत कुछ पी जाना सिखाया है। मेरी ओर तो उसकी निगाह ही न उठी। तब मैं मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। मेरी मुस्कान का भान होते ही वह लाज से गड़ गई व आंखें कनॉट प्लेस की गोलाई के बीच में लगे हुए फूलों पर जमा लीं। मैं झट बोला, "हां जी, ठीक तो कहते हो, मेम साहब को चूड़ियां दो।"

उसने चूड़ियां दिखाना शुरू कर दिया। एक से एक बढ़कर सुनहरी चूड़ियों के नमूने दिखाने लगा। इसी बीच अपने बारह वर्ष के लड़के को दौड़ाया और नमूने लाने के लिये।

मैंने नीरा को बहुत कहा, परन्तु वह एक भी चूड़ी देखने को तैयार नहीं हुई। दूकानदार समझ गया कि कहीं भूल होगई। क्षमा-याचना करते हुए नीरा से बोला, "हुज़ूर, कोई गुस्ताखी हो गई हो तो मुआफ़ करें, पर इन चूड़ियों का मुलाहिज़ा हो, सोने व हीरे को मात करती हैं। आप ही लोगों के लिये तो इनको हज़ारों नमूनों में से इन्तखाब कर लाया हूँ। ये सुहाग की चूड़ियां हैं, हुज़ूर!"

मैंने तो समझा कि 'सुहाग' के नाम पर नीरा फिर जल-भुनकर लाल हो जायगी, परन्तु ऐसा न हुआ। वह थोड़ी थोड़ी सी झेंपती हुई आकर मेरी बगल में खड़ी होगई व धुआंधार चूड़ियों का चुनाव करने लगी।

मुझे एक बारगी मेंढक के ऊपर किया जाने वाला वह प्रयोग जो विज्ञान के अध्यापक ने आठवीं कक्षा में कराया था। उन्होंने कहा था कि मेंढक दो मिनट से ज्यादा पानी के भीतर नहीं रह सकता, उसे सांस लेने पानी के ऊपर आना ही पड़ता है।

हम चार लड़कों का गुट था। एक मेंढक मिला प्रयोग के लिये। हम लेकर कूंडे में तालाब पर गये, मेंढक की आदतों का अध्ययन करने। मेरे एक साथी ने कहा, "इसकी टांग में कोई सूत का धागा क्यों न बांध

दें, कहीं गायब हो जाय तो !"

मैं बोला, "नहीं जी, इतने छोटे से तालाब में कहां जायगा, फिर दो मिनट से ज्यादा तो वह पानी के भीतर रह भी नहीं सकता, सांस लेने उसे ऊपर आना ही पड़ेगा।"

सब सहमत हो गये। मेंढक पानी में छोड़ दिया गया और पहली ही छलांग में वह तालाब में नीचे कहीं जाकर दुबककर बैठ गया। हम लोग उसके ऊपर आने की प्रतीक्षा करने लगे। दो मिनट बीते, चार, छः, दस, पन्द्रह ... धीरे धीरे आधा घण्टा बीत गया, परन्तु जनाब मेंढक एक बार भी ऊपर तशरीफ़ न लाये।

डरते डरते, मुंह लटकाये हम लोग अध्यापक के पास गये व सारी घटना बतलाई। वे मुस्कराये। हमारी जान में जान आई। बोले, "यह भी एक आदत नोट कर लो जानवरों की। किसी भी जानवर की आदत या हरकत की भविष्य-वाणी बराबर नहीं हो सकती; कोई पहले से नहीं जान सकता।"

मैंने उस दिन नोट कर ली अध्यापक जी की बात और आज उसमें जोड़ लिया कि लड़कियों की हरकत की भी भविष्य-वाणी नहीं हो सकती—ठीक मेंढकों की तरह। कोई उनको पहले से नहीं जान सकता।

नीरा की हरकतों से, चूड़ियों के चुनाव के उसके चाव से ऐसा लगता था कि उसमें भीतर गुस्से के बदले किसी प्रकार की मिठास भर आयी है।

बड़ी छानबीन के बाद चूड़ियों के तीन सेट लिये गये। उसने मुझे कफ़ के बटन ले दिये और मैंने उसे चूड़ियां। अब हम लोग तीसरे पहर की चाय के लिये एक शीत-ताप नियंत्रित रेस्टोरेंट में गये।

बड़ी शांति के साथ हम दोनों चुपचाप चाय पीते रहे। बातें तो कम ही हुईं, परन्तु सामीप्य के सुख का अनुभव शायद दोनों चुपचाप भीतर ही भीतर कर रहे थे।

यहां भी एक छोटी सी घटना हो गई।

प्याला मेरी ओर बढ़ाया। मैंने पहला 'सिप' लिया, होंठ हिले व इतने में ही वह झट बोली, "चाय अच्छी नहीं है न ? मैं दूसरा प्याला बनाये देती हूँ, आप छोड़ दीजिये।"

मैंने अचकचाकर जो उसकी ओर देखा तो दो बड़ी बड़ी आँखें मेरे चेहरे पर जमी थीं, ठीक उन्हीं चमकते बटनों जैसी। मैं दंग रह गया इस अनुमानिए शक्ति पर। इतना सूक्ष्म अध्ययन ! होंठ हिले नहीं कि—चाय अच्छी नहीं है न ? मैं दूसरा प्याला बनाये देती हूँ, आप छोड़ दीजिये।

नीरा का मुझमें इतना चाव क्यों है ? क्यों ? उसकी निगाहें क्या सचमुच इतनी तेज व सूक्ष्म अध्ययन करने वाली हैं ? तब तो मेरे लिये बड़ा संकट है। मैं लापरवाह आदमी ठहरा, रात-दिन इस ढाँचे के नीचे कैसे रहूँगा ! भूलें मुझसे बराबर होती रहती हैं।

दूसरा प्याला आया, चाय बनी। फिर हम दोनों पीते रहे, पीते रहे। बीच बीच में नमकीन काजुओं के एक-दो टुकड़े उठाते रहे। मैं सोच रहा था दूकानदार की वे बातें—'जोड़ा सलामत रहे,' 'चूड़ियां सोहाग की हैं, हुजूर' और यह चाय वाली बात : इतनी लापरवाही के बीच इतना सूक्ष्म प्यार। मैं इन सारी बातों को मॉर्टन की मीठी गोलियों की तरह भीतर ही भीतर घुलाता रहा, चूसता रहा, रस लेता रहा। बीच बीच में कभी कभी अपने कफ के बटन देखता व कभी उन बड़ी बड़ी आँखों को जो इस समय न जाने किस स्वर्ग-लोक के स्वप्न में अधमुँदी सी, खोई खोई सी हो रही थीं।

क्या नीरा भी यही सब सोच रही थी ? कौन जाने उसके मन की बात !

अंत में मैंने फिर देखा वे बड़ी बड़ी आँखें व मेरे ये कफ के बटन।

* * * *

और मेरा ध्यान चला गया बर्षों पहले की एक छोटी सी घटना पर। हम गांव में तब रहते थे। आम के बाग में चक्कर काटते पर अभी कुछ मिलने की आशा तो थी नहीं, नन्ही-नन्ही अंबिया जहां तहां दिख जातीं। भला चक्कर काटना कौन ढूंढ़ता है।

गर्मियों के दिन थे, यही तीसरा पहर, मुर्री दौड़ती-हांफती मेरे घर आई। दरवाजे पर से ही इशारे से बुलाया। घर में सभी सो रहे थे। मैं चुपके से खिसका व हम दोनों भागकर बाग में पहुँच गये और एक पेड़ के पीछे सटकर बैठ गये ताकि कोई देख न ले। मैंने तब पूछा, "क्या है री?"

"रुको न, ललचाई आंखों से क्या देखते हो?"

"तेरा सिर! बोल न आचल में क्या छुपाकर लाई है?"

"बेसब्रे क्यों हो रहे हो? यह देखो!"

उसने आंचल के छोर से एक अम्बिया निकाली, दांत-तले बीच से दबाई। अम्बिया की दो फाकें होगयीं। एक मुझे दी व एक स्वयं खाने लगी। मैंने आव देखा न ताव। झट मुँह में डाल चबाने लगा दांतों-तले।

"अरे बाप रे बाप, न जाने कैसी तीखी लगती है!"

"तू तो पूरा बुद्धू है, कुम्मू। अम्बिया का बीज भी खा गया, थूक दे।"

मैंने थूक दिया सब कुछ व उसकी ओर ताकने लगा, फिर ललचाई आखों से। उसने एक दूसरी अम्बिया आचल से निकाली व फिर दांतों-तले दबाकर दो फाकें कर डालीं; दो बड़ी बड़ी अम्बिया की फाकें, ठीक मुर्री की आंखों जैसी। इस बार उसने बीज स्वयं दांत से निकालकर फेंक दिया व मुझे एक टुकड़ा दे दूसरा स्वयं खाने लगी।

इस बार मैंने जी भर कर खाया पर शरारतन बोला, "खट्टा है री, दांत खट्टे हो रहे हैं।"

वह आंखें तरेर कर बोली, "कितनी मेहनत से तो चोरी चोरी मौसम की पहली अम्बिया तेरे लिये चुराकर लाई और तू कहता है—खट्टी है री! जानता है इनमें रस आने में कितनी देर है? पानी पड़ेगा, आषाढ़ का पहला पानी, तब इनमें रस आयगा।"

"तब तक तो मैं जीभ चटक चटक कर मर जाऊंगा, मुर्री।"

"तो मर, मुझे क्या!"

"अच्छा, तो तुम्हें दिखाता हूँ," कहकर मैंने झट उसके बाल पकड़ कर खींचे। वह गालियां, भीतर ही भीतर, बुदबुदाती हुई भाग गई, परन्तु चीखी-चिल्लाई नहीं। चोरी चोरी की बात जो थी।

• • • •

मैं सोचता रहा, सोचता रहा, वे अम्बियों की फांकें तथा बड़ी बड़ी सुडौल मुर्गी की आंखें व सामने नीरा के आकर्षक नयन—अम्बियों की फांकों जैसे, और ये बटन!

हम दोनों मुस्कराये और उठकर चल दिये।

• • • •

मैं अभी भी देख रहा हूँ मेरे हाथ का यह कफ का बटन, चमकीला व खूबसूरत; वे बड़ी बड़ी आंखें चमकीली व खूबसूरत तथा इस नर्स की—रेखा की—मदहोश, विहंसती आंखें! और—

'अकेले रहने पर रेखा, सब के सामने मिस रेखा!'

तीसरा परिच्छेद

पैरिस की यात्रा

तीसरा पहर आया नहीं कि रेखा चाय की ट्रे लिये आगई—कुछ फल, कुछ बिस्किट और दो चॉकलेट रखकर।

चॉकलेट को देखते ही मेरा मन व मस्तिष्क तेजी से काम करने लगे। न जाने कितनी स्मृतियां एक साथ ही जाग उठीं। जब अन्तर की गति-विधि तेज होती है तो ऊपर शरीर के अवयवों में एक निराली बेकारी छा जाती है। उसे देख रेखा बोली, "क्यों, क्या सोच रहे हो?"

"यह कि तुम भी 'चॉकलेट-गर्ल' हो या नहीं।"

"धत्, कहिये तो चाय बना दूं?"

"जी नहीं, कृपा करो, महारानी।"

उसका मुंह उतर गया। समझी, मैं नाराज़ होगया। बोली, "आप मुझसे नाराज़ होगये न?"

"क्यों?"

"चॉकलेट लाने के लिये।"

"नहीं तो।"

"ये कैडबरी के सर्वोत्तम चॉकलेट हैं······।"

"व तुम्हें बहुत पसन्द हैं?"

वह मुस्करा पड़ी। मैंने एक चॉकलेट निकाल उसके मुंह में ठूंस दिया, लगभग ज़बरदस्ती ही। वह कहती रही, "अरे कोई देख लेगा तो क्या होगा?"

"होगा क्या? सोचेगा कि बीमार के लिये चॉकलेट लाती है और

देखो ! कैसी लगती थी ?"

"साड़ी ? मुझे तो कुछ भी ध्यान नहीं।"

वह रुआंसी होकर बोली, "कुछ भी ध्यान नहीं ? सच ?"

"हां, सचमुच।"

उसके नयन-कोरों में आंसू झलकने लगे व वह झट दूसरे कमरे में भाग गई। मैं चुपचाप ठूँठ की तरह खड़ा रहा। सच बात तो यह थी कि मैंने सचमुच कोई ध्यान नहीं दिया था। चित्र में ही तो मिले थे व वहीं से अलग होगये, दो दिशाओं में। भला कब ध्यान देता जब कि यों ही मन में खीझ भरी हो।

उस दिन नीरा ने दिन भर न कुछ खाया, न पिया। शाम को उसकी बड़ी बहन मीरा ने जब बताया कि उसने भूख-हड़ताल कर रखी है और किसी की सुनती ही नहीं, तो मैं उसके कमरे में गया और बोला, "चॉकलेट-गर्ल, तुम चॉकलेट के लिये नाराज हो ? लो यह चॉकलेट।" मैं जेब में चॉकलेट लेकर आया था।

मैंने जबरदस्ती उसके मुँह में चॉकलेट ठूंसना चाहा, पर वह है एक शैतान व चीमड़ भी। उसने दांत बन्द कर लिये। मैंने और भी जोर लगाया। नतीजा यह हुआ कि उसके दांत खुले तो चॉकलेट के साथ मेरी उंगलियां भी उनके नीचे पिस गई, उंगलियों पर दातों के गहरे निशान उभर आये। उसने उन उंगलियों को पकड़कर मुंह से फूंका, चूमा और सहलाया भी। हम दोनों मुस्कराये व सुलह हो गई। फिर तो कितने ही चॉकलेट खा डाले। मैं हर एक उसके मुँह में देता, वह आधा काट लेती व आधा छोड़ देती मेरे लिये जिसे मैं खुशी खुशी अपने मुँह में डाल जाता।

* * * *

मैंने कहा न ! रेखा में किसी की प्रतिच्छाया सी है, किसी का आभास है, नहीं तो मैं चॉकलेट उसके मुँह में कभी न डालता, कभी नहीं।

वैसे मुझे चॉकलेट बहुत पसन्द नहीं। मैं पहले खाता भी न था।

आप सोचते होंगे, नीरा ने चॉकलेट खाना सिखा दिया। जी नहीं, यह भी बात नहीं। वह गौरव तो किसी और ही को मिला था।

मैं जरा चाय का अपना दूसरा प्याला भर लूं। मैं चाय पी रहा हूँ व देख रहा हूँ कैडबरी के इस सर्वोत्तम चॉकलेट को। रेखा ने यही तो कहा था न!

और सोच रहा हूँ कि यह 'नेसल' का 'ह्वाइट मिल्क' चॉकलेट तो है नहीं; वह तो भारत में शायद मिलता भी नहीं, बिकता भी नहीं। कम से कम ताजमहल में तो मुझे नहीं मिला और न ओलम्पिया में ही। अब मिलता हो तो मैं नहीं जानता।

तो यह वह चॉकलेट नहीं जिससे मैंने खाना शुरू किया था। सो भी कैसे!

* * * *

जब हमारा प्लेन भूमध्यसागर के ऊपर से गुजर रहा था तो नीचे लहराते नीले समुद्र, नन्हे नन्हे द्वीप तथा खरगोशों के बालों जैसे श्वेत बादल-खण्डों को तैरते देख हृदय आर्द्र हो उठा। मन में ट्रोजन के युद्ध-पोत तथा हेलेन का सौंदर्य छा गया जिसमें दस सहस्र युद्ध-पोत इतिहास के उस धुँधले युग में ट्रॉय की ओर दैत्य की तरह बढ़ते चले आ रहे थे। मैं 'लोटस ईटर्स' की बात सोचने लगा और मुझे आभास होने लगा कि हर द्वीप अंगूर के लता-कुँजों से भरा पड़ा है व हर कुँज के नीचे अमर प्रेम-कथा के प्रकरण चल रहे हैं—ओमर-खैयाम, सुरा और सुन्दरी के दौर जारी होंगे।

इसी बीच 'होस्टेस' ने बड़े प्यार व आग्रह से कहा, "मैं फिर कहती हूँ, मिस्टर कुमार, आप चॉकलेट लें। यह कोई साधारण चॉकलेट नहीं, नेसल का ह्वाइट मिल्क चॉकलेट है। आपको ज़रूर पसन्द आयगा।"

मेरे मन ने स्वीकार तो न किया, पर इस भरी जवानी में न तो मैं इतना ज्ञानी ही होगया था और न धर्मात्मा, कि किसी सुन्दरी के इतने प्यार-भरे आग्रह को भूमध्यसागर के अंगूरी आकाश पर उड़ते हुए टाल सकता।

मैंने चॉकलेट व फल तथा कॉफी ले ही लिये।

मैंने पहले फल खाये, फिर कॉफी पी और तब चॉकलेट आरम्भ किया, परन्तु मेरे अंतर के संस्कार ने विद्रोह किया। भौतिक-पूजा व अध्यात्म संस्कार के इस युद्ध में संस्कार की जीत रही। मुझे कै आरम्भ होगई। हॉस्टेस दौड़कर आई, मुझे संभाला व बहुत पछताई—बहुत। उसके चेहरे पर, सचमुच, परिताप की विचित्र मुद्रा खिंच गई थी।

मैं अपनी तबियत खराब होने की बात को भूल, बार बार हॉस्टेस की ही बात सोच रहा था। बेचारी को सचमुच आन्तरिक दुःख हुआ।

मैंने सोचा कि चलो अब कभी चॉकलेट न खाऊँगा। पर भाग्य में ऐसा लिखा हो तब न।

• • • •
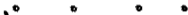
पैरिस जाने के लिये मैं साउथ हैम्पटन में जहाज पर चढ़ रहा था। गैंगवेज़ में कुछ भीड़ सी थी। एक महिला के हाथ में चार छोटे-बड़े बैग व केस थे तथा एक बच्ची। सम्भाल न पाने के कारण बच्ची उसके हाथ से छूट पड़ी। मैं कुछ नीचे था व खाली था। मैंने झट बच्ची को पकड़ लिया।

महिला ने फ्रेंच में कुछ कहा सो तो मैं समझ न पाया, परन्तु उसके चेहरे पर छाई कृतज्ञता को मैं खूब पढ़ सका।

इतने में ही क्या देखता हूँ कि एक नवयुवती ने उस महिला के हाथ से दो बैग ले लिये और इस प्रकार कुछ बोझ से हल्की होकर महिला ने मेरी गोद से बच्चा मांगा। मैंने बच्चे को तो उसकी गोद में दे दिया, परन्तु धन्यवाद दूसरी महिला को दिया। हम लोगों की आँखें भी मिलीं व मुस्कराकर रह गये।

जहाज में मेरी जगह तो सुरक्षित थी, पर मेरे मित्र श्री खण्डेलवाल की नहीं। अतः मैंने अपनी जगह उन्हें दे दी व एक दूसरी जगह पर लापरवाही के साथ बैठ गया। सोचा, देखा जायगा, अब कोई आयगा।

इतने में वही नवयुवती चक्कर काटती काटती मेरे सामने आ खड़ी

हुई। मैंने कुछ न कहा, केवल ताकता रहा। कोई परिचय थोड़े ही था।

वह चली गई, परन्तु घूम-फिरकर फिर वहीं आ खड़ी हुई। अब मैंने पूछा, "आपको अपनी जगह नहीं मिली अभी तक?"

"जी नहीं।"

"क्या नम्बर है? लाइये, मैं तलाश करूं।"

"चौंसठ।"

परन्तु ज्योंही मैं उठा कि नवयुवती की दृष्टि मेरी जगह के नम्बर पर पड़ गई।

मैंने कहा, "क्या बात है? आइये न मेरे साथ।"

वह हिली नहीं, तब मेरी निगाह उस नम्बर पर पड़ी। ओह, इस चौंसठ पर तो मैं ही जमा बैठा था।

मैंने उससे बहुत, बहुत क्षमा मांगी व उस स्थान पर उसे बैठाया। स्वयं भी बगल में बैठ गया। हम लोगों में साधारण बातें होती रहीं। पता चला कि वह अमेरिकन लड़की है, पिता इंजिनियर है, कॉलेज में पढ़ती है व पैरिस जारही है, फ्रेंच सीखने किसी स्कूल में।

मैं उसे 'बार' में ले गया। वहां थोड़ी-बहुत पी-पिलाकर हम डेक पर आये।

वह नीला आकाश, सुहावनी धूप, नीला जल, समुद्र पर से आने वाली ठंडी व मीठी हवा के झोंके, जहाज के चक्र से उद्वेलित फेन भरे मोतियों से चमकते धवल-जल का राजपथ, उस पर उड़ते बगुलों की पंक्ति। सब कुछ इतना मोहक था कि बस"""। और हम दोनों डेक की रेलिंग पर खड़े खड़े न जाने कितनी बातें करते रहे, कुछ याद नहीं। हां, मैं उसके सुनहरे, लहराते केश तथा चमकती आंखों को देखता रहा जिन में भरी थी न जाने कितनी करुणा मिली मिठास, कितनी मोहकता।

उसी डेक पर (दिन के तीसरे पहर) उसने अपनी 'पर्स' से चॉक्लेट निकाला व बिना कहे-सुने मेरी ओर एक बढ़ा दिया। क्या हम लोग इतनी देर में इतने निकट आचुके थे?

मैं तो चकित रह गया उसकी इस सहज गति विधि पर, जैसे उसने मेरा 'एकमरे' कर लिया हो। मैं हिचकिचाया।

वह बोली, "खाइये न।"

"मैं चॉकलेट नहीं खाता।"

"कारण? बड़ा अच्छा है। कभी खाकर देखा भी है?"

"हां, प्लेन में मुझे होस्टेस ने बड़े हठ व प्यार के साथ दिया था, परन्तु कय होगई।"

"कय होगई! अच्छा हुआ।" वह मुंह बनाकर बोली। "अब नहीं होगी, मैं अपने हाथ से जो दे रही हूँ।"

लगा, जैसे मेरे मुँह में अपने ही हाथों से ठूंस देगी, परन्तु मैंने स्वयं झट से उसके हाथ से चॉकलेट ले लिया व धीरे धीरे खाता रहा।

पोत चलता रहा; पानी के छींटे हवा में मोतियों के दानों की तरह उछलते रहे; इन्द्रधनुषों की सृष्टि सहस्रों की संख्या में होती रही; श्वेत पंखधारी पक्षी पीछे पीछे उड़ते रहे; धूप चमकती रही; जल पर बना हुआ राज-पथ पिघली हुई चांदी की तरह हिलता-डोलता रहा; तथा हम दोनों समुद्र की ठंडी बयार के झोंकों को प्रेम से झेलते रहे और हंसते हंसते बातें करते रहे। मैंने धीरे धीरे कब चॉकलेट खत्म कर दिया, कुछ पता न चला।

इस बार उसने बिना कुछ कहे, बिना पूछे मेरे मुँह में दूसरा चॉकलेट पकड़ा दिया। मैं भी कुछ बोला नहीं। जब चॉकलेट खत्म हुआ तो हम दोनों डेक से चलने को हुए; कारण, उसका पेटीकोट व मेरी पैण्ट काफी भीग चुके थे, जल के छींटों से।

चलते चलते मैंने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"जेन के॰ स्मिथ।"

"इतना बड़ा नाम? मैं केवल जेन कहूँ तो?"

"ठीक है।"

"और मेरा नाम...... ...।"

"कोई ज़रूरत नहीं, मैंने आपके हैण्डबैग पर देख लिया है—मि० कुमार।"

हम दोनों मुस्कराये।

"आप तो किसी अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस के प्रतिनिधि हैं न?"

मैं चकराया। इसकी बुद्धि कितनी पैनी है, कितनी दूर तक बिना बताये मुझे जान चुकी है। डेक पर चलते चलते अचानक पूछ बैठी, "कहिये, क्या तो नहीं हुई न?"

"मैं अपने को भूल जो गया था तुम्हारे साथ होने से, अब याद दिला दिया तो हो जायगी।"

"हर्गिज़ नहीं, मैं 'एयर होस्टेस' नहीं, मि० कुमार; जेन हूँ, जेन, आप भी क्या याद करेंगे," कहकर वह झेंपी व मुस्करायी।

मैं अभी भी उस मोहक मुस्कान को देख रहा हूँ, अभी भी।

• • • •

यह आई रेखा। चॉकलेट पड़ा देखकर आंखों में ही नाराज़गी ज़ाहिर करती, ट्रे उठाकर ले गई। कुछ बोली नहीं।

और मैं लेटा लेटा सोच रहा हूँ—जेन की पहली चॉकलेट, फिर नीरा की, फिर इस रेखा की कैडबरी।

———

"अरे हां, यह दवा लिखी है। आप अभी इसे मंगवा लें। रात को कोई सुई दे देगा।"

"यह बात नहीं, रेखा, सुई तुम्हें देनी पड़ेगी।"

"पर मेरी तो ड्यूटी नहीं।"

"इससे क्या, तुम्हें सुई देकर आना होगा, या घर से आजाना।"

"बाप रे बाप, इतनी सी सुई के लिये?"

"दर्द तो मुझे होगा, तुम्हारी क्यों जान जाती है?"

"जान इसलिये जाती है, मि० कुमार, कि मैं सुई दूंगी तो आपको दर्द बहुत होगा।"

"सच?"

क्या देखिये न रेखा के चेहरे पर नाचती मोहिनी झेंप। कहने को तो वह कह गई पर मारे लाज के मरी जारही है।

"क्यों, तुम बहुत गहरी चुभोओगी क्या?"

"हां जनाब, मैं आर-पार कर दूंगी," कहकर वह हंसती, झेंपती, एक तरह से कमरे से भाग गई।

कुछ कह न गई, सुई देने आयगी या नहीं; परन्तु मेरा मन कहता है कि वह आयगी, जरूर आयगी।

कहते कहते एक बड़ी मीठी व सुहावनी स्मृति को छेड़ गई; पता नहीं किस ने छेड़ा — इन सुनहरी किरणों ने, या उसने या दोनों ने मिलकर।

जाने क्या होता है जब बड़ी बड़ी नशीली आंखों, उलझे बालों, पतले होंठों व दमकते कपोलों को आड़ करके ये सुनहरी ललाई-भरी किरणें घूंघट कर देती हैं? न कहना ही अच्छा है, न पूछना ही भला है।

• • • •

ऐसी ही तो एक संध्या थी, जाड़े की अलबेली, रागभरी संध्या। मैं दिल्ली स्टेशन पर तूफान एक्सप्रेस से उतरा था। ऐसी ही किरणों में [illegible], असली की देहली पर कदम रखती हुई, अठारह वर्ष की एक शोख लड़की को देखकर दंग रह गया।

कैसे कहूँ उस रूप-सुधा की मिठास को, कैसे बताऊं उस अमर अमिट छाप को, देख तो अब भी रहा हूँ; स्टेशन पर मि० सहाय दो खूबसूरत लड़कियों के साथ तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ खड़े हैं।

मैंने रेलगाड़ी से ही हाथ दिया, उन्होंने भी हाथ उठाया। रेलगाड़ी रुकी। वे सब के साथ मेरे डिब्बे के सामने आये। मैं भी उतरा, उनसे हाथ मिलाने लगा तो उन्होंने अपनी पूरी बाहों में ही मुझे भर लिया।

परन्तु इस मिलने के समय भी मेरी निगाहें निरन्तर एक चेहरे पर टिकी हैं जहां बड़ी बड़ी आखें, कुछ अजीब ढंग से, भूली भूली सी उत्सुकता लिये, बेचैन हो रही हैं; होंठ न जाने कैसी प्यास से कापते से लगते हैं; भ्रम-मात्र ही हो शायद या प्रीतिभरी किरणों की करामात हो। फिर यह बचपना भी तो निराला है कि चुन्नी को दांतों-तले दबाना व कभी उंगलियों में उमेठना। समय नहीं कटता लगता है। देर से ये लोग स्टेशन पर आ चुके थे क्या?

यह मुद्रा इस बात की द्योतक तो नहीं कि चलो बहुत समय होगया, जी थक गया, यह बला आई तो! अब जल्दी सब परिचय के रस्म-रिवाज खत्म हों तो घर चलें।

नहीं, नहीं, यह तो विचित्र अल्हड़पन है, इसे किसी सी काम के आरम्भ व समाप्ति से कोई मतलब नहीं। लोग अपनी दुनियादारी अपने पास रखें, इनको तो अपनी बेपरवाही चाहिये।

यह भीनी भीनी चुन्नी भी क्या बला है, पूरा मोह-जाल ही तो है; यह कभी भी एक स्थान पर टिकना ही नहीं जानती। हर पल, हर क्षण मछली की तरह फिसल जाती है और इस काली काली भीनी बदली की ओट से गोल गोल चांद उग पड़ता है, सो भी एक नहीं, दो दो। क्या इतने जाड़े में भी वहां इतनी गर्माई है, सारे बन्धन तोड़कर झांकने की इतनी विह्वलता है! कदम कदम पर लहरें उठती हैं, जैसे स्थिरता नाम की कोई चीज़ ही वहां न हो।

फेंक न दीजिये इस चुन्नी को, फिर जेन के उभार व इसमें कोई

शायद मुझे।

मुड़ते ही क्या देखता हूँ कि सूरज की सुनहरी किरणें, पूरी की पूरी, खिड़की से उछलकर, रेखा को दबोच बैठीं, वह तो *बिल्कुल नहा गई।* कपोलों पर नैसर्गिक सुनहरी लाली छागई। वह दमक उठी; ज़रा उलझे केश स्नेह-धारा बन बैठे। मैं मंत्र-मुग्ध सा देख रहा हूँ; छककर यह रूप-सुधा तो पी लूं। कुछ ठहरकर बोला, "रेखा, क्या बात है? तुम कब से खड़ी हो?"

"बस अभी तो आई हूं। आप आंखमिचौनी देखने में इतने व्यस्त थे कि मेरा आना भी न जान पाये।"

"अगर तुम बिल्ली के पाव आजाओ तो मैं कैसे जानूंगा?"

"आंखमिचौनी आप कभी खेले हैं?"

"न पूछो तो अच्छा है, रेखा, पर तुम क्यों उदास हो रही हो? तुम्हें आंखमिचौनी प्रिय है?"

"प्रिय तो बहुत है जी, पर जब अपना भाग्य ही आंखमिचौनी खेलने लगता है, तो अच्छा नहीं लगता।"

"पर तुम आईं कैसे थीं?"

"यह रही आपकी रक्त-रिपोर्ट। खून में गर्मी बहुत है," इतना कहकर वह मुस्करायी।

"हां, फिर?"

"फिर क्या? इंजेक्शन लेने होंगे, तीन दिन में छः। ऑपरेशन कल न होकर चौथे दिन होगा।"

"खूब, बहुत खूब, मेरा भाग्य तो मेरे साथ बड़ी अच्छी आंखमिचौनी खेल रहा है।"

"कैसे?"

"वैसे क्या! क्या तुम समझ नहीं रही?"

बात बदलने के लिये मैंने पूछा, "और मुझे सुई कब दी जायगी? कौन देगा, रेखा?"

"अरे हां, यह दवा लिखी है। आप अभी इसे मंगवा लें। रात को कोई सुई दे देगा।"

"यह बात नहीं, रेखा, सुई तुम्हें देनी पड़ेगी।"

"पर मेरी तो ड्यूटी नहीं।"

"इससे क्या, तुम्हें सुई देकर जाना होगा, या घर से आजाना।"

"बाप रे बाप, इतनी सी सुई के लिये?"

"दर्द तो मुझे होगा, तुम्हारी क्यों जान जाती है?"

"जान इसलिये जाती है, मि० कुमार, कि मैं सुई दूंगी तो आपको दर्द बहुत होगा।"

"सच?"

जरा देखिये न रेखा के चेहरे पर नाचती मोहिनी झेंप। कहने को तो वह कह गई पर मारे लाज के मरी जारही है।

"क्यों, तुम बहुत गहरी चुभोओगी क्या?"

"हां जनाब, मैं आर-पार कर दूंगी," कहकर वह हंसती, झेंपती, एक तरह से कमरे से भाग गई।

कुछ कह न गई, सुई देने आयगी या नहीं; परन्तु मेरा मन कहता है कि वह आयगी, जरूर आयगी।

जाते जाते एक बड़ी मीठी व सुहावनी स्मृति को छेड़ गई; पता नहीं किस ने छेड़ा — इन सुनहरी किरणों ने, या उसने या दोनों ने मिलकर।

जानते हैं क्या होता है जब बड़ी बड़ी नशीली आंखों, उलझे बालों, कजरारे होंठों व दमकते कपोलों को जाड़े की ये सुनहरी ललाई-भरी किरणें सराबोर कर देती हैं? न कहना ही अच्छा है, न पूछना ही भला है।

• • • •

ऐसी ही तो एक संध्या थी, जाड़े की लम्बी-सी, रंगभरी संध्या। मैं नई दिल्ली स्टेशन पर तूफान एक्सप्रेस से उतरा था। ऐसी ही किरणों में नहाई, बादलों की देहरी पर कदम रखती हुई, अठारह वर्ष की एक शोख लड़की को देखकर दंग रह गया।

कैसे कहूँ उस रूप-सुधा की मिठास को, कैसे बताऊं उस अमर अमिट छाप को, देख तो अब भी रहा हूँ; स्टेशन पर मि० सहाय दो खूबसूरत *लड़कियों के साथ तथा कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ खड़े हैं।*

मैंने रेलगाड़ी से ही हाथ दिया, उन्होंने भी हाथ उठाया। रेलगाड़ी रुकी। वे सब के साथ मेरे डिब्बे के सामने आये। मैं भी उतरा, उनसे हाथ मिलाने लगा तो उन्होंने अपनी पूरी बाहों में ही मुझे भर लिया।

परन्तु इस मिलने के समय भी मेरी निगाहें निरन्तर एक चेहरे पर टिकी हैं जहां बड़ी बड़ी आंखें, कुछ अजीब ढंग से, भूली भूली सी उत्सुकता लिये, बेचैन हो रही हैं; होंठ न जाने कैसी प्यास से कांपते से लगते हैं; भ्रम-मात्र ही हो शायद या प्रीतिभरी किरणों की करामात हो। फिर यह बचपना भी तो निराला है कि चुन्नी को दांतों-तले दबाना व कभी उंगलियों में उमेठना। समय नहीं कटता लगता है। देर से ये लोग स्टेशन पर आ चुके थे क्या?

यह मुद्रा इस बात की द्योतक तो नहीं कि चलो बहुत समय होगया, जी थक गया, यह बला आई तो! अब जल्दी सब परिचय के रस्म-रिवाज खत्म हों तो घर चलें।

नहीं, नहीं, यह तो विचित्र अल्हड़पन है, इसे किसी भी काम के आरम्भ व समाप्ति से कोई मतलब नहीं। लोग अपनी दुनियादारी अपने पास रखें, इनको तो अपनी बेपरवाही चाहिये।

यह भीनी भीनी चुन्नी भी क्या बला है, पूरा मोह-जाल ही तो है; यह कभी भी एक स्थान पर टिकना ही नहीं जानती। हर पल, हर क्षण मछली की तरह फिसल जाती है और इस काली काली भीनी बदली की ओट से गोल गोल चांद उग पड़ता है, सो भी एक नहीं, दो दो। क्या *इतने जाड़े में भी वहां इतनी गर्माई है, सारे बन्धन तोड़कर* झांकने *की इतनी विह्वलता है!* कदम कदम पर लहरें उठती हैं, जैसे स्थिरता नाम की कोई चीज़ ही वहां न हो।

फेंक न दीजिये इस चुन्नी को, फिर जेन के उभार व इसमें कोई

अन्तर ही न रहेगा। शायद लड़कियों के लिये पंजाबी कमीज की सृष्टि अंग्रेजी फ्रॉक के नमूने पर ही की गई होगी, क्योंकि दोनों में ही उरोजों का विकास खूब खिलता है, खूब ही खिलता है। तभी तो बंगाली लड़कियां भी अब पंजाबी सलवार व कमीज पहनने लगी हैं।

हां, अंग्रेजी फ्रॉक व इस कमीज में एक अन्तर आता है चुन्नी की वजह से। चुन्नी की चंचल लुका-छिपी के कारण वक्ष का उभार वहां पल-पल में सौ-सौ रूप धारण करता व बदलता है जब कि अंग्रेज़ी फ्रॉक में निरन्तर समता बनी रहती है। मैं जैन को देखता हूं व इस लड़की को—एक सम-शान्त झील है व दूसरी लहरों से उद्वेलित सरिता।

यह तो एक निराली चुनौती प्रतीत होती है सारी सभ्यता को, समझदारी को और दुनियादारी को। यह मुद्रा तो सब कुछ विजय करने वाली है। ठीक ही तो है। जवानी व सौंदर्य अल्हड़पन से मिलकर सारे जग को चुनौती दे बैठें तो क्या आश्चर्य!

परन्तु कानों में इतनी बड़ी बड़ी बालियां भला किस लिये पड़ी हैं! इनका डोलना, रह-रहकर कांप उठना कितना नाज़ुक है, मन को कितना झकझोर देता है। इनकी छाया कपोलों पर कितने सौंदर्य की सृष्टि करती है।

मि० सहाय के अंक से छूटते ही मैंने पीछे डिब्बे की ओर देखा तो जैन सारा सामान दो कुलियों के हाथ उठवा रही थी।

हल्के सुनहरे रंग व इकहरे दुबले तन पर स्वच्छ धवल रेशमी साड़ी पहने बाईस-तेईस वर्ष की युवती का परिचय देते हुए मि० सहाय बोले, "यह है मीरा, मेरी बड़ी लड़की। इस वर्ष दर्शन-शास्त्र लेकर एम० ए० किया है, मि० कुमार।"

"मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई," कहते हुए ज्यों मैंने हाथ बढ़ाया तो मीरा ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मैं मन ही मन झेंपा, कुछ कुछ लजाया, परन्तु इस खीझ को पी गया।

पतले होंठ व पतली उंगलियों को देख बोला, "आप कलाकार हो

लगती है।"

"जी नहीं, मैं कोई कला नहीं जानती।"

इतना कह मीरा जो मुस्कराई तो मि० सहाय तुरन्त बोल उठे, "इसे नृत्य व संगीत से बड़ा प्रेम है, रेडियो पर इसके गीतों का प्रोग्राम बराबर होता रहता है।"

"तो आप कोकिल तो नहीं, परन्तु कोकिल-कंठी अवश्य हैं।"

मेरा इतना कहना था कि इस पर सभी खिलखिलाकर हंस पड़े। मीरा झेंप गई। यदि कोई न हंसा तो वह थी वही अल्हड़, शोख लड़की। न जाने यह कौन है?

एक साथ ही मि० सहाय की तथा मेरी निगाह उधर पड़ी तो क्या देखते हैं कि वह एक टक जेन को देख रही है। मेरी सेक्रेटरी जेन भी सहज-स्वभाव उधर ही निगाह लगाये है। मैंने देखा कि जेन के चेहरे पर एक अजीब तनाव छाया है। उस लड़की के चेहरे पर निराला आतंक है, यह क्या?

सब का ठहाका मारकर हंसना सुन वह चकित सी इधर को ताकने लगी व एक छलांग में मि० सहाय के पास आकर खड़ी होगई।

मि० सहाय बोले, "और यह है नीरा, मीरा की छोटी बहन, परन्तु मैं इसे प्यार से रानी कहता हूँ। ये हैं मि० कुमार।"

"रानी? कहा की रानी? किस की?" मैंने कहा।

नीरा पल भर को लाज से सिमट गई, फिर एकाएक सम्भलकर, जैसे हिचकिचाहट व लज्जा को एक झटका दे दिया हो, बोल पड़ी, "जिस स्टेट के आप कुमार हैं!" कॉन्वेण्ट में पढ़ी होने से वाचाल तो थी ही।

प्रथम परिचय में ही यों बोल फूटने पर सभी ज़ोर से हंस पड़े। वह हंसी नहीं। बहन को झटका देकर फिर बोली, "मि० कुमार, आपसे परिचय कराया, परन्तु मैं नमस्ते करना भी भूल गई। अच्छा, अब सही 'नमस्ते'।"

मैं तो इतना झेंपा कि लगा जैसे पूरा बुद्ध बन गया। याद आया,

'हुम्म्, तू तो पूरा बुद्धू है, अभिवादन का ढंग भी भूल गया !'

जिस किस तरह हाथ जोड़ मैंने भी 'नमस्ते' की। इतने में वह हाथ बढ़ा आगे आई हाथ मिलाने। मैं आश्चर्य से दंग रह गया। यह लड़की है या पूरी शैतान। और वह लड़की तो थी ही, शैतान हो या न हो; सभ्यता मानती थी, इसको इन्कार नहीं किया जा सकता था। मैंने भी दांया हाथ बढ़ाया। उसकी गुदगुदी, नरम, कोमल हथेली अपने हाथ में लेकर कुछ गरमा ही रहा था कि वह बोली, रस्म के अनुसार, "आप कैसे हैं ?"

मेरे मुँह से बोल न फूटे, कण्ठ में ही अटक गये। होंठ हिले परन्तु मैं न कह सका, 'आप कैसी हैं' ?

मेरी झेंप को सब ने देखा। मेरे ललाट पर आये पसीने को भी देखा होगा। मैं होश में ही कहां था। इस अल्हड़ पर अग्रगामी लड़की ने तो मेरी पूरी दुर्गति कर दी। मि० सहाय के चेहरे पर उद्विग्नता तथा औरों के चेहरे पर मुस्कुर हंसी मैं देख रहा था।

अपनी इस घबराहट में मैं उसका हाथ छोड़ना भूल ही गया। अतः उसने मेरी हथेली में चिकोटी काट अपना हाथ खींच लिया।

मैंने जो 'ओह' किया तो उसने झट कहा, "क्या हुआ, मि० कुमार ? आप तो पसीने से तर हो रहे हैं। यह रूमाल लीजिये और चेहरे का पसीना पोंछ डालिये।" इतना कहने के साथ ही उसने एक छोटा सा रूमाल मेरे हाथ में पकड़ा दिया।

अब तो जी में यही आता था कि इस लड़की को ऐसा तमाचा दूं कि छठी का दूध याद आजाय व स्वयं रेल के पहिये के नीचे चला जाऊं। भला, झेंप व बेइज्जती की भी कोई सीमा होती है; शैतानी की भी कोई हद होती है। जब पहले परिचय में ही यह हाल है तो भला......। मैंने मन ही मन ठान लिया कि मि० सहाय के बगले पर न ठहरूंगा।

न जाने इस झेंप की दुर्गति में मैं कब तक पड़ा रहता यदि जेन न आजाती। वास्तव में उसी ने तो आकर मुझे उबार लिया। बोली,

"मि० कुमार, कुल ग्यारह अदद सामान है न ? मैंने सभी को सम्भालकर उतरवा लिया है।"

मैं बोला, "ठीक है, आओ तुम्हारा परिचय करा दूं। ये मि० सहाय, मेरे बुजुर्ग मित्र; ये उनकी लड़की मिस मीरा; ये मिस नीरा या शायद पीरा··· ··। ये मिस जेन स्मिथ, मेरी सेक्रेटरी।"

परिचय समाप्त हुआ। नीरा ने जेन से हाथ मिलाते समय उसका हाथ ज़ोर से झकझोर दिया। इस परिवार के एक मित्र सुरेन्द्र जी का भी परिचय कराया गया जो कला-प्रेमी थे व किसी बैंक में अफ़सर।

फिर हम सभी दो मोटर-गाड़ियों में बैठकर मि० सहाय के बंगले पर पहुँचे, परन्तु जेन वहां रुकी नहीं। वह सारा सामान लेकर कनॉट प्लेस के एक होटल में चली गई। उसने फोन कर कब दो कमरे सुरक्षित करवा लिये मैं न जान सका।

नीरा से परिचय की वह पहली संध्या क्या कभी भूलेगी ? कभी नहीं, कभी नहीं। वही रूप, वही मुद्रा, वही शोखी, वही शैतानी इस हृद्-पट पर आज भी अंकित है। नहीं तो, बाद को तो वह इतना घुल मिल गई कि अब न तो उसे मैं ठीक से देख ही सकता हूँ, न उसको रूप-रेखा ही बता सकता हूँ। इतना पास होने पर भला क्या कुछ दिखाई देता है ? कोई अपना ही बयान कैसे करे ? वह तो मुझ ही में समाकर खोगई, फिर उसका बयान कैसा ?

और उसका वह रूमाल !

खैर, पूरे दो मास तक बीमार रहने के बाद वह बहुत दुबला होकर उठा। बैरिस्ट्री, विज्ञायत, विलायती मेम सब हवा के झोंकों में बह गये। उसके पिता जी ने कह-सुनकर किसी तरह भारत सरकार के दफ्तर में उसे एक निम्न अफ़सर की जगह दिलवा दी। इस प्रकार कृष्णवल्लभ सहाय भारत सरकार के कोल्हू में जुत गया, और आंखों पर पट्टी भी बंध गई। इलाहाबाद व वहां के वातावरण से मुक्ति मिलने से उसे कुछ कुछ प्रसन्नता भी हुई व दिल्ली में एक आड़ा कट लेने से वह काफ़ी स्वस्थ हो चला।

भारत सरकार के दफ़्तर में अफ़सर होने के कारण विवाह के बाज़ार में कृष्णवल्लभ सहाय की कीमत काफ़ी ऊंची होगई। उसके पिता जी ने काफ़ी समझ-बूझकर, जोड़-घटाकर, अर्थ व धर्म दोनों का ख्याल करते हुए बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू के सदस्य श्री रामेश्वरप्रसाद की सुपुत्री करुणा से शादी तय की। कृष्णवल्लभ ने इस शादी में कोई मीन-मेख न निकाली। पिता जी को कहने देर न लगी कि उसने झट 'हां' कर ली। बेटे की नाराज़गी तो वे जानते ही थे, इसलिये पहले इस 'हां' से घबराये, परन्तु जीवन के अनुभवी खिलाड़ी होने के कारण उन्होंने सोचा समय सब ठीक कर देगा। सभी घाव समय के साथ भर जाते हैं। फिर चढ़ती जवानी में कब तक एक लड़का युवती लड़की से निरासक्त रह सकेगा। वैसे चाहे करुणा चंचल व चुलबुली न भी हो, परन्तु पढ़ी-लिखी, सुन्दर व सुशील तो थी ही। छुईमुई तथा धर्मानुसार आदर्श पत्नी का प्रतीक हुई तो क्या हुआ।

प्रेम तो बढ़ते में यों ही छलका फिरता है, फिर करुणा से चाहे कोई प्रेम न भी करे, परन्तु आदर-सम्मान तो वह लेकर ही रहेगी व देगी भी। घर-गृहस्थी चलाने के लिये पारस्परिक सम्मान की भावना अधिक आवश्यक होती है प्रेम से। फिर कितने बड़े घर की बेटी उनकी बहू बनने जा रही है!

इसी दुरंगेदेटी में बसन्त-पंचमी सन् १९२५ में कृष्णवल्लभ सहाय

का पाणि-ग्रहण-संस्कार करुणा के साथ होगया। दहेज में बहुत सारे ज़ेवर, कपड़े व साज-सामान मिले सो दिल्ली गये। रुपये पिता जी के कोश में जमा हुए।

कृष्णवल्लभ सहाय की गृहस्थी चल पड़ी। दफ़्तर में अधिक से अधिक समय देने के कारण अफ़सरों की निगाह में वह ऊपर उठा। तरक्की जल्दी जल्दी होने लगी। करुणा ने भी काफ़ी आदर-सम्मान अर्जित किया। पति के साथ कभी सख्त निगाह तक का आदान-प्रदान न हुआ; गृहस्थी मन्दिर के चिकने, स्वच्छ संगमरमर की तरह चमक उठी, शीतल व शांत।

परन्तु मन की गरमी, जवानी की गरमी कभी नहीं आयकी, कभी नहीं। कृष्णवल्लभ करुणा को पूज सकता था, पूरे आदर व भक्ति के साथ, परन्तु प्यार नहीं कर सकता था। धीरे धीरे करुणा का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। सन् १६२८ की गर्मियों में स्वास्थ्य-लाभ के लिये पति-पत्नी शिमला गये। पहाड़ की ठंडी हवा ने जादू का काम किया। करुणा काफ़ी स्वस्थ व प्रसन्न होकर लौटी। सन् १६२६ में इन्हें पुत्री-रत्न की प्राप्ति हुई, खुशियों का पार न रहा। चलो खिलखिला जारी तो हुआ। सभी ने चैन की सांस ली।

करुणा ने पुत्री का नाम मीरा रखा। मां-बाप दोनों के लाड़-प्यार के बीच वह फूलने-फलने लगी। उसका पहला जन्म-दिवस बड़े धूम-धाम से मनाया गया। दिल्ली के बड़े बड़े अफ़सरों को निमन्त्रण दिया गया। पार्टी बड़ी शानदार रही। माया, जिसकी शादी लाहौर के एक वकील से हो चुकी थी, विशेषकर इस मौके पर पति के साथ आई। नाना-नानी ने आकर पार्टी में चार चांद लगा दिये। करुणा के जीवन की खुशियों की यह चरम सीमा थी जब ज़मीन व आकाश दोनों उस पर मुस्करा रहे थे, चांद व सितारे निछावर हो रहे थे। हर कोई सोचता मीरा कितनी भाग्य-शालिनी बच्ची है।

'बर्थ-डे-केक' काटते समय खूब फ़ोटो व स्नैप लिये गये। कृष्णवल्लभ, करुणा व मीरा तीनों खूब जंच रहे थे। कितनों ही के मन में आता था,

'सच, भई, परिवार हो तो इतना ही सुन्दर व सुखी हो।'

माया ने तो हंसते हंसते कहा, "भाभी, यह बच्ची इतनी प्यारी है कि क्या कहूँ; इसे मुझे दे दो।" इतना कहकर उसे भारे चुम्बनों के ढेर कर दिया।

करुणा बोली, "ले न जाओ, बच्ची तुम्हारी ही तो है।"

बात समाप्त हुई, जलसा समाप्त हुआ। माया अपने घर गई। करुणा के शरीर में लगा घुन तो शिमले में भर चुका था, परन्तु मन का घुन नहीं गया। वह फिर पूर्ववत् घुलने लगी। सन् १९३१ आते आते उसे भोआली सेनेटोरियम जाना पड़ा। मीरा का क्या हो; उसका भाग्य कहां सोगया! कितनी अभागिनी वह हो चली। तरस खाने व खाने की नौबत आगई। उसे माया आकर अपने पास ले गई। माया का कोई बच्चा तो था नहीं।

सन् '३२ लगते लगते करुणा का अन्त होगया। उसे खोते ही कृष्णवल्लभ सहाय की दुनिया उजड गई। अब उसे करुणा के बहुत से गुण दिखाई देने लगे। कुछ सीमा तक वह अपने को ही उसकी मौत का जिम्मेदार समझने लगा।

वृद्ध पिता का भी कुछ ऐसा ही ख्याल था। वे अब वकालत करना छोड़ विश्राम का जीवन प्रयाग में बिता रहे थे। प्रति दिन नियम से वे त्रिवेणी के संगम पर स्नान करते, दो-ढाई घण्टे संध्या-पूजा करते, शाम को चाय के बाद टहलने जाते और रात को बंगले पर ही कथा का प्रबन्ध कर लिया था।

अतः उनके मन को जो चोट लगी—बेटे की इस अन्यमनस्कता के कारण बहूरानी की ओर से—वे सम्भल न सके। उनका सारा लेखा-जोखा गलत सिद्ध हुआ, अनुभव झूठे व बेकार निकले। बेटे ने बहूरानी का अन्त कर दिया; पल्ले पड़ी एक दुबली-पतली चिड़िया 'मीरा'। कोई पोता भी न रहा। क्या होगा इस परिवार का, इस गाढ़ी कमाई की जायदाद का? क्या होगा, क्या?

प्रश्न बवण्डर की तरह, बगूले की तरह उठना व सारे आकाश में छा जाता, आंखों के सामने—पर फिर घूम-फिरकर वहीं के वहीं। कृष्णवल्लभ की दुबारा शादी की चर्चा इलाहाबाद में बड़े ज़ोरों से होने लगी। एक से एक उम्मीदवार बूढ़े का सिर खाने लगे। फ़ोटो व पैग़ाम की धूम मची। परन्तु अब बूढ़े ने इतना तो निश्चय कर लिया कि कृष्णवल्लभ की शादी के मामले में वह कुछ न बोलेगा। 'मरज़ी कृष्णवल्लभ की, शादी करे न करे, चाहे जहां करे, जिससे करे।' ठीक ही तो है—दूध का जला छाछ फूँक फूँककर पीता है।

कुछ लोगों ने दिल्ली तक दौड़ लगाई। कृष्णवल्लभ को होटल, थियेटर वग़ैरह में आमन्त्रित किया, लड़कियों के साथ एकान्त में भी छोड़ कर मौक़ा दिया परन्तु उसके चेहरे की खोई हुई हंसी को कोई वापस न ला सका।

जिसका सब कुछ लुट चुका हो उसकी मुस्कान कौन वापस लाये ?
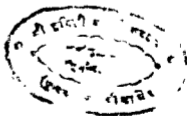
छठा परिच्छेद

आपकी निधि आपके पास

रात्रि का अंधकार बढ़ चला और हवा में ठंडक भी बढ़ गई। सचिवालय के नये गगन-चुम्बी की फ्रेंच खिड़कियों से ट्यूब-लाइट का स्वच्छ, धवल प्रकाश चांदनी बिखेरने लगा। गंगा के ऊपर धुँधला धुँधला सा कुहरा उठता, मंडराता दिखाई देने लगा।

मैंने खिड़की बन्द करवा दी। साफ से ही मन उदासी से भर गया था। सात-साढ़े सात बजते बजते रेखा आ पहुँची। दबे पांव आई। पहले परदे को धीरे से उठाकर झांका। मेरी निगाह उधर पड़ी तो मुस्करा उठी। मैं भी मुस्कराया। क्षण भर के लिये सारा गम भूल गया। लगा, जैसे कोई परी स्वर्ग से आई हो सितारों पर कदम रखते, कुहरे को चीरते, चांदनी से मुँह धोते। मेरी खिड़की पर आकर उसे बन्द पा निराश होगई व चुपके से परदा हटा दरवाजे से ही घुस आई।

सचमुच किसी किसी का चुपके से आजाना कितना मीठा लगता है, सो भी उदास घड़ियों के बीच।

आते ही उसने गरम कोट उतारकर खूँटी पर टांग दिया। मैं अभी भी उसे एकटक देखे जारहा हूँ व सोचता हूँ कि भगवान ने सचमुच अपनी सृष्टि में बड़े ही सुन्दर सुन्दर फूलों की रचना की है। रेखा भी तो उन्हीं अनमोल निधियों में से एक है। इतनी खूबसूरती का क्या होगा? जहां जहां पांव रखती है नई स्फूर्ति, नई चेतना, नई शक्ति बिखेरती चलती है; नये प्राण फूँकती चलती है; गर्मी, मिठास व मुस्कान बांटती चलती है।

फिर आज रात को तो वह विशेष रूप से सजकर आई है—जर्जेट

की स्वच्छ धवल साड़ी पर काला, चमकता, चुस्त ब्लाउज; पांवों में सैंडल सो भी ऊंची एड़ी के जिस पर काला, सुनहरा स्ट्रैप गोरे गोरे पांवों की द्युति दूनी करता है; हल्का सा पाउडर; काले, चमकते, लहराते केश, हल्के से पीछे को बंधे हुए; बीच से न होकर ज़रा बायें से माग काढ़ना; कानों में हीरे के झुमके (भले ही नकली हों); होंठों पर हल्की सी लाली (लिपस्टिक की); व आखों में काज्ल की महीन पतली रेखा।

यह सब क्या है? किस लिये? आने वाले कल की भूमिका तो नहीं। मैं क्या जानूं!

और मुस्कान, वह तो हर अंग से अलग अलग फूटी पड़ती है—आखें हंसती हैं, कपोल हंसते हैं, होंठ कापते हैं, साड़ी की हर लहर कांपती है।

वह खिली पड़ती है; मैं मौन, मुग्ध, चुपचाप उसे देखता हूँ। वह बड़े इतमीनान से कुछ गुनगुनाती हुई 'ड्रेसिंग टेबल' के सामने जाती है। कंघी उठाकर कुछ लटों को सुलझाती है, कुछ को उलझाती है, लहरों को बनाती व मिटाती है। अब मैं उसे पीछे से देख रहा हूँ। कितना सुडौल शरीर है, मासलता में भी क्या जादू है। माग को ठीक करने के लिये बायें हाथ को उठा उंगलियों को माग पर रखती है व दाहिने हाथ में कंघी उठा झटका देती है। उन दोनों उठी बांहों के नीचे न जाने कितना चिकना चढ़ाव-उतार, कैसा मरोड़ बन जाता है। मैं क्या कहूँ, कैसे कहूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

एकदम मेरी ओर मुड़कर पूछ बैठती है, "क्या देख रहे हैं घूर-घूरकर?"

"किसी की अदाएं।"

वह शरमाई, परन्तु बहुत नहीं। प्रतीत होता है यह सब उसे मन ही मन बहुत अच्छा लगता है। मैंने पूछा, "आज किस विजय-अभियान पर निकली हो?"

"वह तो समाप्त हो गया।"

मैंने आश्चर्य से पूछा, "कब ?"

"अभी अभी।"

हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। मैंने कहा, "मुझे तो आशा न थी कि तुम आओगी।"

"झूठ, सरासर झूठ !"

"तुमने कहा कब था ?"

"ओह, कहा नहीं था ?" बड़े भोलेपन से बोली। "मैंने तो समझा, कहा था।"

गर्दन की मरोड़ के साथ झुमके झूल उठे; इन्हीं झुमकों के साथ तो मन भी डोल उठता है। यह ठीक ही तो कहती है, 'मैंने तो समझा कहा था।' कहा तो था ही। क्या हमेशा मुँह से ही कहते हैं ? शब्दों में ही बोलते हैं ? आँखें नहीं बोलतीं क्या ?

"सच, तुम आज यहां से कहीं और भी जाओगी क्या ?"

"और क्या, यहीं रात भर रहूंगी ?"

वह धीरे धीरे छोटी सी आलमारी से दवा निकाल रही है, 'सिरिंज' में भर रही है, और बातें भी करती जाती है।

मैं कितने बड़े भ्रम में हूं। ओह, ऊंचे वर्ग के रोगी को यों बहलाकर दर्दीली सूइयां न देगी तो नर्स की सफलता कैसी; और मैं हूं कि न जाने क्या सोचता हूं।

यह भी तो हो सकता है कि यह इंजेक्शन सचमुच बहुत दर्द करता हो, गहरा दिया जाता हो, इसलिये उसकी पीड़ा को कम करने के लिये यह तैयारी हो।

अब तो घड़ी आगई। एक हाथ में रूई में शायद 'स्पिरिट' व दूसरे में सूई लेकर वह मेरे पास बैठ गई। मैं बिस्तर पर अध-लेटा पड़ा हूँ उसकी ओर मुंह किये। पास बैठी होने पर उसकी कांपती, उठती-गिरती छाती ठीक मेरे मुख के सामने पड़ती है, लगता है कि कानों में धड़कन तक सुनाई देगी। जी में आता है कि उसके बीच अपना मुँह छिपा लूँ,

सारे दुःख दर्द दूर हो जायं, सुइयों की चुभन कुछ मालूम ही न हो।

परन्तु यह भी क्या कोई बात हुई। मन में जितनी बातें उठती हैं, क्या कोई कर पाता है। कितने बाध हैं। निगाहों का बांध ही क्या कुछ कम है।

उसने कहा, "कमीज़ की बांह ऊपर उठाइये।"

और मैं मूर्तिवत उसका मुँह देख रहा हूं व सोच रहा हूं कि रेखा क्या सोचती होगी। क्या उसका भी मन करता होगा झुककर मेरा सिर चूम लेने को, मेरी आखें चूम लेने को।

अच्छा हुआ जो आज तक मन का 'एक्स-रे' नहीं निकला, नहीं तो बहुतों के लिये बड़ा संकट हो जाता।

मुझे चुप देख उसने फिर दोहराया, "बांह उठाइये न, मुझे देर हो रही है।"

मैंने मुस्कराकर बांह उठा दी। वह झुंझलाकर बोली, "बांह नहीं, कमीज़ की बाह, जैसे कुछ समझते ही नहीं।"

"समझूं क्या, निरा बच्चा जो ठहरा।"

"ओह, आप बहुत तंग करते हैं।"

"सच!"

"दिन पर दिन ढीठ होते जाते हैं।"

"काश मैं जी भर कर ढीठ हो पाता।"

रेखा ने स्पिरिट का फोहा व सूई रख दी। मेरी कफ़ के बटन खोले व बांह ऊपर चढ़ाने लगी। बांह पर उसके कोमल हाथ के स्पर्श से मैं सिहर उठा। बोला, "मेरे कफ़ के बटन कितने खूबसूरत हैं!"

"बहुत, मेरी आंखों से भी बढ़कर।"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। वातावरण आनन्द की एक नई लहर से हिल उठा।

उसने कहा, "दूसरी ओर देखिये।"

"तब तो दर्द और भी न सहा जायगा, रेखा।"

"अच्छी बात है, आप मेरा मुँह ही देखिये : मैं अपना काम तो करूँ।"

"हाँ, यह ठीक है : समझाओगे सुई आती है, मगर देर से।"

यह कुछ बोली नहीं। सिरिंज बाजू पर मलकर उसने सुई चुभोई। मैंने दर्द से 'सी-सी' किया, कुछ शरारतन भी। उसने मेरे मुख पर सचमुच पीड़ा के चिह्न देखे। क्या उसके हाथ कांप रहे हैं या मेरा बाजू ही इतना सख्त है कि सुई झट से भीतर नहीं जाती?

जैसे-तैसे यह भी समाप्त हुआ। मैं एकटक उसका मुँह देख रहा हूँ। अब उसने भी मेरी ओर देखा, आँखें मिलीं। कितना स्नेह है उन आँखों में! कितना मातृत्व टपकता है, ओह! प्रेम व जवानी के नशे में चूर लड़की की निगाहों से भी कभी मातृत्व भाग नहीं सकता, बराबर झाँकता रहता है, बराबर।

वह बायें हाथ से फिर रुई से सिरिंज बाजू पर मलती रही व दाहिने हाथ से फिर मेरे सिर के बाल सहलाने लगी। मेरे माथे पर पसीना छूट गया था, न जाने क्यों। दर्द से? भय से? कौन जाने? उसने धीरे धीरे सहलाया। एक बार फिर जी में आया कि अपना सिर उसके वक्ष में छिपा लूं।

ओह, बचपन में मां के साथ ऐसा कितनी बार किया है। सारे दुःख-दर्द की दवा उसके आंचल में ही तो थी। उसके वक्ष में ही तो था, धरती का सारा विष निगल जाने वाला अमृत!

और यह रेखा न जाने कितने रूपों में मेरे सामने है, कितने?

मैंने कहा, "अब मैं ठीक हूँ, रेखा, तुम जाओ।"

उसने मेरे उदास मुँह को देखा व बोली, "क्या बहुत दर्द हुआ? मुझे अफ़सोस है।" क्षीण मुस्कान उसके चेहरे पर खिल उठी।

मैंने कहा, "नहीं, तुम समझी नहीं, अच्छा अब जाओ।"

"जाती तो हूँ, इतना घबरा गये, क्या हुआ?"

"कुछ नहीं; सोचता हूँ, तुम इतना सुख इस जीवन में मुझे देती हो, भला क्या इसे चुका पाऊंगा? न जाने उस जन्म की तुम मेरी कौन हो?"

मेरे नयन-कोरों में आंसू झांकने लगे। रेखा बोली, "आप सचमुच निरे बच्चे हैं।" और आगे बढ़कर उसने मेरा भाल चूम लिया कहते कहते, "और देवता भी, मि० कुमार।"

वह कमरे से चलने को हुई कि मैंने उसका दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों में पकड़ लिया और उसे मुख के पास लेजाकर चूम लिया। उसके जाते ही मेरा उदास मन महीनों पहले की उस संध्या की बात सोचने लगा—वह रागभरी पहली संध्या जब मैं नीरा के घर गया था।

* * * *

ड्रॉइंग-रूम में बनी अंगीठी में बड़ी सुन्दर आग जल रही थी। काले काले कोयले गर्मी पाकर लाल व सुनहरे पीले व फिर सफेद तक हो चले थे। इतना प्रकाश, इतनी गर्मी कहां छिपी रहती है इनके काले काले तन में!

बेंत की चार आराम-कुर्सियां पड़ी थीं अंगीठी के सामने गोलाई में। मैं एक किनारे वाली कुर्सी पर बैठ गया। मि० सहाय सफ़र के बारे में दो-चार बातें पूछकर कपड़े बदलने चले गये। इतने में नीरा भी कपड़े बदलकर आगई।

वह रूप माधुरी श्वेत जॉर्जेट की साड़ी तथा झीना-झीना जालीदार ब्लाउज, जिसके भीतर से स्वच्छ, सुनहरी काया झांकती थी, पहनकर आई। उसके काले काले कटे-छटे बाल दो रिबनों से बांधकर फिर बिखरा दिये गये थे। कानों में अब बालियों की जगह सच्चे हीरे के झुमके लटक रहे थे। पांवों में चमकते स्ट्रैप की सैंडल। ब्लाउज़ का गला अंग्रेजी ढंग का होने की वजह से इतना खुला था कि वक्ष के भी कुछ भाग स्पष्ट दिखाई देते थे। जब ध्यान गया उस दमकते, गोरे रूप पर तो सचमुच लगा जैसे काले-झीने ब्लाउज़ की बदली को फाड़कर चांद उग आया हो। सिर के केशों की किनारी भी चमकते भाल की शोभा को बढ़ाती थी। मांग एक किनारे पर कर दी गई थी।

सोने से तन पर छलकती साड़ी चलते समय ऐसी लगती थी जैसे सचमुच कोई नागिन इस केंचुली को छोड़ने के लिये आकुल फिरती हो।

नीरा का यह नया रूप देखकर मैं तो चकित रह गया, पर बोला कुछ भी नहीं। शाम की झेंप व गुस्सा अब धीरे-धीरे मिटकर कुछ मीठी-मीठी स्मृति बनने का प्रयत्न कर रहे थे, फिर भी मैं कुछ-कुछ डरता तो था ही, न जाने यह शैतान लड़की अब क्या करेगी।

परन्तु मन यही करता था कि चाहे यह रूप की नैसर्गिक प्रतिमा कुछ भी कहे, मेरे साथ कुछ भी करे, मैं बुरा न मानूंगा। करे तो!

उसको आते देख सभ्यतावश मैं खड़ा होगया। तुरन्त मुस्कराकर बोली, "भला इतनी सभ्यता बरतने की क्या जरूरत है, मि० कुमार, हम लोग तो घर के ही आदमी हैं।"

"पर मैं तो बाहर का हूँ।"

"नहीं, नहीं, बैठिये न।"

वह बहुत पास आचुकी थी। उसके तन से एक मीठी रुचिकर सुगंध निकलकर कमरे में भर रही थी जो मुझे कुछ-कुछ मदहोश सा बनाने लगी। मैंने एक पास की कुर्सी की ओर संकेत कर झट कहा, "पहले आप।"

वह मुस्कराकर बोली, "किबला आप!"

मैंने भी हंस के कहा, "किबला आप।"

इस पर उसने मेरा हाथ पकड़कर एक तरह से दबाते हुए बैठा दिया व स्वयम् भी पास की कुर्सी पर बैठ गई।

इतनी बेतकल्लुफ़ी से उसका यों हाथ पकड़ना मुझे जहां आश्चर्य-जनक लगा वहां रुचिकर भी। ठीक ही तो है यों ही तो तकल्लुफ़ दूर होगा।

बग़ल में इतमीनान से बैठकर बोली, "आप तो लखनऊ यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं न?"

फिर तो क्या था हम दोनों जोर से हंस पड़े।

ओह, आप देखते ज़रा, उसका हंसना! वह हंसी थी या फूल बरसते थे। दांत हीरे की तरह चमक उठे, लगा मोतियों की लड़ी किसी ने जड़कर मुंह में रख दी हो।

सच, हंसी इसे कहते हैं: जब होंठ हंसे, कपोल हंसे, आंखों की

पुनर्निर्शा हंसे—तभी तो हंसी है। मेरी दशा कुछ खोई-खोई सी हो रही थी।

वह बड़ा प्यारा-प्यारा सा उत्सुक मुंह बनाकर चाव से बोली, "अच्छा, सच-सच बताइये, आप मुझसे बहुत नाराज हैं न?"

ओह इतना आत्मीयपन! इतनी नाजुक मिज़ाजी, इतना प्यार, हे भगवान, मैं कैसे जिऊंगा? मैं एक बार फिर पसीने से तर हो उठा। बहुत धीरे से बोला, जैसे बोल फूटता ही न हो, जैसे शब्द गले में अटक रहे हों, "नहीं तो!"

"मेरी क़सम!"

यह क्या? तो क्या यह लड़की समझती है कि वह मुझे बहुत प्रिय है, नहीं तो इस क़सम के क्या मानी? यह सब कुछ कैसे जान जाती है? यदि वह मुझे निरा बुद्धू ही समझती है, तो इतना पास क्यों खींचती है?

अरे राम, कहीं बुद्धू बनाने की यह दूसरी तरकीब तो नहीं।

परन्तु नहीं तो, उन आंखों में कितनी सच्चाई है; लगता है यह क़सम होठों से नहीं, दिल से निकली है व अभी भी आंखों की पुतलियों में अटकी पड़ी है।

मुझे असमंजस में देख फिर स्वयं बोली, "देखिये, आप चुप हैं, इसके मानी आप नाराज हैं, जरूर ही!"

अब उसने मेरे कंधे पर अपना हाथ रख दिया व ज़रा झकझोरकर बोली, "बोलिये न! मेरी क़सम!"

मैंने कहा, "नहीं, नाराज़ बिलकुल नहीं हूँ।"

"तो क़सम खाइये।"

"मैं क़सम नहीं खाता किसी की।"

"लीजिये, आप तो फिर पसीने से तर हो चले।"

मैंने सोचा कि इस बार क्या आंचल से पोंछेगी। तब तो मारे खुशी के मैं यहीं ढेर होजाऊंगा, स्वर्ग सिधार जाऊंगा।

उसने ब्लाउज के भीतर, वक्ष के बीच टटोलना शुरू किया; बार

क्या ढूँढती है पर कुछ मिलता नहीं, शायद छोड़ आई है जल्दी में। मेरे लालची मन ने सोचा कि ये हाथ कहीं मेरे होते तो! मैंने कहा, 'मुर'।

मुझे भी शरारत सूझी। मैंने अपनी जेब से उनका रेशमी कढ़ा हुआ रूमाल निकाला व उनके हाथ में पकड़ा दिया कहते हुए, "यह रहा!"

वह भी झेंपकर हँस पड़ी व उस रूमाल से, जिससे, रेशमी से मेरे भाल को अनजान एक बार पोंछ डाला व रूमाल मेरे हाथ में फिर वापिस करते हुए बोली, "आपकी निधि आपके पास।"

वह अब शान्त बैठ गई। मैंने उस रूमाल को होंठों से लगाकर जेब में रख लिया। वह बोली, "अभी से यह हाल!"

इतने में मीरा व मि० सहाय आकर बैठ गये।

सातवाँ परिच्छेद

जेन्स से परिचय

मि० सहाय प्रतिभाशाली एवं उदार-चित्त आदमी हैं। उन्होंने पहली ही भेंट में मुझे ऐसे स्वीकार कर लिया, यों अपना लिया जैसे मैं भी घर का ही, उनके परिवार का ही, एक व्यक्ति होऊं व कहीं से अध्ययन या सफ़र या काम से आया होऊं।

बड़ी ही सहज आत्मीयता एवं वात्सल्य के साथ उन्होंने मेरे सफ़र, मेरे काम व मेरे परिवार के विषय में प्रश्न किये। मैं भी अपने सहज, संयत ढंग से उत्तर देता रहा। मैंने अपनी ओर से कोई प्रश्न न किया, प्रश्न करता भी क्या? सदेह, सजीव पहेली तो पास में बैठी थी, जिसे लेकर मैं उनसे कुछ भी नहीं पूछ सकता था। फिर मेरा झेंपू स्वभाव भी तो कुछ विशेष बोलने नहीं देता।

इसी बीच नौकर पहियेदार गाड़ी पर सजाकर चाय, कॉफ़ी, सैण्ड-विचेज, केक, बिस्किट वगैरह लेकर आगया। एक बड़ी तश्तरी में रसगुल्ले, संदेश वगैरह भी थे व एक में गरम गरम समोसे व नमकीन।

यह विचित्र सम्मेलन मेरी समझ में नहीं आया। चाय के साथ कॉफ़ी, केक के साथ रसगुल्ले, नमकीन क्रीम-क्रेकर के साथ समोसे।

मेरी रुचि को लेकर उन लोगों के मन में जो भ्रम था वह एकाएक इस रूप में सजीव हो उठा। मैं देखकर मुस्कराया व चुप रहा। खाने-पीने के मामले में मैं अपना सिर बहुत नहीं खपाता, फिर कोई लड़की हो करने-धरने वाली तब तो मैं और भी निश्चिन्त हो जाता हूं।

सच पूछिये तो यह काम है अन्नपूर्णा के ही प्रतिनिधियों का। वे

जानें, उनका काम जाने। इसी से इस मामले में मुझे विलायती-प्रथा 'अपनी मदद स्वयं करो' कभी नहीं जंची। भारतीयपन इस विषय में अधिक मोहक लगता है।

ख़ैर, नीरा ने झट संकेत से गाड़ी को अपने पास खिंचवा मंगाया। सब के सामने एक-एक खाली तश्तरी व नमकीन उसने रक्खा। फिर केक की तश्तरी लेकर मेरे सामने मुड़ी। मैंने एक टुकड़ा रख लिया। मि० सहाय ने भी लिया। मीरा ने इस प्लेट से कुछ न लिया, नीरा ने दो बिस्किट रख लिये। फिर मिठाइयों की बारी आई। मैंने एक रसगुल्ला व एक संदेश रख लिया।

मीरा मुस्कराई। उसने भी यही किया। मि० सहाय व नीरा ने इसमें से कुछ भी न लिया। मैंने व मीरा ने समोसे लिये, और मि० सहाय व नीरा ने क्रीम-क्रेकर।

हम सब मुस्करा रहे थे, मन ही मन कुछ सोचते थे, परन्तु कोई कुछ कहता नहीं था। इतने में मेरा ध्यान गया नीरा के मुँह की ओर तो क्या देखता हूँ कि वहां पर खीभ भरी है व मीरा हंसे जारही है।

मैंने पूछा, "क्या है मीरा जी?"

मीरा बोली, "कुछ भी तो नहीं, इसी से पूछिये न।"

मैंने पूछा, "आप ही बताइये न, क्या बात है?"

नीरा बोली, "बताऊं क्या, कोई बात भी हो।"

उसके चेहरे पर स्पष्ट खीभ भरी थी। मि० सहाय मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

हम सब खा-पी रहे थे, परन्तु नीरा प्याले व तश्तरी के साथ व्यस्त थी। इस खीभ-भरे चेहरे पर न जाने कितना संयम, कितनी सौम्यता व कितना प्यार भरकर बोली, "आप क्या लेंगे—चाय या कॉफी?"

निगाहें मेरी निगाहों से मिली हैं। ओह, ठीक से खुलने पर आंखें कितनी बड़ी बड़ी लगती हैं, कितना पराग है इनमें, कितनी मोहकता। मन करता था कि युग-युग तक यह नीरा यों ही प्रश्न कर आंखें मेरी ओर

उत्तर की उत्सुकता में घुमाये रखे व मैं कभी भी उत्तर न देकर बराबर इस रूप-सुधा का पान करता रहूँ। बराबर युग-युग तक, जन्म-जन्म तक।

मुझे मौन देख, आंखों की राह, उसने फिर पूछा, "चाय या कॉफ़ी ?"

हां, इसे आंखों का बोलना कहते हैं; कितना स्पष्ट है, कितना मधुर! जैसे होंटों को हिलाने की कोई आवश्यकता ही नहीं।

मैंने हिचकिचाते हुए कहा, "कॉफ़ी।"

ओह, ज़रा इन आखों का खिलना तो देखिये। विजय व गर्व की मुस्कान सारे चेहरे पर खिल उठी; होंठ मुस्कराये, व कपोल थिरक उठे। उसने मीरा की ओर देखा। आंखों आंखों में ही दोनों ने क्या बातें की, कुछ पता न चला। परन्तु अब वह कॉसमॉस के फूल सी खिल उठी, पीत-पराग सिहर उठा।

दूसरा प्रश्न आया उन्हीं मुस्कराते होंठों व विहंसती आखों से, "काली या सफ़ेद ?"

इस पर तो मैं हंसी न रोक सका। मैं खुलकर हंस पड़ा, तथा सभी हंस पड़े।

मैं बोला, "सफ़ेद।"

सफ़ेद! मैंने तो कॉफ़ी के लिये कहा था। कोई यों ही, मन ही मन, कुछ और समझ ले तो मैं क्या करूं। इस सफ़ेद का बहु-अर्थी प्रयोग तो मैंने किया नहीं। परन्तु इतनी गुपचुप मुस्कानें क्यों ? क्या पता, क्या सोचते हैं ये लोग—जैन सफ़ेद, नीरा सफ़ेद, कॉफ़ी सफ़ेद!

नीरा ने मेरी ओर कॉफ़ी बढ़ाई। मि० सहाय व मीरा को चाय दी व स्वयं कॉफ़ी लेकर धीरे धीरे पीने लगी।

अब मुझे कुछ कुछ लगा कि मीरा व नीरा की रुचियों में कितना अन्तर है व दोनों ने मिलकर मेरी रुचि की कितनी छानबीन की है।

मीरा का सहज, सौम्य भारतीयपन संदेश, रसगुल्ले व चाय का पक्षपाती है। नीरा का उच्छृंखल विलायतीपन सैंडविचेज़, केक व कॉफ़ी में रुचि रखता है, और मैं ?

जानें, उनका काम जाने। इसी से इस मामले में मुझे विलायती-प्रथा 'अपनी मदद स्वयं करो' कभी नहीं जंची। भारतीयपन इस विषय में अधिक मोहक लगता है।

खैर, नीरा ने झट संकेत से गाड़ी को अपने पास खिंचवा मंगाया। सब के सामने एक-एक खाली तश्तरी व नमकीन उसने रक्खा। फिर केक की तश्तरी लेकर मेरे सामने मुड़ी। मैंने एक टुकड़ा रख लिया। मि० सहाय ने भी लिया। मीरा ने इस प्लेट से कुछ न लिया, नीरा ने दो बिस्किट रख लिये। फिर मिठाइयों की बारी आई। मैंने एक रसगुल्ला व एक संदेश रख लिया।

मीरा मुस्कराई। उसने भी यही किया। मि० सहाय व नीरा ने इसमें से कुछ भी न लिया। मैंने व मीरा ने समोसे लिये, और मि० सहाय व नीरा ने क्रीम-क्रेकर।

हम सब मुस्करा रहे थे, मन ही मन कुछ सोचते थे, परन्तु कोई कुछ कहता नहीं था। इतने में मेरा ध्यान गया नीरा के मुँह की ओर तो क्या देखता हूँ कि वहा पर खीझ भरी है व मीरा हंसे जारही है।

मैंने पूछा, "क्या है मीरा जी!"

मीरा बोली, "कुछ भी तो नहीं, इसी से पूछिये न!"

मैंने पूछा, "आप ही बताइये न, क्या बात है!"

नीरा बोली, "बताऊं क्या, कोई बात भी हो!"

उसके चेहरे पर स्पष्ट खीझ भरी थी। मि० सहाय मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे।

हम सब व्यस्त-से रहे थे, परन्तु नीरा प्याले व तश्तरी के साथ व्यस्त थी। इस खीझ-भरे चेहरे पर न जाने कितना संयम, कितनी सौम्यता कितना प्यार भरकर बोली, "आप क्या लेंगे—चाय या कॉफी?"

निगाहें मेरी निगाहों से मिली हैं। ओह, ठीक कितनी बड़ी बड़ी लगती हैं, कितना मन करता था कि युग-युग।

उत्तर की उत्सुकता में घुमाये रखे व मैं कभी भी उत्तर न देकर बराबर इस रूप-सुधा का पान करता रहूं। बराबर युग-युग तक, जन्म-जन्म तक।

मुझे मौन देख, आखों की राह, उसने फिर पूछा, "चाय या कॉफ़ी ?"

हां, इसे आखों का बोलना कहते हैं; कितना स्पष्ट है, कितना मधुर ! जैसे होठों को हिलाने की कोई आवश्यकता ही नहीं।

मैंने हिचकिचाते हुए कहा, "कॉफ़ी।"

ओह, जरा इन आखों का खिलना तो देखिये। विजय व गर्व की मुस्कान सारे चेहरे पर खिल उठी: होंठ मुस्कराये, व कपोल थिरक उठे। उसने मीरा की ओर देखा। आखों आंखों में ही दोनों ने क्या बातें की, कुछ पता न चला। परन्तु अब वह कॉसमॉस के फूल सी खिल उठी, पीत-पराग सिहर उठा।

दूसरा प्रश्न आया उन्हीं मुस्कराते होठों व विहँसती आखों से, "काली या सफ़ेद ?"

इस पर तो मैं हंसी न रोक सका। मैं खुलकर हंस पड़ा, तथा सभी हंस पड़े।

मैं बोला, "सफ़ेद।"

सफ़ेद ! मैंने तो कॉफ़ी के लिये कहा था। कोई यों ही, मन ही मन, कुछ और समझ ले तो मैं क्या करूं। इस सफ़ेद का बहु-अर्थी प्रयोग तो मैंने किया नहीं। परन्तु इतनी गुपचुप मुस्कानें क्यों ? क्या पता, क्या सोचते हैं ये लोग—जेन सफ़ेद, नीरा सफ़ेद, कॉफ़ी सफ़ेद !

नीरा ने मेरी ओर कॉफ़ी बढ़ाई। मि० सहाय व मीरा को चाय दी व स्वयं कॉफ़ी लेकर धीरे धीरे पीने लगी।

अब मुझे कुछ कुछ लगा कि मीरा व नीरा की रुचियों में कितना अन्तर है व दोनों ने मिलकर मेरी रुचि की कितनी छानबीन की है।

मीरा का सहज, सौम्य भारतीयपन संदेश, रसगुल्ले व चाय का पक्षपाती है। नीरा का उच्छृंखल विलायतीपन सैंडविचेज़, केक व कॉफ़ी में रुचि रखता है, और मैं ?

साढ़े सात बजते बजते यह क्रम भी समाप्त हुआ। जेन के विषय में किसी ने कुछ पूछा नहीं। ठीक ही तो था, किसी की सेक्रेटरी तो कोई इतनी महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं जो उसके विषय में पूछताछ हो।

फिर भी क्या यह मौन कुछ साधारण था?

क्या पता? कौन जाने इन लोगों के मन की बात।

चलते चलते मि० सहाय ने दूसरे दिन संध्या के भोजन पर आमंत्रित किया। मैंने भी प्रसन्न मन से स्वीकार किया। अंधे को क्या चाहिये? प्रकाश ही तो! आंखों की ज्योति!

उन्होंने जेन को भी लाने को कहा। मैं कुछ हिचकिचाया। मेरे चेहरे का असमंजस नीरा तुरन्त ताड़ गई।

वह बोली, "क्या उनको अलग से निमन्त्रण चाहिये? आपके निमन्त्रण में वे नहीं आजातीं?"

उसकी इस शरारत पर मैं हंस पड़ा। तुरन्त बोला, "नहीं, जेन का अपना एक व्यक्तित्व है जो किसी में शामिल नहीं होता; फिर यह तो व्यक्तिगत बात ठहरी, कार्य-सम्बन्धी तो है नहीं।"

नीरा झट बोली, "ठीक है, फिर मैं स्वयं जाकर उन्हें आमन्त्रित कर आती हूं। चलिये, आपको छोड़ती भी आऊं; क्यों डैडी, ठीक?"

मि० सहाय बोले, "ठीक तो है।"

फिर हम विदा हुए। चलते हुए नीरा ने एक गरम कोट डाल लिया कंधों पर, बराये नाम। जाड़े की रात थी न। सो भी देहली का जाड़ा, दिसम्बर का।

एक ओर अंगीठी में जलते, चमकते, सुहावनी गर्मी बिखेरते शोले; और दूसरी ओर नीरा का मोहक व्यक्तित्व। मेरा तन व मन दोनों गरम हो उठे, सारी ठंडक भाग गई, न जाने कहां।

बंगले से निकला तो मारे खुशी के जी में आता था कि अभी चलकर जमुना के ठंडे जल में कूद पड़ूं। ओह, इतनी तपन कहां मिटेगी और कैसे?

एक फूत्कार के साथ मोटर बंगले से बाहर हुई, ठंडी हवा का एक झोंका लगा। तन-मन सिहर उठे। नीरा ने धीरे धीरे चलाना शुरू किया। मैं समझ गया कुछ बात छेड़ेगी। चलो, अच्छा ही तो है, कुछ बात तो करे।

वह धीरे से बोली, "अब तो नाराज़गी मिट गई।"

"बस, दो प्याले कॉफ़ी में ही!"

"क्या इतना कम है!"

वह क्षीण हंसी हंसी। मैं भी मुस्कराया परन्तु अभी उत्सुक था उस बात के लिये जिसकी भूमिका वह तैयार कर रही थी।

नई दिल्ली तो 'क्रेसेण्ट' की नगरी है न! एक क्रेसेण्ट पर मोड़ लेकर वह आगे बढ़ी। परन्तु यह क्या! होटल का रास्ता तो वह छोड़कर चल रही है। मैं कुछ न बोला, क्यों छेड़ूं!

फिर बोली, "आप तो कुछ बोलते ही नहीं!"

"मुझे सुनना अच्छा लगता है।"

"आप बड़े चालाक हैं।"

"सच! यह खिताब तो आज तक किसी ने दिया न था!"

"आज तक किसी ने आपको समझा नहीं था न।"

"अच्छा तो आप समझी हैं, सो भी चन्द घण्टों के ही भीतर!"

"और नहीं तो क्या! समझने वाला एक निगाह में ही सब कुछ समझ लेता है।"

"और आपके पास ऐसी निगाह है!"

"मि० कुमार, आप मुझे 'आप' न कहिये; अच्छा नहीं

"फिर क्या कहूँ!"

'तुम, तू। मैं आपसे छोटी हूं।"

"उम्र में होगी, और सब में तो बढ़चढ़ कर ही हो।"

"और सब से क्या मतलब!"

"यही रूप, गुण, विद्या, बुद्धि और खास कर एक निगाह में सब कुछ समझने वाली सूझ-बूझ।"

'अच्छा तो, जनाब, बना रहे हैं !"

"मैं भला क्यों बनाने लगा और बनाऊंगा भी क्या ! बनाने वाले ने तो खुद अपनी सारी अक्ल खर्च कर दी बनाने में।"

"आपकी जैन भी तो बड़ी खूबसूरत है !"

अब मैंने समझा कि इतनी लम्बी भूमिका किस लिये थी। याद आगया शाम को स्टेशन के प्लेटफार्म पर दोनों का एक दूसरे को घूरकर देखना।

मैं सोचने लगा कि इन लड़कियों में यह रूप की ईर्ष्या कितनी भयानक है। जो सुन्दर से सुन्दर है वह भी मन ही मन कुछ न कुछ ईर्ष्या तो पालती ही है। शायद सरस्वती, लक्ष्मी व इन्द्राणी भी आपस में यों ही जलती होंगी, चाहे कहें या न कहें।

मैंने पूछा, "तुम्हें कुछ जंची ?"

"और क्या यों ही कह रही हूं ? परन्तु आपका इन्तखाब भी खूब है !"

"इन्तखाब मैं करता कहां हूँ, हो जाता है।"

"अपने ही आप ?"

"और नहीं तो क्या ! देखती नहीं हो, अभी अभी कितना बड़ा इन्तखाब होगया !"

वह झेंपी, मुस्कराई व कुछ देर मौन रही। फिर बोली, "क्यों, वह कौन बड़भागी है जो आपकी निगाहों में चढ़ गया !"

"बड़भागी वह नहीं, मैं हूं। आज जी में आता है कि""""।"

मैं कहते कहते रुक गया। वह बोली, "हां, हां, कहे जाइये, रुकते क्यों हैं ? क्या जी में आता है ?"

"कि दुनिया की सारी दौलत मारे खुशी के दोनों हाथों लुटा दूं और क्या ?"

"नहीं, आपने बात बदल दी। खैर, जैन तो बड़भागी है ही।"

"सो तो उसी से पूछना।"

"आज शाम को वह इतनी जल्दी क्यों चली गई ?"

"उसे सारा प्रबन्ध जो करना था। वह न जाती तो मैं स्वयं जाता।"

"झूठ, बिलकुल झूठ। वह न जाती तो आप मेरे बंगले पर ठहरते।"

सच, यह लड़की तो बिलकुल मन का 'ऐक्स-रे' कर लेती है। इससे बहुत सावधान रहने की ज़रूरत है।

अब हम लोग चक्कर काट-कूटकर होटल पर पहुंच गये थे। मोटर एक ओर खड़ी कर दोमंज़िले पर गये। बाहर से ही टाइपराइटर की खटखट आवाज़ सुनाई दी। मैं समझ गया कि जेन लगातार टाइप करने में व्यस्त रही होगी। घण्टी देते ही उसने दरवाज़ा खोला। हम दोनों भीतर गये। कमरे दोनों ही काफ़ी बड़े व खूबसूरत थे। बीच से उनमें दरवाज़ा था। हर एक के साथ सुन्दर स्नानागार था। क़ालीन, पलंग, आलमारी, 'ड्रेसिंग टेबल' वग़ैरह निहायत शानदार थे। तबियत खुश हो गई।

कमरे में एक ओर अंगीठी बनी थी जहां एक बिजली का 'हीटर' दमक रहा था। कमरा काफ़ी गर्म था।

दोनों ने फिर से अभिवादन किया। मैं दोनों को बातें करने के लिये छोड़कर दूसरे कमरे में गया। कुछ देर बाद लौटकर जो आया तो दोनों बातें करने में इतनी व्यस्त थीं जैसे दो सह-पाठिनें हों।

मैं चुपचाप दोनों को पीछे से देख रहा था व सोच रहा था, लगातार सोच रहा था, न जाने क्या। पास आकर देखा तो जेन उसे मेरी यूरोप-यात्रा का 'एल्बम' दिखा रही थी।

मैंने कहा, "इससे अच्छा कोई काम न मिला?"

जेन बोली, "इससे अच्छा कोई काम मिस सहाय को जंचा नहीं।"

पता नहीं इस व्यंग को गहराई को नीरा ने कहां तक समझा, परन्तु समझा ज़रूर होगा। उनकी बुद्धि बड़ी पैनी है सो भी इस दिशा में।

नीरा झट उठ पड़ी और बोली, "अच्छा, मैं चलूं, मिस स्मिथ; तो आप 'डिनर' पर ज़रूर आइयेगा मि० कुमार के साथ।"

जेन ने उत्तर में कहा, "ज़रूर आऊंगी, धन्यवाद।"

नीरा फिर बोली, "और हां, तीसरे पहर आइयेगा, चाय वहीं पीजिये, फिर थोड़ा टेनिस खेलेंगे, क्यों मि० कुमार?"

मैंने कहा, "सो तो काम पर निर्भर करता है, कह नहीं सकता। समय मिला तो आऊँगा।"

नीरा बोली, "डैडी ने कहा है कि गाड़ी आप कभी भी ले सकेंगे। कितने बजे भेज दूँ?"

मैंने कहा, "अब भी मैं आये।"

नीरा ने पूछा, "फिर भी?"

मैं बोला, "नौ बजे ठीक होगा?"

नीरा ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं? नौ बजे गाड़ी आपको नीचे मिलेगी।"

इतने में नौकर तीन प्याले क़ॉफ़ी ट्रे में रखकर ले आया। नीरा चकित होकर बोली, "यह क्या? सो भी इतनी रात गये? अब तो डिनर का समय होगया, मि॰ कुमार!"

मैंने मुस्कराकर कहा, "सब काम हमेशा समय से ही न किया कीजिये। कभी कभी तो कुछ असमय में करना सीखिये।"

इतना कहते कहते मैंने देखा कि जेन के चेहरे पर एक हल्की सी शिकन पड़ गई। मैंने कहा, "जेन, तुम बनाओ क़ॉफ़ी। बैठाओ न इनको।"

"ये तो आप ही से बैठेंगी," कहते कहते जेन मुस्करा उठी। उसे यों बाज़ी मारते देख नीरा कटकर रह गई।

मेरे मन में तो आया कि हाथ पकड़कर बगल में बैठा लूँ, पर क्या इतना कर पाता?

वह स्वयं बैठते बैठते बोली, "लीजिये, मिस स्मिथ, मैं स्वयं बैठ जाती हूँ। लाइये, क़ॉफ़ी की ट्रे इधर खिसका दीजिये, मैं बना दूँ।"

जेन ने कहा, "नहीं, ठीक है; मैं बना देती हूँ। काली या सफ़ेद?"

नीरा बोली, "काली।"

दोनों ने काली क़ॉफ़ी ली। मैंने सफ़ेद। यही तो जीवन की गूढ़ पहेली है।

क़ॉफ़ी समाप्त हुई। नीरा ने विदा ली। मैं उसे नीचे मोटर तक

पहुँचाने गया। जेन ने दरवाज़े पर से ही अभिवादन कर हाथ मिला छुट्टी ली।

गाड़ी में बैठने पर नीरा बोली, "कल सवेरे नौ बजे गाड़ी आपको यहीं पर मिलेगी।"

मुझे चुहुल सूझी। मैंने पूछा, "इसी ड्राइवर के साथ?"

नीरा के चेहरे पर नटखटपन नाच उठा। बोली, "मर्जी जैसे आपकी, परन्तु आप अपनी जेन रानी को संभालियेगा; कहीं हॉर्ट न फ़ेल हो जाय।"

मैं भला क्या उत्तर देता? झेंपता झेंपता बोला, "इतना खूबसूरत ड्राइवर मेरे भाग्य में कहां?"

वह मुस्कराकर चुप हो गई। मैंने विदाई के लिये 'बाइ-बाइ' कहा व हाथ बढ़ाया। उसने भी हाथ बढ़ाया। उसकी हथेली अपने हाथ में लेकर मैं फिर इस बार झट से छोड़ न सका। इस बार तो निगाह से निगाह भी मिली व फिर झुक गई। मैंने उसकी हथेली के बीच उंगली से जरा दबा दिया। वह न तो हिली और न बोली, और न ही हाथ खैंचा।

अन्त में मैंने ही हाथ छोड़ दिया। देखा, उसके मुँह से एक लम्बी सांस निकलकर रह गई।

उसने गाड़ी चलाई व रात के अंधेरे में खोगई।

मेरे सारे शरीर में हथेलियों की राह बिजली दौड़ चली। मैं भारी कदम उठाता हुआ धीरे धीरे अपने कमरे में आया।

यहां जेन फिर टाइपराइटर पर आ डटी थी।

टिक! टिक्! टिक्! इस टिक का कोई अन्त नहीं।

जेन को क्या होगया? क्या?

आठवाँ परिच्छेद

प्रेम की समाधि

कृष्णा तो क्या गई घर से—स्नेह गया, सम्मान गया, गृहस्थी गई, शान्ति गई, शीतलता गई। कृष्णवल्लभ का घर सचमुच उजड़ गया। इतनी सच्चरित्र, नम्र व स्नेह रखनेवाली पत्नी क्या हर किसी को मिलती है? सदैव मिलती है?

उजड़ा घर, नौकरों की लापरवाही, बंगले पर न स्वागत, न मुस्कान, न सहज-मधुर युवति-कण्ठ, कुछ भी तो न था जिसमें मन रमता। माली के हाथ सजाये गये फूल इतने बेतरतीब लगते कि मन चिढ़ जाता। हर घड़ी लगता जैसे कोई हाथ जो हर चीज़ को छूकर अपने जादू से सुरुचि व सौंदर्य प्रदान करता था सुरके से खिंच गया। रह गई घर में केवल कुव्यवस्था, बेबसी व सांय सांय करने वाला एकांत।

और मीरा भी तो न थी। कितना बड़ा भाग्य लेकर जन्मी थी यह बच्ची। इसके दादा, नाना-नानी, मां सभी कितने बड़े थे समाज में। आज वह मां-बाप के प्रेम से वंचित होकर बुआ के पास लाहौर में पड़ी थी। कुछ किया भी तो न जासकता था। इतनी नन्ही सी बच्ची कैसे रहेगी बंगले में। आया से तो काम न चलेगा। मां का प्यार उसे कौन देगा?

कभी कभी कृष्णवल्लभ को बड़ा गुस्सा आता। उस समय लगता कि बंगले में आग लगी है। नौकर-चाकर सब थर थर कांपते। चीजें टूटतीं, बिगड़तीं, पुरानी होतीं, वे कुछ भी न बदलते; नई चीज़ों का घर में आना एक तरह से बन्द हो गया।

हां, अब जब भी मौका पाते वे लाहौर निकल जाते, चाहे रविवार के

ही लिये। उस शनिवार को उनके चेहरे पर खुशी नज़र आती। ढेर से खिलौने, कपड़े, मिठाइयां, टॉफी वगैरह वे खरीदकर लाते। तब वे बंगले में अकेले, मुँह से सीटी बजाते हुए सुनाई पड़ते। नौकर सब प्रसन्न होते कि साहब आज तो खुश हैं।

समय तो किसी का इन्तजार नहीं करता। ज्यों त्यों करके गर्मी गई, बरसात गई, जाड़ा आया और वह भी गया। बसन्त-पंचमी को वे उदास-मन, घास पर कुर्सी डाले बैठे थे व आठ वर्ष पहले अपनी शादी की बात सोच-सोचकर मन ही मन और भी दुःखी हो रहे थे कि इतने में उनके मित्र मि० चड्ढा जो वित्त-विभाग में सह-सचिव थे आ धमके। उन्होंने आते ही मिठाई की माग की, कारण कि एक व्यापार-प्रतिनिधि-मंडल यूरोप व इंगलैंड जारहा था जिसमें मदद के लिये कृष्णवल्लभ के भी भेजे जाने की बात थी। अभी वे थे तो उप-सचिव परन्तु सरकारी मामलों में ज्ञान का प्रचुर भण्डार रखने के कारण उनका चुनाव किया गया था।

कृष्णवल्लभ को पहले तो इस समाचार पर बिलकुल विश्वास न हुआ, परन्तु क्या इतने बड़े सौभाग्य पर वे पूरी तरह अविश्वास कर सकते थे?

मन में नई उमंगें लहराने लगीं। न जाने आठ-नौ वर्ष तक वे मन के किस गर्त में सोई पड़ी थीं, सब की सब एकाएक जाग पड़ीं। हवा में एक स्फूर्तिदायक शीतलता का भान हुआ। आंख उठाकर पेड़ों को देखा तो नये पत्ते, नई कोंपलें ढेर सी नज़र आईं और पुराने पत्ते ढेर के ढेर धरती पर बिछे मिले। सोचा, अरे, यह तो बसन्त आया है।

परन्तु इतने दिनों तक यह सब कहां था? था तो वहीं, पर देखने को आंखें हों तब तो। क्या हर घड़ी हर चीज़ दिखाई देती है? देखने के लिये वैसी ही मुद्रा व लगन भी तो चाहिये।

कुछ दिनों में वह खबर पक्की होगई, लिखित आज्ञा-पत्र भी आगया और उन्होंने यूरोप व लण्डन का सपना देखना शुरू कर दिया।

अप्रैल आते आते तैयारियां पूरी होगईं व महीने के मध्य में प्रतिनिधि-

मंडल चल पड़ा। इस यात्रा में कृष्णवल्लभ को लण्डन में लगभग एक मास रहने का मौका मिला। यूरोप में भी पेरिस, ब्रूसेल्स और जेनीवा घूमने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मन की बहुत पुरानी साध पूरी हुई।

लण्डन में हाईकमिश्नर की ओर से एक पार्टी प्रतिनिधि-मंडल को दी गई जिसमें कुछ सम्मानित भारतीय व्यापारी भी आमंत्रित हुए। इन्हीं में एक सिंधी परिवार भी था—पति-पत्नी व पुत्री। लड़की का नाम शान्ति मल्कानी था। उम्र कहीं बीस-इक्कीस वर्ष होगी। परन्तु क्या यह नाम ठीक था?

ओह, शान्ति को देखकर किसी के भी मन की शान्ति काफूर हो सकती थी। इतना सुडौल शरीर, सुन्दर गठन, चेहरे पर ग्रीशियन सौंदर्य; यदि आंखों की पुतलियां काली न होतीं तो कौन यकीन करता कि यह विलायती मेम नहीं है। इसकी थी तो बसन्त मण्डराने लगता था। कृष्णवल्लभ की निगाहें उस पर पड़ीं तो फिर हटने का नाम न लिया। उनके मन ने कहा, 'हां, यही तो है जिसकी तलाश थी, यही है।'

उन्होंने इस परिवार से परिचय प्राप्त किया। उसके बाद भी उनके घर आते-जाते रहे। पता चला कि ये लोग लण्डन, पेरिस व ब्रूसेल्स तीनों जगह व्यापार करते हैं, पर हेड-क्वार्टर पेरिस में ही है।

पेरिस जाने पर कृष्णवल्लभ को साथ साथ घूमने का खूब ही मौका मिला, कारण वे फ्रेंच तो जानते नहीं थे, शान्ति ने दुभाषिये का काम किया। वार्सोई के राजमहल तथा अन्य दर्शनीय स्थान साथ साथ देखे गये; क्लब, ऑपेरा, नाच सभी साथ साथ हुए। धीरे धीरे साथ ही भारत आने की बात भी पक्की होगई।

शान्ति को पाकर सचमुच कृष्णवल्लभ के मन में नई जिन्दगी का संचार हुआ। नयी जवानी तन में, मन में, और प्राण में छागई। टेनिस व गॉल्फ में वे मज़े लेने लगे; बिलियर्ड व ब्रिज के अच्छे खिलाड़ी हो चले। नृत्य व संगीत में उनकी रुचि बढ़ी व कपड़े भी अब बड़े ढंग से पहनने लगे।

एक सुन्दर लड़की क्या नहीं कर सकती! कृष्णवल्लभ की पूरी

कायापलट होगई। लगा, जैसे सभी साधें पूरी होगयीं।

मीरा बुआ जी के साथ बढ़ती रही, पढ़ती रही। कृष्णवल्लभ का ध्यान उधर से काफी खिंच चुका था। भारत में आने व विवाह होने के वर्ष भर बाद नीरा का जन्म हुआ, बिलकुल श्वेत व स्वस्थ बालिका छः पौण्ड की।

नीरा के जन्म के समय शान्ति को इतनी भयानक प्रसव-पीड़ा हुई कि उसने हठ करके अपना 'स्टर्लाइजेशन' करवा लिया। मि० सहाय ने बहुत समझाया-बुझाया परन्तु उसने एक न सुनी।

मुहब्बत व खूबसूरती दोनों इन्सान से गुलामी करवाते हैं। कृष्ण-वल्लभ धीरे धीरे शान्ति के हाथ की कठपुतली होचले। कौन नहीं होता? होना पसन्द नहीं करता?

शान्ति के शौक ऊंचे दर्जे के थे। पेरिस की रहने वाली, जौहरी की लड़की, रूप धरती भर का सिमट कर तन में समाया हुआ, अब शौक को और चाहिये क्या? कृष्णवल्लभ की सारी तनख्वाह उसके शौक पूरे करने में समाप्त होजाती, फिर भी इस प्यास का कोई अन्त न था।

सवेरे सवेरे नाश्ते के बाद शान्ति उनको गाड़ी में ऑफिस छोड़ आती, फिर नगर भर में न जाने कहां कहां की सैर करती-फिरती। दुपहर के खाने के समय लौटती। और यदि दुपहर के खाने के बाद निकलती तो शाम को कृष्णवल्लभ को लेकर ही आती।

उसे नगर के सभी रेस्टोरेण्ट, नाच-घर, बाग-बगीचे व पुराने महलों का ज्ञान था। समाज में उसका बड़ा आदर व मान था। रूप के सामने कौन सिर नहीं झुकाता? वह महिला-परिषद की मंत्री थी। हर महीने-दो महीने पर एक लम्बे-चौड़े जलसे का आयोजन होता, सांस्कृतिक प्रदर्शन होते, पार्टियां होतीं।

क्लब में वह नियमित रूप से जाती। महीने में दो-तीन बार नाच किये बिना उसे चैन नहीं पड़ती। साथी बराबर बदलते रहते।

खबर यह थी कि वह बहुत-सा धन लेकर पेरिस से आई है, इसीलिये

इतनी शाह-खर्च है। कोई कोई यह भी कानाफूसी करते कि कोई और उसके शौक पूरे करता है, परन्तु ये सब तो जलने वालों की फैलायीं अफवाहें थीं, विशेषकर क्लब में आने वाली 'लेडीज़' की जिन्हें पूछने वाले कम थे।

शान्ति के आने पर कृष्णवल्लभ की तरक्की भी बड़ी तेज़ी से हो चली। वे दो-तीन सीढ़ियां जल्दी जल्दी चढ़ गये। सभी सोचने लगे कि सचिव-प्रधान सचिव होने का सुअवसर उन्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा। जहां कहीं वे अटकते, क्लब या नाचघर में शान्ति सुलझा देती।

नये फूल सी बालिका नीरा दिन प्रतिदिन विकसित होने लगी। मां-बाप के लाड़-प्यार में बच्चों का कितना स्वस्थ व सुन्दर बढ़ाव होता है।

नीरा के हर जन्म-दिन पर शान्ति एक जबरदस्त पार्टी देती। नीरा के लिये उपहारों के ढेर लग जाते। ओह, दिल्ली में कितने प्यार करने वाले लोग हैं नीरा को, शान्ति को।

कृष्णवल्लभ का 'बैंक-बैलेन्स' चाहे दिन प्रतिदिन क्षीण होरहा हो, परन्तु लण्डन में शान्ति के मां-बाप ने एक वसीयत करके अपने बाद अपनी सारी सम्पत्ति शान्ति के नाम लिख दी थी जो शान्ति के बाद उसके बच्चों में बराबर बंटनी थी। यह सम्पत्ति कई लाख रुपये की थी।

इन सब के कारण कृष्णवल्लभ की आंखें बहुत-कुछ सीमा तक मुंदी रहती थीं। बंगले में नौकरों पर शांति का पूर्ण शासन था। उसकी मर्ज़ी के बिना वहां एक पत्ता भी हिल नहीं सकता था। किसी नौकर की मजाल न थी कि उसके या किसी आने-जाने वाले के विषय में साहब के सामने एक शब्द भी कह सके।

वे सब मन ही मन उसे मानते व चाहते भी थे। इनाम वह बहुत देती। नौकर समझते कि वह विलायत की 'रानी' है, दरियादिल। बिगड़ जाती तो सब थर-थर कांपते। नौकरों को वह निकाल भी एक मिनट में देती, वैसे ऐसी नौबत कम ही आती।

प्रसन्न होने पर वह उनसे हंसकर बातें करती, सुधा बरसाती, वे

समझते कि भाग्य उदय हुआ। ठीक ही तो था, इतनी अलभ्य सम्पत्ति उन्हें सहज में प्राप्त होती, इनाम ऊपर से।

ऐसे ही, सुख-सुविधा में कृष्णवल्लभ व शान्ति के पांच वर्ष बड़ी चैन से कट गये। शान्ति को अब कुछ अपने माता-पिता की याद सताने लगी। उसने विलायत जाकर उन्हें देखने की इच्छा प्रकट की। वह नीरा को भी शिक्षा-दीक्षा के लिये साथ ही लेजाना चाहती थी।

उसने कृष्णवल्लभ के सामने प्रस्ताव रखा कि कर्नल चावला विलायत जारहे हैं वह भी साथ ही नीरा को लेकर चली जाय। कर्नल के साथ जाने वाली बात कृष्णवल्लभ को कुछ जंची नहीं। उन्होंने सुझाया कि वे स्वयं छः महीने की छुट्टी लेने का प्रबन्ध करेंगे व तीनों साथ जायेंगे। पढ़ाई-लिखाई का भी प्रबन्ध हो जायगा व घूमना भी। विशेषकर नीरा को देखने के लिये उसके नाना-नानी बहुत उत्सुक थे।

पहले तो शान्ति ने जिद पकड़ी व लगा कि वह मनमानी कर के रहेगी जैसा कि सदा से हर मामले में करती आई है, परन्तु बाद को न जाने क्या सोच वह मान गई।

कर्नल चावला क्लब के प्रधान थे। इसलिये उनके जाने के उपलक्ष में एक 'ग्राण्ड-बॉल' का इन्तज़ाम हुआ। शान्ति ने इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। उस रात को दो बजे तक वह लगातार कर्नल के साथ नाचती रही। कृष्णवल्लभ चुपचाप पेग पर पेग चढ़ाते रहे।

क्लब से लौटने पर बंगले में कोई नहीं था। नौकर सारे अपने क्वार्टर में सो गये थे। चौकीदार ने फाटक खोला व जाकर वह भी कहीं सो गया। गाड़ी गैरेज में डाल ये दम्पती भी सोने चले गये।

सवेरे-सवेरे पता चला कि शान्ति का हार्ट-फेल होगया। देहली के सभ्य समाज में मातम छा गया। कोई कुछ समझ न पाया कि क्या हुआ, कैसे हुआ!

कृष्णवल्लभ के चेहरे से सारी हंसी-खुशी सदा के लिये खो गयी, खो गयी। मारे ग़म के वे कोई बात भी न करते; बस मौन, स्याह मुख

इतनी शाह-खर्च है। कोई कोई यह भी कानाफूसी करते कि कोई और उसके शौक पूरे करता है, परन्तु ये सब तो जलने वालों की फैलायीं अफवाहें थीं, विशेषकर क्लब में आने वाली 'लेडीज़' की जिन्हें पूछने वाले कम थे।

शान्ति के आने पर कृष्णवल्लभ की तरक्की भी बड़ी तेजी से हो चली। वे दो-तीन सीढ़ियां जल्दी जल्दी चढ़ गये। सभी सोचने लगे कि सचिव-प्रधान सचिव होने का सुअवसर उन्हें शीघ्र ही प्राप्त होगा। जहां कहीं वे अटकते, क्लब या नाचघर में शान्ति सुलझा देती।

नये फूल सी बालिका नीरा दिन प्रतिदिन विकसित होने लगी। मां-बाप के लाड़-प्यार में बच्चों का कितना स्वस्थ व सुन्दर बढ़ाव होता है।

नीरा के हर जन्म-दिन पर शान्ति एक जबरदस्त पार्टी देती। नीरा के लिये उपहारों के ढेर लग जाते। ओह, दिल्ली में कितने प्यार करने वाले लोग हैं नीरा को, शान्ति को।

कृष्णवल्लभ का 'बैंक-बैलेन्स' चाहे दिन प्रतिदिन क्षीण होरहा हो, परन्तु लण्डन में शान्ति के मां-बाप ने एक वसीयत करके अपने बाद अपनी सारी सम्पत्ति शान्ति के नाम लिख दी थी जो शान्ति के बाद उसके बच्चों में बराबर बंटनी थी। यह सम्पत्ति कई लाख रुपये की थी।

इन सब के कारण कृष्णवल्लभ की आंखें बहुत-कुछ सीमा तक मुंदी रहती थीं। बंगले में नौकरों पर शान्ति का पूर्ण शासन था। उसकी मर्जी के बिना वहां एक पत्ता भी हिल नहीं सकता था। किसी नौकर की मजाल न थी कि उसके या किसी आने-जाने वाले के विषय में साहब के सामने एक शब्द भी कह सके।

वे सब मन ही मन उसे मानते व चाहते भी थे। इनाम वह बहुत देती। नौ[illegible]ते [illegible] वह विलायत की 'रानी' है, दरियादे-दिल। बिगड़

[illegible] नौकरों को वह निकाल भी एक मिनट में

[illegible]।

[illegible] हंसकर बातें करती, मुआ बरसाती, वे

समझते कि भाग्य उदय हुआ। ठीक ही तो था, इतनी अलभ्य सम्पत्ति उन्हें सहज में प्राप्त होती, इनाम ऊपर से।

ऐसे ही, सुख-सुविधा में कृष्णवल्लभ व शान्ति के पांच वर्ष बड़ी चैन से कट गये। शान्ति को अब कुछ अपने माता-पिता की याद सताने लगी। उसने विलायत जाकर उन्हें देखने की इच्छा प्रकट की। वह नीरा को भी शिक्षा-दीक्षा के लिये साथ ही लेजाना चाहती थी।

उसने कृष्णवल्लभ के सामने प्रस्ताव रखा कि कर्नल चावला विलायत जारहे हैं वह भी साथ हो नीरा को लेकर चली जाय। कर्नल के साथ जाने वाली बात कृष्णवल्लभ को कुछ जंची नहीं। उन्होंने सुझाया कि वे स्वयं छः महीने की छुट्टी लेने का प्रबन्ध करेंगे व तीनों साथ जायेंगे। पढ़ाई-लिखाई का भी प्रबन्ध हो जायगा व घूमना भी। विशेषकर नीरा को देखने के लिये उसके नाना-नानी बहुत उत्सुक थे।

पहले तो शान्ति ने जिद पकड़ी व लगा कि वह मनमानी कर के रहेगी जैसा कि सदा से हर मामले में करती आई है, परन्तु बाद को न जाने क्या सोच वह मान गई।

कर्नल चावला क्लब के प्रधान थे। इसलिये उनके जाने के उपलक्ष में एक 'ग्राण्ड-बॉल' का इन्तजाम हुआ। शान्ति ने इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। उस रात को दो बजे तक वह लगातार कर्नल के साथ नाचती रही। कृष्णवल्लभ चुपचाप पेग पर पेग चढ़ाते रहे।

क्लब से लौटने पर बंगले में कोई नहीं था। नौकर सारे अपने क्वार्टर में सो गये थे। चौकीदार ने फाटक खोला व जाकर वह भी कहीं सो गया। गाड़ी गैरेज में डाल ये दम्पती भी सोने चले गये।

सवेरे-सवेरे पता चला कि शांति का हॉर्ट-फेल होगया। देहली के सभ्य समाज में मातम छा गया। कोई कुछ समझ न पाया कि क्या हुआ, कैसे हुआ।

कृष्णवल्लभ के चेहरे से सारी हंसी-खुशी सदा के लिये खो गयी, सो गयी। मारे ग़म के वे कोई बात भी न करते; बस मौन, स्याह मुख

लिये पड़े रहते। चेहरा लगता इन्सान का नहीं, प्रेत का है।

एक बार फिर से कृष्णवल्लभ की दुनिया उजड़ गई व शायद सदा के लिये। अब तो भला क्या बसेगी! प्यार की दुनिया केवल एक बार बसती है, सिर्फ एक बार। उजड़ने पर फिर इसमें बसन्त नहीं आता, पतझड़, निरा पतझड़ रात-दिन हू-हू करता है।

यह हू-हू कृष्णवल्लभ के जीवन में सदा के लिये समा गया। लगता था नदी तक हू-हू करती है; बवण्डर उठते हैं, बगूले उठते हैं, कभी लगता कि उत्तरी ध्रुव से ठंडी बरफ की आंधी चलती है व सब कुछ पस्त हो जाता है, सो जाता है।

एक खोखला हाहाकार, एक निरन्तर जमने, जमने वाला ग़म, एक भयानक सूनापन कृष्णवल्लभ के जीवन में छा गया, बस गया। अब यह न जायगा, कभी नहीं, कभी नहीं।

लगता था उनका तन, उनका मन पुराने महलों के खण्डहर हैं जिनके भग्नावशेषों में रात-दिन ये आंधियां, ये तूफ़ान हू-हू करते रहते हैं।

यहां हंसी-खुशी घुस नहीं सकती, बसन्त पांव रख नहीं सकता, उमंगें सांसें ले नहीं सकतीं।

यह प्रेम की समाधि है! सच्चे प्यार की!

नौवाँ परिच्छेद

जेन का प्यार

मैंने कमरे में घुसते ही पहला काम यह किया कि जेन का टाइप करना रोक दिया। मैं जाकर उसके पास खड़ा हुआ व उसके दोनों हाथ पकड़कर उसे उठने पर मजबूर किया। फिर अपने पुराने ढंग से उसकी खूबसूरत पतली पतली उंगलियों को मुँह से फूँकते हुए बोला, "ओह, इनमें कितना दर्द समा गया होगा; तुम बड़ी निर्दयी हो, जेन; कुछ तो रहम करो।"

"रहम ! मुझ पर कोई रहम तो करता नहीं, फिर मैं क्यों इन पर रहम करने लगी ?"

"आखिर क्या टाइप कर रही हो ?"

"वही चाय के व्यवसाय पर आपका लेख।"

"भला, उसके लिये क्या जल्दी थी ?"

"आखिर कभी तो करना ही था।"

"परन्तु आज ही की घड़ी तुमने क्यों चुनी ?"

हल्का सा मुस्कराकर वह बोली, "अकेले मन नहीं लगा तो सोचा लाओ यही टाइप कर डालूं।"

हम दोनों जाकर सोफ़े पर बैठ गये जो 'हीटर' के पास पड़ा था। मैं उसकी कोमल उंगलियों को अपने हाथ में लेकर हल्के हल्के मल रहा था व दुलार रहा था।

सचमुच उन आंखों में कितनी शिकायत थी। मैं चुपचाप एकटक उसे देख रहा हूँ व सोचता हूँ कि यह लड़की मुझ पर कितना भरोसा करती

है। परन्तु सब कुछ छोड़कर धरती के दूसरे छोर से मेरे पास आई है। आखिर क्यों? किसलिये?

वह भारतीय लड़कियों की तरह मान करना भी तो नहीं जानती। बस सारा गुस्सा, सारी शिकायत, सारी खीझ इन आंखों में आ जमा है और ये आंखें कितनी कारुणिक व कितनी मोहक होगई हैं।

याद आया उसके पलने पलने इन आंखों में पहले कितनी चहकन थी। आज वह कहां गई? क्या एक सांझ में ही वह लड़की से औरत बन गई? सारे अल्हड़पन का स्थान समझदारी ने ले लिया?

जेन को क्या होगया? क्या?

मुझे यों चुपचाप एकटक ताकते देख वह बोली, "क्या देख रहे हैं?"

"तुम्हारा प्यारा प्यारा मुंह।"

"अभी जी भरा नहीं?"

"कभी भरेगा भी?"

"मैंने समझा था कि ·········।"

उसके इतना कहते कहते मैंने उसे अपनी दोनों बाहों में समेट लिया व अपने होंठों से उसके होंठ बन्द कर दिये। इस मौन आनन्द की दशा में रहकर जेन को नये सिरे से भरोसा हुआ। मेरे वक्ष पर सिर टिकाये वह मेरी बाहों में कुछ देर यों ही पड़ी रही। कुछ बोली नहीं, मैं भी नहीं बोला।

जब नौकर ने घण्टी का बटन दबाया तो मैंने उसे सम्भाल कर बैठा दिया, जैसे कोई छोटे से बालक को गोद से उठाकर बड़े नाजुकपन के साथ बैठा देता है। मैंने दरवाजा खोला। नौकर कुछ पेय लाकर रख गया।

जेन ने ही पूछा, "यह क्या, कुमार?"

"तुम्हारा 'मूड' ठीक करने के लिये।"

"क्या इतने पर भी मेरा 'मूड' ठीक नहीं हुआ?" इतना कहते कहते वह मुस्कराई व शरमा गई।

"मैंने समझा शायद पूरा न पड़े!"

"तुम बड़े नटखट हो।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या, मेरी सारी 'लिपस्टिक' फैला दी व बाल बिखेर दिये।"

"ओह" हो, फिर से तुम ठीक कर लेना। लड़कियों के पास और काम भी क्या होता है ?"

"हां, जैसे तुम बड़ा काम कर के आये हो ?"

"अच्छा लो तो सही, एक-आध 'पेग' तो लो।"

"और तुम ?"

"मैं भी आता हूँ।"

फिर हम दोनों बड़े इतमीनान से बैठकर धीरे धीरे 'सिप' करते रहे। जब थोड़ा रंग चढ़ा तो वह बोली, "कुमार!"

"क्या है ?"

"कुमार!"

"क्या है, कहो न ?"

"अच्छा, आज नहीं, फिर कभी।"

आज नहीं, फिर कभी! क्या ? यह लड़की क्या सोच रही है ? वह वेनिस की झील पर बिताई गई चांदनी रात की पुनरावृत्ति तो नहीं सोच रही क्या ?

और मेरा ध्यान गया छः मास पहले जून में पूर्णिमा की रात पर जो हम लोगों ने लगभग सारी की सारी 'डॉज़ पैलेस' से लगी हुई लहराती झील के किनारे बेंच पर काट दी थी।

ओह, उस रात की जेन की भयानक पिपासा! किसी भी तरह शांत होने को न आती थी। कैसी पागल बनाने वाली वह रात थी, आकाश से चांद सारी धरती पर चांदी बरसा रहा था। पानी की लहरें अमृतमयी होगई थीं, हवा का झोंका नस नस में सिहरन पैदा करता था व जेन अपनी लता जैसी पतली, लचीली बाहें मेरे गले में डालकर झूली पड़ती थी। मैंने उसे अपनी बाहों में सम्भाल रखा था, नहीं तो धरती पर लुढ़क जाती।

अधर से अधर दबाये उस आलिंगन-पाश में हम दोनों दो बजे रात

तक पड़े रहे। फिर पुचकार, सहला, और समझाकर मैं उसे होटल में, जहां हम ठहरे हुए थे, ले आया।

कितनी अनिच्छा से लड़खड़ाते पांव वह अपने कमरे में गई थी।

मैं क्षण भर में वह सारा दृश्य देख गया। स्मृति-पट पर वह कितना ताज़ा था, कितना चटकीला!

"कुमार!"

"बोलो।"

"आज तुम कुछ खोये खोये से लगते हो?"

"मैं? नहीं तो।"

"नहीं क्या? बात क्या है?"

"मन में कुछ मीठी स्मृतियां जाग उठी हैं।"

"कौन सी?"

"वेनिस की झील पर की रात।"

इतना सुनते ही उसकी आंखें चमक उठीं, उनमें विचित्र नशा व उत्साह भर गया। सोचती होगी, 'ठीक तो है, कुमार वही है, वही है।'

अब तो बड़े माधुर्य के साथ बोली, जैसे मन की सारी खरोंच धुल-कर बह गई हो, "कुमार, तुम्हारी रानी बड़ी खूबसूरत है।"

अच्छा, तो जेन को भी यही शिकायत है। मैंने कहा न ईर्ष्या इनका पैदाइशी गुण है। तभी शाम से मुंह सीधा नहीं हो रहा था। अब मन में कुछ निराश भरी तो बोल टुन-टुन फूट पड़े।

"मेरी रानी?"

"और क्या?"

"मेरी कैसे?"

"परिचय के समय उसने क्या कहा था?"

". . . मुझे तो कुछ याद नहीं।"

. . . है न। तुमने पूछा 'रानी? कहां की?' तो वह झट से . . . के आगे कुमार हैं'।"

"अच्छा, तो तुम्हें यह सब लफ़्ज़-बलफ़्ज़ याद है?"

मैं मन ही मन सोचने लगा कि इसके कान आरम्भ से ही कितने खड़े थे। परिचय के समय, लगता है, सारा तन कान हो रहे थे। मैंने हंसते हुए कहा, "और इस 'फ़ॉरचूने' से वह 'मेरी रानी' होगई?"

"और नहीं तो क्या?"

"जानती हो उसने क्या कहा था?"

"क्या?"

"जाने दो, मैं भी नहीं कहूंगा अभी।"

"नहीं, कुमार, मेरी क़सम।"

"अब तुम भी क़सम दिलाना सीख गई?"

"अभी तो बहुत कुछ सीखना बाकी है।"

"उसने भी यही कहा था कि 'आपकी जेन बहुत खूबसूरत है'।"

"सचमुच?"

उसके चेहरे पर आश्चर्य व गौरव दोनों नाच उठे। सोचती होगी कि नीरा उसे बहुत खूबसूरत समझती है, घबरा रही होगी।

'सिप' लेते हुए मेरी आंखों में आंखें डालकर वह बोली, "मगर तुम्हारा इन्तखाब भी खूब है।"

मैं मुस्कराया। दोनों के मन में एक ही बात, एक ही प्रश्न चल रहा है। कैसी पहेली है यह, अनबूझ पहेली।

"तुमसे भी बढ़कर?" मैं बोला।

"सो तो मैंने किया था, तुमने इन्तखाब ही कब किया?"

"बस, समझ लो, मैं इन्तखाब कभी नहीं करता। वह तो अपने आप हो जाता है।"

"तब तो तुम बड़े भाग्यशाली हो?"

"दोगी बधाई इस भाग्य पर?"

ओह, उसका सारा चेहरा स्याह पड़ गया! हाथ कांप उठे, प्याला उसने रख दिया। मुझे अपनी ग़लती का भान तो हुआ, परन्तु क्या

करता। तीर छूट चुका था।

एकाएक वह तमतमा उठी व शेरनी की तरह गुर्राकर बोली, "शट अप, कुमार, शट अप!"

उसकी आंखों से आग बरसने लगी, होंट कांप उठे, नासिका मारे गुस्से के फूल-फूलकर फड़कने लगी, छाती ज़ोर ज़ोर से उठने-गिरने लगी और वह बड़ी बेचैनी से चक्कर काटने लगी।

एकाएक उसकी मारी हुई ठोकर से, सारा पीने का सेट—कप, बोतल—फर्श पर गिरकर चूर चूर हो गया। पेय बह चला। शीशे के टुकड़े कमरे में बिखर गए।

प्याले का एक छोटा सा परन्तु तेज़, धारदार टुकड़ा आकर मेरे ललाट पर लगा व टप-टप लहू बह चला। मैंने जेब से रूमाल निकालकर उसे बन्द करने की चेष्टा की, परन्तु टुकड़ा अटके रहने के कारण और भी भीतर धंस गया।

अब तो वह घबरा उठी, सारा गुस्सा न जाने कहां काफूर होगया। वह मेरे पास दौड़कर आई, परन्तु मैंने उसे छूने न दिया।

रक्त बहता रहा, रूमाल भीगता रहा और वह सिसक सिसककर दोनों हाथों से मुँह ढक रोती रही।

जब मैं कुछ सम्भला तो मैंने नल पर जाकर रक्त धो डाला। शीशे के टुकड़े को मैं आईने में देखकर टटोल रहा था कि वह चुपचाप आई व बड़े ध्यान से देखकर टुकड़े को खोज पाई परन्तु वह निकला नहीं।

जेन अपने साथ हमेशा एक 'फ़र्स्ट एड' बॉक्स रखती है। वह दौड़कर उसे लाई, झट चिमटी से पकड़कर शीशे का टुकड़ा निकाला और फिर गिरते हुए रक्त को बन्द करने के लिये पट्टी बांध दी।

उस रात को हम लोग 'डिनर' के लिये न गये। मैं बिस्तर में पड़ा रहा और जेन पास में बैठी आंसू बहाती रही।

अन्त में मैंने बहुत समझा-बुझाकर, दुलार व पुचकारकर उसे 'गुड नाइट' किया व उसके कमरे में सोने के लिये भेजा।

इस समय आधी रात हो चली थी, चारों ओर शान्ति छाई हुई थी। नीचे रेस्टोरेंट व डांस-हॉल से अभी भी अंग्रेज़ी संगीत की लहरें आती थीं। मैंने बड़ी सी खिड़की को खोल दिया। खोलते ही कमरे में ढेर सी चांदनी एकाएक घुस पड़ी। ठंडी हवा का एक झोंका मुँह पर से निकल गया। वह मुझे अच्छा लगा व शांतिप्रद भी।

मैंने चांद के चमकते, विहंसते गोले को देखा व सब कुछ एकाएक अर्थहीन लगा।

सोचने लगा कि आज शाम से आधी रात तक मेरी दुनिया कितनी बदल गई, कितने परिवर्तन आगये।

मेरे जीवन के आकाश में एक इतना बड़ा सितारा उदय होगा मैं भला क्या जानता था। वह कितना चमकीला है। कितना शानदार!

फिर मन में आया, नीरा इस समय क्या कर रही होगी। क्या वह भी मेरी तरह खिड़की खोल चाद का दर्शन करती होगी? नहीं नहीं, वह कुसुम-कली आँखें मूँदे गहरी नींद में सो रही होगी।

और मीरा!

मैं मन ही मन मुस्कराया।

मेरा ध्यान जब इस बार चाद की ओर गया तो काला दाग दिखाई दिया। सोचने लगा कि उसे मिस जेन ने हलाहल-पात्र चलाकर मारा है जो इतना काला, इतना गहरा निशान बन गया।

* * * *

रेखा ने ललाट पर हाथ फेरते समय दबी जबान में पूछा, "यह निशान कैसा है?"

मैं मुस्कराकर रह गया, बोला नहीं; परन्तु मन ने कहा, 'यह न तो मुर्शी का उपहार है और न नीरा का। यह तो जेन का प्यार है।'

दसवाँ परिच्छेद

सर्वव्यापी प्रेम

रात को देर से सोया था इसलिए सवेरे भी देर से आँख खुली। अभी बिस्तर में अंगड़ाई ले ही रहा था कि गौरैयों की चहक सुनाई दी।

मैंने पास की खिड़की खोल दी। फिर वही प्रातःकाल की रागमयी, सुनहरी धूप कलकत्ते के असंख्य घरों की छतों, मीनारों व बुर्जों पर फैली, चमकती दिखाई दी। गौरैयों की चहक और भी तेज हो चली।

मैंने सोचा कि मनुष्य भी यों ही बराबर चहकता रहता! भला किस के नसीब में बराबर चहकना बदा है!

ये गौरैये भी तो जोड़े जोड़े में ही चलते हैं, चहकते हैं, फुदकते हैं। वह सामने वाली छत पर कबूतरों का जोड़ा गुटरगूं कर रहा है व कितने चाव से मादा को घेरता, मनाता व पीछा करता है। मादा कितना मान करती है, ऐंठती है, व छकाती है।

सारा संसार एक निराली प्रीत की डोर में बँधा है। केवल मनुष्य है कि इस डोर को देखकर, समझकर, महसूस कर भी आँखें मूंद लेता है, स्वयं कठोर नियम बनाता है व उन में उलझकर छटपटाता है, मरता है।

मुझे जगा हुआ जानकर नौकर पलंग-चाय दे गया। इतना दिन चढ़े पलंग-चाय! पलंग-चाय भी क्या एक नज़ाकत है।

चिड़ियों की चहक व चमकती, सुनहरी धूप ने मन में एक अजीब उल्लास भर दिया। सोचा कि चाय बनाऊं, पीऊं, फिर कुछ देखा जायगा। रात की बात याद आई जब रेखा माल चूमकर चली गई थी।

* * * *

बरसों पहले की बात याद आई। एक दिन मुन्नी दौड़ी दौड़ी साँझ के अँधेरे में मेरे पास आई व बोली, "कुम्मू, ऐ कुम्मू, तू जानता है न उस औरिया को जो शहर से आई है ?"

"हां, हां, बात तो बोल !"

"वह कहती थी शहर में लड़के-लड़की एक-दूसरे का चुम्मा लेते हैं।"

"सच ?"

"हूं।"

"तो ?"

"तो क्या ! मैं सोचती हूँ, कैसा लगता होगा ? क्या मिलता होगा ?"

"देखेगी क्या ?"

"धत्"

"देख न, इसीलिए तो तू दौड़ी आई है ?"

"कोई देख लेगा तो ?"

"तो क्या ?"

"बड़ी मार पड़ेगी।"

"अँधेरे में कौन देखेगा ?"

"अच्छा !"

और मुन्नी ने चट से मेरे गाल चूम लिए, जैसे नन्हे से बच्चे को चूमने की उसकी आदत थी। मैंने पूछा, "कैसा लगा री ?"

"कुछ भी नहीं, तुझे कुछ मालूम हुआ ?"

"नहीं तो !"

"फिर तू ही चूमकर देख न ?"

"अच्छा।"

मैंने उसके सिर को दोनों हाथों से पकड़कर जोर से चुम्बन लिया गाल पर। वह बोली, "कुछ मीठा लगा ?"

"नहीं तो ! और तुझे ?"

"मुझे भी, कुछ भी नहीं।"

"अरे यह सब बेकार का झूठ है। तू जा, जा भाग जा। माँ ने इन्हें बनाने की देर है, ला लायेगी।"

और वह भागी भागी अंदर से चली गई।

• • • •

इतने में कमल आ गया। मेरे पड़ोसी व मित्र डॉ. मिश्रा का भाई, बी० एस-सी० का विद्यार्थी, पढ़ने में बहुत तेज व स्वभाव का चंचल, सरल सुशील।

वह आते साथ फूलों का एक गुच्छा भी लाया जिसे उसने चुपचाप ड्रेसिंग टेबिल पर सजा दिया।

मैंने कहा, "कमल, जरा चाय बनाओ न, तुम बड़े अच्छे ढंग से बनाते।"

नौकर को आराम देकर मैंने दूसरा प्याला मंगवाया। इस बीच भाभी जी व भाई साहब का हालचाल पूछता रहा।

कमल ने बड़े करीने के साथ दोनों प्यालों में पहले चीनी डाली, फिर दूध, और चम्मच से चलाने लगा।

उसके ढंग से चाय बनाने का यह तरीका मुझे बड़ा रोचक लगा। मैंने पूछा, "भला यों चाय बनाना किस ने सिखाया है? अरुणा ने?"

वह झेंप गया। आँखें नीची कर लीं। उसका भोलापन बस देखने लायक है। बेचारा अभी से एक उलझन में फंस गया है। बगल वाले मकान में एक ऐडवोकेट रहते हैं मि. मुकर्जी। उनकी लड़की अरुणा सोलह वर्ष की है व आई. ए. में पढ़ती है। उस पर इसकी निगाह कुछ जम गई है या, पता नहीं, उसी की निगाह इस पर पड़ी है। परन्तु जो भी हो दोनों एक दूसरे को चाहते खूब हैं।

अभी उस दिन भाभी जी कह रही थीं कि कमल की शादी अरुणा से ठीक करा दो न अपने भइया से कहकर, नहीं तो मेरा फूल सा देवर मुरझा जायगा।

मैंने कहा, *"भाभी, वहां तुम्हारी वकालत न चलेगी, वहाँ मुझे*

कौन पूछता है ?"

बोली, "वे तो कहते हैं कि एक तो बंगाली सो भी ब्राह्मण, भला शादी कैसे होगी ! समाज में लोग क्या कहेंगे ?"

"फिर ?"

"फिर क्या, मैंने कहा, 'तुमने अपनी शादी करते समय यह सब नहीं सोचा ?' बोले, 'वह बात दूसरी थी।'"

मैंने कहा, "भाभी, हर आदमी यही तो कहकर टाल देता है कि वह बात दूसरी थी।"

बात यों है कि भाभी जी भी कभी भाई साहब की विद्यार्थी थीं यूनिवर्सिटी में। वहीं से भाई साहब से मेल-जोल बढ़ा व बाद को शादी हो गई, गो कि भाभी जी महाराष्ट्री थीं। कुछ लोगों ने शोरगुल मचाया तो प्रो. सिन्हा ने एक अच्छी सी दावत व सुन्दर स्वागत ग्रैण्ड होटल में देकर उनका मुख बन्द कर दिया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे कमल का पक्ष लेतीं; फिर स्त्री-सुलभ करुणा, स्नेह व मातृत्व की कमी तो भाभी जी में है नहीं।

चायदानी से चाय उंडेलने के लिए कमल ने जो हैण्डिल पर हाथ रखा तो वह इतना गरम निकला कि उसका हाथ जल गया।

कमल ने अपनी जेब देखी। वहां रूमाल था ही नहीं। लापरवाह जो ठहरा। उसने खूंटी पर टंगे हुए मेरे सूट को देखा। वहां कोट की ऊपर की जेब से रेशमी, खूबसूरत रूमाल झांक रहा था।

उसने झट से वह रूमाल खींच लिया व उसी से हैण्डिल पकड़कर चाय डालने लगा। मेरी निगाह जो उस रूमाल पर पड़ी तो मैं मारे क्रोध के आगबबूला हो गया।

मैं एकाएक चिल्ला पड़ा, "ईडियट, गेट आउट!"

कमल हक्का-बक्का हो गया। उसके हाथ से चायदानी छूट पड़ी। रूमाल छूट पड़ा। गरम चाय छलककर रूमाल पर आ गिरी और रूमाल का सत्यानाश हो गया।

मेरा पारा सातवें आसमान पर था। मैं जितना ही उस रूमाल को देखता, उसकी दुर्गति देखता, क्रोध आता, रोना आता।

यह चाय का रंग अब इस पर से कभी न छूटेगा, कभी नहीं।

और न कभी बन्द होगा नीरा का रक्तस्राव।

नीरा की यह पहली भेंट थी जो उसने पहली संध्या को मुझे दी थी परिचय होने के साथ ही। हमारे प्यार की यह पताका थी जिसे मैं बराबर अपने कोट की जेब में रखता था बाईं ओर, दिल के पास।

और आज उसका सत्यानाश होगया। भला, मैं कमल को क्या समझाता ? कैसे समझाता ?

धीरे धीरे क्रोध कुछ शान्त हुआ तो मन में पश्चाताप भर उठा। कितने चाव से तो लड़का मिलने आया अस्पताल में, फूलों का गुच्छा लाया स्नेह से, और मैंने उसे नाहक डाटकर तूफान खड़ा कर दिया। भला उसे क्या पता, इस रूमाल की क्या कीमत है, क्या महत्व है मेरे जीवन में।

हम दोनों ने एक दूसरे का मुख देखा तो लगा जैसे नयन अब बरसे, अब बरसे।

उसने चुपचाप दो प्याले चाय बनाई—एक मुझे दिया व एक स्वयं लिया। मूक की भांति हम चाय पीते रहे। दोनों के मन में क्या था ?

मैंने ही मौन तोड़ा। पूछा, "कमल, तुम जानते हो कि यह किस का रूमाल है ?"

"जी हां, अब कुछ कुछ समझा हूँ।"

"किस का ?"

"शायद नीरा जी का।"

"हां ठीक, यह उसकी पहली भेंट है !"

"और मैंने खराब कर दिया। मुझे सचमुच बहुत अफसोस है, भाई साहब, बहुत।" और उसके नयन झरने लगे। मैंने उसे दाढ़स दिया व शान्त किया। कुछ स्वस्थ होकर बोला, "आपको बहुत ठेस लगी न ?"

मैंने मुस्कराकर कहा "तुमको भी इस बात की खबर !"

विषय बदलने के लिए मैंने पूछा, "तुम्हारी परीक्षा कब से है ?"

"मार्च से।"

"बी. एससी. के बाद क्या करोगे ?"

"सो तो भइया जानें, मैं क्या जानूं।"

"फिर भी कोई चर्चा नहीं हुई ?"

"हुई थी। वे कहते हैं कि अब से ही इन्जीनियरिंग कालिज में भरती हो जाओ।"

"और तुम्हारा क्या विचार है ?"

"मैं तो 'आइ. ए. एस.' के लिए जाना चाहता हूं।"

"और अर्पणा क्या कहती है ?"

वह शर्मीला है न ! झेंपकर थोड़ा मुस्कराया व निगाहें नीची कर लीं। मैंने उसे छेड़ा, क्योंकि हंसाना चाहता था। सवेरे सवेरे लड़के को रुला दिया था। मैंने हठ किया, "बोलो न, वह क्या कहती है ?"

"वह भी आइ. ए. एस. के पक्ष में है।"

"तब तुम वही करो। जरूर सफल होगे। मैं प्रो. सिन्हा से कह दूंगा।"

उसकी आंखें चमक उठीं, चेहरा खिल उठा, क्षण भर को। मैंने फिर छेड़ा, "अर्पणा कल तुम्हारे घर आई थी न ?"

"जी नहीं।"

"झूठ, सरासर झूठ, कल वह आई थी। मुझे सब खबर है। बोलो, तुम्हारे लिए क्या लाई थी ?"

"मुझे अब जाने दीजिये। फाइनल है न।"

"नहीं, तुम नहीं जाओगे जब तक बताओगे नहीं। वह क्या लाई थी तुम्हारे लिये ?"

"बड़ी झेंप व असमंजस के बाद बोला, 'टॉफी।'"

"हां ठीक, तुम्हारी जेब में है न ?"

"जी नहीं।"

"है, जरूर है, तुम फिर झूठ बोलते हो!"

"मुझे जाने दीजिए।"

"तुम आज भी नहीं जाओगे।"

और उसने जेब से एक डली निकालकर मेज पर रख दी।

मैं मुस्कराया और मुझे तुरंत दिखाई दिया एक दस वर्ष का बालक कुरते की जेब में लिए फिरता है गंगा के तीर की सीपी या पानी में बहता पकड़ा हुआ कदम्ब का फूल जिसे मुन्नी ने दिया था।

मैंने फिर छेड़ा, "अच्छा यह तो बताओ कि तुम्हारे आँसू क्यों आए?"

"आपकी व्यथा का मान कर!"

"तुमने मेरी व्यथा का मान कैसे किया?"

"न पूछिये तो अच्छा है।"

"नहीं, तुम यही बता दो फिर चले जाओ।"

रुकते, थमते, टूटे-फूटे, बोल निकले। क्रमशः बोला, "साल भर पहले की बात है कि अपर्णा ने मुझे एक रूमाल दिया था। मैं उसे बराबर जेब में रखता था, क्षण भर भी अलग न करता था। एक दिन क्लास खत्म होने पर किताबें सम्भाल कर चला तो जेब से रूमाल निकाल जरा मुँह पोंछने लगा। सो भी बहाना-मात्र था। इसी बहाने मैं उसे प्यार से चूम लिया करता था। एक साथी ने तुरंत कहा, 'यार, रूमाल तो बड़ा खूबसूरत है, सो भी 'लेडीज' रूमाल है। कहां से मार लाये?'

"मैं अभी मुस्करा ही रहा था कि उसने अपनी कलम की स्याही उस पर छिड़क दी। मैंने आव देखा न ताव, इतने जोर से उसे तमाचा जड़ दिया कि गाल तो क्या कान के छोर तक लाल हो उठे। वह हक्का-बक्का रह गया।

"बाद को मैंने उससे क्षमा मांगी व उसने भी। पर मैंने उस रात खाना न खाया। बड़ी रात तक कॉलेज स्क्वेयर में तालाब के किनारे बैठा रोता रहा। कई दिन तक मन बहुत उदास रहा।"

मैंने कहा, "अच्छा तो यह बात है? देखो, तुम बिलकुल चिन्ता

न करो। मुझे ज़रा भी दुःख नहीं, वह तो क्षणिक रोष था; आया, चला गया।"

कमल बोला, "अच्छा, मैं अब चलूँ। मैं फिर से कहता हूँ कि मुझे बहुत अफसोस है। मैं आपको जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि आपको कितनी गहरी ठेस लगी है।"

"अच्छा, चलो चलो, बड़े समझदार हो गये अभी से," यों कहते हुए मैंने उसकी पीठ थपथपाई व दुलार के साथ विदा किया।

कमल चला गया। मेज़ पर रह गई उसकी टॉफ़ी तथा चाय में भीगा हुआ नीरा का रूमाल।

मैं बैठे बैठे सोच रहा हूँ कि यह प्रेम कितना सर्वव्यापी है, कितना सर्वग्रासी, और कितना सर्वनाशी। कितनी नन्हीं नन्हीं चीजों में इसका वास है। नन्हीं सी सीपी, छोटा सा बेर या जामुन या अम्बिया, टॉफ़ी का एक टुकड़ा, चॉकलेट का टुकड़ा, छोटा सा रूमाल, हाथ के बटन, न जाने कहां कहां, किन किन शकलों में झांकता, ऊपर होता और खोता रहता है।

इसके उदय होने के साथ तन में, मन में, प्राण में नई चेतना जाग *उठती है, दुनिया का रंग ही बदल जाता है। हर चीज़ का अर्थ बदल* जाता है। एवरेस्ट की चोटी बाहों की पहुँच के भीतर लगती है, असम्भव शब्द जीवन से निकल जाता है।

इसकी ज्योति बुझते ही मन व प्राण बुझ जाते हैं, तन क्षीण हो जाता है, जग अर्थहीन, सारहीन, रसहीन लगने लगता है।

यह नन्ही सी टॉफ़ी कमल व अर्पणा के जीवन में कितना मिठास भर देती है। क्या सभी टॉफ़ी के टुकड़े बराबर ही मीठे होते हैं? नहीं, किसी की मिठास जीभ तक ही रहती है, किसी की मन व प्राण तक जाती है और कोई कोई तो आत्मा तक को सुवास व मिठास से भर देते हैं।

मिठास का वास केवल टॉफ़ी में ही नहीं, खाने वाले की जीभ पर भी है। प्रीत की डोर कब, कहां, कैसे ताना-बाना बुनती रहती है, क्या कोई जान पाता है!

यह तो पूरी तरह उस ताने-बाने में उलझ जाने के बाद ही पता चलता है।

कमल व अपर्णा के अंकुरित स्नेह का सजीव प्रतीक यह टॉफी!

इसकी मिठास का भान उन दोनों के अतिरिक्त और किस को है? किस को?

बिहारी ने ठीक ही तो कहा है—

नहीं पराग, नहीं मधुर मधु, नहीं विकास इहि काल·········

ग्यारहवां परिच्छेद

टेनिस का खेल

दूसरे दिन प्रातःकाल मीटिंग से छुट्टी पाकर तीसरे पहर मैं व जेन जब नीरा के बंगले पर गये, तो वह सचमुच हमारा इन्तजार कर रही थी।

दूर से ही हमने देखा कि वह घूम-फिरकर फूलों को तोड़ रही है—नहीं, कैंची से काट रही है—फूलदानों में सजाने के लिये।

नीरा बासंती रंग का जालीदार ब्लाउज़ और बेल-बूटों की छाप वाला 'स्कर्ट' पहनकर ऐसी लगती थी जैसे फूलों से लदी कोई क्यारी ही सजीव हो सदेह घूम-फिर रही हो। पूरी विलायती मेम लगती थी।

मिलते ही चेहरा खिल उठा। अभिवादन के बाद मैं व जेन भी उसी के साथ फूलों की क्यारियों के बीच घूमते रहे व बातें करते रहे।

मेरा ललाट देखते ही उसने पूछा, "यह क्या?"

वहां छोटी सी चिप्पी 'स्टिकिंग प्लास्टर' की लगी थी। मैंने कहा, "रात मच्छर ने काट लिया।"

उसने जेन की ओर देखा तो वह सिर झुकाये मौन खड़ी थी। न जाने क्या सूंघकर बोली, "बहुत ज़ोर से काटा होगा, घाव गहरा लगता है।"

मैं मुस्कराया। जेन क्षीण हंसी हंसकर रह गई।

घूमते-फिरते उसकी निगाह पड़ी मेरे कोट में लगे रूमाल पर। यह क्या, वही रात वाला रूमाल! वह तुरन्त बोली, "यह 'लेडीज़' रूमाल कब से रखना सीख लिया?"

"जब से लेडीज़ ने रूमाल देना शुरू किया।"

इस पर तो हम तीनों ओर से हंस पड़े।

फूल चुनने के बाद, एक पेड़ के नीचे, फूलों की क्यारी के सामने, हम लोग तीन कुर्सियों पर बैठ गए। एक और कुर्सी रख दी गई मीरा के लिये।

पता चला कि वह सुरेन्द्र जी से मिलने गई है और आती ही होगी।

नीरा ने बड़ी फुरती व खूबसूरती के साथ तीन फूलदानों में इन फूल-पत्तों को सजाया व ड्राइंग-रूम में भेज दिया। मैं चकित था उन हाथों की दक्षता, उसके सौंदर्य की परख एवं सुरुचि पर।

चाय की मेज नौकर लगा गया, फिर चाय की ट्रे आई व कुछ बिस्किट। चाय बनाने का काम इस बार जेन ने किया। हम लोग चाय पी ही रहे थे कि सुरेन्द्र व मीरा आगये। वे भी चाय में शामिल होगये।

चाय पीते पीते चार बज चले। फिर हम लोग टेनिस के लिये ड्रेस बदलने चले गये। इस बीच नौकरों ने नेट लगा दिया।

मैं व सुरेन्द्र तो अतिथिगृह में गये और जेन नीरा के साथ गई।

दस मिनट में सभी कपड़े बदलकर रैकेट ले आ डटे। वह छवि भी देखने ही योग्य थी। मैं व सुरेन्द्र पहले से ही लॉन पर पहुँच चुके थे। सुरेन्द्र ने खाकी बाहों की सफेद कमीज व निकर पहन रखी थी और मैंने पूरी बाहों की सफेद कमीज व पतलून।

बंगले से नीरा व जेन निकलीं। दोनों ने बगैर बाहों की कमीजें व निकरें पहनी हुई थीं। नीरा की कमीज सफेद रेशम की थी व निकर लहर-दार घेरे वाली थी। जेन की कमीज भी श्वेत थी तथा निकर हरे रंग पर कुसुम थे, इनसे ही खिली हुई।

टेनिस में अब एक नई बात थी। पता नहीं लगा कि यह था क्यों? नारी खिलाड़ियों के कपड़ों में कुछ कैसा परिवर्तन था, जिसके बावजूद भी कुछ हद तक उनकी जवानी में उनके पहने थे। अंगरखे बनी हुई व कमीज ढीली होने से कमजोर सा उभार दिखता दिखता था।

सफेद, गोरी, नीली बाहें मृणाल की भाँति बलखाती थीं और सोने की तरह चमकती थीं। पत्र पर खाली पास लोगों के पास भूला हुआ था,

और चिकनी, सुडौल रानों की शोभा तो कुछ कहते नहीं बनती थी।

हम दोनों मन्त्र-मुग्ध की भांति देखते रहे तथा वे दोनों धीरे धीरे बातें करती हुई हम लोगों के पास आती रहीं।

हां, दोनों में अन्तर भी बहुत था। जेन नीरा से दुबली व कद में छोटी है, आखें भूरी व केश सुनहरे हैं। बाहें पतली, जांघें पतली व उंगलियां भी पतली हैं, परन्तु हैं सब भरी हुई। चेहरा ज़रा लम्बा व अण्डाकार है। हां, आखें काफ़ी बड़ी बड़ी हैं व होंठ पतले हैं। वह अमेरिकन के बदले फ्रेंच अधिक जान पड़ती है।

नीरा की बनावट ग्रीशियन ढंग की है। वह लड़की भी सिकन्दर की तरह होती है। कद में जेन से लम्बी है। चेहरा गोल, गोरा व खिला हुआ है अंगूर के गुच्छे सा। मांसलता काफ़ी है। वक्ष का उभार व रानों की मोटाई तथा गोलाई जेन से कहीं अधिक व आकर्षक है।

नीरा को देखने से लगता है कि रोम की किसी ग्रीशियन प्रतिमा में प्राण फूंक दिये गये हैं और वह सजीव हो चल पड़ी है।

कैसे कहूँ, कुछ सूझता नहीं। इस ड्रेस में नीरा में लड़के व लड़की का मनोहर सामंजस्य लगता है, परन्तु अनोखा। जेन सोलह आने लड़की लगती है।

नीरा के आने में देर लगी। लगता था वह शाम के भोजन की व्यवस्था में फंस गई। खैर, हम लोगों ने खेल आरम्भ कर दिया।

मैं व नीरा एक ओर हुए तथा सुरेन्द्र व जेन दूसरी ओर। मैं देख रहा था कि जेन व नीरा में कुछ प्रतिस्पर्धा की भावना काम कर रही थी। रहा मैं, चूँकि सुरेन्द्र भी कलाकार हैं अतः मैं कलाकारों से कोई प्रति-स्पर्धा नहीं करता। वे लोग नाज़ुक मिज़ाज आदमी ठहरे, न जाने कब कौन सा तार टूट जाय।

हम लोगों ने बड़ी सरगर्मी के साथ खेल आरम्भ किया। नीरा शॉट पर शॉट मारे जाती। जेन सब को उठाती, सब का जवाब देती, हां वह स्वयं कुछ अच्छा हमला न कर पाती थी। लगभग यही हाल सुरेन्द्र का भी था।

सच बात तो यों थी कि यह जोड़ ही ग़लत रहा। सुरेन्द्र व जेन, एक सरीखे दुबले व नाज़ुक, एक ओर होगये और मैं व नीरा दोनों ही कुछ तगड़े, भरे हुए, दूसरी ओर।

'गेम' समाप्त हुआ। सुरेन्द्र व जेन बुरी तरह हारे। खेल के दौरान में एक बार एक शॉट उठाने के समय मेरा व नीरा का सिर टकरा गया।

नीरा झट से बोली, "एक टक्कर और नहीं तो सींग निकल आयेंगे!"

और मैंने हंसते हंसते एक टक्कर और दे दी जरा जोर की। वह चिल्लाई सिर खुजलाती हुई, "जीजी, मि० कुमार ने मार डाला।"

सुरेन्द्र तो हंसता रहा पर जेन गम्भीर दिखाई दी। मीरा श्वेत साड़ी व श्वेत ब्लाउज पहनकर आ चुकी थी। नीरा जब उसके पास गई तो मीरा ने हंसते हंसते उसका सिर मुँह से फूंक दिया व फिर धक्का देकर बोली, 'जा खेल!'

खेल के बीच में एक और बात हुई मेरे और उसके बीच। वह हांफती हुई पसीने से तर आकर मेरे पास खड़ी होगई। चेहरा लाल हो रहा था, पसीना गले से टपककर वक्ष पर चमक रहा था। वक्ष निरन्तर उठते व गिरते थे। गोरी सुनहरी रानों पर भी श्रम-बिन्दु चमक रहे थे।

मैंने ललचाई आंखों से देखा व कहा, "तुम सचमुच सुन्दर हो, नीरा रानी।"

"सच?"

"सच!"

"और जेन?"

"वह तो काफी दूर है, कैसे कहूँ!"

वह मुस्कराकर चली गई सर्विस लेने।

दूसरे 'गेम' में जेन ने अपना स्थान मीरा को दे दिया। मैंने तुरन्त सोचा कि सुरेन्द्र व मीरा शायद कमज़ोर पड़ें, इसलिये प्रस्ताव किया कि मीरा मेरी ओर से खेले व नीरा मेरे विरोध में।

नीरा हंसती हुई कोर्ट के दूसरे सिरे पर गई। जाते जाते कहती गई

धीरे से, "उकता गए न ! भगाने लगे !"

"नहीं, सामने से अच्छा देखते बनेगा।"

यह 'गेम' तगड़ा रहा क्योंकि सच पूछिये तो यह मेरे व नीरा के बीच में था। सुरेन्द्र व मीरा तो सहायक-मात्र थे।

मैं कभी बड़े ज़ोर से शॉट मारता, कभी अत्यन्त धीरे, कभी सामने से, कभी तिरछे, कभी कोने में। नीरा सतत सावधान थी। हर शॉट को लौटाती तथा बढ़िया शॉट लौटाने पर यदि नेट के पास हम दोनों होते तो तुरन्त लखनवी अदा के साथ हाथ उठाकर बोलती, 'जनाब, आदाब अर्ज़ !'

मैं तो मन ही मन कटकर रह जाता। सोचता, किसी की जान गई किसी की अदा ठहरी।

एक ऐसा भी मौका आया जब वह नेट के पास ही दूसरी तरफ बड़ी सावधानी व सतर्कता से खड़ी दिखाई दी। मुझे चुहुल सूझी। मैंने इतने नाप-तोल के साथ गेंद मारी कि सीधी जाकर नीरा की छाती में बाईं ओर लगी। वह रोक न सकी। चोट सचमुच करारी लगी। वह बोल उठी, 'हाय, राम ! मर गई !'

वह बायें हाथ से चोट का स्थान मले जा रही थी व मेरी ओर एक-टक ताक रही थी। उन आंखों में कितना उलाहना था।

सुरेन्द्र व मीरा तो हंस पड़े पर जेन न हंसी। मैंने क्षीण मुस्कान के साथ इतना ही कहा, 'मुझे अफ़सोस है !'

मैं मन में सोचता था कि क्या नीरा भी अपने दिल में कह रही होगी, 'किसी की जान गई, किसी की अदा ठहरी !'

ख़ैर, खेल समाप्त हुआ। यह 'गेम' पूरा न हो सका। अंधेरा हो चला था। हम पसीने से लथपथ हाथ में रैकेट लिये बंगले की ओर चले।

इतने में नीरा की सफ़ेद बिल्ली आई व उछलकर उसकी गोद में चढ़ गई। उसने रैकेट मेरे हाथ में पकड़ा दिया व बिल्ली को दोनों बांहों में भर छाती से लगा चूमने-चाटने लगी।

मैंने कहा, "यह बिल्ली भी कितनी भाग्यवान है।"

"क्यों, ईर्ष्या हो रही है न !"

"कहीं पंजों से खरोंच दे तो !"

नीरा समझ गई कि बिल्ली गोदी में लेने पर खरोंच कहां बनायेगी। झट बोली, "आपके ललाट पर भी तो किसी बिल्ली ने ही खरोंचा है, पंजा गहरा पड़ा लगता है।"

मैं झेंप गया। कुछ बोला नहीं।

मैंने व जैन ने तुरन्त विदा ली क्योंकि रात को डिनर पर भी तो आना था।

इस बार नीरा पहुँचाने न गई।

मैं रास्ते भर इस खेल की एक एक अदा को दोहराता रहा। कानों में गूँजता रहा, 'जनाब, आदाब अर्ज़ !' 'हाय राम ! मर गई !'

बारहवाँ परिच्छेद

नीरा का प्रत्यागमन

सन् '३९ के अन्तिम भाग में महायुद्ध आरम्भ होगया। सब के कान खड़े होगये। स्वयं जाना तो दूर रहा, कृष्णवल्लभ ने नीरा को भी शिक्षा-दीक्षा के लिये नाना-नानी के पास भेजना बेकार समझा। फिर उनको भी तो कोई और सहारा न था।

नीरा शान्ति की सजीव प्रतिमा थी। इतने नन्हे से चेहरे में कभी कभी शान्ति का पूरा आभास मिलता। कृष्णवल्लभ चकित रह जाते।

नीरा के अध्ययन की पूरी व्यवस्था उन्होंने कर डाली। उन्होंने एक मेम को आया के स्थान पर रखा जो गवर्नेस का काम करती तथा एक तरह से पूरे बंगले का भी प्रबन्ध करती।

आया के अतिरिक्त एक शिक्षित यूरोपियन महिला को शिक्षिका भी नियुक्त कर दिया गया। वैसे नीरा 'कॉन्वेण्ट' में भी पढ़ने जाती।

बंगले के भीतर ही एक बड़ा कमरा उसके 'इंडोर गेम्स' के लिये सजाया गया। अहाते में भी झूला, फिसलपट्टी, 'डेक टेनिस' आदि छोटे-बड़े खेलों की व्यवस्था हुई।

बस बंगला नीरा से ही भर गया। यहां देखो या वो नीरा है या नीरा का सामान—कहीं खेलने का, कहीं पढ़ने का, कहीं खाने का, कहीं पहनने का। इतना प्यारा बच्चा 'खुशी-मजस्सिम' बना डोलता फिरता, चहकता फिरता।

कृष्णवल्लभ शाम को दफ्तर से आते तो नीरा के साथ खूब खेलते, बातें करते, और उसे गोद में भर के निहाल हो जाते।

हां, गवर्नेस को कभी कभी बड़ा आश्चर्य होता जब वे नीरा को गोद में भर के मारे चुम्बनों के ढेर कर देते व नीरा घबरा उठती। बोलती, हाथ उठाकर मना करते हुए, 'नहीं डैडी, नहीं डैडी, बस।'

और कभी कभी कृष्णवल्लभ के चेहरे पर ऐसी स्याही छा जाती नीरा को देखकर कि तुरन्त बोलते, 'मिसेज़ ब्राउन, इसे ले जाओ'। नीरा कुसुम-कली सी बालिका का मन उदास हो जाता, दिल टूट जाता। समझ न पाती डैडी को क्या हुआ। मिसेज़ ब्राउन भी समझ न पाती। हां, इतना वह जानती थी कि नीरा की मा को वे बहुत प्यार करते थे।

कौन जाने प्यार की यह भी कोई करवट हो।

शान्ति की कोई तसवीर या फोटो देखकर उनके चेहरे का रंग बदल जाता। इसे सब नौकर जानते थे, मिसेज़ ब्राउन भी धीरे धीरे जान गई। इसलिये एक दिन कृष्णवल्लभ के ही संकेत से शान्ति की सारी तसवीरें, फ़ोटो वगैरह एक बड़े बक्स में बन्द कर दिये गये।

शान्ति का एक बड़ा तैल-चित्र था। उसे कृष्णवल्लभ के कमरे से हटाकर नीरा के कमरे में टांग दिया गया। नीरा को मा की छवि पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके नाना-नानी की भी छवि उसके कमरे में टंग गई।

कृष्णवल्लभ अब भी लाहौर जाते। मिठाई, खिलौने, कपड़े वगैरह मीरा के लिये ले जाते, पर मन में बहुत उत्साह न था।

मिसेज ब्राउन के प्रबन्ध में बंगले में जब सुव्यवस्था स्थापित होगई तो कृष्णवल्लभ ने माया से कहा कि वह मीरा को दिल्ली भेज दे। दोनों साथ साथ खेलेंगी भी व पढ़ेंगी भी। कौन जाने कृष्णवल्लभ के मन में करुणा नये सिरे से स्वर्ग की देवी की भांति जाग पड़ी हो।

क्या इन बच्चों के ज़रिये वे उनकी माताओं के सामीप्य व सम्पर्क का सुख उठाना चाहते थे? क्या मन के खोखलेपन को, सूनेपन को, वे इन बच्चों से भर देना चाहते थे? क्या सचमुच उनको इन बच्चों के मुख में करुणा व शांति के दर्शन होते? दर्शन का आभास होता?

क्या पता नीरा का नाम उन्होंने प्यार से 'रानी' क्यों रखा?

ये सब तो मनोविज्ञान की पहेलियां हैं, फ्रायड जाने, जोन्स जाने। कुछ ठीक ठीक कहा नहीं जा सकता। फिर जिनको मां के स्तन-पान में भी बच्चे की काम-भावना की पूर्ति दिखाई देती है, उनकी निगाह भी क्या! दृष्टिकोण भी क्या!

खैर, माया के अभी कोई अपनी सन्तान तो थी नहीं इसलिये वह मीरा के साथ चिपकी रही, जाने न दिया। कृष्णवल्लभ ने जब भौजा जी से चर्चा की तो उन्होंने कहा, 'भाई, मुझसे क्या पूछते हो, बहन के साथ फैसला कर लो।'

कृष्णवल्लभ उदास मन लौट आये। माया कम ज़िद्दी थोड़े ही थी। उसे वे बचपन से ही जानते थे। पिता होने के नाते उन्हें यह भी पता था कि मीरा लाड़-प्यार में ज़िद्दी व तुनक-मिज़ाजी होती जाती है। हर बात में शाहज़ादियों सा रोब चलाती है।

ठीक ही तो है। माया के बंगले में वह शाहजादी तो थी ही, परन्तु क्या कृष्णवल्लभ के बंगले में मीरा शाहज़ादी न थी।

फिर भी लगा कि मीरा बिगड़ रही है, लाड़-प्यार में। परन्तु कृष्ण-वल्लभ निरुपाय थे, कुछ कर न सकते थे।

हां, एक बात से उन्हें सन्तोष था। माया स्वयं मीरा की शिक्षा का बहुत ध्यान रखती। अच्छे से स्कूल में, शायद 'शिक्षायतन' में भरती करा दिया था। फीस ऊंची लगती थी, परन्तु बच्चों को आधुनिक पद्धति से भारतीय परम्परा के अनुसार शिक्षा दी जाती।

संगीत व नृत्य के लिये अध्यापिकायें रखी गईं थीं। इनके अतिरिक्त माया उसके हर प्रकार के विकास का ध्यान रखती। व्यायाम व खेल कूद की भी समुचित व्यवस्था थी।

कृष्णवल्लभ को जो बात सब से बुरी लगी वह यह थी कि अब जाने पर मीरा बात करने भी न आती। आती भी तो पल भर में भाग जाती, जैसे कृष्णवल्लभ से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो। सोचते, करुणा को भी खोया और मीरा को भी। मन में खीझ उठती, पर उपाय क्या था।

आदी न थे। उसके एकछत्र राज्य में किसी का भी होना उसे नागवार लगा।

परन्तु धीरे धीरे उसने देखा कि उसकी यह जीजी किसी भी बात पर हठ नहीं करती, किसी भी चीज़ पर अधिकार नहीं जमाना चाहती। बड़ी विचित्र है।

छोटी होने पर भी नीरा कभी कभी मीरा को बुरी तरह झकझोर देती, उसकी चोटी पकड़कर घसीट देती, उसके कपड़े उथल-पुथल कर डालती, परन्तु बदले में मीरा न तो उसे मारती, न डाटती, बल्कि थोड़ा सा रोकर चुप लगा जाती। इस पर नीरा को बड़ा पश्चाताप होता। वह जाकर जीजी को मनाती, हंसाती व प्यार करती। इस प्रकार दोनों का स्नेह-सम्बन्ध धीरे धीरे बढ़ने लगा, विकसित होने लगा।

एक बात और हुई। कृष्णवल्लभ ने सलाह दी कि जीजा जी प्रयाग में जाकर वकालत जमावें। उनके पिता जी के बहुत से मुवक्किल मिल जायेंगे व माया का भी मन वहां लगेगा। दिल्ली तो यों ही शरणार्थियों के मारे फटेहाल हो रही थी। वहां भला रोजी की बात क्या सोची जा सकती थी।

फिर, इलाहाबाद में अपना बंगला भी था, कुछ मकान भी थे। जायदाद की देखभाल होती रहेगी। माया व जीजा जी दोनों को यह पसन्द आया और प्रयाग जाने पर राजी होगये। परन्तु इस बार मीरा को कृष्णवल्लभ ने न भेजा। माया ने बहुत कहा कि वह इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में पढ़ेगी, आराम से रहेगी पर वे एक न माने।

माना कि माया को मीरा से बड़ा स्नेह था, वह उसे अपनी पुत्री की तरह मानती थी परन्तु अब उसकी आर्थिक दशा पहले जैसी अच्छी तो थी नहीं। मीरा का भार उस पर डालना अब तो बिलकुल ही उचित न था। फिर मीरा सयानी भी हो चली थी, शादी की भी बात सोचनी थी। इतनी बच्ची न थी जो उसे माया की छाया की आवश्यकता होती।

एक बात और थी। माया के पुत्र भी भगवान ने दे दिया था। वह अब आठ-नौ वर्ष का हो चला था। कृष्णवल्लभ नहीं चाहते थे कि माया

का प्यार दो दिलों में बटे।

राजेश बड़ा प्यारा लड़का था, परन्तु नटखट व हरफन मौला जैसा था। दिन भर घर में ऊधम मचाए रहता। नीरा की किताबों को भी बहुत परेशान करता, उसे लेकर दोनों में बराबर लड़ाई हो जाती।

मीरा ने दिल्ली यूनिवर्सिटी में प्रवेश प्राप्त किया व सन् '५० में बी० ए० और ५२ में एम० ए० फिलासफी में कर लिया। नीरा ने '५० में सीनियर कैम्ब्रिज पास किया व यूनिवर्सिटी में शामिल हो गई।

मेरी मुलाकात मीरा से सन् '५१ के दिसम्बर में हुई। इन दिनों में नीरा और मीरा ने केवल परीक्षायें ही पास नहीं की परन्तु कई कलाओं में भी निपुणता प्राप्त की थी।

मीरा के आने पर इस घर में संगीत व नृत्य ने अपना आसन जोर से जमाया। मीरा ने तो भारतीय पद्धति से संगीत व नृत्य दोनों की पूरी साधना की व लखनऊ की भातखण्डे यूनिवर्सिटी से डिग्री प्राप्त की।

नीरा किसी डिग्री के चक्कर में न पड़ी। उसने पियानो से आरम्भ किया व सभी पश्चिमी स्वर सीखे। संगीत पर बहुत जोर न देकर नृत्य का उसने अच्छा अभ्यास किया सो भी योरोपियन नृत्य का। उसने जहां एक ओर यूनिवर्सिटी में कदम रखा, वहीं दूसरी ओर क्लब में जाना शुरू किया। हर शनिवार को नृत्य किये बिना उसे चैन न पड़ती थी।

इसका परिणाम यह हुआ कि वह बड़ी शोख हो गई। मौरों ने अभी से जो मंडराना शुरू किया तो उसने टरकाना व अंगूठा दिखाना भी सीख लिया। किसी को बेवकूफ बनाना तो उसके बायें हाथ का खेल था।

मीरा ने बुनना, सिलाई व कढ़ाई का काम भी सीखा। नीरा ने उसकी रत्तीभर परवाह न की। उसके बदले में उसने हिन्दी व अंग्रेजी के ढेर से उपन्यास पढ़ डाले। उपन्यास उसे मिल जाय तो रातोरात चाट जाती। परीक्षा होने पर भी परवाह न करती।

मीरा ने तरह तरह के पेय व भोजन बनाना भी सीखा। पकवान व मिठाइयों में सिद्धहस्त हुई। नीरा ने इसकी भी परवाह न की। कहती

कि क्या उसे महाराजिन बनना है।

हां तैरने, घुड़सवारी तथा बन्दूक चलाने आदि में वह विज्ञ होगई। क्लब में सारी व्यवस्था थी। टेनिस, गॉल्फ उसके प्रिय खेल थे। बैडमिंटन व हॉकी भी कभी कभी खेलती। कैरम, पिंगपांग व ब्रिज में मन रमाया। रमी व फ्लैश उसे खूब पसन्द आने लगे।

यह थी मीरा की जिन्दगी। जहां मस्तिष्क का विकास बराबर हो रहा था, साथ साथ मन भी खिल रहा था व तन भी।

'स्विमिंग सूट' पहनकर तालाब के पास खड़ी होती तो किसी की आंखें हटना ही न जानती थीं। परन्तु मीरा को उसकी परवाह न थी। कहती, 'देखने दो, कोई खा थोड़े रहे हैं?'

खा तो नहीं रहे थे परन्तु उसे क्या पता था कि आंखों की राह पी सभी रहे थे व खाने के लिए भी मुँह-खोले तैयार तो थे ही, हां यह खीर ज़रा टेढ़ी थी और आसानी से निगली न जा सकती थी।

न निगली जायगी, न सही। भौंरे मण्डराना क्यों छोड़ें? फूल खिलता रहा, भौंरे मण्डराते रहे।

तेरहवां परिच्छेद

नीरा और मीरा

स्त्रियों को कुछ ऐसे एकान्त की जरूरत होती है जो वे आपस में एक दूसरे के साथ बांट लेती हैं परन्तु किसी पुरुष को साझीदार बनाना पसन्द नहीं करतीं चाहे वह पिता हो या भाई या पति या प्रेमी।

कृष्णवल्लभ के घर में कोई बुजुर्ग औरत तो थी नहीं इसलिये अपनी काम-सम्बन्धी समस्याओं को मीरा व नीरा आपस में ही सुलझाती। इस प्रकार मीरा नीरा की केवल जीजी ही नहीं बल्कि स्नेहालु मां भी बन जाती तथा नीरा मीरा की छोटी बहन ही नहीं बल्कि सखी व प्रिय भी।

वैसे नीरा काफी शैतान व चंचल थी। जिस दिन दोपहरी में, घर में ही साज बाधकर, मीरा ने भारत-नाट्यम् नीरा को दिखाया था उस दिन नृत्य के समाप्त होते ही, पसीने से तर, हांफती-कांपती मीरा को नीरा ने अपनी पूरी बांहों में भरकर इतना कस के आलिंगन किया कि मीरा शरम के मारे गड़ गई। ऊपर से उसके कपोल भी चूमकर बोली, "जीजी, काश मैं लड़का होती!"

मीरा हंसते हंसते बोली, "तो क्या करती? मुझे उड़ा ले जाती?"

"उड़ा ले जाती! अरे जान निसार कर देती, जान।"

"हट पगली कहीं की।"

"अच्छा, सच सच बताओ, जीजी, मेरी कसम, कभी तुमने किसी से मुहब्बत की है?"

मीरा फिर भी मुस्कराती हुई बोली, "हां, की है।"

"कैसी लगती है, मुहब्बत !"

"मीठी, शहद जैसी।" और दोनों ठठाकर हंस पड़तीं।

"अच्छा, किस से मुहब्बत की है, जीजी !"

"तुझसे !"

"हट," कहकर नीरा उसकी चोटी खींच देती। मीरा कराहकर रह जाती। बोलती, "तू दिन पर दिन शैतान होती जाती है, तेरा इन्तजाम करना पड़ेगा।"

"मेरा ! तू इन्तजाम करेगी, बीजी !, अच्छा ठहर !" और मीरा को गोद में उठाकर चल देती।

मीरा चिल्लाती, "छोड़, शैतान कहीं की, पठान कहीं की।"

नीरा छोड़ती हुई बोलती, "मैं लड़का होती तो सच तुझे पठानों की तरह उठाकर ले भागती।"

एक दिन नीरा घोड़े की सवारी कर लौटी। ब्रीचेज़ व कमीज में थी। भूरे भूरे केश कंधों पर लहरा रहे थे। उसने झट से एक साड़ी का साफा बांधा व हाथ में चमड़े का कोड़ा लिए मीरा के पास गई। वह उस समय नीरा के लिये स्वेटर बुन रही थी। बोली, "मैं अपनी बहू को लिवाने आया हूँ, अभी तैयार हो जाओ।"

मीरा के पेट में मारे हंसी के बल पड़ रहे थे, परन्तु नीरा हंसी नहीं। बोली कड़ककर, "तुम मेरी बहू हो, तुम्हें मेरे साथ जाना ही होगा, नहीं तो मैं अभी तुम्हारी चमड़ी उधेड़ दूंगा।"

मीरा बोली, "मैं अभी मायके से नहीं जाऊंगी, करवाचौथ के बाद जाऊंगी।"

नीरा ने कड़ककर कहा, "तेरी मजाल, मेरे साथ न जायगी। अच्छा रह," और उसने कोड़े से एक तकिये को पीट डाला। फिर कोड़ा फेंक, जाकर जीजी के गले से चिपट गई और बोली, "ओह, मेरी रानी," और फिर मीरा को चूम लिया।

मीरा बोली, "दूर हट, तू बार बार मेरा मुँह जूठा कर देती है।"

नीरा—"जीजी, तू अब बड़ी होगई, तुझे तो अच्छा लगता होगा।"

मीरा—"भला तेरे चूमने से क्या अच्छा लगेगा।" दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

नीरा बोली, "अच्छा समझी, जीजी, घबरा नहीं, तेरा इन्तज़ाम मैं बहुत जल्दी कराने वाला हूं—अरे, कराने वाली हूँ।" और फिर दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

नीरा कहती, "जीजी, तू बहुत कमज़ोर व नाज़ुक है, सीधी भी है, तेरा पति तुझे मारेगा।"

मीरा कहती, "क्या पागलों जैसा बकती रहती है।"

नीरा—"पागलों जैसा नहीं, जीजी, तू भी जानती है, तभी तो खाना पकाना व मोज़े बुनना सीखती है। जिस दिन खाना तैयार न होगा वह तेरी मरम्मत करेगा।"

मीरा हंसने लगती और बोलती, "जीजी पर इतना तरस आता है तो तू ही शादी क्यों नहीं कर लेती जीजी से?"

"कर तो लेती, जीजी, पर मुश्किल यह है कि मैं भी तो तेरी मरम्मत करूंगा।" और दोनों फिर हंस पड़तीं।

मीरा पूछती, "तू अपने पति के साथ कैसे निभायगी?"

"मैं? मैं तो उसे मार मार के भुरकुस कर दूंगी। चूं न करने दूंगी, तुम देख लेना।"

"और कहीं उसने तुझे ही बांहों में भर के चूं न करने दिया तो?"

नीरा मुस्करा पड़ती; बोलती, "वह बात दूसरी है, तब तो उसके पांव की जूतियां चाटूंगी।" और दोनों फिर हंस पड़तीं।

वैसे घर का सारा प्रबन्ध अब मीरा ही सम्भालती थी। वह इस घर की गृहिणी भी बन गई व कृष्णवल्लभ की मंत्री भी। कृष्णवल्लभ को उस पर बड़ा भरोसा था। हर घरेलू मामले में वे उससे सलाह लेते। नीरा पर अमल करने को कहते। मीरा मुस्कराकर कहती, "बच्ची है; ठीक हो जायगी, आप चिन्ता न करें।"

नीरा को जब कभी किसी जलसे या चित्र या नृत्य में जाना होता व कृष्णवल्लभ इजाजत न देते तो वह मीरा के पास जाकर उसके गले में दोनों बाहें डाल देती व बीजी को तब तक न छोड़ती जब तक वह इजाजत मंगा लेने का वायदा न करती।

कभी कभी तो वह एकदम बच्चों जैसी जिद पकड़ लेती व घर में तोड़-फोड़ मचाने लगती। फिर मीरा के अतिरिक्त उसे कोई न सम्भाल सकता था। नौकर तो उससे मारे डर के थर थर कांपते। उनको कोड़ा जमाते उसे कभी देर न लगती। ऐसे समय वह सदा मरदाने लिबास में होती।

कभी कभी बहुत झुंझला उठने पर नीरा कहती, "बीजी, मैं लड़का होती तो सब को ठीक कर देती, कोड़ों से मार मार के ठीक कर देती।"

"इसी लिये तू लड़का न हुई कि सभी को ठीक कर देती तो भगवान बेचारे को कुछ काम ही न रह जाता।" और दोनों हंस पड़तीं।

कभी कभी हाथ में कोई चीज बन्द कर पूछती, "बोलो, बीजी, मेरी मुट्ठी में क्या है?"

मीरा कहती, "हाथी!" और दोनों हंस पड़तीं।

नीरा झट से वह टॉफी या चॉकलेट बीजी के मुंह में ठूंस देती व बोलती, "हाथी बीजी के मुंह में।"

मीरा कभी कभी सचमुच उसकी शैतानी के मारे परेशान हो जाती। नीरा बिल्ली को छुपाकर गोदी में लाती व एकाएक मीरा के ऊपर छोड़ देती। मीरा चिहुंक उठती व कभी कभी बिल्ली के पंजों का खरोंच भी लग जाता।

नीरा चूरन लेकर जीभ पर चाटती, हाथ पर चाटती, उंगलियां चूसती और फिर वही उंगली मीरा के मुंह में ठूंस देती। "देखो न, बीजी, कितना लज़्ज़तदार है यह चूरन!" वह कहती।

यह सोच लेना बिलकुल गलत है कि नीरा रोती नहीं। वह रोती भी है, खूब ही रोती है, फूट फूटकर रोती है, परन्तु केवल एक व्यक्ति के सामने, और वह है उसकी बीजी। और किसी के सामने वह रो नहीं

सकती। उसकी शान के खिलाफ़ है। परन्तु जीजी तो उसकी अपनी जीजी है, बहुत कुछ मां जैसी है, वह उसके सामने भला क्यों न रोएगी।

वसन्त पंचमी को उसने अपनी मां के तैल-चित्र पर हार पहनाया व सरस्वती की छवि पर भी। वैसे वह अपनी मां को सरस्वती से कम न मानती थी, एक तरह से सरस्वती का अवतार ही मानती थी। उस दिन वह स्वयं भी बासन्ती रंग की साड़ी व चोली व चोटी में खूब सजी। उसने बच्चों जैसे फूल बांध रखे थे दो चोटियों में।

मां की एक छोटी सी फोटो लेकर वह कौतूहलवश कृष्णवल्लभ के पास गई। वे न जाने कैसी विषाद की मुद्रा में बैठे थे। वसन्त पंचमी को उनकी पहली शादी हुई थी अतः उस दिन वे सदा उदास हो जाते थे।

नीरा ने जाते ही कहा, "डैडी, इसे पहचानते हो?" और सामने मेज पर नन्हे से स्टैण्ड में तसवीर रख दी।

कृष्णवल्लभ का चेहरा पहले तो राख सा स्याह होगया, फिर सफ़ेद, रूपहीन। एकाएक चिल्लाकर बोले, "हटा मेरे समाने से।" और हाथ का झटका दिया जिससे कि तसवीर चूर चूर होगई।

नीरा वहां से भागी व सीधी जीजी के पास जाकर फूट फूटकर रोने लगी। जब जीजी ने कुछ ढाढस देने की चेष्टा की तो वह उसके आंचल में मुख छिपाकर रोने लगी। उसने एक बार जो रोना शुरू किया तो बस फिर क्या था, हिचकियां बंध गईं। मीरा उसे सहलाती रही, प्यार करती रही और अन्त में उसी के चुप कराये चुप हुई।

उसके कपड़े, उसकी किताबें सब तितर-बितर रहती हैं, नौकर सम्हालते-सम्हालते परेशान रहते हैं, परन्तु मीरा की निगाह बराबर रहती है कि नीरा का सब सामान ठीक रहे। नौकर-चाकर सब उसे जानते हैं। जहां नीरा की बात भी वे सह लेते हैं वहां मीरा की एक निगाह सह लेना भी मुश्किल हो जाता है। न जाने, उसकी आंखों में क्या जादू है!

नीरा को 'जोन ऑफ़ आर्क' चित्र बहुत पसन्द आया। लड़की का घोड़े पर चढ़ना, लड़कानुमा लिबास, कटे हुए बाल; वह मन ही मन

अपना आदर्श जेन को ही मानती थी। कितनी ही बार उसका मन करता कि वह घुड़सवार सेना की प्रधान होती तो कितना मज़ा आता।

जिस दिन आनन्द ने उसे ड्राइंग-रूम में अकेली पाकर छेड़ा था, उस दिन भी उसका रोना देखने ही लायक था। आनन्द को उसने चाटा तो वह कस के दिया था कि उसकी आखों के सामने अन्धेरा छा गया, परन्तु आकर जीजी के पास वह फूट फूटकर रोई, ज़ार ज़ार रोई। किसी भी तरह चुप न हो। कहती थी, 'उसे शूट कर दूंगी।'

जीजी उसे अपनी आखों को पलकों में बसाये रहती है। वह जीजी के प्यार में पलती है, बढ़ती है, रूठती है। दोनों बहनों का प्यार अनोखा है।

एक बार सुरेन्द्र को लेकर डैडो ने मीरा को कुछ कह दिया। मीरा तो चुपचाप कमरे में जाकर रोती रही, परन्तु नीरा कृष्णवल्लभ से खूब ही लड़ी। बहुत खोटी-खरी सुना गई जिसकी कृष्णवल्लभ को आशा न थी।

दो दिन तक उसने न खुद खाया, न डैडी को खाने दिया। जब कृष्णवल्लभ ने मीरा को मनाया तभी उसने खाया व खाने दिया।

ये दोनों सौत की सन्तानें हैं न!

कौन यकीन करे इन बातों पर, परन्तु सत्य तो कहानी से भी अनोखा होता है न!

रेकॉर्ड चलाकर जब नीरा मीरा की कमर में एक हाथ डालकर व दूसरे से उसकी हथेलियां थाम नृत्य करने लगती तो कौन कह सकता था कि ये बहनें हैं। कोई भी सोचता ये सह-पाटिनें हैं, सखियां हैं, सहेलियां हैं।

कुछ समझ में नहीं आता कि उसका शैतानी में क्यों इतना मन लगता है, और लड़का बनने से उसे क्या मिलता है! यह भी मनोविज्ञान की एक पहेली है। पता नहीं 'किन्से रिपोर्ट' में इसके बारे में कुछ है या नहीं।

सुरेन्द्र को चिढ़ाने में उसे बड़ा मजा आता है। बहुत तंग करती है उसे। एक दिन दोपहर के भोजन पर सब के सामने उसने सुरेन्द्र की ओर केले बढ़ाये। और लोगों के सामने भी वही केले का गुच्छा था।

सुरेन्द्र ने जो केला उठाया वह मोम का निकला। काटते ही बड़े ज़ोर

की हंसी हुई। वह तो मारे हंसी के उछल रही थी।

वह कहती, "जीजी, तुमने एक जनाना से मुहब्बत मोल ली। भला जनाना, जनाना से क्या मुहब्बत करेगा?"

मीरा कहती, "अब तू बहुत बढ़ बढ़कर बातें बनाने लगी है; चुप रह, नहीं तो जीभ खींच लूँगी।"

"अच्छा जीजी, जीभ खींच लेने से पहले तो उनको एक बार और जनाना बन लेने दो।"

"अच्छा ठहर, मैं तुझे बनाती हूँ।"

इतना कहकर मीरा उसके कान पकड़कर चपत जमाती। इस पर मैना कहती, "यह तो कुछ भी न मालूम हुआ, जीजी। लगता है जैसे तुम बंदरिया के कान उमेठती हो।"

"तू ढीठ है, पूरी ढीठ!"

"जीजी, मुझे कहो तो किसी को ऐसी चपत जमाऊं कि छठी का दूध याद आ जाय।"

फिर कहती, "जीजी, तेरी शादी हो जायगी तो तू चली जायगी, फिर मैं अकेली कैसे रहूँगी?"

मीरा—"फिर तू भी भगी चलना।"

मैना—"अभी तो चलूं, जीजी, परन्तु फिर तुझे अच्छा न लगेगा।"

मीरा—"क्यों न लगेगा री?"

मैना—"फिर किसी मरदाने आदमी को चुनो, जीजी, ये तो जनाने हैं। मैं जनाने के साथ भला क्या जाऊंगी; फिर एक नहीं, दो दो।"

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़तीं। मीरा कहती, "फिर तू ही किसी मरदाने को चुन। मैं भी उसी से ब्याह कर लूंगी। हम दोनों कभी अलग न होंगे।"

"तब तो कोई बड़ा ढूँढ़ना पड़ेगा, जीजी।"

"चल पगली!" मीरा कहती और दोनों हंस पड़तीं।

चौदहवां परिच्छेद

बुजदिल

दिन भर रेखा नहीं आई और न ही उसके आने की आशा थी, क्योंकि वह आज छुट्टी पर थी। वह अपने कमरे में भी नहीं थी। वह आज अपने परिजनों से मिलने गई हुई थी।

संध्या होने को आई। मैं अकेला पड़ा पड़ा सोचने लगा।

वह संध्या भी तो निराली थी। क्या कभी वह भूल सकती है, भुलाई जा सकती है! जेन खूब अच्छी तरह सजधजकर अपने सर्वोत्तम डिनर सूट में गई थी। दो-तीन आभूषण भी कानों व गले में पहने हुए थे। बालों को बनाने में भी काफी परिश्रम किया था।

जेन जंचती भी खूब थी!

नीरा ने तो वह तैयारी की थी जैसे कोई गढ़ विजय करना हो। उसकी काली साड़ी व झीनी झीनी काली चोली दोनों ही खूब चिकने व चमकते थे। उन पर सितारे तो ऐसा प्रकाश विकीर्ण करते थे कि याद आजाती थी वर्ड्सवर्थ की कविता, 'वह सौंदर्य पर पांव रखती चलती है!'

फिर चेहरा खुला, गला खुला, वक्ष का तीन-चौथाई भाग खुला, पीठ आधी खुली, पेट व पीठ का निचला भाग बिलकुल खुला— सभी श्वेत गोराई में दमक रहे थे। कानों में सच्चे हीरे के कुण्डल व गले में काले स्ट्रेप की हीरे की नेकलैस, कटे हुए बाल किनारे से कढ़े हुए, आखों में काजल की पतली रेखा, जो बड़ी बड़ी आंखों के आकार को और भी बढ़ा रही थी, और होठों पर हल्की सी सुर्खी।

नीरा ही दरवाजे पर सरकार के लिये आई व क्षीण मुस्कान के साथ

मसले पर उन्होंने फ़ाइल में क्या नोट लगाया और उस पर प्रधान मंत्री ने क्या लिखा व अपनी मीटिंग में कैसे उसकी चर्चा की। प्रधान मंत्री के दिल व दिमाग की प्रशंसा करते, वे कभी न थकते थे। लगता था बहुत प्रभावित हैं उनके व्यक्तित्व से।

हां, इतने सफल डिनर में एक बड़ी ही बेतुकी बात हो रही थी जिस पर किसी का ध्यान ही न गया। नीरा से किसी ने कोई बात ही न की जब कि वही एक प्रकार से इस डिनर की रानी थी। मैं मि. सहाय के साथ व्यस्त, मीरा जेन के साथ, उससे बातें करे तो कौन?

इस प्रकार उपेक्षित होने पर झुंझलाकर उसने मेज के नीचे से मेरे पांव में सैंडिल से ठोकर मारी। जब उसकी ओर मैंने देखा तो उसकी आंखों में न जाने कितना उलाहना भरा था।

मैंने तुरंत कहा बहुत धीरे से, "अपना वायदा भूल गईं?"

मि. सहाय ने सुन लिया। बोले, "कैसा वायदा, मि. कुमार?"

मैंने झट से कहा, "रानी ने डिनर के बाद पिंगपाग के खेल में मुझे चुनौती दी है!"

"अच्छा तो है, आप लोग खेलिये, क्यों रानी?"

रानी नाम उनको प्रिय है इसी लिए मैंने जानबूझकर रानी कहा था। तुरंत मौके पर इतना आकस्मिक बहाना मैं बना सका, इस पर नीरा बहुत चकित हुई। आंखें फाड़कर मुझे देखने लगी, जैसे कह रही हो, 'तुम सोलह आने बुद्धू तो नहीं लगते!'

हां, जेन ने एकाएक आंखें फेरकर इधर देखा व मेरी ओर घूर कर आंखें नीची कर लीं।

डिनर समाप्त हुआ। मीरा व जेन अंगीठी के पास आमने सामने आराम-कुर्सियों पर डट गईं। लगता था उनकी बातों का कोई अन्त नहीं जैसे बरसों की बिछुड़ी हुई सखियां मिली हों व ढेर सी बातें करनी हों।

नीरा व मैं उस कमरे में गये जहां पिंगपाग कि मेज़ पड़ी थी।

मैंने कोट उतारकर टांग दिया। खेल शुरू हुआ। मैं खेल देखूं या

नीरा को देखूं! वह आज इतनी खूबसूरत लगती थी कि कलेजा मुंह को आगया।

सोचने लगा कि इसके साथ इसी पोशाक में नृत्य करने को मिले तो मजा आजाए—उसकी खूबसूरत कमर में बांह डाल दूसरे हाथ का सहारा दिये कदम रखना, बीच बीच में अंगों का छू जाना, घिस जाना, कभी कभी नीरा का मेरे कंधों पर झुक पड़ना। ओह, कितना मजा आता!

परन्तु अभी तो पिंगपांग चल रहा था। मैं पूरी शैतानी पर उतर आया। *अब न उतरता तो कब? उस कमरे में तो केवल हम दोनों ही थे, फिर यह* हिलती-डोलती सौंदर्य की प्रतिमा!

पिंगपांग की गेंद तो बड़ी हल्की होती है न, व उसकी मार भी फूल की मार से अधिक नहीं होती। अतः मैंने साध-साधकर यों खेलना शुरू किया कि कभी गेंद उसके वक्ष पर पड़ती, कभी नाभि पर, कभी मुख पर, कभी सिर पर, और कभी गले पर।

नीरा ज़रा देर में ही ताड़ गई, बोली, "यह क्या करते हो!" और मुस्करा पड़ी।

ओह, इतना मिठास, इतना सामीप्य! 'यह क्या करते हो!'

"कुछ भी तो नहीं!"

"कुछ भी नहीं!"

वह फिर बड़े अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कराई। मैंने कहा, 'खेलने में तो तुम्हारा जी लगता नहीं, रोकती क्यों नहीं!"

"इतनी फटाफट की मार, कैसे रोकूं! रुके भी तब न!"

"तुम्हें अच्छी लगती है इसी से नहीं रोकती।"

"यह बात!"

इस पर तो हम लोग बड़ी सरगरमी से खेलने लगे। कोई बढ़िया वापिसी होने पर हम खिलखिलाकर हंस पड़ते। वह उछलती या हंसती तो उसका सारा तन हिलता, मेरा मन हिल जाता।

दो-चार बार उसने भी मेरे नाक या मुख पर गेंद मारने की चेष्टा की,

परन्तु सफल न हुई । मैं अपनी शरारतों से बाज न आया ।

कितना अच्छा लगता था ! वह कितना चौंकती थी, फिर शरमाती थी, फिर घूरकर मेरी ओर देखती थी । उसके होंठ हंसते, कपोल हंसते, आंखें तक हंस पड़ती थीं ।

खेल समाप्त हो गया । नीरा पसीने से तर हो गई । मैं भी पसीना पसीनाँ हो रहा था । क्या खेल के श्रम से ?

नीरा की जीत रही और मैं हार गया । मैंने जीत पर बधाई देते हुए कहा, "जी चाहता है कि तुम्हारा हाथ चूम लूं जिसने तुम्हें विजय दी है ।"

"और आपको हार ? लीजिए न ।"

नीरा ने अपना दाहिना हाथ फैला दिया । उसकी सुन्दर हथेली मेरे होठों के पास आकर रुक गई । पर एक मैं था जो बुत की तरह खड़ा रहा । न तो उस कलाई को पकड़ सका, न उस हथेली को होठों से लगा सका !

"बुज़दिल !" कहकर वह खट खट सैंडिल चटखाती कमरे से चली गई । मैं खड़ा खड़ा दुहराता रहा, 'बुज़दिल ! बुज़दिल !!'

लोक में बसे वेनिस नगर में बिताई थी—गोंडोला पर सैर, समुद्र की ठंडी हवा व चाद का अमृत-वर्षण।

वह बराबर उस समय को चर्चा करती जब हम लोगों के सोने के दिन व चांदी की रातें थीं। उसकी बातों में एक 'श्राह' की ऐसी क्षीण ध्वनि होती जैसे सब कुछ उसके हाथ से फिसल रहा हो।

क्या सचमुच उसके हाथ से कुछ फिसल रहा था?

डिनर की रात के चौथे दिन शाम को एकाएक मीरा श्रागई। बोली, "बाजार करने श्राई थी तो सोचा कि श्राप लोगों से भी मिलती चलूं; देखूं *क्या बात है, क्यों नहीं श्राये इधर।*"

मैंने कहा, "इधर काम बहुत था, श्रब तो लगभग निबट चला है।"

मैंने तुरन्त बटन दबाकर नौकर को बुलाया व कॉफी लाने को कहा। एकाएक याद श्राया कि मीरा को तो चाय पसन्द है, श्रतः बोला, "नहीं नहीं, कॉफी नहीं, चाय लाना।" जैन व मीरा दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

दोनों कितनी एक सी हैं, सौम्य, सुशील, मधुर व शांत। एक नोरा है पूरी बवण्डर, तूफान।

बातें करते करते मीरा बोली, "मि० कुमार, मैं श्रापको भाई साहब कहूं तो कैसा रहे?"

"बहुत श्रच्छा, श्रौर मैं तुम्हें बीजी?"

वह बड़े ज़ोर से हंस पड़ी। "मुझे श्राप जीजी कहेंगे? देखिये न, मैं श्रापसे कितनी छोटी हूं।"

"तुम महान हो, मीरा। मैं तुम्हें 'जीजी' कहूंगा श्रौर तब तुम्हें मुझे *'श्राप' के बदले 'तुम' कहने का भी तो अधिकार मिल जायगा।"*

हम तीनों हंस पड़े। बात पक्की हो गई। परन्तु यह 'तुम' बिना मांगे, बिना कहे-सुने नीरा ने न जाने कब झपट लिया। वह बिलकुल श्रनजाने ही झपट्टा मारती है, बाज़ की तरह।

श्रोह, मीरा में कितना सौजन्य है। कोई गिला नहीं, शिकवा-शिकायत नहीं, तीन दिन न मिले, न सही। श्राई है तो बात तो कोई ज़रूर है, परन्तु

यों बात कर रही है जैसे कहीं कुछ हो ही नहीं।

बात की बात में वह कितना समीप खिंच आई। समझ में नहीं आता कि यह जेन के साथ क्या गुटुरगूं लगाये रहती है! घर का भेदी लंका दाह। परन्तु कोई बात नहीं। मीरा के हाथ में सारी धरती भी दे दो तो भी वह सुरक्षित रहेगी। किसी का कुछ बिगड़ नहीं सकता। वह साक्षात् देवी है, कोई साधारण लड़की नहीं, स्नेह की प्रतिमा।

चाय आई। जेन बनाने चली। मीरा ने कहा, "नहीं, जेन, मैं बनाऊंगी। आज मि० कुमार को भाई बना लिया न, इसी उपलक्ष में।" और बड़े करीने के साथ चाय बनाने लगी। बराबर मुस्कराए जा रही थी।

मैंने कहा, "ठीक तो है! मैं भी जीजी के हाथ का पहला प्याला पी लूं।"

"क्यों, उस दिन मैंने आपको पिलाई न थी?"

"पिलाई थी, परन्तु वह चाय नहीं कॉफी थी, फिर तुम उस दिन मेरी जीजी नहीं, मीरादेवी थी।"

हम तीनों हंस पड़े व चाय पीने लगे।

मैं बराबर सोचे जा रहा था कि मीरा को जरूर मुझसे कोई काम है, तभी उसने वातावरण तैयार करने के लिये पहले मुझे मिठास से भर दिया। भाई साहब! कितना प्यारा लगता है उसके कण्ठ से।

परन्तु मैंने 'जीजी' क्यों कहा? बात तो ठीक ही है कि वह उम्र में मुझसे काफी छोटी है, फिर यह जीजी क्यों? क्यों?

हां, नीरा उसे जीजी कहती है न। उसके मुख से 'जीजी जीजी' सुनते सुनते मेरे मन में भी भर उठा 'जीजी'। तो क्या नीरा के साथ मेरा इतना तादात्म्य है? क्या इस जीजी के सम्बोधन में भी मेरा 'नीरा-पन' झांकता है?

अपने विश्लेषण व उधेड़बुन पर मैं हैरान रह गया। मैं कितनी ही बार सोचता हूं कि मैं मनोवैज्ञानिक होता, तो यह सब कितनी आसानी से समझ जाता, परन्तु होता तब न!

चाय समाप्त हुई। मीरा चलने को तैयार हुई। मैं उसे नीचे तक

पहुँचाने गया। परन्तु वह मोटर की ओर न जाकर बैठने के कमरे में गई और एक सोफ़े पर बैठते हुए मुझे भी पास बैठने का संकेत किया। मैंने कुछ चकित व कुछ आतंकित हो पूछा, "क्या बात है, जीजी?"

बोली, "*तुम क्या कर आये हो मेरी नीरा को?*"

"क्यों, क्या हुआ?"

"हुआ क्या! उस रात को तुम लोग तो चले आये। वह खेल के बाद सीधी अपने कमरे में गई, सभी गहने उतारकर मेज पर फेंक दिये, साड़ी-ब्लाउज कुर्सियों पर; सैण्डिल दोनों दो कोनों में फेंककर सादी सलवार-कमीज पहनकर बिस्तर पर पड़ गई। और फिर तकिये में मुख छिपाकर खूब रोई, खूब रोई।

"जब तुम पिंगपांग खेलकर आये और वह साथ न आई तभी मैं डर गई थी। आशंका मन में बराबर थी कि बात क्या है कि नीरा नहीं आई, परन्तु सभ्यतावश तुम्हें व जेन को छोड़कर मैं देखने नहीं गई। तुम्हारे चले आने के बाद मैंने जाकर देखा तो वह पलंग पर औंधी पड़ी थी व सिसकियां भर रही थी।

"मैंने उससे कोई बात न पूछी, कारण न पूछा। सोचा कि स्वस्थ होगी तो स्वयं सब कुछ बता देगी। जानते हो, वह मुझसे कुछ भी नहीं छिपाती, कुछ भी नहीं।

"मैं उसकी पीठ सहलाती रही, फिर उसका मुख उठाया तो मेरी गोद में मुख छिपाकर रोने लगी, सिसकियां भरने लगी।

"बिना पूछे स्वयं बोली, '*जीजी, मि० कुमार ने मेरा घोर अपमान किया है।*'

"मैं तो सन्न रह गई। कितनी असम्भव बात थी! विश्वास न हुआ अपने कानों पर। फिर भी मैंने कुछ न पूछा कि क्या अपमान हुआ और कैसे हुआ।

"जब कुछ स्वस्थ हुई तो बोली, 'अब मैं कुछ खाकर सो रहूँगी'। मैं और भी घबराई। तब से अभी तक उसकी एक तरह से मैं रखवाली करती

हूँ। उसने कॉफी के अलावा कुछ भी नहीं लिया, इन तीन दिनों में।"

मैं सुनकर दंग रह गया। इतनी छोटी सी बात पर इतनी बड़ी ठेस! ओह, नीरा की शक्ति कहां है? शैतानी कहां है? दुनिया भर को कोड़े से ठीक कर देने की दृढ़ता व कठोरता कहां है?

मैंने विस्मय से केवल इतना ही कहा, "तुमने मान लिया जीजी कि मैंने नीरा का अपमान किया होगा!"

"नहीं तो, मैं तो तुम्हारी राह देखती थी पर तुम भी तो इधर नहीं आये। और यह है कि रह रहकर आंसू बहाने लगती है। एक ही रट लगाये है, 'जीना बेकार है, जीजी, मैं कुछ खाकर सो रहूँगी।'

"आज जो मैंने छेड़ने के लिये कहा, 'कोड़े से ठीक नहीं करेगी?' तो ऐसी चीण हंसी हंसी कि लगा नयन-कोरों से आंसू छलक पड़ेंगे। बोली, 'वे कोड़े से ठीक होने वाले नहीं, जीजी।'

"आज मैंने उसे साफ साफ कारण पूछा, क्योंकि इतना कातर व दुःखी मैंने उसे कभी न देखा था, तो बोली, 'बस, जीजी, पूछो नहीं, कहने से तो बेहतर मर जाना है।'

"जब एकदम से नाराज़ हो जाने की धमकी मैंने दी तो धीरे धीरे उसने सारी बात बतलाई। मैं मुस्कराई व बोली, 'धत् पगली, इतनी सी बात के लिये तू इतना रोती है, मैं अभी ठीक किये देती हूँ।'

"मेरे पाव पड़ बोली, 'नहीं, जीजी, और चाहे जो करो, पर उनके पास न जाओ, उनसे न कुछ कहो; मुझे यों ही तड़प-तड़प कर मर जाने दो, पर उनसे नहीं, मेरी क़सम, मेरी जान की कसम, जीजी, उनसे नहीं।'"

सारी बात सुनकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ और आश्चर्य भी। मैं चुपचाप अवाक् मीरा का मुख देखता रहा।

फिर मीरा ही बोली, "तुम जानते नहीं, भाई साहब, वह कितने लाड़-प्यार में पली है, फिर मैं उसे घर की शाहज़ादी बनाकर रखती हूँ। वह मेरे पलकों में सोती-जागती है। उसे किसी से इन्कार लेने की आदत [illegible]। परन्तु तुमने इतनी छोटी सी चीज़ के लिये उसे ना कर दी।"

इतना कहकर मीरा मुस्कराई। मैं भी मुस्कराया और बोला, "क्या वह इतनी छोटी सी चीज है, जीजी? यह तुम कहती हो?"

मीरा फिर हँसती हुई बोली, "छोटी नहीं तो क्या है, तुम भी विलायत जाकर भाड़ ही झोंकते रहे?"

मैंने कहा, "सो बात तो नहीं है, जीजी, भाड़ तो दिल्ली में ही झोंकते हैं।" हम दोनों मुस्कराये। मैं कहता ही गया, "पर मुझे वैसी आदत नहीं।"

"तो क्या जेन ने कुछ भी न सिखाया?"

"सिखाया तो बहुत कुछ, पर विद्यार्थी भोंदू निकला, पाठ याद न रह सका!"

हम दोनों फिर हँसे। मीरा गम्भीर होकर बोली, "मैं समझती हूँ कि तुम उसका जरा सा मन रख देते तो कोई उसमें बुराई न थी। आजकल तो लोग मौक़ा पाकर न जाने कितनी दूर तक चले जाते हैं और एक तुम हो कि ......।"

मैंने वाक्य पूरा किया, "पूरे बुद्धू, क्यों?"

हम दोनों हंस पड़े। फिर वह बोली, "अच्छा, तुम्हें कल आना पड़ेगा। बोलो, कब आओगे? मैं तुम्हारी राह देखूंगी।"

मुझे चुहुल सूझी। मैंने कहा, "जब तुम्हें सुरेन्द्र से फुर्सत होगी।"

जीजी झेंपकर रह गई। बोली, "मजाक छोड़ो। मुझसे इतना मजाक करते हो, उसका ज़रा मन न रखते बना। बोलो, कब आ रहे हो?"

"साढ़े तीन बजे।"

"ठीक, आना ज़रूर। भूल न जाना।"

"जीजी, तुम्हारी बात टालने की मजाल भला किस में है?"

"और हो सके तो अकेले आना।"

हम दोनों मुस्कराये। इस अकेले पर इतना ज़ोर क्यों? मीरा को मैं उसकी मोटर तक पहुंचा आया।

दूसरे दिन मैं साढ़े तीन के बदले तीन ही बजे पहुंच गया। भोजन के बाद सीधा वहीं चला गया। जाते ही मैंने देखा कि बरामदे का फर्श

चमचम कर रहा है, दरवाजे व खिड़कियों के परदे बदल दिये गये हैं, ड्राइंग-रूम के सभी मेजपोश तथा अन्य कपड़े बदले हुए हैं। कुर्सियों के रखने का ढंग भी नया है, और फूलदानों की सजावट भी नई।

मैं यह सब देखकर दंग रह गया। इतनी भारी तैयारी किस के लिये? मीरा मिली। वही ड्राइंग-रूम में लेगई। बैठते ही मैंने पूछा, "और नीरा कहाँ है?"

"वह अभी कपड़े बदलने गई है।"

"कपड़े बदलने? क्यों?"

"क्यों क्या? आज सवेरे से वह कमरों को सजाने में लगी है, फर्श धुलवाकर पोंछवाया है, सारा सामान धूप में डाला है, सभी गिलाफ व परदे बदले हैं, एक एक सामान को सजाया है। अभी तक खाना तो खाया नहीं। तुम समय से कुछ पहले आगये।"

"तब तो तुमने भी न खाया होगा, जीजी?"

मीरा मुस्कराकर रह गई। यह हमेशा की उसकी आदत थी कि नीरा के साथ खाना। नीरा नहीं खायेगी तो क्या जीजी खा सकती है? मीरा ने तीन दिन से नीरा के उपवास की बात तो बतादी, परन्तु अपना उपवास पी गई।

मैंने कहा, "पर आखिर इतना परिश्रम क्यों?"

मीरा बोली, "तुम्हारा जादू काम कर रहा है, और क्या?"

"मेरा जादू! मुझ में कोई जादू है क्या, जीजी?"

"जादू न होता तो बारह हजार मील पर से जेन खिंची खिंची यहां आती? सो भी अमेरिकन जो हम काले लोगों से कितनी नफरत करते हैं तुम जानते ही हो।"

"तब तो मुझ में, लगता है कि, जादू है, जीजी।" और हम दोनों हंस पड़े। इतने में एक साधारण, खूबसूरत वायल की साड़ी व ब्लाउज़ पहने, केश सूखने के लिये बिखराये, चप्पल डाले, नीरा कमरे में दाखिल हुई। लगता था कि अभी स्नान कर के आई है। हाथ जोड़ नमस्ते की परन्तु

कुछ बोली नहीं। पास की एक कुर्सी पर बैठने जा ही रही थी कि मैंने सामने जाकर, पूरे पश्चिमी ढंग में एक 'नाइट' की तरह, घुटनों के बल झुककर उसका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेकर होठों से चूम लिया।

ओह, कितना बड़ा काम था! मीरा तो इतना हँसी, इतना हँसी कि बस पूछिये नहीं, परन्तु नीरा भी हँसे बिना न रही। साथ ही साथ बोली, "बुद्धू तो हैं पूरे, कुछ लाज-हया भी तो होनी चाहिये?"

मैंने कहा, "चलो, जीजी, रानी ने एक खिताब तो दिया, बुद्धू।"

मन में सोचा कि यह उपाधि तो मुर्जो ने बहुत पहले दी थी, बरसों पहले। फिर सोचा कि लाज-हया होने पर तो तीन दिन में तीनों लोक सिर पर उठा लिये और अब कहती है, 'कुछ लाज-हया तो होनी चाहिये।' ये लड़कियां भी पूरी पहेली हैं।

मैंने कहा, "जीजी, मुझे तो भूख लग रही है, कुछ चाय-कॉफ़ी बनवाओ और कुछ खाने को भी।"

नीरा बोली, "अभी तो भोजन कर के आये होगे। भूख लगी है? मेरे घर में कुछ भी नहीं है, तीन दिन तक कहां रहे?"

इतने में मीरा उठ गई, चाय का इन्तजाम करने। कमरे में रह गये मैं व नीरा। मीरा के जाते ही वह बोली, मान कर के, "जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलती। तीन दिन तक कहां रहे?"

"क्या बताऊं, रानी, इतना व्यस्त था काम में कि बस पूछो नहीं।"

"हमसे झूठ बोलने चले हो? रूठकर तो चले गये, तीन दिन तक दर्शन न दिये, गाड़ी लौटा दी सो अलग से। क्या मैं समझती नहीं, बुद्धू हूं?"

"नहीं, रानी, बुद्धू तो मैं हूं जो इतनी छोटी बात भी......।"

"छोड़ो भी, शर्मिन्दा करने चले हो।"

"इसमें शर्म की क्या बात है?"

"शर्म की क्या बात है? उस दिन अकेले में तो इतनी लाज लगी और आज जीजी के सामने शेर होगये। मैं फिर कहती हूं कि तुम

बुज़दिल हो।"

"सो तो मान लिया, परन्तु तुमने इतनी सी बात पर जो इतना तूफ़ान खड़ा किया सो क्यों?"

"क्यों क्या? मुझे रुलाई आती थी, मैं रोती थी। इसमें तुम्हारा क्या गया? मजे से ....।" इतना कहते कहते वह रुक गई। मैं समझ गया कि जैन का नाम लेते लेते वह रुक गई है। तुरन्त पूछा, "क्या मजे से......?"

"छोड़ो उस बात को। जानते हो कि तीन दिन से तुमने औरों को भूखों मार डाला?"

"और तुम्हें नहीं?"

"मेरी बात और थी। जीजी भूखी रह जाती थी इसी से तुम पर और भी गुस्सा लगता था।"

"पर तुम्हें इतनी ठेस क्यों लगी?"

"जानते हो, उस दिन टेनिस कोर्ट में तुमने मेरा कितना बुरा हाल कर दिया था। रही सही कसर रिंगराग में निकाली! इतनी छोटी छोटी मारें, उस फूल सी गेंद की, कहीं होश में रहने देतीं?"

"यदि तुम होश में न रहीं, तो इसमें मेरा दोष?"

मुख चिढ़ाकर ज़रा ज़ोर से बोली, "इसमें मेरा क्या दोष! तुम्हारा नहीं तो और किस का?"

इतने में मीरा आगई। आते ही बोली, "अभी भी लड़े जा रहे हो तुम दोनों? लड़ाई खत्म नहीं हुई? अच्छा, इस कॉफ़ी के प्याले में सब डुबा डालो।"

मैंने कहा, "मैं कॉफ़ी नहीं पिऊंगा, जीजी, चाय पिऊंगा सो भी तुम्हारे हाथ की।"

नीरा बोली, "मुझे गुस्सा दिलाओगे तो मैं सब उलट दूंगी।"

मैं सोच रहा था कि प्रीति की यह कैसी निराली करवट है। तीन दिन [illegible]ने के लिये छटपटा रही थी, मर रही थी, ज़हर खा रही थी। और

जब मिली, तो गुस्से व मान का ठिकाना नहीं, लड़े जारही है। प्रेम के भरोसे होतीं तो यह हाल होता ? यह तो अन्धा होता ही है।

इतने में नन्ही सी पुसी, रिंगरोग का एक गेंद मुंह में लिये, आई और नीरा के सामने कालीन पर रखकर पंजों से खेलने लगी जैसे फुटबॉल हो। कभी मारती, फिर नचाती, फिर घेर लाती।

इसे देखकर हम दोनों की निगाहें मिलीं और हम मुस्करा उठे। नीरा ने पुसी को गोद में उठा लिया। मैंने कहा, 'गंदी !'

उसने पुसी को मेरी गोद में उछाल दिया और कॉफ़ी बनाने लगी। एक प्याला कॉफ़ी मुझे दी व एक प्याला चाय मीरा को।

मैंने पूछा, "और तुम ?"

"मैं कुछ भी न लूंगी," नीरा बोली।

"लोगी कैसे नहीं ?"

"अच्छा, फिर ले लूंगी। जीजी, तुम चाय पीती क्यों नहीं ?"

"पहले खाना होगा, तब पीना। तुम उठाओ तो सैंडविचेज़।"

"मैं नहीं लेती," नीरा ने कहा।

"अब क्या होगा, जीजी ?"

मीरा बोली, "तुम्हीं दोनों जानो, मैं क्या जानूं ?"

मैंने कहा, "नीरा, तुम सैंडविचेज़ नहीं उठाती ?"

"नहीं !"

"नहीं ?"

"नहीं, नहीं, नहीं !"

बस इतना सुनना था कि मैंने एक टुकड़ा दाहिने हाथ में लेकर, बांई बांह उसके गले में डाल दी, और उसके मुख में ठूंसने लगा। वह एक शैतान ठहरी। उसने दांत बन्द कर लिये। जीजी फिर कुछ लाने रसोई-घर में चली गईं। फिर तो क्या था, पूरी बांह में भरकर मैंने उसे दबोच लिया और मुख खोलने पर मजबूर किया।

वह हांफ रही थी और कहे जा रही थी, "छोड़ो न, क्या कर रहे

हो। जीजी आ रही होंगी।"

"आने दो, तुम मुख तो खोलो।"

उसने मुख खोल दिया। मैंने उसे छोड़ दिया, और उसके मुख में सैण्डविचेज़ छोड़ अपनी कुर्सी पर आ बैठा। मैं भी हाँफ रहा था और वह भी हाँफ रही थी। न जाने हम लोगों के तन में कितनी बिजलियाँ दौड़ रही थीं, मन में कितनी लहरें उठ रही थीं, पूरा तूफान आगया था।

उसने एक सैण्डविच उठाकर अपने हाथ से मेरे मुख में डाल दी और बोली, "अब शान्त हो जाओ, ऊधम मत मचाओ, जीजी आ रही होंगी।"

इतने में मीरा आगई। हम दोनों को खाते देख बड़ी प्रसन्न हुई। वह तश्तरी में गरम गरम पकौड़िया व चटनी लेकर आई थी। अतः हम दोनों उसी पर टूट पड़े। नीरा ने बड़े स्नेह से अपने हाथ से जीजी के मुख में पकौड़ी डाली। गरम होने से जीजी का मुख जल गया। वह चिल्लाई। हम दोनों ज़ोर से हँस पड़े। सारा वातावरण सम, शान्त व सरल होगया। तनाव जाता रहा। छककर हम तीनों ने खाया। फिर खूब कॉफी पी। जीजी के इशारे से मैंने स्वयं अपने हाथ में प्याला ले नीरा को कॉफी पिलाई। न तो जीजी ने बुरा माना और न नीरा ने।

सब दर्द, सब तनाव, सारी व्यथा मिट गई। सब कुछ मधुर, स्निग्ध व आनन्दप्रद होगया।

अब मैंने विदा लेना ठीक समझा। साढ़े चार हो चले थे। जेन मेरी राह देख रही होगी। जाते जाते मैंने नीरा व मीरा दोनों को दूसरे दिन शाम को डिनर व नृत्य के लिये निमन्त्रण दिया। 'क्रिसमस ईव' का यह नृत्य था, होटल में बड़ी तैयारी थी। मि० सहाय को मेरी ओर से कहने का भार मीरा ने लिया। सुरेन्द्र को भी बुलाने को कहा मैंने, परन्तु मीरा मुकुर गई। नीरा ने कहा कि वह बुला लेगी, परन्तु मुझे ठीक न जंचा। मैंने उसका फ़ोन नम्बर ले लिया ताकि स्वयं फ़ोन कर दूं।

मैं विदा हुआ। नीरा पहुंचाने चली। गाड़ी गैरेज से निकाली।

चलने से पहले उसने अपने कपड़े बदल दिये। कमीज़, पतलून व स्वेटर पहन लिया।

यह मरदाना लिबास, ऊपर लहराते कटे हुए बाल कंधों पर बिखरे, बस निराला समा बंधा था। सचमुच यह तो होशगुम करने की तरकीब थी।

गाड़ी चली तो उसने सहज, सरल भाव में कहा, "आज का दिन इस जीवन में कभी न भूलेगा।"

"क्यों?"

"तुमने अपने हाथ से जो खिलाया-पिलाया है।"

"और तुमने भी तो!"

इतना कहकर मैंने उसका बायां हाथ अपने हाथ में लेकर झट से होंठों से लगा दिया। वह बोली, "छोड़ो भी, अब बड़े बहादुर बन गये, बुजदिल कहीं के।" और मुस्करा पड़ी। फिर कुछ देर चुप रहकर बोली, "आज तुमने बहुत सताया है।"

"आज!"

"हां, हां, आज ही तो।"

"मैं समझा था कल, परसों, अतरसों!"

वह फिर हंसकर रह गई। इतनी देर में हम लोग होटल में पहुंच चुके थे। मैं उतर पड़ा और बोला, "अपनी जेब से न मिलोगी?"

"मेरी या तुम्हारी? तुम्हीं को मुबारक हो। मुझे तो माफ ही करो।"

"कल नृत्य में तो आओगी?"

"उहुंक," कहकर उसने अंगूठा दिखाया व गाडी चला दी।

मैंने सोचा कि अभी कितना बचपना भरा है इसमें! निरी बच्ची है!

मैं होटल की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था व मन में दुहरा रहा था, 'अब शांत हो जाओ, ऊधम मत मचाओ,' 'आज का दिन इस जीवन में कभी न भूलेगा,' 'आज तुमने बहुत सताया।'

ओह, कितनी मिठास थी! कितनी!

सोलहवाँ परिच्छेद

होटल में नृत्य

डिनर की रात भी आई। डिनर-हॉल में ठीक आठ बजे हम लोग मिले। मेज सुरक्षित थी। मि० सहाय, मीरा, नीरा, सुरेन्द्र, जेन तथा मैं मेज़ के चारों ओर बैठ गये।

हॉल विशेष रूप से सजाया गया था। हर ओर कोमल कण्ठों से हंसी बिखरी पड़ती थी। खुश चेहरे चारों ओर नजर आते। यह दिल्ली थी न, यहां शौकीन लोगों की कमी नहीं; फिर ऊंचे दर्जे के पंजाबी तो पूरे पश्चिमी ढंग में घर से बाहर निकलते हैं, शृंगार, बनावट व व्यवहार में इनकी युवतियां यूरोपियन महिलाओं को मात करती हैं।

ख़ैर, मेरे एक ओर सुरेन्द्र था, दूसरी ओर नीरा, उसकी बगल में मि० सहाय। मीरा व जेन अपनी गुटरगूं में व्यस्त थीं। मैं सुरेन्द्र से रेडियो तथा उसके प्रोग्रामों के बारे में बातें कर रहा था। रेडियो पर उसके प्रोग्राम लगभग हर महीने होते हैं। वह 'ए' क्लास का आर्टिस्ट माना जाता है। मीरा के भी प्रोग्राम तो होते रहते हैं, वहीं की तो इन दोनों की जान-पहचान है।

बीच बीच में मि० सहाय से भी दो-चार बातें कर लेता। उनसे तो लन्दन के सेवॉय होटल में नृत्य तथा गिल्ड-हॉल के डिनर की ही बात करता।

और एक नीरा थी कि मेरी बगल में ही होकर यों उपेक्षित होने पर कुढ़ रही थी, जल रही थी, उकता रही थी।

आज फिर उसने मेरे पांव में ठोकर मारी, परन्तु मैंने जान-बूझकर

ध्यान न दिया। उसे चिढ़ाने पर उतर आया था। इतनी शानदार रात को इतनी अनुपम सुन्दरी की उपेक्षा मेरे जैसा नासमझ ही कर सकता था।

एक बार मौका पाकर, डैडी की निगाह व कान बचाकर, उसने कहा, "मैं उठकर चल दूंगी, मुझे जानते हो न?"

मैंने निगाहों ही निगाहों में कहा, "चली जाओ, मुझे कोई परवाह नहीं।"

परन्तु क्या वह जा सकती थी? आज इस रात को? प्रेम में वह गरमी है कि कठोर से कठोर पाषाण-हृदय को भी झुका देता है और फिर चाहे तो गलाकर पानी कर देता है। पाषाण-हृदय पानी की तरह सरल व तरल हो उठता है।

डिनर समाप्त हुआ। मि० सहाय तो चले गये। नीरा डिनर में उसी रात वाली साड़ी व ब्लाउज में आई थी जो उसने अपने घर पर पहनी थी। उस पोशाक के प्रति मेरा आकर्षण उसे मालूम था, परन्तु फिर न जाने क्या सोचकर जेन के साथ उठकर चल दी।

बच गये हम तीन। सुरेन्द्र भी किसी तारिका से मिलने चला गया। मीरा व मैं नृत्य-हॉल में गये। नृत्य दस बजे से आरम्भ होने को था।

मैंने पूछा, "बीजी, आज तो तुम सिल्क की साड़ी पहनकर आई हो, क्या इरादे हैं?"

बीजी स्वभावतः मुस्कराई और बोली, "कुछ भी तो नहीं।"

"आज तुम भी नृत्य करोगी?"

"मैं, किस के साथ?"

"मेरे साथ।"

"तुम्हारे साथ? कर लूंगी पर पहले उन दोनों के साथ तो तुम नाच लो।"

बीजी ने 'नाच लो' पर जरा जोर दिया। मैंने हंसकर कहा, "अच्छा, मेरे साथ नहीं, सुरेन्द्र के साथ।"

"बनाने के साथ क्या नाचूंगी?"

"जनाने क्यों ?"

"नीरा कहती है वे जनाने हैं।"

हम दोनों हंस पड़े। इतने में सुरेन्द्र एक बहुत गोरी व स्वस्थ लड़की से बातें करते हुए आया, रुका व उसे छोड़कर हम लोगों की ओर आने लगा। मैंने उस लड़की को देखा व मीरा की बदलती मुख-मुद्रा को देखा। मन ही मन मैंने कहा, 'ओह, जीजी भी ईर्ष्या से मुक्त नहीं।'

इसी समय जेन व नीरा दोनों 'स्लीवलेस डांसिंग गाउन' में पधारीं। दोनों के कानों में हीरे की बालियां और गले में हीरे के दमकते नेक्लेस थे। सारी बांह नंगी, गला नंगा, व छाती नंगी और पीठ नंगी थी। आज न जाने क्या होने वाला है।

जीजी ने दोनों को देखा और हंसते हंसते बोली, "होश न गुम कर बैठना।"

"सो तो अभी से गुम हो रहे हैं, जीजी।"

जीजी इतनी सरल होते हुए भी बड़ी पटु एवं समझदार है। सब कुछ कह देती है हंसते हंसते।

मैंने इतनी शानदार पोशाक के ऊपर दोनों को बधाई दी और फिर से हाथ मिलाया। हाथ मिलाते समय नीरा ने मेरी हथेली पर उंगली गड़ा दी। मेरा रहा सहा होश भी अभी से गुम होने लगा।

संगीत आरम्भ हुआ। क़दम उठने लगे। नृत्य भी आरम्भ हुआ। हॉल हंसी-खुशी के वातावरण से गूंज उठा।

पहला नृत्य मैंने जेन के साथ किया और सुरेन्द्र ने नीरा के साथ। दूसरा भी यों ही चला। तीसरे में हमने साथी बदल दिये। नीरा मेरे साथ होगई और जेन सुरेन्द्र के साथ।

जेन के साथ नृत्य करते हुए मुझे ध्यान आया कि यह लड़की कितना बड़ा त्याग कर मेरे साथ, मेरे भरोसे पड़ी है। कितनी मोहक व सुशील है। मेरे भीतर पेरिस व वेनिस का नशा छाने लगा और शायद उसके भीतर भी। वह बराबर मुस्करा रही थी। उसकी आंखें दमक रही थीं।

कुछ कुछ बातें भी होती रहीं।

वह बोली, "इस प्रकार डांस किये न जाने कितने दिन हो गये।"

"हां, हो तो गये बहुत दिन।"

"तुम तो इण्डिया में आकर बिलकुल बदल गये।"

"इण्डिया में या दिल्ली में ?"

हम दोनों की आँखें मिलीं व होंठ मुस्कराकर रह गये। फिर बोली, "नीरा तो आज बिलकुल अमेरिकन लड़की जैसी लगती है।"

"पर तुम तो भारतीय नहीं लगती।"

"लगती नहीं, पर जीजी से सीख रही हूँ।"

"अच्छा तो यह बात है!"

"जनाब!"

"यह तुम दोनों बराबर क्या गुटरगूं करती रहती हो?"

"तुम्हारी शिकायत और क्या?"

"जीजी तुम्हें पसन्द है?"

"बहुत।"

"और नीरा?"

"वह तो तुम्हारी रानी है न?" फिर हम लोग हंसे और बात समाप्त तथा नृत्य का दौर समाप्त।

दूसरा नृत्य आरम्भ हुआ। हमारी बातें आरम्भ हुईं। इस बार मैंने कहा, "सुरेन्द्र तुम्हें कैसा लगता है?'

"है तो बड़े शील-संकोच का।"

"मगर?"

"मगर स्वार्थी व चालाक सा लगता है।"

"सो कैसे?"

"बोलता कम है, नाक कुछ लम्बी व टेढ़ी है।"

"यह तुमने ज्योतिष कहां से सीख लिया?" वह मुस्कराकर रह गई।

"वैसे कलाकार बड़े संकीर्ण व स्वार्थी होते हैं," मैंने कहा।

"जीजी कहां ऐसी हैं ?"

"जीजी की बात छोड़ो। वे देवी हैं।"

"अच्छा, जीजी नाचती क्यों नहीं ?"

"कुछ तो शरमाती हैं, कुछ पश्चिमी नृत्य उन्हें पसन्द नहीं।"

"भारतीय ढंग से वे नाचती हैं ?"

"हां।"

"तो मैं उनका नृत्य एक दिन देखूँगी।"

"जरूर, मैं कहूँगा जीजी से।"

"नीरा क्यों नाचती है ?"

"वह अमेरिकन लड़की है।" हम दोनों हंस पड़े।

यह नृत्य भी समाप्त हुआ। अब नीरा मेरे पास आई। नृत्य आरम्भ हुआ, 'क्विक स्टेप'। इतने बड़े हॉल में स्वच्छ, धवल प्रकाश के नीचे हम लोग बहने लगे। नीरा की कमर में बांह डालते ही लगा कि न ज कितनी बिजलियां सारे तन में दौड़ गईं। ओह, इस दिन का इन्तजार कब से कर रहा था। दूसरे हाथ से उसका हाथ थामे हुए हम बह च इस आनन्द की सरिता में।

नीरा ने यों बातें आरम्भ कीं, "आज मैं न जियूँगी।"

"क्यों ?"

"मर जाऊंगी।"

"कैसे ?"

"मारे खुशी के।"

हम दोनों मुस्करा पड़े। उसने जानबूझकर कभी कमर से कमर चि दी और कभी रानों से रानें। फिर उरोजों को तो मौका पाते ही वह मे वक्ष से चिप देती थी। मैंने कहा, "यों करोगी तो मैं होश में न रहूँगा।"

"तो यहां कौन होश में है ?"

"अभी तो सारी रात पड़ी है, यों न करो।"

"मैं कुछ करती हूँ ? हो जाता है।"

हम दोनों हंस पड़े। दौर समाप्त होगया। ताली बजाई गई। फिर नृत्य आरम्भ हो गया। हंसकर हमने फिर एक दूसरे को बाहों में कसा, और बहने लगे, बहने लगे।

इस बार नीरा ने तन से तन घिसने के लिये नृत्य में भूलें भी कीं, जानबूझकर। और रह रहकर अपना सिर मेरे कंधों पर टेक देती। मैंने कहा, "नीरा, जेन की निगाह इधर बराबर है, होश में आओ।"

"आज तो जी में आता है कि तुम्हारी बाहों में ही गल जाऊं, समाप्त हो जाऊं।"

"कोल्हू की लौमिया की भांति?"

"नहीं, जीभ पर आइस-क्रीम की भांति।"

हम दोनों फिर हंस पड़े। मैंने बात बदलने के लिये पूछा, "सुरेन्द्र के साथ नृत्य करने में मजा आया?"

"नहीं, जरा भी नहीं।"

"क्यों?"

"उसका हाथ लड़कियों सा कोमल है, और जनाने जैसा है जो।"

"तो तुम्हें क्या मरदाने पसन्द हैं?"

"नहीं, पर जनाना के साथ जनाना नाचेगा तो क्या मजा आयगा?"

"पर मैंने तो तुम्हें लड़का समझा था।"

"अच्छा! कब से?"

"कल की कमीज व पतलून याद है और ऊपर से स्वेटर?"

"ओह, यह बात है!"

"रानी, तुमको साड़ी ही जंचती है।"

"हां, लड़का हो तो कमीज़-पतलून और लड़की हो तो साड़ी। अच्छा अन्त वाले दो नृत्य साड़ी में करूंगी।"

"ठीक?"

"ठीक!"

चौथा नृत्य समाप्त हुआ। सुरेन्द्र भी भीड़-भाड़ में, हॉल के एक

कोने में से एक लड़की को पकड़ लाया। यह वही लड़की थी जिसके साथ आते हुए मैंने व बीबी ने उसे देखा था।

लड़की बड़ी स्वस्थ, गोरी व फ़ैशनेबल थी। मांसलता अधिक थी, शृंगार में सुरुचि की कमी थी। आंखों में स्थूल कामुकता का भाव था। उसने परिचय कराया, "मिस पुष्पा अरोड़ा। प्रसिद्ध रेलवे कन्ट्रैक्टर मि० अरोड़ा की पुत्री।"

हम सब ने हाथ मिलाया। नीरा ने हाथ जोड़ नमस्ते की। पुष्पा ने उसे घूरकर देखा जैसे एक ही निगाह में निगल जायगी।

अगले नृत्य में नीरा आकर मोहन के पास बैठ गई। जेन मेरे साथ नाची और पुष्पा सुरेन्द्र के साथ।

जेन के साथ नृत्य करते हुए मैंने यों बात आरम्भ की, "सुरेन्द्र के साथ नृत्य करने में मज़ा आया?"

"खूब।"

"खूब के क्या मानी?"

"तन से तन घिसने की कुचेष्टायें करते हैं।"

"तुम नहीं करती?"

"केवल तुम से, और कभी नहीं, किसी से नहीं।"

"मुझसे ही क्यों?"

"तुम्हारी बात दूसरी है, अपने को हर किसी में न मिलाया करो।"

हम ज़रा देर मौन रहे। मैं जानता था कि उसके मन में क्या चल रहा है परन्तु वह होंठों पर आता नहीं था। वह लगातार नीरा की बात सोच रही है, परन्तु बोलेगी नहीं। कभी कभी सभ्यता से भी बड़ी रक्षा होती है। उसने कहा, "यह लड़की मुझको भाती नहीं।"

मैं जानता था कि उसका संकेत पुष्पा से था, परन्तु फिर भी जान-बूझकर मैंने कहा, "कौन? नीरा?"

वह हंसी। बोली, "बड़े भोले बनते हो। मेरा मतलब इस नई लड़की से है।"

"पुष्पा ?"

"हां।"

"देखा, जीजी की ओर कैसे ताकती थी ?"

"लगता था कि निगाहों को ही शाह पी जायगी।"

"और तुम कैसे नीरा ···· ?"

उसने मेरे मुख पर हाथ रखकर इस लिया, "ऐसा न कहो।"

यह दौर भी समाप्त हुआ। जेन का सिर कुछ भारी हो रहा था। वह जाकर मीरा के साथ बैठकर गप्पें करने लगी। उसे जीजी का बहुत ख्याल था, शायद मुझसे भी अधिक। यह बात मुझे काफी पसन्द आई।

इस बार पुष्पा मेरे साथ नृत्य करने आई। सुरेन्द्र ने नीरा से नृत्य करने को कहा। वह बोली, "मैं जनाने के साथ नृत्य नहीं करती।" बड़ी अग्रगामी है न। उसके सामने सुरेन्द्र की कुछ भी नहीं चलती।

नीरा के साथ नृत्य करने में सुरेन्द्र किसी प्रकार की कुचेष्टा का साहस भी नहीं करता। डरता है कि ऐसा किया तो वह हॉल में ही सब के सामने चांटा मार देगी या कोई दुर्घटना कर बैठेगी।

पुष्पा के साथ नृत्य करते हुए ये बातें हुई। वह बोली, "आप तो विलायत हो आये हैं न ?"

"जी हां, आपको कैसे मालूम ?"

"मुझे सब पता है, जी।"

"अच्छा !"

"आप तो इस अमेरिकन लड़की को भी वहीं से लाये हैं ?"

"जी हां, आपको तो सचमुच बड़ी खबर है।"

"मैं उड़ती चिड़िया को हल्दी लगा सकती हूँ, जी।"

"सो तो मुझे लगता है। आप लगा सकती हैं।"

"आजकल आपकी निगाह नीरा पर ज्यादा है ?"

जी में तो आया कि यहीं ऐसा थप्पड़ दूं कि ढेर हो जाय, परन्तु सभ्यतावश गुस्सा पीता रहा, बोला नहीं कुछ। वही फिर बोली, "आप तो

गोल, नाचते हुए कुण्डल; भाल पर चमकती हुई टिकली; गले में नेकलेस वही काले स्ट्रैपवाली; बदन पर फूलों के छाप से भरी रेशमी साड़ी व चुस्त नन्हा सा ब्लाउज; दायें हाथ में सब से निराली चार चूड़िया व बायें में नन्ही सी घड़ी; और पैरों में चमकते सैण्डिल। याद आया, 'हुजूर, जोड़ा सलामत रहे, ये चूड़िया सोहाग की हैं।'

नीरा सचमुच बदल गई थी। क्या कभी किसी ने उसे इस वेष मे देखा है? कैसी लगती है! क्या यह वही अमेरिकन लड़की है? सचमुच लगता है जैसे कोई अंग्रेज़ी मेम साड़ी पहनकर आई है। परन्तु आखों की काली पुतलिया व काजल की रेखा कोई और ही कहानी कहती हैं।

आसपास के भी कुछ जोड़ों ने अचकचाकर देखा। आते ही मैंने इस पहनावे पर उसे मुबारकबादी दी। वह मुस्कराकर रह गई। मैंने पूछा, "क्या इरादे हैं?"

"धुंआधार!"

नृत्य आरम्भ हुआ। मैंने बाई बाह उसकी कमर में डाली। अब वहा कोई वस्त्र न था। सब कुछ नग्न होने सा चमक रहा था, लचक रहा था। वह सुख की अनुभूति न कहूँ तो ही अच्छा! मैंने कहा, "अंग्रेज़ी नृत्य के लिये भारतीय पोशाक ही अच्छी है।"

वह मुस्कराई और बोली, "हा, इसमें अनुभूति की मात्रा गहरी है।"

नृत्य के बीच में यदि मैं उसकी नंगी पीठ या कोख में हाथ या उँगलियों को ज़रा सा घिस देता तो वह छटपटाकर रह जाती। तुरन्त बोलती, 'शैतानी न करो।' और फिर स्वयं तन का कोई भाग घिस देती।

मैं पूछता, "और यह क्या है?"

"धुंआधार।" हम दोनों मुस्कराकर रह जाते।

मैंने सोचा कि विषय बदलना चाहिए, ध्यान कहीं और जाना चाहिए, नहीं तो प्राण यों ही छटपटाकर निकल जायेंगे। मैंने पूछा, "पुष्पा तुम्हें कैसी लगी?"

"बहुत अच्छी!"

"बना तो बहुत रही थी तुम।"

"बनानी नहीं क्या! जॉनी को उपदेश देनी थी कि मुर्गी का अण्डा व 'चिकन' का शोरबा खाओ, खूब मीठी भी हो जाएगी और मन फड़कता रहेगा।"

"अच्छा!"

"तुम भी तो खूब घुलमिलकर उससे बातें कर रहे थे। कहीं इधर उधर छू दिया होगा, और तुम बह गये होंगे।"

"सभी नीरा नहीं हैं, रानी।"

"जेन तो है!"

बहुत गहरे में बात ले गई। फिर उसी ने कहा, "तुम्हारी जेन रानी इतनी जल्दी क्यों चली गई?"

"नीरा रानी को मौका देने के लिये।"

हम दोनों मुस्करा दिये। दौर समाप्त होगया। स्थान पर जाकर कॉफी पी और फिर जुट गये। तय हुआ कि यह अन्तिम दौर रहेगा, इसके बाद चले जायेंगे।

एक बज रहा था और अन्तिम नृत्य था। उस रात का अन्तिम नृत्य। मन की सारी मुरादें इसी नृत्य में पूरी करनी थीं और यह अमेरिकन लड़की भारतीय ढंग की पोशाक पहने फ्रेंच ढंग में नाचने लगी। इस बार वह मेरी बाहों के बीच मछली की तरह छटपटा रही थी, तड़प रही थी। होंठ तड़प रहे थे, भीगे भीगे से लगते। निरन्तर उन्मुख थे जैसे जल रहे हों, इन्तज़ार कर रहे हों कि कोई उन जलते अधरों पर अधर रख दे।

आंखें चमकतीं और फिर झेंप जातीं। कपोल फड़कते, उरोज फड़कते, वक्ष धड़कता। नीरा की विचित्र हालत थी। लगता अब बेहोश हुई, तब बेहोश हुई।

क़दम डगमगाते, लड़खड़ाते, गलत पड़ते, कंधों पर झुक झुक पड़ती, जब जी में आता कभी पांव, कभी रानें, कभी कमर घिस डालती। उरोज़ों से बार बार स्पर्श करती। मेरे स्वयं होश गुम हो रहे थे, परन्तु

करता क्या ? किसी एक का तो होश में रहना आवश्यक था, और पुरुष होने के नाते मेरा।

मैं सोचता कि उसके लिये अचेत हो जाना साधारण सी बात होगी, परन्तु मेरे लिये एक घटना हो जायगी। वह लड़की जो है।

नृत्य के बीच में अस्फुट शब्दों में बड़े दर्द व बेबसी के बीच बोली, "आज क्या जान ले लोगे ?"

ओह कितना मीठा था वह दर्द !

वह दौर भी समाप्त हुआ। समाप्त तो उसे होना ही था जैसे दुनिया की हर चीज़ एक दिन समाप्त होती है।

मैंने कमर से हाथ हटा लिया। लगा जैसे वह बेहोश होकर वहीं गिर जायगी ! बाहों में बाहें डाल, सहारे से मैं उसे 'लॉबी' के अंधेरे में ले गया। वहां दीवार के सहारे टिककर मैंने पूरी बाहों में उसे भर लिया और फिर उसके गाल चूमे, आखें व कपोल। अन्त में, मैंने अपने अधर उसके जलते हुए अधरों पर रख दिये और उसने अपनी बाहें मेरे गले में डाल दीं।

इस मुद्रा में हम कितनी देर खड़े रहे, कुछ ज्ञान नहीं। हम जब होश में आये तो अलग हुए। देखा वह पसीने से तर है। मैंने जेब से रूमाल निकाल उसका पसीना पोंछा। वह मुस्कराई और आंचल के छोर से मेरा भाल पोंछ दिया। फिर बोली, "ओह, कितनी तपन थी !"

"अब तो शांत हो गई।"

वह साधारण मुस्कराई और बोली अब तो मर भी जाऊंगी तो कोई पछतावा नहीं रहेगा।"

"क्यों, कैसी बातें करती हो ?"

"क्यों क्या ? इससे अधिक सुख और क्या होगा ?"

"अभी तो बहुत बाकी है, रानी।"

"सच ?"

नौकर उसका सूटकेस गाड़ी में रख आया। हम दोनों जब बाहर

बच्चों की तरह मारे खुशी के उसकी आंखें चमक उठीं। बोली, "अच्छा, अभी ऊपर चलकर देखती हूँ।"

हम लोग ऊपर गये तो मीरा व नीरा दोनों कमरे में इन्तज़ार करती मिलीं। दोनों क्रिसमस कार्ड, फूलों के गुच्छे व मिठाइयां लेकर आई थीं। इनके अतिरिक्त जीजी ने जेन को सोने की बालियां तथा नीरा ने गाउन के लिये रेशमी कपड़ा उपहार-स्वरूप दिया। अब तो जेन की खुशी का ठिकाना न रहा। उसका सारा अकेलापन दूर होगया।

मारे खुशी के बच्चों की तरह वह किलकने लगी। इधर कई दिनों से जो एकाएक औरत बन गई थी सो फिर से लड़की बन गई; वही जोश, वही उत्साह, वही उमंग, वही उछल-कूद। झट से बोली, "जीजी, चलो देखें तकिये के नीचे 'फादर क्रिसमस' ने क्या रखा है?"

नीरा मारे चुहुल के मुझसे धीरे से बोली, "फादर क्रिसमस या 'लवर' क्रिसमस?"

जेन ने सुना नहीं। वह जीजी के साथ अपने कमरे में गई। इतने में नीरा ने कहा, *"अभी आखों की खुमारी गई नहीं?"*

"कभी जायगी इस जन्म में?"

इतने में जेन उछलती-कूदती आई रिस्टवाच लिये हुए। पहले जीजी को पकड़ बाहों में कस लिया व उसका मुख चूम लिया, फिर नीरा के पास आई। बोली चहकती हुई, "देखा नीरा, फादर क्रिसमस ने मेरे लिये क्या उपहार भेजा है? रिस्टवाच।"

नीरा बोली, "फादर क्रिसमस या लवर क्रिसमस?"

इस पर हम सभी हंस पड़े। जेन ने नीरा को अपनी बांहों में कस *लिया व कपोल चूम लिये और ज़ोर से बोली, "हां, लवर क्रिसमस।"*

जीजी हंसती हंसती बोली, "फिर भाई साहब को ही क्यों वंचित करती हो, इस मिठास से?"

जेन ने मेरे पास आकर मेरा भाल चूम लिया हल्के से।

अब जीजी बोली, "जेन रानी, हम लोग आये हैं तुम्हें भोजन का

निमन्त्रण देने भाई साहब के साथ।"

मैंने कहा, "जीजी, पहले यह तय होजाय कि आज का प्रोग्राम क्या रहेगा, फिर भोजन तय होगा।"

जीजी बोली, "अच्छा, यही सही; जेन ही तय करे प्रोग्राम भी।"

इस पर मैं व नीरा दोनों ने हांमी भरी। जेन बड़े संकट में पड़ी। फिर तुरन्त कुछ सोचकर बोली, "मैंने दिल्ली के ऐतिहासिक स्थान नहीं देखे हैं, आज वही देखें तो कैसा?"

हम सब ने इस प्रस्ताव को मंजूर किया। जीजी ने भोजन के बाद चलने को कहा, परन्तु उतने समय में तो केवल कुतुबमीनार ही देखी जा सकती थी। नीरा बोली, "हम लोग दस बजे निकल चलें। राजघाट, लाल किला देखकर कुतुब चलें, वहीं भोजन करेंगे और वहा से शाम तक लौटेंगे।"

सब ने इस प्रोग्राम को स्वीकार किया। जेन ने इतना संशोधन किया कि भोजन उसकी ओर से होगा। किसी को कुछ कहते न बना। आज उसका दिन था, उसकी बात अस्वीकार करना आसान न था। हां, जीजी ने रात के भोजन की स्वीकृति हम दोनों से ले ली।

कुछ खास तैयारी करने की तो जरूरत थी नहीं। नौकर को बुलाकर पांच आदमी का भोजन तैयार रखने का आदेश दे दिया गया।

मीरा ने डैडी को फोन कर दिया। उन्होंने सहर्ष इजाजत दे दी। जेन जीजी की मदद से पिकनिक के आवश्यक सामान समेटने लगी। उस का उत्साह आज देखने ही लायक था।

इतने ही उत्साह के साथ वह सामान इकट्ठा किया करती थी जब हम लोग योरोप की सैर साथ साथ करते थे। इन कामों में वह बड़ी पटु है, जीजी बैठी। नीरा तो शायद पूरी भोंदू है इस दिशा में।

एकान्त पाकर नीरा बोली, "रात की चूड़ियां पहचानीं?"

"तुम्हीं को न पहचान सका, तो भला चूड़ियां क्या पहचानता?"

"ये सोहाग की चूड़ियां हैं, हुजूर, जोड़ा सलामत रहे।"

"तो क्या होगया ? बुज़दिल !"

हम दोनों अर्थपूर्ण हंसी हंस पड़े। बोली, "जानते हो, अब तुम्हारे साथ बैठते मुझे शर्म लगती है।"

"अच्छा ! कब से ?"

"कल रात से।"

"तो चली जाओ यहां से, तुम्हें किस ने बैठने को कहा है ?"

"मेरे मन ने। मन यही करता है कि रात-दिन तुम्हारे पास बैठी रहूँ व बातें करती रहूँ।"

"तब तो तुम बातें कर करके मेरा दिमाग चाट जाओगी।"

"बड़ा अच्छा तुम्हारा दिमाग जो है ? बुद्धू कहीं के !"

आखिरी बात का कुछ अंश शायद जीजी ने सुन लिया। बोली, "अरे क्यों लड़े जा रहे हो ? लो, यह संतरा खाओ," और एक संतरा फेंक दिया।

नीरा ने संतरा हाथ में रोक लिया। छिलका निकालकर फेंकने ही जा रही थी कि मैंने कहा, "हैं ! नहीं, नहीं। यहां मना है।"

बोली, "अच्छी बात है। यहा तो नहीं मना है !" और मेरी आंख में छिलके का रस निचोड़ दिया। आखें झनझना उठीं। आंसू भर आये।

मैंने पूछा, "यह कब की कसर निकाल रही हो ?"

"भूल गये ? उन तीन दिनों में तुमने कितना रुलाया था मुझे ?"

"मैंने रुलाया था ? अरे यों ही किसी की आखों में बरसात आजाय तो मैं क्या करूं ?"

फिर तो वह संतरे की फांकें रेशे निकालकर मुझे देती रही, मैं चूसता रहा। एक फांक चूसते चूसते वह बोली, "जानते हो, मुझे अभी भी ऐसा लगता है कि जैसे कोई मेरे होंठ चूस रहा हो।" और मारे झेंप के आखें नीची कर लीं।

मैंने कहा, "और मुझे लगता है कि किसी नागिन ने तन जकड़ लिया हो, पांवों से लेकर गले तक, सिर तक।"

"अन्तिम नृत्य में ऐसा लगता था कि होश गुम हो रहे थे, सारी

साथ साथ बैठ गये जो कि मना है। मीरा ने झट से फ़ोटो ले लिया। जेन के साथ सावन-भादों के महलों में फ़ोटो लिये गये और दीवानेश्राम में भी।

लौटते हुए जीजी ने हर स्थान का ऐतिहासिक महत्त्व जेन को बताना आरम्भ किया तथा मैं नीरा के साथ मनमानी गप्पों में लगा।

जब नीरा के साथ मैं तख्तेताऊस के चबूतरे पर बैठा था तो वह बोली धीरे से, "तुम जाते जाते आग लगाकर जाओगे।"

"कैसे? मैं तो कुछ भी नहीं करता।"

"कुछ भी नहीं करते, यह सब याद आगया तो कितना दर्द होगा?"

"चॉकलेट मुख में डालकर सो जाना। सब ठीक हो जायगा।"

"काश, ठीक हो पाता!"

"तुम तो अभी से मरने लगी विरह-व्यथा से।"

"धत्!"

लाल किले से हम लोग लौट पड़े। नीचे बाज़ार में जेन ने बहुत से पत्थर के खिलौने व ऐतिहासिक छोटी छोटी पुस्तकें खरीदीं, कुछ तसवीरें भी मोल लीं।

यहीं पर छोटे से रेस्टोरेएट में हम लोगों ने चाय वगैरह ली। फिर होटल में आकर भोजन के डिब्बे लिये व चल पड़े कुतुबमीनार की ओर।

कुतुब जाने से पहले नीरा ने बंगले पर जाकर ड्राइवर को छोड़ दिया व स्वयं पैएट-कमीज़ व स्वेटर पहनकर लड़की से लड़का बन मोटर में आ बैठी और स्वयं चलाने लगी। मीरा भी डिनर के लिये आदेश दे, आवश्यक सामान उठवा तथा फिल्म कैमरे में भर आगई।

जाड़े की सुहावनी धूप थी, हवा ठंडी ठंडी मुख पर लग रही थी। सामने की सीट पर नीरा व मैं थे तथा पिछली सीट पर जेन व मीरा। हवा के झोंकों से नीरा के कटे हुए बाल लहरा उठते तथा रह रहकर मेरे मुख को छू देते। कभी कभी वह जानबूझकर भी ऐसा करती। और जेन मारे खुशी के मीरा के गले में बाँह डाल एक स्वर गुनगुना रही थी।

———

अठारहवाँ परिच्छेद

कुतुबमीनार पर

रास्ते भर हम कुछ न कुछ ऊधम मचाते गये। जेन ने चॉकलेट हम सब को दिया। नीरा ने झपटकर मेरा हिस्सा भी ले लिया। मैंने कलाई पकड़कर उमेठी तो, 'ऊं ऊं' कर चिल्लाने लगी। गाड़ी इधर उधर कांपने लगी, परन्तु उसने दिया नहीं।

जेन ने स्वयं चॉकलेट खाकर उसका कागज पीछे से मेरे कॉलर से डालकर पीठ तक पहुंचा दिया।

बीच बीच में मीरा जेन को देहली के कुछ खण्डहरों का इतिहास बताती जाती थी, दो हजार वर्ष का इतिहास, कुछ छोटा तो न था।

कुतुब पहुँचते ही गाड़ी खड़ी कर हम लोग एक लता कुंज के नीचे पहुंचे। दरी बिछा दी गई। मैं व नीरा जमकर बैठ गये। जेन ने खाना निकालना शुरू किया और जीजी ने परसना।

जीजी बोली, "नीरा, तू तो नवाब की तरह आकर जम गई, चल पानी ला।"

नीरा ने अकड़कर कहा, "जीजी, आज मैं मर्द हूं, देखती नहीं मेरा लिबास? तुम दोनों औरतें हो, हम दोनों मर्दों की सेवा करो।"

इस पर जेन व जीजी हंसते हंसते लोट-पोट होगईं। आज लगता है कि सभी पिकनिक के मूड में हैं, पूरी शैतानी पर उतर आये हैं।

फिर बोली, "अच्छा ला बाल्टी, मैं पानी लाऊं, तब तक तू इनसे पांव के कांटे निकलवा।"

मीरा — "धुत, शैतान कहीं की।"

नीरा— "चुप क्या ? सीता जी यही चालाकी कर के तो लक्ष्मण को इधर उधर भेज देती थीं, बेचारी सीता !"

हम सभी बड़े जोर से हंस पड़े। पीने का पानी अपने पास तो था ही। हम लोगों ने जेन के सुखी जीवन की कामना की और खाना खाने बैठ गये। पहले शान्ति के साथ खाते रहे, फिर शरारतें शुरू हो गईं। आरंभ मीरा ने किया। उसने मेरी ओर एक रसगुल्ला बढ़ा दिया। मैंने जेन की तश्तरी में डाल दिया व जेन ने नीरा की। नीरा बोली, "खा ले, मेरी जेन रानी, ये रसगुल्ले बार बार नहीं मिलते।"

जेन ने हंसकर कहा, "मैं नहीं खाती, न जाने कैसा लगेगा।"

नीरा— "एक बार स्वाद जीभ से लग जायगा तो फिर खोजती फिरेगी। जीभ चटखाती फिरेगी।"

फिर से एक बार जोर का ठहाका लगा। नीरा बोली, "अच्छा, तुम्हें खिलाती हूं। मान ले कि मैं लड़का हूँ, तुझसे मुहब्बत करता हूं। अब देख कितना मीठा लगता है।"

हम ये जो हंसे जारहे थे। नीरा जेन के गले में एक बाह डाल दूसरे से उसके मुख में रसगुल्ला डाल रही थी। जेन ने मुख बन्द कर लिया। नीरा ने उसे धर के दबाया अपनी बांहों के बीच और इतने चुम्बन लिये कि घबराकर जेन ने मुख खोल दिया और रसगुल्ला अन्दर। अब बोली, "चुपके से मुख बन्द कर लो, रसगुल्ले का रस भीतर ही भीतर चूसते हैं, मुख नहीं खोलते।"

जीजी बोली, "नहीं तो छींटे औरों पर पड़ जाते हैं।"

यह जीजी हैं! इतनी चुहुल! मुझे भी शैतानी सवार हुई। मैंने कहा, "जीजी, मेरे हाथ से एक रसगुल्ला।"

मीरा— "नहीं भैया, बात यों है कि मेरा मुख है छोटा और रसगुल्ला है बड़ा। अभी मेरे मुख के नाप का रसगुल्ला तो बना नहीं फिर खाऊं कैसे ?"

जेन— "नहीं, जीजी, नाप तो मुख में जाने के बाद टीक हो जायगा तुम खाओ न।"

नीरा— यह देख अनुभव की बात मेरी 'गर्ल-फ्रेंड' ने कही। तू भी अपने 'बॉय-फ्रेंड' के हाथ से रसगुल्ला ले, नाप ठीक हो जायगा।"

मारे हंसी के हम लोट-पोट हो रहे थे। मैंने एक रसगुल्ला नीरा के मुख में दिया। पहले तो वह हंसी, फिर मुख खोला और रुक गई। बोली, "बहुत बड़ा है।"

मैंने कहा, "अच्छा, रुक," और रस निचोड़कर उसे दे दिया, छोटा हो गया। उसने ले लिया।

नीरा बोली, "जब रस ही न रहा तो चुचके रसगुल्ले खाने से लाभ!"

जेन मारे हंसी के ढेर हो रही थी। सचमुच नीरा उसकी बॉय-फ्रेंड बन गई थी। अब जेन ने एक रसगुल्ला नीरा के मुख में दिया। नीरा ने झट मुख खोल ले लिया और बोली, "हां, यों मेरी रानी, कुछ और तो खिलाओ।"

आज हंसी का अन्त न था। मारे हंसी के कोख दुखने लगती।

खाना समाप्त हुआ। कॉफी पी गई। कॉफी पर नीरा के सुखी जीवन की कामना की गई और प्याले लड़ाये गये। क्या बेहूदगी सवार थी!

तय यह हुआ कि थोड़ासा आराम करके फिर कुतुब देखी जाय। नीरा झट से बोली, "अब स्त्रियों को परदे में हो जाना चाहिए, यह पुरुषों की बैठक है।"

सभी ठठाकर हंस पड़े। फिर बोली, "मेरी जेन रानी, जरा आ तो यहां।" झट से उसका हाथ पकड़कर चूम लिया और बोली, "अब जा, आराम कर।" वह दे रही थी अपनी गर्ल-फ्रेंड को क्षणिक विदाई।

जीजी ने एक दूसरे कुंज-तले एक और दरी डाल ली व जेन के साथ कुछ फल लेकर चली गई। उनके जाते ही नीरा दरी पर तनकर पड़ रही। सैंडिल निकाल फेंके। तकिये के लिए इधर उधर ताकने लगी तो मैंने अपनी बांह दिखाई। बोली, "काश, मेरा भाग्य इतना ऊंचा होता।"

मैंने डनलप का तकिया निकाल उस में मुख से हवा फूंकी और उसे दे दिया। बोली, "इसमें तो तुम्हारी गरम गरम सांसें भरी हैं। क्या मुझे

नींद आयगी ?"

"तभी तो तुम सिर रखकर चैन की नींद सो सकोगी ।"

वह मुस्कराकर रह गई। मैंने पूछा, "तुम्हें क्या हो गया है आज, बड़ी चुहुल सूझ रही है ? जेन को तो आज बहुत प्यार कर रही हो !"

"जेन तो क्या आज सारी दुनिया को अपनी बाहों में समेट लेने को मन करता है ।"

"इतना सर्वग्रासी प्यार ?"

"सर्वग्रासी नहीं, सर्वव्यापी !"

मैंने 'केस' से तश्तरी निकाली, चाकू और सेब। धीरे धीरे सेब को छीलता रहा, कतरता रहा, और बातें करता रहा। मैं बैठा था और वह सामने पास ही दरी पर लेटी थी करवट से। जब मैंने सेब का एक टुकड़ा उसके मुख में दिया तो बोली, "इतना दर्द क्यों बोते हो ?"

मैंने देखा कि उस चेहरे पर अभी से कितनी व्यथा छाई थी। मैंने पूछा, "इन सुख की घड़ियों में तुम्हें इतनी व्यथा है, नीरा ?"

"यही तो मुश्किल है कि मैं बिना दुःख के सुख की कल्पना नहीं कर सकती ।"

"और दुःख में कभी सुख का भान नहीं होता ?"

"बहुत। मिठास ज़रा देर में आती है ।"

हम दोनों हंस पड़े। वह फिर बोली, "अब यही देखो, आज क्रिसमस की दोपहरी में इस कुंज-तले तुम मुझे अपने हाथ से सेब खिला रहे हो। सोचती हूँ कि यह घड़ी अभी जो सामने है क्या फिर कभी लौटकर आयगी ? इस जीवन में तो कभी न आयगी, कभी नहीं। क्रिसमस आयगा, कुतुब होगी, हम भी होंगे, परन्तु यह आज की सुख-वेला न आ सकेगी, कभी न लौटेगी !"

मैं सुनकर दंग रह गया। क्या यह वही नीरा बोल रही थी, जो पांच मिनट पहले जेन का बॉय-फ्रेंड बनकर उसके मुख में रसगुल्ले ठूंस रही थी ?

मैंने कहा, "तुम भविष्य के दुःख की कल्पना में वर्तमान के सुख को

भी खो रही हो, नीरा। इसमें लाभ?"

"खो तो कुछ भी नहीं रही हूं। हां, यह देख रही हूं कि सुख की सफेद चादर में हमेशा दुःख की काली किनार लगी रहती है पर इससे चादर की सुन्दरता बढ़ती ही है, घटती नहीं। जानते हो, अभी तुम्हारे पास लेटी हूं तो क्या लगता है?"

"क्या लगता है?"

"ऐसा लगता है जैसे ये पेड़, ये लताएं, यह हवा, यह धूप, नीचे पड़ी दूब की एक एक फुनगी मुझे प्यार करती है। सब मुझे प्यार करते हैं और मैं सारे जग की रानी बनी सब को छेड़ती-फिरती हूं। जिस किसी को मैं छेड़ती हूं वह हंस पड़ता है, खिल पड़ता है।

"लगता है, यदि मेरे छेड़ने से मुस्कराता है, सूरज मेरे छेड़ने से किरणों की डोरी में धरती को बांध लेता है, पवन मेरे छेड़ने से डालियों और लताओं को झकझोरता फिरता है, जमुना मेरे छूने से कल-कल करती बह चलती है। यह सब क्या है, कुमार?"

"क्या पता! मैंने तो कभी अपने को इतना महत्वपूर्ण न माना, न समझा। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता।"

"धन्य है, कुमार, तुम सब जानते हो, सब समझते हो, बस चुप रहते हो, मुख नहीं खोलते। और एक मैं हूं जो सब कुछ साफ साफ कह देती हूं।" कुछ रुककर फिर बोली, "जानते हो, कल रात को जब तुम्हारे अधर मेरे अधरों पर थे तो मैं क्या सोचती थी?"

"क्या सोचती थी?"

"यही कि काश अभी इन्हीं अधरों से मेरे प्राण निकल जाते तो कितना अच्छा हो।"

"सुख की चरम सीमा में तुम मृत्यु की कल्पना कर रही थीं?"

"हां, कुमार!"

"तब तो तुम्हारा सुख बड़ा निराशापूर्ण है!"

"जैसा भी है, पर है कुछ ऐसा ही। बड़ा प्यारा लगता है, और मोहक

"पकी इमली की चटनी सा, क्यों ?" हम हंस पड़े। वातावरण हल्का हो गया। जेन व मीरा भी आगई। धूप तेज़ थी इसलिए नीरा ने स्वैटर निकाल गले में मफलर की तरह बांध लिया। अजीब वेष बन गया उसका। सचमुच, खाली कमीज़-पैंट में उसकी खूबसूरती जितनी खिलती है, अन्य किसी वस्त्र में नहीं। हर अंग, लगता है, अपनी लचक, अपनी ऐंठ, अपना विकास लेकर उपस्थित हो जाता है।

हम चारों निकले कुतुब की सैर को। मैंने कुतुब के सात खण्डों में से ऊपर के दो के गिरने की कथा जेन को बताई। पांच साबुत खड़े हैं। ऊपर का भाग उतारकर पार्क के एक कोने में रख दिया गया है।

फिर बारादरी, बड़े-बड़े खण्डहर बने फाटक, लम्बा चौड़ा अहाता, पृथ्वीराज के किले के भग्नावशेष सभी एक एक कर देखे गये। जेन व मीरा ने काफी फोटो लिये।

लौहस्तम्भ के पास जोड़े जोड़े में सब की फोटो ली गई। वहां कुछ समाधियां भी हैं। मीरा उनकी कहानी जेन को बता रही थी और नीरा व मैं पृथ्वीराज के महल में टहल रहे थे। नीरा ने पूछा, "क्या कभी यहां पृथ्वीराज संयोगिता के साथ टहलता होगा ?"

"अवश्य; बात तो कुल हजार वर्ष पुरानी है, उस से भी कम !"

"और इन्हीं पत्थरों पर हम कदम रखकर साथ साथ चल रहे हैं ?"

मैं मुस्कराकर रह गया। वही फिर बोली, "सब कुछ मिट जाता है, कुमार, केवल कहानी रह जाती है !"

"धीरे धीरे वह भी भूल जाती है, खो जाती है, मिट जाती है," मैंने कहा।

"फिर क्यों कहते हैं कि प्रेम अमर है, सनातन है, अमिट है और प्रेम का नाश नहीं होता ?"

"बात तो ठीक है। प्रेम अमर भी है, सनातन भी। उसका नाश कहां हुआ। पृथ्वीराज-संयोगिता चले गये, परन्तु पुरुष के मन से प्रियतमा

को खिड़की पर से उतारकर भगा ले जाने की भावना तो न गई। प्रियतम के साथ भाग जाने की भावना तो नारी के मन से न मिटी। इसी लिए प्रेम अमर है।"

"फिर ताज का निर्माण क्यों? क्या उसमें शाहजहां और मुमताज़महल का प्रेम अमर न हुआ?"

"वह तो प्रेम के प्रकाशन का एक साधन-मात्र है। चित्र में और उसमें अन्तर ही क्या है? चित्र दस वर्ष चलेगा तो वह हज़ार वर्ष। पर एक दिन ताज भी मिट्टी में मिलेगा, उसकी भी कहानी विस्मृत हो जायगी। दिल्ली के, लाहौर और लखनऊ के चारों ओर सैकड़ों छोटे-मोटे मकबरों में कितनी अनारकलियां गड़ी हैं, कोई जानता है? परन्तु यह जानने की आवश्यकता नहीं। शाहजहां का प्यार, अनारकली का प्यार, पृथ्वीराज का प्यार इन संगमरमर व पत्थर के टुकड़ों में नहीं जीता, वह तो मानव के सनातन हृदय में वास करता है जहां प्रेम प्रति क्षण, प्रति पल फूलता-फलता और विकसित होता है।"

"ओह, तुमने तो आज नई आंख दे दी, कुमार!"

इतने में क्या देखता हूं कि सुरेन्द्र न जाने कहां से आ टपका। हम दोनों को देखकर मुस्कराया व नमस्ते की। मैंने पूछा, "आप कहां से टपक पड़े?"

"मैं भी इन्हीं झाड़ियों की भूल-भुलैया में पड़ा था।"

नीरा बोली, "आज बड़े गहरे बोल रहे हैं, पुष्पा जी को साथ नहीं लाये?"

सुरेन्द्र कुछ न बोला। मैंने कहा, "हो खाली अभी?"

"क्यों?"

"संगीत का एक प्रोग्राम हो जाय और क्या?"

कुछ सोचकर बोला, "अच्छा, अभी आया।"

"तुम्हारे प्रोग्राम में कोई गड़बड़ी तो न होगी?"

"नहीं, हमारी पार्टी अब जारही है। मैं आप लोगों के साथ चला

जाऊँगा।"

"अच्छी बात है। कोई साज-बाज हो तो रख लेना।"

वह चला गया। मीरा व जेन आईं तथा कुतुब पर चढ़ने का प्रस्ताव किया। तय यह हुआ कि सूरज की किरणें जरा लाल हो जायं तो ऊपर से सारा दृश्य बड़ा सुहावना लगेगा। इसलिए अभी संगीत का एक छोटा सा प्रोग्राम हो फिर कुतुब पर चढ़ेंगे।

सभी इस पर राज़ी हो गये। सुरेन्द्र तबला व हारमोनियम लेकर आ गया। राय हुई कि पहले जेन आरंभ करे। आज क्रिसमस जो था। जेन ने पहले तो थोड़ा संकोच किया फिर एक गीत गाया। कितना दर्दीला गीत था। आवाज़ उठती, गिरती, कांपती थी। अंत में एक लम्बी पुकार के साथ लम्बी तान में गीत समाप्त हुआ। कहा थी 'मैं तुम्हें प्यार करती हूं।' ओह, जेन के मन में कितना दर्द है, कितनी व्यथा!

मीरा ने कहा, "जेन, तू तो रुला देगी। अब, सुरेन्द्र जी, आप अपनी फुलझड़ी छोड़िए तो।"

सुरेन्द्र मुस्कराकर रह गया। वह हमेशा मीरा से घबराता है। कभी उससे उलझता नहीं। उसने चुपचाप पूछा, "हारमोनियम कौन लेगा?" और मीरा की ओर ताकने लगा। मीरा ने मुस्कराकर मुख दूसरी ओर कर लिया।

मैं अपनी बीबी की यह प्यार-भरी मुद्रा देखकर मुग्ध हो रहा था। मैंने ही कहा, "हारमोनियम बीबी लेगी।"

"मैं बजाना नहीं जानती।"

"जानती हो, बीबी, हारमोनियम तुम लो," जेन ने कहा। अब तो टालते न बना। बड़े उलहने की निगाह से उसने सुरेन्द्र को देखा। इन प्यार लाजभरी आंखों को टकराहट भी देखते ही बनती थी।

सुरेन्द्र ने तबला लिया। थोड़ी सी ठोक-पीट के बाद तैयार हो गया। बीबी ने भी पीं-पीं करके उंगलियों को स्वरों की सुधि दिलाई। सुरेन्द्र ने ज्यों ही पहला स्वर निकाला "आई बनवरी·········"

नीरा बोली शैतानी से "हां, हां, रुकिए, रुकिए!"

हम सभी चकित हो गये कि क्या बात है? बोली, "मुझे अपनी प्रियतमा की गोद में सिर रखकर लेट जाने दीजिये। और गले से स्वेटर फेंक, जेन की गोद में सिर रखकर, घास पर लम्बी लेट गई। हम सभी एकाएक हंस पड़े। यह कितनी चंचल है, कितनी शैतान! जेन के गीत से पैदा हुआ दर्दीला वातावरण फिर हंसी से मुखरित हो उठा।

सुरेन्द्र ने गीत आरम्भ किया :

आई जनवरी आने दो,
गया दिसम्बर जाने दो,
दिल से दिल टकराने दो!

इस अंतिम पंक्ति पर सुरेन्द्र ने मुस्कराकर जीजी को देखा। जीजी की आंखें झुक गईं और गालों पर मुस्कान बिखर गई।

नीरा ने चौंककर सिर उठाते हुए पूछा, "क्यों जेन, दिल से दिल कैसे टकराता है?"

"ठीक तो रही हो!" जेन ने कहा।

तीव्र हंसी से हम सब लोटने लगे। सुरेन्द्र भी राग-ताल छोड़ खुल कर हंस पड़ा व मीरा भी। नीरा ने जेन को दोनों बांहों में भर लिया और मारे चुम्बनों के उसे ढेर करने लगी। जेन थी कि बस हंसे जा रही थी।

अन्त में बमुश्किल अपने गले से नीरा की बाहें छुड़ाकर जेन ने उसे फिर गोद में लेटा लिया व उसका सिर, गाल व कंधा थपथपाती रही। नीरा अब चुपचाप पड़ी रही। संगीत आगे बढ़ा।

समाप्त होने पर हम सब ने तालियां बजाईं; सुरेन्द्र को बधाई दी इतने सुन्दर व सामयिक गीत पर।

अब नीरा ने कहा, "भाई, मेरा तो दिल से दिल टकराने को मन करता है!"

मैं तो अवाक् रह गया। यह क्या कहने जा रही है? [illegible]

गुम तो नहीं हो गये।

जेन ने पूछा, "किस से टकराएगी ?"

नीरा ने तुरंत जवाब दिया, "तुमसे, और किस से। मेरी गर्ल-फ्रेंड तो तू है और आज क्रिसमस भी है।"

मैंने चैन की सांस ली।

जेन बोली, बड़ी चुहुल व हंसी के साथ, "तो कैसे टकराएगी ?"

"हम-तुम नृत्य करें, क्यों ?"

जेन ने कहा, "नहीं, अच्छा नहीं लगेगा।"

नीरा उसके गले में बाहें डाल बोली, "नहीं, नहीं, जेन, मेरी प्यारी जेन, इतनी बात मान जा, आज हम तेरे साथ नाचेंगे। मैं लड़का, तू लड़की।"

हम सभी हंसे जा रहे थे, जेन भी हंसती थी। अंत में बोली, "ताल कहां से मिलेगी ?"

नीरा कुछ सच्ची कठिनाई के ज्ञान से इधर-उधर ताकने लगी। इतने में मीरा ने कहा, "ग्रामोफ़ोन व रेकॉर्ड तो अपने पास हैं गाड़ी में, उठा ला।"

फिर तो, क्या था, नीरा छलांग मारकर दौड़ी रेकॉर्ड लाने, परन्तु नंगे पांव थी। कोई कांटा धंस गया।

नीरा 'हाय राम' करके बैठ गई। जेन तुरंत दौड़ पड़ी। सहारा दे उसे उठाया। फिर जेन के कंधों का सहारा लिए वह गाड़ी के पास गई। स्वयं ग्रामोफ़ोन लिया व जेन के हाथ में रेकॉर्ड दिये। इचकती, लंगड़ती जेन का सहारा लिए आई।

ओह, वह सुषमा भी देखने ही लायक थी। मैं अभी भी देख सकता हूँ उन दोनों को आते हुए।

जेन को व उसकी प्रीति आज कितनी खिली पड़ती है, कितनी सच्ची है। दोनों सखियां लगती हैं। नीरा यों दचकते हुए मरदाने लिबास में एक लड़की का सहारा लिए चलती है तो कितनी खूबसूरत जान पड़ती है। कितनी मोहक। और जेन कितनी भोली-भाली लगती है।

मैंने कहा, "नीरा, तुम्हारे पांव में कांटा चुभ गया है; तुम नृत्य न करो, पांव सम्भलने दो।"

बोली, "नहीं, नहीं, मैं जेन के साथ नाचूंगी; मैं जेन के साथ जरूर नाचूंगा !"

उसके इस बच्चों जैसे हठ व 'नाचूंगी,' 'नाचूंगा' की दुविधा में हम सभी खिलखिलाकर हंस पड़े। इतने में भाभी ने रेकॉर्ड चढ़ा दिया। तान आरंभ हुई।

नीरा ने जेन की कमर में बांह डाली, जैन ने उसके कंधे पर हाथ रखा। दूसरे हाथ से नाजुक सहारा दे दोनों नाचने लगीं। पांव उठने लगे। मैंने कहा, "अब दिल से दिल टकराओ न !"

दोनों हंस पड़ीं। परन्तु नृत्य बहुत अच्छा किया। दोनों ही तो इस कला में प्रवीण हैं। हां, बीच बीच में नीरा जानबूझकर शरारत करती व जेन को परेशान करती। उन शरारतों को तो न कहना ही अच्छा है, परन्तु कितनी लुभावनी थीं वे शरारतें।

दोनों थककर पसीने से तर हो, पास आकर घास पर बैठ गईं। जेन ने अपने रूमाल से नीरा के मुख व गले व वक्ष का पसीना पोंछा। नीरा मुस्कराती रही, फिर उसने भी जेन का पसीना पोंछा। अब दोनों एक दूसरे के कंधे पर बांहें डाल बैठ गईं।

मैंने कहा, "जीजी, तुम्हारा भी हो जाय।"

जीजी ने लाज भरी आंखों से सुरेन्द्र को देखा। वह मुस्करा रहा था। बोला, "ठीक तो है, हो जाय !"

जीजी बोली, "नहीं।"

जेन ने कहा, "होने दो, जीजी।"

मीरा ने आंखें फाड़कर जेन को देखा। बोली, "यह तू कहती है, जेन?"

"हां, मैं कहती हूं, जीजी। बहुत दिनों से मेरी लालसा है तुम्हारा नृत्य देखने की।"

मीरा की दुविधा देख नीरा झट से उसके पास गई व मनाती हुई

बोली, "होने दो, जीजी, मेरी जीजी, आज मेरी जेन रानी का मन रख दो, मेरी जेन का दिल न दुखाओ।"

उसकी यह आरज़ू बड़ी प्यारी लगी। जेन भी हंस रही थी व मैं भी। जेन से मैंने धीरे से कहा, "तुम्हारा नया प्रेमी तो बड़ा दिलदार है।"

"तुम्हारे जैसा गुप-चुप तो नहीं।"

मीरा तैयार हो गई। वह झाड़ी के पीछे जा, साड़ी को नृत्य के ढंग से बांधकर एक चुन्नी की मदद से पूरी तैयार हो गई। सुरेन्द्र ने तबले पर थाप दी, भारत नाट्यम् आरंभ हुआ।

नीरा ने फिर छेड़ा। बोली, "रुको, रुको, जीजी।"

इस बार मुझे बहुत बुरा लगा व गुस्सा भी आया। मैंने कड़ककर पूछा, "क्या है, नीरा?"

हाथ जोड़कर, दरबारी मुद्रा में घुटने टेक बोली, "शान्त होओ, महाराजाधिराज, गुस्ताखी माफ हो, नर्तकी के पांव में घुंघरू नहीं हैं!"

मारे हंसी के हमारा बुरा हाल था। मीरा तो बस हंसे जारही थी। नीरा सूटकेस में घुंघरू खोज रही थी और कह रही थी, 'बता दे, जीजी, व्यर्थ समय नष्ट हो रहा है;' जीजी कहती, 'लाई नहीं।' परन्तु नीरा को यकीन न था। अंत में उसे मिल ही गये। बड़े चाव से लाकर जीजी के पांव में बांधे। चांदी के घुंघरू थे और स्वरों में मिठास दूसरे ढंग की थी।

फिर से तबले पर थाप पड़ी। मीरा के पांव हिले, बाहें कांपने लगीं, उंगलियों ने नये नये मोड़ लिये। आंखें मुद्रा बनातीं, सिर हिलता। नृत्य धीरे धीरे तेज हो चला। पांवों की तेजी, घुंघरुओं की ध्वनि, हाथों का कम्पन, आंखों की मुद्राएं सभी द्रुत गति से बदलने लगे।

सुरेन्द्र कभी तबले पर थाप देता, कभी उसकी लकड़ी पर, कभी केवल ताली देता। मुख से भी बराबर ताल दिए जाता, थेई, थेई, थमेई न जाने क्या!

हर ताल के टूटने पर सुरेन्द्र की आंखें मीरा से मिलतीं। मीरा मुस्करा

पड़ती। कितनी मोहक थी वह मुस्कान!

नीरा व जेन मन्त्र-मुग्ध सी देख रही थीं। अब मीरा मुस्कराती सुरेन्द्र पर तो जेन मेरी ओर देखकर मुस्करा पड़ती। कितनी चकित थी वह! जीजी की सहज सरलता में कितनी कला छिपी है।

जीजी के पाँवों की फुर्ती, सारे तन की बेन सी लचक व मरोड़, उंगलियों का कम्पन, मुख की मुद्राएँ, सभी की सभी अद्भुत थीं। लगता नहीं था कि उन में इतना गुण भरा है।

काफी देर में नृत्य समाप्त हुआ। हम सभी नेत्र-मुग्ध से देखते थे, जैसे इस नृत्य के सामने दिल की धड़कन तक बन्द हो गई हो।

सब से पहले जेन ने जीजी को बधाई दी व उसे बाहों में भर लिया। उसने जीजी का पसीना भी अपने रूमाल से पोंछा। मैंने व नीरा ने भी सुरेन्द्र व जीजी को बधाई दी। कितना उत्फुल्ल था सारा वातावरण!

जेन ने कहा, "मैंने कभी इतना सुन्दर नृत्य नहीं देखा, जीजी। मैं नहीं जानती थी कि भारतीय नृत्य इतना सुन्दर होता है और इतना दुरूह। इस में तो बहुत साधना की जरूरत होती होगी?"

मीरा बोली, "हां, समय बहुत लगता है और इस में भावुकता की मात्रा भी पश्चिमी नृत्य से कम होती है।"

नीरा बोली, "यह तो न कहो, जीजी, मेरा कलेजा मुख को आ रहा था। क्यों, जेन?"

सभी मुस्करा पड़े। अब मीरा को गीत सुनाना था। जेन का हठ या जो टल नहीं सकता। आज वह जीजी को छोड़ने को तैयार न थी।

अंत में गीत के लिए भी मीरा तैयार हो गई। बोली, "साज की कोई जरूरत नहीं। मैं कविता के ढंग पर कुछ कहूंगी।" जेन को मैंने समझाया कि वह 'लिरिक' कहने जारही है।

मीरा ने जब पहले महीन, सुरीले कण्ठ से गीत आरम्भ किया तो मैं तो बड़ा निराश सा हुआ। कुछ बोला नहीं, परन्तु तनिक देर में ही उस छोटी सी दुबली, पतली काया से वह स्वर-लहरी गूंजी कि हम सब चकित रह गये।

गीत की कड़ी थी, 'परदेसी का प्यार ……।'

उसने एक गीत और गाया, "तुम गये, लुट गया प्यार का यह जहां।"

बड़ा दर्दीला गीत था। जेन बार बार मेरी ओर देखती; नीरा दोनों हथेलियों में कपोल थामे सूर्य की लाल किरणों को देखती थी व नीरा रह रहकर सुरेन्द्र को देखती व आंखें फेर लेती।

मेरी आंखों की तुम रोशनी ले गए,
मेरे होंठों की तुम हर हंसी ले गए।

इन पंक्तियों पर तो लगा कि नीरा के नयन-कोर गीले हो गए। सुरेन्द्र ने उससे आंखें न मिलाईं। जेन की आंखों में कितना उपालम्भ भरा था। कितने उलहने के साथ उसने मेरी ओर देखा! और नीरा? वह क्षितिज के छोर पर न जाने क्या ढूंढ रही थी, जो मिल नहीं पाता था।

गीत समाप्त हुआ। सब का मन भारी व आर्द्र हो उठा। इतना भारी मन व भारी कदम लिए कुतुब पर चढ़ना, यह भी एक समस्या थी। जेन ने मेरा हाथ पकड़ा व बोली, "चलो, यह काम भी समाप्त करें।"

मैंने कहा, "इतना भारी मन लेकर!"

हठ से बोली, "उठो न, ऊपर की ठंडी हवा लगेगी तो सब ठीक हो जायगा।"

मैं उठा। उसने नीरा व सुरेन्द्र से तैयार हो जाने को कहा और फिर नीरा से बोली।

नीरा ने कहा, "मेरी जेन रानी, तू हो आ। मेरे पांव में कांटा चुभा है। तू जानती है कि मैं चढ़ न सकूँगी।"

ओह नीरा के चेहरे पर इतना विषाद क्यों है? क्या यह सब केवल कांटे के कारण है?

"नहीं, चल उठ, मैं तेरा पांव ठीक कर दूंगी।"

जेन ने नीरा के पांव में ठोकर मारी। नीरा उठ खड़ी हुई। जेन का उसे कितना ख्याल है। जेन ने ही कहा, "कांटा तुमने निकालने तो दिया

नहीं, ऊपर से नाच नाचकर और भी मजा लिया गहरे में।" नीरा सीधा मुस्कान बिखेरकर रह गई। अंत में न जाने क्या सोचकर जेन ने ही कहा, "अच्छा, तू रहने दे, नीरा; बैठकर कांटा निकाल, हम ही आते हैं।"

नीरा— "हां, यह ठीक है। बुरा न मानना, मेरी रानी। तू जानती है कि मैं तुझे कितना प्यार करता हूं।"

हम फिर हंसे। जेन ने न जाने फिर क्या सोचा। मेरी ओर ऐसे देखा गोया कुछ तोल रही हो। फिर बोली, "कुमार, नीरा क्या अकेली रहेगी?"

"रहने दो, क्या बुरा है? आओ, हम लोग चलें।"

"नहीं, तुम रुक जाओ; तुम्हारा मन भारी है न, इसका कांटा निकाल देना।"

मीरा व सुरेन्द्र हंस पड़े। नीरा झेंप गई व उठकर बोली, "अच्छा रह, मैं तुझे बताता हूं और दौड़ी जेन को पकड़ने।" जेन जीजी के पीछे छिप गई।

अंत में जेन के हठ से मैं भी रुक गया व नीरा भी। सुरेन्द्र मीरा व जेन को लेकर कुतुब पर चढ़ने चला गया।

एकान्त पाते ही मैंने कहा, "देखा, जेन कितनी अच्छी है।"

"सो तो मैं पहले दिन से ही जानती थी।"

"कैसे?"

"इतनी अच्छी न होती तो क्या तुम अपने पास फटकने देते?"

"और तुम कितनी अच्छी हो!"

"सच?"

"और क्या।"

"तो चलो, निकालो कांटा।"

उसने अपने पांव फैला दिये। उसका पांव कितना खूबसूरत था। कोमल, श्वेत-स्वर्ण रंग का गोरा व मुलायम। काश, पूरी पतलून न पहने होती!

कबूतर से कोमल व मुलायम चरण को दोनों हाथों में लेकर पहले

तो मैंने हल्का सा मला, सहलाया, फिर गोद में रख लिया। वह बोली, "जान मत मारो, केवल कांटा निकालो।"

मैंने एक कांटा लेकर दूसरे को निकालना आरम्भ किया। हल्का हल्का दर्द होता, रह रहकर वह 'सी सी' करती। कितना प्यारा लगता। फिर वही बोली, "कांटा निकाल रहे हो या धंसा रहे हो?"

"तुम्हें क्या लगता है?"

"मुझे तो लगता है कि वह और भीतर घुस रहा है, दिल तक पहुँच जायगा।"

"नहीं, घबराओ नहीं, अभी निकलता है।" मैंने धीरे धीरे कहा,

"तेरे तीरे नीमकश को, कोई मेरे दिल से पूछे।
यह तपिश कहां से होती, जो जिगर के पार होता॥"

"वाह, क्या खूब, अब बोल फूटे जनाब के!"

और मैंने अब कस के कांटा धंसाकर उचका दिया। कांटा तो निकल गया परन्तु दर्द के मारे नीरा उछल पड़ी और बोली, "हाय राम, तुमने तो जान ले ली।"

मैंने उसका पांव धीरे धीरे मला व फिर चूमकर छोड़ दिया। बोली, "यह क्या करते हो?"

"कुछ भी तो नहीं, दर्द की दवा कर रहा हूं।"

उसने सिर नीचे कर के धीरे धीरे कहा, "जिसने दिया है दर्दे दिल, उसकी दवा वही करे।"

फिर बोली, "कब तक रहोगे यहां?"

"कुछ ठीक नहीं।"

"फिर भी, एक अन्दाज?"

"नव-वर्ष दिवस तक तो रहूंगा ही।"

"तब तो खूब मजे रहेंगे।"

कुछ देर हम दोनों चुप रहे, फिर जरा पीछे घूमकर मैंने देखा तो जेन वगैरह दूसरी मंजिल पर नज़र आईं। मैंने नीरा को बताया। वह ज़रा

आइ में थी। बोली, "तुम्हें जाना चाहिए था, तुमने अच्छा नहीं किया। वे लोग क्या सोचते होंगे ? जेन क्या सोचती होगी ?"

"जेन ने ही तो जाने न दिया।"

मुख बनाकर बोली, "जेन ने ? तुम्हारा खुद जाने का मन नहीं था।"

"बात तो कुछ कुछ ठीक कहती हो।"

फिर क्षणिक मौन। मैं बोला, "अच्छा, जब गीत चल रहा था तो तुम क्षितिज में क्या ढूंढ़ती थी ?"

"कुछ भी नहीं।"

"नहीं, ठीक ठीक बोलो, मेरी क़सम।"

"तुम क़सम न दिलाया करो, अच्छा नहीं लगता। सुनो, मैं सोच रही थी कि, तुम चले जाओगे तो कैसा लगेगा।"

"ओह अभी से ?"

फिर मौन। मेरी ओर आख उठाकर बोली, "जानते हो, भाँजी ने आज खाद्य-भोजन की कितनी तैयारी की है ?"

"नहीं।"

"बड़ा शानदार भोज होगा। जेन को वह बड़ा प्यार करती है। उसके सम्मान में यह भोज होगा न।"

"तब तो मैं नहीं आऊंगा।"

"नहीं आओगे ?"

"नहीं।"

"आओगे।"

"नहीं।"

"और सिगरेट भी न लोगे ?"

"नहीं।"

"बुद्धिम।"

हम दोनों मुस्करा पड़े। वह जानती है कि मैं जरूर आऊंगा और सिगरेट भी लेलूंगा। सिगरेट का नाम लेते हुए कितनी लाली उसके कपोलों

पर दौड़ गई। वह उठी व सूटकेस से चूड़ियों का एक सेट निकाल लाई। पास आकर बोली, "ए चूड़ी वाले, ये चूड़ियां पहना दे।"

मैं हैरान रह गया। वही चूड़ियां थीं जो मैंने खरीदी थीं। ठीक ही तो कहती है! चूड़ीवाला तो मैं ही हूं, परन्तु पहनाना? ना, ना, यह काम तो मेरे बस का नहीं। बोला, "चूड़िया पहनाना मुझे नहीं आता।"

"पहनना आता है? बुजदिल!"

"वह भी नहीं आता।"

"कैसे चूड़ीवाले हो, तुम?"

"कहीं लड़के भी चूड़ी पहनते हैं?"

ज़रा देखिये तो उसके कपोलों की मुस्कान, उसकी आंखों की मुस्कान, उसके अधरों पर कांपती मुस्कान!

उसने मेरे सामने अपना हाथ फैला दिया। वे नाज़ुक कलाइयां, ओह, उनको पकड़ने का कभी भी इतना अच्छा अवसर तो मिला न था। पहले मैंने उस कलाई व हथेली को अपने दोनों हाथों में लेकर खूब दबाया व मला। कहता जाता था, "इनका नरम होना बहुत ज़रूरी है, चूड़ी पहनाने से पहले।"

देर होते देख नीरा बोली, "जान लेओगे क्या आज?"

अब मैंने एक जोड़ा चूड़ी उठाया। बहुत आहिस्ते आहिस्ते चढ़ाने लगा। एक हाथ से कलाई पकड़े था और दूसरे से चढ़ा रहा था। नीरा बार बार बड़ी बड़ी आंखों से इतने प्यार से देखती थी कि प्राण प्यार से गीले हो उठते थे। न तो उन आंखों में नशा था, न कामुकता; विशुद्ध प्यार बूंद बूंद कर टपक रहा था और मेरे प्राण अभिषिंचित हो रहे थे। बहुत धीरे धीरे अस्फुट शब्दों में बोली, "जी में आता है कि तुम युग युग तक यों ही चूड़ी पहनाते रहो और मैं तुम्हारे सामने हाथ फैलाये बैठी ताकती रहूं। काश, ऐसा हो पाता!"

कलाइयां नाज़ुक थीं, परन्तु चूड़ियां कम नाज़ुक न थीं। खरीदते समय इसका आभास होता कि ये चूड़ियां मुझी को पहनानी पड़ेंगी तो

"नहीं !"

इतने में मैंने झांका तो वे लोग कुतुब की अंतिम मंजिल पर नजर आए। मैंने कहा, "वे लोग अन्तिम खण्ड पर पहुंच गये हैं।"

"तो जल्दी करो, अभी उतारनी भी तो हैं। वे लोग आजाएंगे तो क्या होगा ?"

"तो उतारने के लिए क्यों चढ़वाती हो ?"

"मेरी मरजी, तुम जल्दी करो।"

"रहने दोगी तो क्या होगा ?"

"ना, ना, सब क्या कहेंगे ! सब समझ आएंगे कि तुमने चूड़िया पहनाई हैं।"

"अच्छा, रुको।"

मैंने ज़रा उन चूड़ियों को और चढ़ाया। अब वे अंगूठे की पहली गांठ पर अटकी थीं जहां से वे पार हो सकती थीं या टूट सकती थीं। एक हाथ में कलाई व दूसरे में चूड़ी पकड़े हुए मैंने ऊपर झांका तो वे तीनों शिखर पर नज़र आए। बेन डूबते हुए सूर्य की ओर देख रही थी। सुरेन्द्र पास में खड़ा था। मीरा दोनों का चित्र खींच रही थी। चित्र समाप्त हुआ। बेन अब नीचे झांक रही थी।

"अरे !"

चूड़ियां हाथ में ही तड़क गई और घास पर बिखर गई। मीरा ने घबरा कर पूछा, "क्या हुआ ?"

"मुझे लगा कि बेन नीचे कूदने का प्रयत्न कर रही थी। सुरेन्द्र ने उसे पकड़ लिया !"

"हाय राम !"

नीरा ने एक झटके में शेष दो चूड़ियां उतारने की कोशिश की। वे दोनों भी चूर चूर हो गई। हम दोनों लता-कुंज से उठकर घास के खुले मैदान पर आये। तब तक वे तीनं पांचवी मंजिल से गायब हो चुके थे। शायद उतर रहे थे।

नीरा दांतों-तले उंगली दबाए खड़ी थी। हम दोनों एकटक ऊपर देख रहे थे। वे लोग चौथी मंजिल पर नज़र आए।

अब नीरा की आंखों से आंसू झरने लगे 'टप, टप, टप'। मैंने सोचा कि कितना बड़ा तूफ़ान उसके मन में चल रहा होगा। क्या वह अपने को इस दुष्काण्ड का कारण समझ रही है?

वे लोग तीसरी मंजिल पर दिखाई दिए व फिर गायब। मैं नीरा को बाईं बांह में लपेट, दाएं हाथ से रूमाल से उसके आंसू पोंछने लगा। वही रूमाल नीरा वाला।

परन्तु क्या वे आंसू रुकने वाले थे!

वह अपने आपको मुझसे छुड़ाकर कुँज के पास गई व घास में बिखरी हुई चूड़ियों के टुकड़ों को समेटने लगी।

वे लोग उतरते रहे, नीरा के नयन सावन-भादों की घटा जैसे बरसते रहे, और वह चूड़ियों के प्यारे प्यारे टुकड़ों को घास में टटोलती रही, समेटती रही, जो आंसुओं के कारण दिखाई भी तो न देते थे। वे नन्हे नन्हे प्यार के प्रतीक।

मैं घूरते बेचैनी के घास पर टहलता रहा। जब तक वे लोग सीढ़ियों से ज़मीन पर आए तब तक नीरा ने उन टुकड़ों को कागज़ में लपेटकर सूटकेस में डाल दिया।

वे पास आए। कोई कुछ बोला नहीं। नीरा फूट फूटकर रोने लगी। बेन को देखकर मेरा हृदय हाहाकार कर उठा। मैंने उसे अंक में लिया। उसके कपोल थपथपाये व सिर पर चुम्बन लिया और फिर छोड़ दिया।

लगता था कि हर आंख बरसने को तैयार है, बस छूने भर की देर है, छेड़ने भर की कसर है।

बेन के नयन भी बह चले। वह सिसकियां भरने लगी। नीरा व बेन दोनों ने रोते रोते एक दूसरे के गले में बांहें डाल दीं।

इस बीच सुरेन्द्र ने सारा सामान संभाल गाड़ी में रखा। मैंने कहा, "गाड़ी मैं चलाऊंगा।"

मीरा बोली, "नहीं; सुरेन्द्र, गाड़ी तुम चलाओ।"

सुरेन्द्र ने गाड़ी चलाई। मैं उसकी बगल में बैठा। गले में बाँहें डाले मीरा व जेन पीछे बैठीं। मीरा उनके पास बैठी।

यह क्रिसमस का दिन था।

सवेरा कितना सुहावना।

साँझ कितनी दर्दीली।

परन्तु क्या इस दिन का अंत यही था? इतना ही?

अभी रात तो बाक़ी ही थी।

नीरा दांतों-तले उंगली दबाए खड़ी थी। हम दोनों एकटक ऊपर देख रहे थे। वे लोग चौथी मंजिल पर नज़र आए।

अब नीरा की आंखों से आंसू झरने लगे 'टप, टप, टप'। मैंने सोचा कि कितना बड़ा तूफ़ान उसके मन में चल रहा होगा। क्या वह अपने को इस दुष्काण्ड का कारण समझ रही है?

वे लोग तीसरी मंजिल पर दिखाई दिए व फिर गायब। मैं नीरा को बाईं बांह में लपेट, दाएं हाथ से रूमाल से उसके आंसू पोंछने लगा वही रूमाल नीरा वाला।

परन्तु क्या ये आंसू रुकने वाले थे?

वह अपने आपको मुझसे छुड़ाकर कुँज के पास गई व घास में बिखरी हुई चूड़ियों के टुकड़ों को समेटने लगी।

वे लोग उतरते रहे, नीरा के नयन सावन-भादों की घटा जैसे बरसते रहे, और वह चूड़ियों के प्यारे प्यारे टुकड़ों को घास में टटोलती रही, समेटती रही, जो आंसुओं के कारण दिखाई भी तो न देते थे। वे नन्हे नन्हे प्यार के प्रतीक।

मैं मारे बेचैनी के घास पर टहलता रहा। जब तक वे लोग सीढ़ियों से ज़मीन पर आए तब तक नीरा ने उन टुकड़ों को कागज़ में लपेटकर सूटकेस में डाल दिया।

वे पास आए। कोई कुछ बोला नहीं। नीरा फूट फूटकर रोने लगी। बेन को देखकर मेरा हृदय हाहाकार कर उठा। मैंने उसे अंक में लिया। उसके कपोल थपथपाये व सिर पर चुम्बन लिया और फिर छोड़ दिया।

लगता था कि हर ग्राम [illegible] की देर है, छेड़ने भर की कसर है।

नीरा व बेन

बहा,

मीरा बोली, "नहीं; सुरेन्द्र, गाड़ी तुम चलाओ।"

सुरेन्द्र ने गाड़ी चलाई। मैं उसकी बगल में बैठा। गले में बाँहें डाले नीरा व जेन पीछे बैठीं। मीरा उनके पास बैठी।

यह क्रिसमस का दिन था!

सवेरा कितना सुहावना!

सांझ कितनी दर्दीली!

परन्तु क्या इस दिन का अंत यही था? इतना ही?

अभी रात तो बाक़ी ही थी।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

क्रिसमस की वह रात

रास्ते भर कोई कुछ बोला नहीं। गाड़ी जब बंगले के पास पहुँच रही थी तो मैंने कहा, "सुरेन्द्र, पहले तुम हमें होटल में पहुँचा दो, फिर इनको लेकर आजाना।"

मीरा बोली, "नहीं, भैया, चाय पीकर जाना होगा, तब तक जेन कुछ स्वस्थ हो जायगी।"

मैंने कहा, "वह काफ़ी स्वस्थ है, शेष होटल में ठीक हो जायगी।"

मीरा ने कहा, "नहीं, तुमको मेरी बात माननी होगी। चुपचाप चलो मेरे साथ।"

मैं चुप लगा गया। बंगले पर पहुँचते ही मैं व सुरेन्द्र बैठक में गये और वे तीनों भीतर चली गईं, मुख-हाथ धोने और कपड़े बदलने।

वहा मि. सहाय बैठे थे, अँगीठी की सुहावनी आग के पास। उसमें अभी लपटें उठ रही थीं। मैं सोच रहा था कि यह अँगीठी तेज़ जल रही है या मेरा माथा।

कमरे में एक व्यक्ति और था। ठिगना कद, छोटी नाक, छोटी आँखें, पतले गाल, सूटबूट पहने हुए। उम्र यही छब्बीस-सत्ताईस वर्ष होगी। मि. सहाय ने परिचय कराते हुए बताया कि ये इन्कम-टैक्स इन्वेस्टिगेशन में कोई ऑफ़िसर हैं। मैं समझ गया कि कोई साधारण ऑफ़िसर गवर्नमेंट आफ़ इंडिया के हैं। आपका नाम आनन्द है।

"आपसे मिलकर खुशी हुई," कहकर मैं अँगीठी से दूर एक कुर्सी खींच बैठ गया।

आनन्द बोला, "अंगीठी के पास आजाइये, आपको जाड़ा नहीं लगता ?"

"जी नहीं, क्षमा करें; मुझे आग की आंच बर्दाश्त नहीं होती।"

वह मेरे पास खिसककर आया व एक कुर्सी पर बैठते हुए बोला, "मैं आप ही का इन्तजार कर रहा था।"

"यहां पर ?"

"जी हां, मुझे होटल में मालूम हुआ कि आप कहीं पिकनिक पर गये हैं। सोचा कि लौटकर तो फिर आप यहीं आयेंगे।"

उसने 'यहीं' पर जोर दिया। मुझे बिलकुल अच्छा न लगा। मैंने उसे घूरकर ऊपर से नीचे तक देखा और कहा, "तब तो आपने बहुत दूर की सोची ?"

"जी हां, इसके पहले भी दो बार मैं होटल से निराश हो लौट चुका हूँ। आपके दर्शन न हो सके।"

"मेरे दर्शन ?"

मि. सहाय उठकर अन्दर किसी काम से जा चुके थे। सुरेन्द्र चुपचाप अंगीठी के पास खड़ा ठण्डे हाथ गरमा रहा था। मैंने कहा, "फर्माइये, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ ?"

"पहले यह लीजिए," कह उसने एक कार्ड मेरे हाथ में दिया। मैंने सोचा कि क्रिसमस-कार्ड होगा। परन्तु यह क्या ? यह तो उसकी व नीरा की तसवीर प्रतीत होती थी। तसवीर में नीरा झुककर उसे बांहों में भर प्यार कर रही दिखाया गया था। लगा, जैसे सिर में एक साथ हजार बिच्छुओं ने डंक मार दिया। विधुत्‌विस्र की तरह विस्फोट होने का अंदेशा होने लगा। मैंने कहा "धन्यवाद !"

"आपसे कुछ बातें भी करना चाहता हूँ।"

"कीजिए।"

"बाहर चलें, तो कैसा ?"

"हां, हां, आइए; सुरेन्द्र, मैं जरा ... बातें करके

आरहा हूं।"

सुरेन्द्र ने विस्मित नेत्रों से मुझे देखा। कृष्णपक्ष का आरम्भ था। पेड़ों तले काफी अंधेरा था। हम बाहर सड़क पर आगये व चलने लगे। आनन्द ने कहना आरम्भ किया, "मैं आपको नीरा से सावधान करने आया हूं।"

"बड़ी कृपा।"

"इसने पहले मुझे अपनी खूबसूरती के जाल में फांसा और जब मैं बुरी तरह बरबाद हो गया, मेरे सारे पैसे समाप्त हो गये तो इसने मुझे छोड़ दिया। इसको नित्य नये शिकार चाहिएं जो इसके हर प्रकार के शौक पूरे कर सकें।"

"कहे जाइये, मैं सुन रहा हूं।"

"जब मुझे पता चला कि आप कलकत्ते के एक प्रतिष्ठित रईस हैं और नीरा ने आप पर डोरे डालना आरम्भ कर दिया है, तो मैंने सोचा कि आपको सावधान कर देना चाहिए।"

"बड़ी मेहरबानी की आपने, और कुछ?"

अब तक चलते चलते हम एक ऐसे गोल पर पहुंच गये थे जहां काफी एकान्त था तथा पेड़-पौधे लगे हुए थे। उसने कहा, "और तो कुछ नहीं, नीरा एक चरित्रहीन···।"

"शटअप!"

मैंने 'चरित्रहीन' शब्द सुनते ही उसे एक घूंसा दिया। वह धरती पर जा गिरा। संभलकर जो उठा तो मुझ पर झपटा। मैंने एक थप्पड़ जोर का दिया। वह लड़खड़ा गया। जब फिर संभलकर आया तो न जाने कैसे उसके झपटते ही मेरी उंगलियां उसके दांतों में आगईं। उसने दांतों से उनके चिथड़े उड़ा दिये। खून देखकर मेरा जी मिचलाने लगा। मैंने गुस्से में आकर उसे इतने जोर की ठोकर मारी कि वह मुख के बल जाकर गिरा। प्रतीत होता था कि वह अचेत हो गया है। उसके मुख से खून भी गिरने लगा था।

मैं तुरंत बंगले पर लौट आया। वहां नीरा, जेन, सुरेन्द्र व मीरा चाय

के लिए मेरा इन्तजार कर रहे थे। जाते ही मैंने कहा, "मीरा जी, मुझे इजाजत दीजिए। चलो जेन।"

मीरा बोली, "यह क्या, भैया, बिना चाय पिये चले जाओगे?"

"बाहर तुम्हारे एक मेहमान इन्तजार कर रहे हैं। उनको बुलाकर चाय पिलाओ। सुरेन्द्र, चलो मुझे छोड़ आओ। आओ जेन।"

उस समय मेरी मुद्रा शायद बहुत भयानक हो रही थी। होगी भी। जिसने कभी चींटी को भी न सताया हो वह जीते-जागते इन्सान की इतनी दुर्दशा कर दे, यह मामूली बात तो न थी।

मीरा डर गई, व सुरेन्द्र भी। सुरेन्द्र चुपचाप गाड़ी लाने चला गया। जेन थरथर कांपती हुई मेरे पास आई व मेरे साथ चल दी।

मीरा का चेहरा इस समय राख सा स्याह-श्वेत व शून्य हो रहा था। लगता था कि मन व मस्तिष्क की सारी हरकतें बन्द हो गई हैं। केवल दो नयन शून्य में एकटक ताकते थे, जैसे जापानी खिलौने में जड़ी आंखें हों। एक बार तो जी में आया कि कसकर एक थप्पड़ इसके भी लगाऊं, परन्तु हाथ उठा ही नहीं।

मैं होटल में आते ही बिस्तर में पड़ गया। फिर होश न रहा।

रात के नौ बजे कुछ होश में आया तो बुखार के कारण शरीर तवे की तरह जलता मिला। जेन से तापक्रम लेने को कहा। १०३° निकला। बाएं हाथ की उंगलियों पर पट्टी बंधी मिली। जेन ने बेहोशी में बांध दी होगी।

जेन की आंखों में कितना दर्द, कितनी व्यथा, कितनी आशंका थी। आंसुओं से धुली आंखें पहचानते भला क्या देर लगती है। मुझे पहले चिन्ता हुई उसी को आश्वस्त करने की। मैंने उसे संक्षेप में सब घटना बताई। उसका हाथ मेरे सिर पर था। शायद लगातार मेरे सिर पर कुछ मलती रही।

मैंने उसकी कलाई पकड़ी। अपनी छाती पर उसका हाथ मलता रहा। फिर एकाएक उसकी बांह खींचकर मैंने अपनी बांहों में उसे दबा लिया,

फिर छाती पर उसका सिर रख सहलाने लगा। कहता जाता था, "ओह जेन, तुमको मैंने कितना सताया। कितना!" फिर उसको थपकियां दे मैंने छोड़ दिया।

वह धीरे से बोली, "डाक्टर को बुलाऊं?"

इस पूछने से ही मैं समझ गया कि वह परिस्थिति की गम्भीरता को खूब समझती है, मेरे स्वास्थ्य की दृष्टि से व पुलिस की भी दृष्टि से।

मैंने कहा, "नहीं, मैं सवेरे तक ठीक हो जाऊंगा।" केवल एनासीन की दो गोलिया लेकर पड़ा रहा।

वह फिर धीरे से बोली, "मीरा जी का फ़ोन आया था। मैंने भोजन पर न आने की बेबसी जाहिर कर दी है।"

"ठीक है," कहकर मैंने फिर आखें बन्द कर लीं। होश व बेहोशी के मध्य में मैं लगातार डूबता-उतराता रहा। लगता कि जैसे हवाई जहाज से योरुप जारहा हूँ। भूमध्यसागर पर ग्रीस के नन्हे-नन्हे टापुओं को दिखाकर नीरा को उनकी कहानी बता रहा हू। वह चाव से सुन रही है। इतने में उसने एक बटन दबाया और जहाज में आग लग गई। जहाज नीचे समुद्र में जलता हुआ गिर रहा है; मैं छटपटा और घबरा रहा हू और वह है कि मुस्करा रही है जैसे कोई बात ही न हो।

फिर स्वप्न देखता हूँ। कुतुब के ऊपर मैं उसे चूड़ियां पहना रहा हूँ और वह बड़े प्यार से मुझे देख रही है, बीच बीच में एकाध बात करती जाती है। एकाएक कुतुब के जंगले पर से उसने मुझे ढकेल दिया और मैं सिर के बल गिर रहा हू।

कभी लगता, नीरा व जेन दोनों नाच रही हैं। नाचते नाचते दोनों ऊपर उठने लगीं। कुतुब की पहली मंजिल पर दोनों नज़र आईं, फिर नाचते नाचते हवा में ऊपर उठकर दूसरी पर गईं, फिर तीसरी, फिर चौथी। मैं घास के मैदान पर से नीचे से देख रहा हूँ। अब वे दोनों कुतुब की अंतिम मंजिल पर नाच रही हैं। उनकी हंसी व खिलखिलाहट मुझे नीचे भी सुनाई देती है। एकाएक नीरा जेन को नीचे धकेल अट्टहास कर

रही है। गिरती जेन को मैंने अपनी बांहों में रोक लिया।

एक बार देखा कि मैं नोरा के साथ नाच रहा हूं। खूब सुन्दर नृत्य चल रहा है। हम दोनों सुख के सरोवर में तैरते जा रहे हैं, तैरते जा रहे हैं। नाचते नाचते मैंने उसके अधीर, कांपते होंठ चूमना शुरू किया, परन्तु उन पर इतना विष लगा था कि चूमते ही मैं चक्कर खाकर गिर पड़ा। मुझे लगा कि सभी व्यक्ति नाच रहे हैं, हॉल नाचता है, उसका प्रकाश नाचता है, परन्तु मेरे गिरने पर पास खड़ी नोरा जोर के साथ हंस रही है।

इसी प्रकार के भयानक स्वप्न चलते रहे। मैंने एक बार आंख खुलने पर जेन से कहा कि वह जाकर भोजन कर ले, परन्तु शायद उसने खाया नहीं। सोने भी न गई। पास ही एक आराम-कुर्सी पर रात भर पड़ी रही।

सवेरे चार बजे मेरा तापक्रम १०२° हो गया, पर सिर का चकराना जारी रहा। कभी मालूम होता कि सारा कमरा चक्कर काट रहा है, मेरा बिस्तर भी करवट ले रहा है। मैंने पलंग के एक किनारे को दोनों हाथों से पकड़ लिया। जेन ने दोनों हाथों से पकड़कर मुझे लिटा रखा व मेरे कपोल पर अपना कपोल रख कुछ देर चुपचाप पड़ी रही।

मुझे भान होता कि मेरा सिर ही बिजली की भट्टी है। भट्टी जैसी कि दाद्रा व डाचमुण्ड में देखी है। वहां सब कुछ जलता है, सब कुछ!

बाद को जेन से मालूम हुआ कि एक बार मैं खिलखिलाकर हंस पड़ा व उसका हाथ अपने हाथ में ले चूम लिया। फिर छोड़ते हुए कहा, 'बुजदिल!'

एक बार करवट बदलते हुए बेहोशी में कहा, 'जान ले लोगे क्या आज?' जेन ने कहा कि इस वाक्य से वह बहुत डरी थी, यह सोचकर कि इसका उपयोग न जाने किस भयानक घड़ी में हुआ होगा।

फिर अर्धसुप्तावस्था में कितनी ही बार चिल्लाता रहा 'जेन, जेन'। एक बार योंही 'जेन, जेन' पुकारने के बाद शायद कहा था,' तुम्हारा नया प्रेमी तो बड़ा दिलदार है, जेन।'

वैसे तो योंही जेन के दिल व दिमाग की स्थिति में बड़ा तनाव था। इतनी भयंकर कल्पना को दिन भर कैसे उसने मन में छिपाकर रखा।

दिन भर हंसती-बोलती रही, जैसे एक फ़ैसला कर लेने के बाद अब जीवन की परवाह न हो, जो भी सुख जिससे मिल गया समेट लेने में उसे बुराई न दीखी।

यह भी हो सकता है कि जीवन-मृत्यु का महान फैसला कर लेने के बाद उसके मन से सारी जलन, सारी तपन, सारी ईर्षा-द्वेष शान्त हो गये हों। इसी से बड़े ही शान्त व प्रेम भाव से वह सब कुछ, नीरा के सार प्यार की चुहुलबाजियां, करती रही, निभाती रही।

परन्तु यह फैसला उसने कब किया था? पिछली रात को ही? अकेले में? कौन जाने?

इतने बड़े फैसले का असफल हो जाना, यह भी तो कम चोट पहुँचाने वाला उसके लिए न होगा। उसके मन में यह संकल्प न होता तो काम निकालने के लिए वह मुझे न छोड़ जाती और न नीरा को।

परन्तु कितनी बहादुर लड़की है! कितना बड़ा ज्वालामुखी पूरे सप्ताह उसने छिपा रखा। यह तो अमेरिकन-चरित्र में आसानी से सम्भव नहीं।

उसके दिमाग पर इतना बड़ा सदमा पहुचा और उसे ठीक करने के बजाय मैं स्वयं पड़ रहा। यह सोचकर तो मेरा मन जेन के लिए और भी प्यार व आर्द्रता से भर जाता और दुःख होता अपनी स्थिति पर, पश्चाताप होता।

इतने बड़े तूफान में भी नीरा का नाम एक बार भी होठों पर न आया। जेन ने ही यह भी खबर दी। मैं सोचता हूँ कि क्यों।

मनोविज्ञान की यह कैसी पहेली है? क्या यह अत्यधिक प्यार का लक्षण है? अत्यधिक घृणा का लक्षण है? प्रेम की भयानक गोपनीयता का प्रमाण है? यह क्या है, कौन बताए?

इस तरह उस भयंकर निशा का भी अन्त हुआ। सूर्य की पहली किरण के साथ जेन ने खिड़की खोल दी। हम दोनों ने चाय के प्याले साथ साथ होठों से लगाये।

कितनी भयानक थी क्रिसमस की वह रात!

बीसवाँ परिच्छेद

पलायन

१

चाय पीने से मैं कुछ चैतन्य हुआ। मैंने जेन से कहा कि फ़ोन कर मालूम करे कि यदि हावड़ा मेल में आज, अभी जगह मिल जाय तो प्रथम श्रेणी के दो 'बर्थ' सुरक्षित कर लें। जेन चकित हो, आखें फाड़ कर बोली, "क्या आज ? अभी ?"

"हां, अभी।"

"आठ बज रहे हैं, व आठ बजकर पचास मिनट पर गाड़ी छूटती है।"

"बहुत समय है, जेन। तुम फ़ोन करो, मैं अभी तैयार होता हूँ।"

"आपकी तबीयत इतनी खराब है और.........।"

"'आपकी' नहीं 'तुम्हारी'।"

एक क्षीण मुस्कान उसके होठों पर खेली। चलो, कुछ तो हुआ। वह फ़ोन करने चली गई। मैं जानता था कि जगह तो मिल ही जायगी। क्रिसमस व नव-वर्ष के बीच लोग बहुत चलते नहीं।

मैंने मुख-हाथ धो कपड़े बदले व सफ़र के लिए तैयार हो गया। अभी भी लगता था कि सिर चकराने के कारण फ़र्श पर गिर जाऊंगा।

जेन ने तापक्रम लिया। १०१.५° आया। मैं खुश हुआ, कम हो रहा था। इस समय मस्तिष्क बिल्कुल शून्य था। केवल एक बात समझ में आती थी कि दिल्ली तुरंत छोड़ देनी चाहिए। थोड़ी भी देर करने पर मीरा आ सकती थी।

जेन ने नौकरों की मदद से बड़ी जल्दी जल्दी सारा सामान बंधवाया

'कैसे ? मैं तो कुछ भी नहीं करता ।'

'कुछ भी नहीं करते ? यह सब याद आयगा तो कितना दर्द होगा ?'

'चॉकलेट मुख में डालकर सो जाना । सब ठीक हो जायगा ।'

'काश, ठीक हो पाता ।'

मैं आग लगाकर ही तो चल पड़ा। मीरा ठीक कहती थी। छोड़ो भी उसकी बातें।

यमुना-ब्रिज स्टेशन आया और पार हो गया। यमुना के उस पार राजघाट कितना स्पष्ट दिखाई देता है!

राजघाट, वही राजघाट, जहाँ·········

किले के पास है न। कभी यहाँ राजा-रानी स्नान करने, जल-क्रीड़ा करने, नौका-विहार करने आते होंगे, तभी इसका नाम पड़ा होगा राजघाट।

चांदनी रातों में कितने राजा-रानी, कितने राजकुमार व राजकुमारी इस घाट पर प्रेम के पाठ सीखे होंगे, दुहराए होंगे। तब इसकी शान-बान कैसी होगी!

और आज? देश का राष्ट्रपिता अपनी चिर-निद्रा में सोया है। अनन्त समाधि है यह, कभी टूटने वाली नहीं। युग-युग की गुलामी की जंजीर को तोड़ने वाला सत्याग्रही, लाल क़िले की बगल में 'राजघाट' पर न सोएगा तो कहाँ?

क्या अब भी वह क़िले के चारों ओर सूनी रातों में पहरा देता है?

परन्तु मुझे इन सब बातों से क्या। यह एक दिमाग है जिधर बह गया, बह गया। फिर आज कितना कमज़ोर है!

अभी तो यहाँ की दूर्वा पर सहस्रों ओस-कण इन्द्र-धनुषी ओढ़नी ओढ़ विहँस रहे होंगे। उन पर आराम के साथ जाड़े की दोपहरी में कितने ही प्रेमी जीव आकर लेटते हैं, और वे दूब के हरे भरे तिनके हैं कि कुछ गिला नहीं करते। इन लोगों के जाते ही रात को चांद जब चांदनी से उनका मुख धुला देता है तो वे तरोताज़ा हो विहँसने लगते हैं। हँसे भी क्यों नहीं, उनको हीरे की चमकती लड़ी भी तो सवेरे सवेरे मिल जाती है।

क्या ये प्रेमी-जनों की अपनी याद रखते हैं !

यह देखिए, कोई जोड़ा निकलकर पास पर बैठ गया। यह लड़की पास बैठते हुए कुछ कहती है। न जाने क्या कहती है। गाड़ी की हड़बड़ में सुनाई नहीं देता। हाँ, धीरे धीरे कह रही है—

'जानते हो, अब तुम्हारे पास बैठते मुझे शर्म लगती है।'

'अच्छा! कब से?'

'कल रात से।'

और यह कह क्या रही है! संतरे का छिलका लड़के की आँख में निचोड़ रही है! राम, राम, वे आँखें बन्द हो गईं। कितना कड़ुआ है यह रस! कितना मीठा! कह रही है—

'तुमको कोई जादू आता है।'

'मुझे! नहीं तो, एक दिन ओमी भी यही पूछती थी।'

'तुमने न जाने मुझ पर क्या जादू कर दिया! मेरा मन ही नहीं लगता कहीं।'

'चला जाऊंगा तो लगने लगेगा।'

इतने में एक खूबसूरत मेम ब्लाउज, स्वेटर व स्कर्ट में पास आ गई।

अरे यह क्या! सब के सामने वह लड़के की गोद में गिर पड़ी और मारे शर्म के गड़ी जारही है।

मैं मुस्करा पड़ा। जेन बोली, "तुम क्या सोच रहे हो! बराबर!"

"राजघाट पर कलाई ऐंठने पर मेरी गोद में तुम्हारा गिर पड़ना और शरमाना।"

जेन मुस्करा पड़ी। बोली, "और कुछ याद नहीं आता!"

"याद तो इतना आता है, जेन, कि लगता है, माथा फट जायगा। मेरा सिर फिर दुखने लगा।"

"तुमको आराम की जरूरत है, कुमार। तुम लेट जाओ। मैं खिड़की बन्द किए दे रही हूं, ठंडी हवा आती है इधर से।"

"यह दिल्ली तो पार हो जाने दे, ज़ालिम," कहकर मैं मुस्कराया और वह भी।

बोली, "तुम्हारा तापक्रम फिर बढ़ रहा है। लाओ, तुम्हारी नब्ज तो देखूं, कैसी चलती है।" उसने मेरी कलाई अपनी कोमल उंगलियों से पकड़ ली व रिस्टवाच में सुई देखकर पट्टु नर्स की तरह मौन साध गई। परन्तु आंखें हैं कि मुस्कराए जाती हैं।

मैंने कहा, "नब्ज तो मुझे तुम्हारी देखनी चाहिए, कि आज कहीं गाड़ी से तो कूद न पड़ोगी?"

वह मुस्करा पड़ी। हाथ छूट गया, गिनती भूल गई। बोली, "अब तुम चिढ़ाने लगे। लाओ, फिर से देखूँ, सारी गिनती भूल गई।" और उसने फिर से मेरी कलाई पकड़ गिनती शुरू की।

मेरी निगाहें भागती, दूर छूटती दिल्ली के गुम्बजों, मीनारों, ऊंचे ऊंचे महलों व बागों में गड़ गई। सेक्रेटेरियट की मीनार अभी भी दिखाई देती है। वह रहा विश्वयुद्ध-विजय की स्मृति का फाटक और राष्ट्रपति भवन का गुम्बज।

ये सब के सब गोल गोल नाचते क्यों हैं? रात का चक्कर मुझे याद आने लगा। ठीक भी है तभी तो आगे-पीछे के गुम्बज एक एक करके दिखाई देते हैं। इन सब के पीछे, पेड़ों के झुरमुट से वह कौन सी मीनार झांक रही है? ओह यह तो कुतुब है।

कुतुब!

ओह, कुतुब आज कितनी स्मृतियों का प्रतीक बन गई। कुतुब, जिस पर से जेन कूद रही थी, जहां मेरे प्यार का गला घुट रहा था।

सुनते हैं कि इसे पृथ्वीराज ने ही बनवाया था। क्या संयोगिता के साथ अपने प्रेम को अमर करने के लिए? बेचारे कुतुबुद्दीन ऐबक ने थोड़ी बहुत मरम्मत करवाकर नाम ही बदल दिया।

भला, इसका नाम पृथ्वीराज ने क्या रखा होगा? पृथ्वी-मीनार? संयोगिता-मीनार? प्रेम-मीनार? कुछ भी हो अपने को इससे क्या?

मन्न होगी, आज के दिन, इस समय से ठीक साल भर ? क्या मैं जानता हूँ कि आज से ठीक साल बाद यह कहाँ होगी ? मैं मन्न होगी भी या नहीं ?

ठीक साल तो अभी बहुत दूर है; क्या कल ही मैं कुछ जान सका कि इसके मन में क्या है ? एक सप्ताह से कितनी व्यथा छिपाकर रही थी, जैसी थी, ऐसी थी, और कल इसने बिलकुल बचपन को याद कर-कर रो। इतना बड़ा सालगिरहवाली दिन रूठे हुए दूर चला जाती रही।

कितनी सहज सरि से इसने राते कहा था, 'उठो न, ऊपर की ठंडी हवा लगेगी तो सब ठीक हो जाएगा।'

और फिर बोली थी, 'कुमार, मेरा क्या अकेली रहेगी ?'

जब मैंने कहा कि रहने दो बुरा क्या है तो बोली थी, 'नहीं, तुम चल आओ; तुम्हारा मन भारी है न, इसका कहा निपटा देना।'

ओह, पाँच मिनट पहले तक मैं इस सरल, स्नेहमयी लड़की के मन की बात जान न सका ! और अभी भी क्या जानता हूँ। जैसे मैं सोच रहा हूँ, उपेक्षुक में पड़ा हूँ, यह भी तो निरंतर कुछ सोच रही है।

भला जेन क्या सोचती है ?

पूछूँ ? नहीं, छेड़ना ठीक नहीं। मुझे अपने ही दिल व दिमाग से फ़ुरसत नहीं। मौन शान्ति ही अच्छी है।

लगभग दस बजे जेन ने नाश्ता मंगवाया। लगता है कि वह भी गई थी, या मेरी मुद्रा देखकर मौन भेजकर समझा। कुछ खाने की तबीयत तो थी नहीं। ऐसा प्रतीत होता था कि हम दोनों प्रिय जन का गंगा या यमुना में अंतिम-संस्कार कर आ रहे हैं।

ठीक भी तो था। प्रिय जन का न सही, प्रीति-प्यार का तो अं- संस्कार कर ही आरहे थे। तभी तो स्मृतियों में इतनी तेजी थी।

योंही कुछ खा-पीकर हम दोनों कॉफी पीने लगे। कॉफी उसने बड़े चाव से पी व मैंने भी। इसके बाद शायद जेन ने मुझे स्वस्थ लिया क्योंकि एक उपन्यास लेकर बैठ गई।

जेन को आजकल क लड़कियों की तरह हर घड़ी कुछ न

सुनने रहने की बीमारी नहीं है। वह सुनाई-कढ़ाई के बदले पढ़ाई-लिखाई ज्यादा पसन्द करती है। मस्तिष्क तेज तो है ही, कल्पनाशील भी बहुत है।

मुझे कुछ स्वस्थ मान वह भी जरा आराम कर सकेगी इस बात से मैं बहुत संतुष्ट व प्रसन्न हुआ। रात भर वह जागती जो रही थी। उसे आराम की बड़ी आवश्यकता थी। रेलगाड़ी के झूले में कुछ हिलने-डोलने से, कुछ खाने की गरमी से, कुछ जाड़े के चढ़ते दिन की गरमी से, जेन की आखों में निंदिया रानी का आगमन हुआ। वे बड़ी बड़ी प्यारी आखें कमल सी मुंदने व खुलने लगीं। नींद आते समय वह इक्कीस वर्ष की *युवती नहीं, बल्कि दस-बारह वर्ष की बालिका लगती थी।*

मैंने आहिस्ते से उसे बर्थ पर लेटाकर तकिया सिर के नीचे लगा दिया। उसने हल्की सी आख खोली व मेरी हथेली अपने कपोलों के नीचे दबाकर सो गई। ओह, उसे इस हथेली का *कितना* भरोसा *है!* इसी के भरोसे तो वह सात समुद्र पार अपने मा-बाप, परिवार, परिजन सब को त्याग कर यहा आई है।

मैंने उसे धीरे धीरे थपकी दी और वह गाढ़ी नींद में सोगई। तब मैंने अपनी हथेली खींच ली और अपने बर्थ पर तकिया टेककर पड़ा रहा। मेरी आखों में नींद न थी। पलक लगने का नाम न लेते।

स्मृतिया सारी इतनी ताजी थीं कि रह रहकर बिजली की तरह कौंध उठतीं। मन के आकाश में एक अग्नि-शिखा इस पार से उस पार तक चमक उठती और फिर सब कुछ अंधेरे में डूब जाता।

याद आया, जब मैंने डनलप का तकिया अपने मुख से हवा फूंक कर *नीरा* को दिया *तो* वह बोली थी 'इसमें तो तुम्हारी *गरम गरम* सासें भरी हैं। क्या मुझे नींद आयगी?'

'तभी तो तुम सिर रखकर चैन की नींद सो सकोगी!' वह मुस्कराकर रह गई।

जब मैंने पूछा, 'तुम्हें क्या होगया है आज, बड़ी चुहुल सूझ रही है? जेन को तो आज बहुत प्यार कर रही हो?' तो वह बोली थी:

साथ होगी, आज के दिन, उस समय से छः मास बाद ? क्या मैं जानता हूँ कि आज से छः मास बाद यह कहां होगी ? मेरे साथ होगी भी या नहीं ?

छः मास तो अभी बहुत दूर हैं; क्या कल ही मैं कुछ जान सका कि इसके मन में क्या है ? एक सप्ताह से कितनी व्यथा छिपाकर रहती थी, जीती थी, हंसती थी, और कल इसने बिलकुल बलिदान की बात तय कर ली। इतना बड़ा ज्वालामुखी छिपाए हुए कुसुम पर नाचती रही।

कितनी सहज गति से इसने पहले कहा था, 'उठो न, ऊपर की ठंडी हवा लगेगी तो सब ठीक हो जायगा।'

और फिर बोली थी, 'कुमार, मीरा क्या अकेली रहेगी ?'

जब मैंने कहा कि रहने दो बुरा क्या है तो बोली थी, 'नहीं, तुम रुक जाओ ; तुम्हारा मन भारी है न, इसका काटा निकाल देना।'

ओह, पाच मिनट पहले तक मैं इस सरल, स्नेहमयी लड़की के मन की बात जान न सका ! और अभी भी क्या जानता हूं। जैसे मैं सोच रहा हूँ, उधेड़बुन में पड़ा हूं, यह भी तो निरंतर कुछ सोच रही है।

भला जेन क्या सोचती है ?

पूछूं ? नहीं, छेड़ना ठीक नहीं। मुझे अपने ही दिल व दिमाग से फुरसत नहीं। मौन शान्ति ही अच्छी है।

लगभग दस बजे जेन ने नाश्ता मंगवाया। लगता है कि वह भी भूख गई थी, या मेरी मुद्रा देखकर मौन श्रेयस्कर समझा। कुछ खाने-पीने की तबीयत तो थी नहीं। ऐसा प्रतीत होता था कि हम दोनों किसी प्रिय जन का गंगा या यमुना में अंतिम-संस्कार कर आ रहे हैं।

ठीक भी तो था। प्रिय जन का न सही, प्रीति-प्यार का तो अंतिम संस्कार कर ही आरहे थे। तभी तो स्मृतियों में इतनी तेज़ी थी।

यों ही कुछ खा-पीकर हम दोनों कॉफी पीने लगे। कॉफी उसने भी बड़े चाव से पी व मैंने भी। इसके बाद शायद जेन ने मुझे स्वस्थ मान लिया क्योंकि एक उपन्यास लेकर बैठ गई।

जेन को आजकल की लड़कियों की तरह हर घड़ी कुछ न कुछ

बुनने रहने की बीमारी नहीं है। वह बुनाई-कढ़ाई के बदले पढ़ाई-लिखाई ज्यादा पसन्द करती है। मस्तिष्क तेज़ तो है ही, कल्पनाशील भी बहुत है।

मुझे कुछ स्वस्थ मान वह भी ज़रा आराम कर सकेगी इस बात से मैं बहुत संतुष्ट व प्रसन्न हुआ। रात भर वह जागती जो रही थी। उसे आराम की बड़ी आवश्यकता थी। रेलगाड़ी के झूले में कुछ हिलने-डोलने से, कुछ खाने की गरमी से, कुछ जाड़े के चढ़ते दिन की गरमी से, जेन की आखों में निंदिया रानी का आगमन हुआ। वे बड़ी बड़ी प्यारी आखें कमल सी मुदने व खुलने लगीं। नींद आते समय वह इक्कीस वर्ष की युवती नहीं, बल्कि दस-बारह वर्ष की बालिका लगती थी।

मैंने आहिस्ते से उसे बर्थ पर लेटाकर तकिया सिर के नीचे लगा दिया। उसने हल्की सी आख खोली व मेरी हथेली अपने कपोलों के नीचे दबाकर सो गई। ओह, उसे इस हथेली का कितना भरोसा है! इसी के भरोसे तो वह सात समुद्र पार अपने मा-बाप, परिवार, परिजन सब को त्याग कर यहा आई है।

मैंने उसे धीरे धीरे थपकी दी और वह गाढ़ी नींद में सोगई। तब मैंने अपनी हथेली खींच ली और अपने बर्थ पर तकिया टेककर पड़ा रहा। मेरी आखों में नींद न थी। पलक लगने का नाम न लेते।

स्मृतिया सारी इतनी ताज़ी थीं कि रह रहकर बिजली की तरह कौंध उठतीं। मन के आकाश में एक अग्नि-शिखा इस पार से उस पार तक चमक उठती और फिर सब कुछ अंधेरे में डूब जाता।

याद आया, जब मैंने डनलप का तकिया अपने मुख से हवा फूंक कर नीरा को दिया तो वह बोली थी 'इसमें तो तुम्हारी गरम गरम सांसें भरी हैं। क्या मुझे नींद आयगी?'

'तभी तो तुम सिर रखकर चैन की नींद सो सकोगी।' वह मुस्कराकर रह गई।

जब मैंने पूछा, 'तुम्हें क्या होगया है आज, बड़ी चुहुल सूझ रही है? जेन को तो आज बहुत प्यार कर रही हो?' तो वह बोली थी :

साथ होगी, आज के दिन, उस समय से छः मास बाद ? क्या मैं जानता हूँ कि आज से छः मास बाद वह कहां होगी ? मेरे साथ होगी भी या नहीं ?

छः मास तो अभी बहुत दूर हैं; क्या कल ही मैं कुछ जान सका कि इसके मन में क्या है ? एक सप्ताह से कितनी व्यथा छिपाकर रहती थी, जीती थी, हंसती थी, और कल इसने बिलकुल बलिदान की बात तय कर ली। इतना बड़ा ज्वालामुखी छिपाए हुए कुतुब पर नाचती रही।

कितनी सहज गति से इसने पहले कहा था, 'उठो न, ऊपर की ठंडी हवा लगेगी तो सब ठीक हो जायगा।'

और फिर बोली थी, 'कुमार, नीरा क्या अकेली रहेगी ?'

जब मैंने कहा कि रहने दो बुरा क्या है तो बोली थी, 'नहीं, तुम रुक जाओ ; तुम्हारा मन भारी है न, इसका कांटा निकाल देना।'

ओह, पांच मिनट पहले तक मैं इस सरल, स्नेहमयी लड़की के मन की बात जान न सका ! और अभी भी क्या जानता हूं। जैसे मैं सोच रहा हूँ, उधेड़बुन में पड़ा हूं, यह भी तो निरंतर कुछ सोच रही है।

भला जेन क्या सोचती है ?

पूछूं ? नहीं, छेड़ना ठीक नहीं। मुझे अपने ही दिल व दिमाग से फुरसत नहीं। मौन शान्ति ही अच्छी है।

लगभग दस बजे जेन ने नाश्ता मंगवाया। लगता है कि वह भी भूल गई थी, या मेरी मुद्रा देखकर मौन श्रेयस्कर समझा। कुछ खाने-पीने की तबीयत तो थी नहीं। ऐसा प्रतीत होता था कि हम दोनों किसी प्रिय जन का गंगा या यमुना में अंतिम-संस्कार कर आ रहे हैं।

ठीक भी तो था। प्रिय जन का न सही, प्रीति-प्यार का तो अंतिम संस्कार कर ही आ रहे थे। तभी तो स्मृतियों में इतनी तेजी थी।

यों ही कुछ खा-पीकर हम दोनों कॉफी पीने लगे। कॉफी उसने भी बड़े चाव से पी व मैंने भी। इसके बाद शायद जेन ने मुझे स्वस्थ मान लिया क्योंकि एक उपन्यास लेकर बैठ गई।

जेन की आजकल की लड़कियों की तरह हर घड़ी कुछ न कुछ

बुनने रहने की बीमारी नहीं है। वह बुनाई-कढ़ाई के बदले पढ़ाई-लिखाई ज्यादा पसन्द करती है। मस्तिष्क तेज तो है ही, कल्पनाशील भी बहुत है।

मुझे कुछ स्वस्थ मान वह भी जरा आराम कर सकेगी इस बात से मैं बहुत संतुष्ट व प्रसन्न हुआ। रात भर वह जागती जो रही थी। उसे आराम की बड़ी आवश्यकता थी। रेलगाड़ी के झूले में कुछ हिलने-डोलने से, कुछ खाने की गरमी से, कुछ जाड़े के चढ़ते दिन की गरमी से, जेन की आखों में निंदिया रानी का आगमन हुआ। वे बड़ी बड़ी प्यारी आखें कमल सी मुंदने व खुलने लगीं। नींद आते समय वह इक्कीस वर्ष की युवती नहीं, बल्कि दस-बारह वर्ष की बालिका लगती थी।

मैंने आहिस्ते से उसे बर्थ पर लेटाकर तकिश सिर के नीचे लगा दिया। उसने हल्की सी आख खोली व मेरी हथेली अपने कपोलों के नीचे दबाकर सो गई। ओह, उसे इस हथेली का कितना भरोसा है! इसी के भरोसे तो वह सात समुद्र पार अपने मा-बाप, परिवार, परिजन सब को त्याग कर यहां आई है।

मैंने उसे धीरे धीरे थपकी दी और वह गाढ़ी नींद मे सोगई। तब मैंने अपनी हथेली खींच ली और अपने बर्थ पर तकिया टेककर पड़ा रहा। मेरी आंखों में नींद न थी। पलक लगने का नाम न लेते।

स्मृतियां सारी इतनी ताजी थीं कि रह रहकर बिजली की तरह कौंध उठतीं। मन के आकाश में एक अग्नि-शिखा इस पार से उस पार तक चमक उठती और फिर सब कुछ अंधेरे में डूब जाता।

याद आया, जब मैंने डनलप का तकिया अपने मुख से हवा फूंक कर नीरा को दिया तो वह बोली थी 'इसमें तो तुम्हारी गरम गरम सासें भरी हैं। क्या मुझे नींद आयगी?'

'तभी तो तुम सिर रखकर चैन की नींद सो सकोगी।' वह मुस्कराकर रह गई।

जब मैंने पूछा, 'तुम्हें क्या होगया है आज, बड़ी चुहुल सूझ रही है? जेन को तो आज बहुत प्यार कर रही हो?' तो वह बोली थी :

'जेन को तो क्या आज सारी दुनिया को अपनी बांहों में समेट लेने को मन करता है।'

'इतना सर्वग्रासी प्यार?'

'सर्वग्रासी नहीं, सर्वव्यापी!'

कितना महान है उसका प्रेम और प्रेम का आदर्श। ओह, कितनी प्रसन्न थी जब उसने कहा था :

'जानते हो, अभी तुम्हारे पास लेटी हूँ तो क्या लगता है? ऐसा लगता है जैसे ये पेड़, ये लताएँ, यह हवा, यह धूप, नीचे पड़ी दूब की एक एक फुनगी मुझे प्यार करती है। सब मुझे प्यार करते हैं और मैं सारे जग की रानी बनी सब को छेड़ती फिरती हूँ। जिस किसी को छेड़ती हूँ वह हंस पड़ता है, खिल पड़ता है।'

इन बातों के याद आते ही एक बार फिर से दिल का बांध टूट गया। आंखों ने हीरे-मोती लुटाने शुरू कर दिये। जेन नींद में थी इसलिए मैं अब निश्चिन्त आंसू बहा सकता था। कोई संकोच नहीं, लाज नहीं, शरम नहीं। प्यार आंखों की राह बहता है, बहे!

कड़ी टूटी नहीं; ध्यान आया कि वह बोली थी :

'लगता है, चाँद मेरे छेड़ने से मुस्कराता है, सूरज मेरे छेड़ने से किरणों की डोरी में धरती को बांध लेता है, पवन मेरे छेड़ने से डालियों और लताओं को झकझोरता फिरता है, यमुना मेरे छूने से कल-कल करती बह चलती है। यह सब क्या है, कुमार?'

मैंने देखा कि हवा का एक झोंका आया व हरे-भरे खेतों में सरसों के सिले फूल झूम उठे। मन ने कहा, 'क्या यह 'नीरा' है?' हाय नीरा, तू मुझे जीने न देगी। अब तू चाँद की मुस्कान में, सूर्य की लाल लाल किरणों में, पवन के झोंकों में, गंगा-यमुना की कलकल में मुझे छेड़ती रहेगी तो मैं कहां रहूंगा। तुझसे भागकर कहां कहां छिपता फिरूंगा? कह'!

आंसुओं का गति तेज हुई। उसकी एक एक बात दिल पर चोट

करती, धारे की तरह चीरती चली जाती। मुन्न पर उसने यों कहा था, 'मुन्न की सफेद चादर में हमेशा दुःख की काली किनार लगी रहती है, पर इससे चादर की सुन्दरता बढ़ती ही है, घटती नहीं।'

कितनी बड़ी बात थी यह ! इतनी कम उम्र में लोरा इतना ज्ञान कहां से पागई। क्या प्रेम एक ओर से आंखें बन्द कर अंधा कर देता है तो दूसरी ओर आंखें खोल भी देता है ! अन्तर-चक्षु !

जब मैंने पूछा था कि सुख की चरम सीमा में तुम मृत्यु की कल्पना कर रही थी तो बोली थी, 'हां, कुमार !'

'तब तो तुम्हारा सुख बड़ा विषादपूर्ण है !'

'जैसा भी हो, पर है कुछ ऐसा ही। बड़ा प्यारा लगता है, और मोहक भी।'

मैं मन मसोस मसोस कर रह जाता। ऐंठन उठती, फिर नयन ये बरस पड़ते। प्यार की इतनी गहराई की व कल्पना की इतनी ऊंचाई की मैंने तो कभी कल्पना ही न की थी। न जाना, न सुना था।

कभी कभी उसकी शरारतें व चुहुलबाजिया याद आतीं, तो और भी मन भारी हो जाता। सुरेन्द्र के गीत पर वह एकाएक बोल उठी थी, 'मई, मेरा तो दिल से दिल टकराने को मन करता है !' पूछने पर कि किससे तो बोली थी कि 'गर्लफ्रेंड' जेन से। फिर बोली थी 'मेरी प्यारी जेन, इतनी बात मान जा, आज हम तेरे साथ नाचेंगे। मैं लड़का, तू लड़की।'

हम सब कितना हंसे थे।

और रेकॉर्ड लाने छलांग मारकर दौड़ी तो जालिम काटा न जाने कहा से पांव में आ धंसा, केले सा कोमल, नाजुक पाव। मारे दर्द के कराह उठी, 'हाय राम'। मुझे लगा कि जैसे अभी अभी मेरे ही पांव में काटा धंसा हो।

* * * *

बरसों पहले की बात याद आई। गरमी के दिन थे, जेठ की दोपहरी। धरती तवे की तरह जल रही थी और हम थे कि नंगे पाव इमली तोड़ने

निकल पड़े।

गाव से आधे मील की दूरी पर एक साधु का मठ था, तालाब था, व समाधि थी। तालाब पर इमली का पेड़ था व श्रीफल का भी। मुझे वहां जाते शायद मुर्जो ने कहीं से देख लिया। वह तो छाया की तरह पीछे पीछे लगी फिरती थी न! नंगे पाव, जलती-तपती दौड़ती आई; परन्तु यह क्या, श्रीफल के पेड़ तले वह बैठ क्यों गई?

'माई रे' की दर्दीली आवाज मुझे सुनाई दी। मैं लपककर दौड़ा। जाकर उसे उठाया। पांव में बहुत बड़ा श्रीफल का कांटा धंसा था। और वह थी कि बस रोए जाती थी। मेरा सहारा पा और भी रोने लगी। मैंने डाटा तो हिचकियां बंध गईं।

किसी तरह उसे सहारा देकर इमली के पेड़-तले लाया। उसे पेड़ के तने के सहारे बैठा दिया। फिर दो-तीन मजबूत कांटे चुन लाया।

अब मुर्जो का पांव अपनी जांघ पर रखकर मैंने कांटा निकालना शुरू किया। मैं जानता था कि दर्द बहुत होगा। यह कोई बेर या बबूल का कांटा तो था नहीं।

मुर्जो को दर्द न हो इसलिए मैं कांटे को धीरे धीरे हिलाता व बराबर पाव को सहलाता, परन्तु इससे वह तो निकलने वाला था नहीं। वह बोली, "कुम्मू, तुझे कांटा भी निकालना नहीं आता!"

"तुझे आता है तो निकाल न ले।"

मैंने उसका पांव झटककर धरती पर पटक दिया। बोली, "तू पूरा बुद्धू है, कुम्मू, कहीं अपना कांटा अपने से निकलता है!"

"तो कैसे निकलता है!"

"तुझे किसी दिन चुभे तो बताऊं कि कैसे निकलता है।"

और उस दर्द के बीच भी हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े थे। फिर मैंने ही कहा, "अच्छा, ला फिर देखूं; तुझे दर्द होगा इसीलिए गहरा नहीं छेदता।"

"मगर बिना गहरा छेदे तो कांटा निकलेगा नहीं। तू छेद, मैं न

रोऊंगी।"

कांटा हिलता तो था ही। अनुमति मिलते ही मैंने बड़ी निठुरता से एक पक्का मज़बूत कांटा ले ज़ोर से चुभाकर उचका दिया। 'माई रे' कह कर वह मुझसे लिपट पड़ी। जब मैंने छुड़ाया तो कराहती हुई बोली, "कुम्मू, आज तूने मेरी जान ले ली।"

मैंने फिर उसका पांव पकड़ कांटे को अलग किया। खून काफी गिरने लगा, उचकाने के कारण। धूल डाल डालकर खून बन्द किया।

कांटा तो निकल गया, परन्तु उसका रोना बन्द न हुआ। खून देखकर वह घबरा गई थी। मैं भी उसका रोना देख रोने लगा। फिर दोनों रोते-रोते घर को चले। मैं उसके लंगड़ाते पांव को सहारा देकर ले चला। तपती धूल में जब पांव जलने लगते, तो वह अपना पांव मेरे पाव पर रख देती। हमेशा कहती थी, "कुम्मू, तू लड़का है, तेरे पाव मजबूत होंगे, जलेंगे नहीं; पर मैं तो लड़की हूं, मेरा पांव बहुत जलता है।"

जलता तो मेरा भी बहुत था परन्तु मारे शरम के मुंह से कुछ कहता न था। कहीं लड़का होने की शरम खोता।

रास्ते भर हम रोते-रोते आए, परन्तु घर के पास आकर चुप हो गए व अलग अलग।

आज न मुर्री रही, न तालाब रहा, न इमली रही, और न पीपल रहा। रह गया केवल कांटा, पाव में घंसने के लिए और दिल में कसकने के लिए।

* * * *

और बरसों बाद कुनुब के कुंज-तले मैं नीरा के कोमल पाव मले जा रहा था, मले जा रहा था, अपनी गोद में रखकर। वह कहती थी, 'जान मत मारो, केवल कांटा निकालो।'

और जब कांटा निकालने को उसे हिलाता था, तो कहती थी, 'कांटा निकाल रहे हो या घंसा रहे हो?'

'तुम्हें क्या लगता है?'

'मुझे तो लगता है कि वह और भीतर घुस रहा है, दिल तक पहुंच जायगा।'

और जब एक बार गहरा घाव कर उचका दिया था तो मारे दर्द के कराह उठी व बोली थी, 'हाय राम, तुमने तो जान ले ली।'

जब इतना दर्द देकर, पांवों को सहलाकर चूम लिया था, तो कितना धीरे-धीरे उसने कहा था, 'जिसने दिया है दर्देदिल, उसकी दवा वही करे।'

मेरी दवा कौन करे, नीरा! कौन!

रेलगाड़ी चलती रही, आंसू झरते रहे, जेन सोती रही!

२

धुंधलका आरहा था कि जेन की आंख खुली। उसने आंखें मलते हुए अंगड़ाई ली। मेरी निगाहें उस पर पड़ीं। मन ने कहा कि अंगड़ाई लेते हुए जेन कितनी खूबसूरत लगती है।

जेन ने मुझे चुपचाप एकटक भागते हुए खेतों में आंख गड़ाए देखा। वह झट से आई और मेरे सिर पर हाथ रखा। बोली, "तुम्हारा तो शरीर जल रहा है।"

"जलकर राख तो नहीं होता, जेन," मैंने कहा। वह एकटक मेरी ओर ताकती रह गई। आंसुओं से धुली आंखें उसे पहचानते देर न लगी, परन्तु वह जानती थी कि मेरे मन की इस स्थिति में किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती चल नहीं सकती।

वह थर्मामीटर लाई। तापक्रम लिया। १०२.५° निकला। बोली, "तुम्हारा तापक्रम चढ़ रहा है, अब तुम लेटकर थोड़ा आराम करो।"

"आराम ही तो कर रहा हूँ, जेन! क्या पड़े रहने से ही आराम मिलता है?"

"परंतु तुम आंखें तो मूंदते नहीं, एकटक न जाने क्या देखे जा रहे हो?"

आंखें मूंदने से ही सब कुछ आंखों से ओझल तो न हो जायगा, जेन!"

अब वह कुछ न बोली। आकर चुपचाप मेरे पास बैठ गई और

मेरा दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों में लेकर हथेली को दबाने व सहलाने लगी। फिर जरा देर में निगाह ऊपर उठाकर मेरे मुख को देखने लगी। बोली, "क्या तुम मुझे कभी माफ़ न करोगे, कुमार ?"

"तुम्हें ?" मैंने बड़े विस्मय से पूछा, "भला तुमने क्या ग़लती की है ?"

"*बहकाओ नहीं, मुझे बहुत अफ़सोस है।*" और उसके नयनों से आंसू बह चले। वे चुपचाप आंखों की कोर से निकल कपोलों पर आए व नीचे वक्ष पर ढुलक पड़े। क्या खूबसूरत लोगों का रोना भी खूबसूरत लगता है ?

मैंने उसे खींचकर बाहों में भर लिया व उसका सिर थपथपाते हुए कहा, "नहीं, जेन, तुमने कुछ भी ऐसा नहीं किया है जिसके लिए तुम्हें माफ़ी की जरूरत है। सच पूछो तो माफ़ी तो मुझे मांगनी चाहिए; परन्तु मैं पुरुष हूँ न, अभिमान जल्दी सिर झुकाने नहीं देता।"

"नहीं, कुमार, मैंने अपनी नादानी से कल तुम्हें कितना बड़ा सदमा पहुँचाया। यदि मैं वहां तुम्हें चोट न पहुंचाती तो शायद तुम आनंद के साथ वह न करते जो कर आए।"

"*नहीं, जेन, तुम ग़लत सोचती हो। उसके साथ तो वही किया जो* करना चाहिए था। उसने किसी की शान के खिलाफ़ बातें कर मेरी तौहीन की थी।"

"तो क्या समझूं कि तुमने मुझे माफ़ किया ?"

"वैसे माफ़ी की कोई जरूरत नहीं, परन्तु तुम हठ करती हो तो समझ लो कि मैंने माफ़ किया। बस ! अब जरा हंस दो तो, मेरी जेन रानी ! और वह गीली आंखों व गीले कपोलों के बीच हंस पड़ी। कितनी दर्दीली थी वह हंसी !

लेकिन उसने मेरी गोद से अपना सिर न हटाया। चुपचाप पड़ी रही जैसे दस वर्ष की बच्ची हो। फिर धीरे धीरे बोली, "वह पहले भी दो बार तुमसे मिलने होटल में आ चुका था। पर मुझसे मुलाकात हुई, तुमसे नहीं।"

"मगर तुमने बताया क्यों नहीं ?"

"क्या बताती, शायद ताश की एक गड्डी लाई थी खेल रहा था और बहुत मजे दल-बदल करके लोग के बारे में करता था। इनको कमी का तुम्हें पता रहेगा तो। फिर न जाने तुम क्या सोचते मेरे बारे में।"

इसकी भी मुस्कान उसके चेहरे पर फैल गई। मैंने कहा, "और, तुम्हें बताना चाहिए था। तुम्हारे मन में कोई बात भी इस सिलसिले में ?"

"जीजी को मैंने सब कुछ बता दिया था।"

टुण्डला स्टेशन आ गया। आगरे का पेठा व दालमोठ बिक रहे थे। उन्हें देखकर मन में दर्द भर उठा। पिछली बार जब आगरे में इन्हें लिया था तब इनमें कितना आकर्षण था।

मैंने हठ किया कि जेन भोजन अवश्य करे। मेरा तापक्रम बढ़ रहा था इसलिए भोजन आवश्यक था। बहुत समझाने-बुझाने व मनाने पर जेन खाने को राजी हुई। मैं भी जानता था कि केवल मेरा मन रखने के लिए। कुछ खास खाया भी तो नहीं। मैंने 'ड्रिंक' पर भी जोर दिया। उससे उसकी नसों का तनाव मिटता व नींद आती। उसने 'ड्रिंक' भी किया।

गाड़ी छूटने को ही थी कि एकाएक पचास वर्ष के एक सम्भ्रान्त पुरुष पच्चीस वर्ष की लड़की के साथ विचित्र आतुरता व बेबसी में खिड़की में दिखाई दिए। लड़की तो खोई सी चुपचाप खड़ी रही, परन्तु वे सज्जन मेरे पास आकर बोले, "मेरे पास प्रथम श्रेणी के टिकट हैं, पर कोई बर्थ खाली नहीं है। क्या आप इलाहाबाद तक हमें अपने डिब्बे में चलने देंगे ?"

मैंने उस खोई खोई सी लड़की को देखा व फिर जेन की ओर भी। जेन ने निगाहों में ही हामी भरी। मैंने आने की अनुमति दे दी। जेन को बिस्तर समेट अपने बर्थ पर बुला लिया। वे दोनों व्यक्ति दूसरी बर्थ पर आकर बैठ गए। वे सज्जन एक ओर खिड़की के सहारे अधलेटी अवस्था में पड़ गए; पर वह युवती थी कि उसकी खुली हुई आँखें, खिड़की के बाहर, खेतों से दूर, पेड़ों की पंक्ति के पास, क्षितिज पर उलझे एकाध बादल-खण्डों से उलझी थीं।

मन में जिज्ञासा हुई कि आखिर ऐसा क्यों ? कोई समदुःखी सा लगा, परन्तु मैं स्वयं अपनी पीड़ा से मरता था, दूसरे की क्या चिन्ता करता।

थोड़ी देर में ही वे सज्जन तो नींद की गोद में गए। जेन को भी मैंने लेट जाने पर विवश किया। वह पांव समेट मेरे पावों पर सिर रख लेट गई और थोड़ी ही देर में उसे भी नींद आगई।

यदि नींद न आई तो मुझे और उस युवती को। हम दोनों चुपचाप एकटक बाहर ताकते थे, परन्तु स्पष्ट था कि हम लोग कुछ देख नहीं रहे थे।

इतनी बेबस लुटी हुई आखें मैंने कभी न देखी थीं।

जिज्ञासा ने ज़ोर मारा। मैंने पूछा, "बहन, यदि बुरा न मानो तो क्या मैं पूछ सकता हूं कि तुम क्यों इतनी उदास हो?"

वह पढ़ी-लिखी शिक्षित युवती लगती थी व वेश-भूषा से सम्पन्न। उसने एक तार निकालकर मेरे हाथ पर रख दिया। मैंने खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था :

'एयर-पायलट माथुर की हवाई दुर्घटना से मृत्यु, तुरंत आओ।'

मैं पढ़कर सन्न रह गया। मैंने आहिस्ते से पूछा, "ये तुम्हारे पति थे?" उसने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिला दिया।

और मेरा ध्यान तुरंत गया ऐसी ही बेबस, लुटी हुई आखों पर जो दिल्ली के एक बंगले में, शायद, खिड़की की राह क्षितिज पर बादलों को ताक रही होंगी। मेरा मन विचित्र घबराहट व ऊबचूब से भर गया। मुझे लगा कि जैसे मौन नीरा सामने की बर्थ पर बैठी है। सारा जग सोता है, परन्तु उसकी आखों में नींद नहीं।

मुझे एक ज़ोर का धक्का लगा और मालूम हुआ कि सिर चक्कर काट रहा है। गाड़ी का डब्बा घूमने लगा। वह लड़की जैसे मेरे चारों ओर चक्कर काट रही है, ऐसा लगने लगा।

फिर कब मेरी आंखें मुंद गईं व मैं कब बर्थ से नीचे गिर गया मुझे मालूम नहीं। कानपुर स्टेशन आया तो मैं होश में था। मुझे होश में

निगाहों से उसने आते समय मुझे देखा। उसे याद कर कलेजा मुख को आता है।

नीरा के दर्द की बात सोचते सोचते मैं अपना दर्द भूल चला व उसके दर्द के कारण नयन भरने लगे। सामने नीरा की सजीव प्रतिमा बैठी थी, और क्या चाहिए था कल्पना को!

मेरे नयनों में तो आंसू आए, परन्तु उस बेबस के नयनों में तो वे भी सूख गए थे। क्या नीरा की भी आंखों के झरने सूख गए होंगे?

चूड़ी पहनाते समय उसने कहा था:

'जी में आता है कि तुम युग-युग तक योंही चूड़ी पहनाते रहो और मैं तुम्हारे सामने हाथ फैलाए बैठी ताकती रहूं। काश, ऐसा हो पाता!'

कहां हो पाया, नीरा? कहां? घड़ी भर भी तो न बीती कि चूड़ियां कलाइय में ही तड़ककर रह गईं।

जीवन के आकाश में सुख सांझ के बादलों सा आता है, अनन्त रूप व रस लिए, परन्तु क्षण भर में ही न जाने अन्तरिक्ष के किस छोर पर अन्तर्धान हो जाता है।

कैसी मुस्कान खेलती थी उसके चेहरे पर जब उसने कहा था:

'तुम अनाड़ी चूड़ीहार लगते हो। कहीं मेरी कलाई मुड़क जाय तो?'

'जो जी में आए सजा दे देना।'

'जनम भर की गुलामी लिखनी पड़ेगी, मंजूर?'

'मंजूर।'

जनम भर! जनम भर तो दूर, मैं चौबीस घंटे की भी गुलामी न लिख सका। बिना कहे, बिना पूछे, *बिना मिले चोर की तरह भाग आया*। उसे कितनी व्यथा पहुंची होगी? उसका क्या हाल हुआ होगा?

मैं सिसकियां भरने लगा। कोई मुझसे कुछ बोला नहीं। सोचता कि रिगराग के बाद किस तरह उसने तीन दिन इतनी छोटी सी बात पर रो रोकर काटे थे। अब इस वज्रपात के बाद क्या वह ज़िन्दा होगी?

इक्कीसवां परिच्छेद

मीरा के पत्र

नीरा का क्या हुआ ? वह कैसे होगी ? जीती भी होगी या नहीं ? यही सारे सन्देह मन में उठते। हृदय में ज्वार उठता, भाटा आता। ज्वार में मैं ऊबचूब होने लगता, डूब सा जाता; भाटे में मौन, चुप पड़ रहता।

और यह तापक्रम था कि उतरने का नाम न लेता। १०२° से १०३° के बीच चक्कर काटता। प्रातःकाल १०१° तक आजाता।

जेन ने कलकत्ता आते ही सारे बंगले को नये सिरे से व्यवस्थित किया व सजाया। मेरे सोने के कमरे की पूरी काया-पलट कर दी गई। फूलदानों की संख्या बढ़ गई। परदे अधिक चमकीले व खूबसूरत आगये। बैठक में भी एक नई शान, शोभा व नजाकत आगई।

हां, कलकत्ता आते ही जेन तो मेरी सेवा-सुश्रूषा में लग गई। मैंने हठ किया कि वह अपना मकान छोड़कर मेरे ही बंगले में आजाय। थोड़ी ना-नुकर के बाद वह राजी हो गई और अपना सारा सामान भी यहीं मंगवा लिया। मैंने अतिथि-गृह में उसे जम जाने को कह दिया।

मैं तो बीमार पड़ा था। देखा नहीं, देख ही नहीं सकता था। जेन ने अपना कमरा इतनी सादगी से सजाया कि कोई भी देखकर चकित हो जाता। सादे सफेद परदे, सादा मेजपोश, सादे दो फूलदान, साधारण कालीन, स्वच्छ पलंग-पोश तथा चादरें, जैसे किसी गृह-त्यागी का कमरा हो। परन्तु यह बात तो मुझे काफ़ी बाद को मालूम हुई।

जेन ने नौकरों की भी व्यवस्था ठीक की। सभी उसको घर की

भोला के कोई था भी तो नहीं। उसने ब्याह-शादी भी न की। खुले तौर पर तो कुछ न कहता, परन्तु नौकरों के बीच या अपने लोगों के बीच ज़रूर कहता, "मैं शादी-ब्याह करके क्या करूंगा। लोग सन्तान ही के लिए तो शादी करते हैं, सो तो मेरे 'भइया' हैं ही।" और वैसे ही मेरा ध्यान भी रखता। मन ही मन अपने पर मां व बाप दोनों की ज़िम्मेदारी का आरोप करता व निभाता भी।

बड़ा होने पर मैंने भोला को उसकी मनमानी ज़िद पर तीन चार बर्ख़ास्त किया, परन्तु वह क्या मेरे बर्ख़ास्त किए बर्ख़ास्त होने वाला था। एक-दो दिन इधर उधर अपनी बिरादरी वालों के यहां रह जाता फिर एक दिन एकाएक बंगले में नज़र आता काम करता हुआ जैसे कोई बात ही न हुई हो।

पहले तो मैं देखकर चुप रहता, मन ही मन हंसता व सोचता, "यह भोला मुझे कभी न छोड़ेगा, मरते समय यमराज से भी एक झड़प कर लेगा, और जाय भी तो कहां? उसकी निगाहों में उसकी संतान तो 'भइया' है।"

सामने पड़ते ही मैं पूछता, "भोला, तुम फिर आगए? मैंने तुम्हे चले जाने को कहा था न?"

"भइया, तोहरा कहले हम चलि जायब? एक खेलौना के? अभी त हम तोहरा के अपना गोदिए में देखत बानी।"

और अपनी बांहों को इस प्रकार ताकता, जैसे दो वर्ष का बच्चा उसकी गोद में खेल रहा हो। मैं कहता, "भोला, यह सब कुछ न चलेगा; तुम यहां से चले जाओ, बिलकुल अभी।"

"भइया, सुनइ, हमरा के तोहार बाबूजी नौकर रखलनि, जब ऊ कहि हैं तबे जाइबि।"

"तो क्या वे तुम्हें बर्ख़ास्त करने स्वर्ग से आवेंगे?"

"त ना आइ हैं तब हम हू ना जाइबि।"

हाथ हवा में फटकारकर वह कहता। हल्की सी मुस्कान मेरे चेहरे

पर छा जाती। वह भी हँस पड़ता और उसकी आँखें गीली नज़र आतीं। फिर धीरे धीरे कहता, "भइया, बुढ़ौती में हमार दुर्गति काहे करत हवऽ, जानत हौ, तोहरा के छोड़ के हमरा के बा।"

"हमें अफ़सोस है, भोला, बहुत अफ़सोस है।"

इन बातों के साथ गीली आँखों हम दोनों की सुबह हो जाती। सभी नौकर 'साहब' कहते, परन्तु भोला ने 'भइया' छोड़ कभी कुछ और न कहा। ऐसा था भोला।

उसी ने अमेरिकन डाक्टर की खबर दी थी। कहता, "भइया, ई मेम साहब त साक्षात लक्ष्मी हैं।"

मैं मुस्कराकर रह जाता। सोचता कि भोला मन में क्या सोचता होगा।

एक दिन प्रातःकाल जेन पलंग-चाय लेकर आई। सामने की खिड़की पर से परदा हटा ही कि प्रातःकाल के सूर्य की लाल-पीली किरणों का सुनहला तीर कमरे में बिखर गया। मेरे पलंग, मेरे मुख पर भी बरस पड़ा। एकाएक मुझे याद आगया। नीरा ने कहा था :

'मैं सारे जग की रानी बनी सब को छेड़ती-फिरती हूं। जिस किसी को मैं छेड़ती हूं वह हंस पड़ता है, खिल पड़ता है। ......सूरज मेरे छेड़ने से किरणों की डोरी में धरती को बांध लेता है!'

मैं बार बार दुहराने लगा इस वाक्य को, 'सूरज मेरे छेड़ने से किरणों की डोरी में धरती को बांध लेता है!' मुझे लगा, कि जैसे मेरे कान में नीरा बराबर कहे जा रही है, 'सूरज मेरे छेड़ने से ......' तो क्या इन किरणों की डोरी को नीरा ने भेजा है मुझे बांधने के लिए? हाय, नीरा, तू मुझे कहीं न छोड़ेगी, कहीं नहीं। भला, यों प्रेत की तरह मेरा पीछा क्यों करती है, क्यों?

और चाय का प्याला होठों से लगाया नहीं कि नयनों के कोर से आंसू की एक बूंद ढुलककर प्याले में पड़ गई।

जेन के चेहरे पर भय, विषाद, आतंक, पीड़ा न जाने क्या क्या खेल

गये। उसने धीरे से कहा, "मैं दूसरा प्याला बनाए देती हूँ, श्राप छोड़ दीजिए।"

"क्या?" मैंने आतंकित हो पूछा। यह क्या कहती है, यह कौन बोलता है? यह तो जेन नहीं, मीरा की आवाज है।

"चाय अच्छी नहीं है न? आप छोड़ दीजिए, मैं दूसरा प्याला बनाए देती हूं।"

मुझे लगा कि जैसे वही आखें फिर मेरे चेहरे पर गड़ गईं। वही आवाज़, वही बात, कमरा चक्कर काटने लगा। प्याला हाथ में घूमने लगा। हाथ थर थर कापने लगे। जेन की आवाज़ दूर से आती हुई मीरा की आवाज सी सुनाई दी।

'आप छोड़ दीजिए, मैं दूसरा प्याला बनाए देती हूं।'

मेरे हाथ से प्याला छूट गया, चाय छलककर रह गई। मैं एकाएक चिल्ला उठा, "गेट आउट, गेट आउट।"

और मैं फूट फूट कर रोने लगा। कम्बल से शरीर ढका था ही, तकिये में मुख गाड़कर मैं सिसक सिसककर रोने लगा। जेन कमरे के बाहर चली गई। उसको कितनी चोट पहुँची।

किन्तु दो-चार मिनट में ही वह लौटकर आगई और मुझे सम्भालने लगी। मेरे सिर को अपने हाथों से सहलाने लगी। उसकी आखों में आसुओं की मौन धार बहे जाती थी।

मेरी हिचकियां जब जरा शान्त हुई तो मैंने पास बैठी जेन को घसीट कर अपनी गोद में कर लिया और उसका मुख एकटक ताकने लगा, जो अभी भी आसुओं से धुल रहा था। मैंने धीरे धीरे कहा, "हाय, जेन, तुम्हें मैंने कितना सताया।"

वह कुछ बोली नहीं, कमीज़ की बाह से मैंने उसके आंसू पोंछ डाले। उसका सिर थपथपाया, प्यार किया व छोड़ दिया।

वह चुपचाप चाय की ट्रे, बिखरे हुए प्यालों के साथ, लेकर कमरे से धीरे धीरे बाहर होगई।

योंही दिन बीतने लगे और मेरी बीमारी को कोई दवा न मिली। मैं अपने तारतम्य को लेकर झूलता रहा। हर याद में दर्द होता, हर चीज़ छूने में एक कसक कलेजे में उठ पड़ती।

किन्तु प्रकृति है कि इस मन व शरीर के व्यापार को कहीं न कहीं समझौता करने पर मजबूर करती है। मेरे ज्वार-भाटे का चढ़ाव-उतार घटने लगा व उसका स्थान एक विचित्र उदासी—निरंतर मन व तन में बसने वाले खोखलेपन ने लेना शुरू किया। आँखों में उदासी, कपोलों पर उदासी, होठों पर उदासी, लगता कि हँसने का प्रयत्न कर भी हँस नहीं सकता, हँस नहीं पाता, भाल व कपोलों पर रेखाओं का सृजन हो चला। और आश्चर्य है कि बराबर देखते रहने पर भी लाई खोई भी रहने लगीं।

मेरे होंठों पर निरंतर नाचने वाली मुसकान न जाने कहां खो गई, सदा के लिए खो गई। आँखों में उछलने वाली उत्सुकता विलीन हो गई। सारे तन व मन की स्फूर्ति, खुशी, जवानी का नाश हो चला। मैं हर क्षण, हर पल बूढ़ा होने लगा।

अब बंगले की फुलवारी में फूल चुनते समय जेन के साथ मैं भी शामिल हो जाता। नीरा के हाथों से फूल काटने की याद आती, बहुत आती; परन्तु मैं भरी भरी आँखों से देखकर रह जाता।

हाँ, जेन माँ की मेरी आँखें देख भर आती, परन्तु कहती कुछ नहीं, कुछ भी नहीं।

'स्वीट पी' के रंग-बिरंगे गुच्छों को काटने समय व मटर की फलियाँ तोड़कर लाने समय भी नीरा बराबर साथ होती। अपनी फुलवारी, अपना बंगला छूट जाता और नई दिल्ली के बीच बना एक बंगला था उपस्थित होता। जेन के मुख पर नीरा की छाया झलक आती, और फिर ज्यों की त्यों। कण्ठ रुंधकर रह जाती, आँखें देखकर मौन हो जाती। [illegible] की तरह अब इतने नहीं था आयी हो चला मेरा तन भी व मन भी।

नया नाता बढ़ने के लिए और तेज माया चाहिए थी।

दोपहर बाद का भात अब हम फुलवारी में लेने लगे। मैं पास की कुर्सी

पर बैठी जेन का मुख बारबार देखता, कहीं नीरा तो नहीं।

क्या जेन मेरे मन की बात जानती थी?

अब मेरी चाय बिगड़ने पर भी, न पीने पर भी, वह कभी न कहती, 'अच्छी नहीं है न? छोड़ दीजिए, मैं दूसरा प्याला बनाए देती हूं।' जब मैं स्वयं कहता कि दूसरा प्याला बना दो तभी बनाती।

प्रतीत होता जैसे सारे वातावरण के साथ एक क्षणिक समझौता हो गया है। बुखार की तेजी भी अब ९९° से १०१° के ही बीच रहती। ठंडी हवा का झोंका तन में लगता। सोचता कि नीरा ने पवन को छेड़ा है; लताओं, डालियों को झकझोरने के लिए, मुझे झकझोरने के लिए। रातों को चुपके से चाँद खिड़की की राह झांकता और मुस्करा पड़ता। मैं सोचता कि नीरा ने छेड़ा है; और मैं मौन आंखों से सब पी जाता, रोता-चिल्लाता नहीं, कुछ कहता नहीं।

जेन ने एक दिन घास के मैदान पर सेब भी काटकर खिलाया। एक जोर का दर्द उठा व मैं कराहकर रह गया। बस, इतनी ही बात हुई कि मैं सेब खा न सका। कॉफी के साथ 'काली या सफेद' का प्रश्न न रहा।

योंही दिन बीत रहे थे। नौकर-चाकर सब समझते थे कि साहब अच्छे हो चले। हां, जेन क्या समझती थी यह कहना जरा मुश्किल है। वह स्वयं भी तो बीमार थी।

मगर उसकी देख-भाल कौन करता? करने वाला तो स्वयं रोगी बन बैठा था।

इस शान्त व समझौते के वातावरण में मैं अपने व नीरा के बारे में सोचने के अतिरिक्त और बातों पर भी कुछ कुछ सोचने लगा। पास वाले बंगले में पीपल का पेड़ था। जब मैं दिल्ली से आया था तो उसके सारे पत्ते झड़ चुके थे। अब सारा वृक्ष, उसकी डालियां व टहनियां लाल पत्तों से भर उठीं; प्रकृति का यह जादू! मैं सोचने लगा कि पतझड़ के बाद वसंत सारी प्रकृति में छाया है। क्या मानव के भी तन में, मन में पतझड़ के बाद वसंत आता है?

नहीं, नहीं। मानव जाति तो केवल एक बसंत जानती है जिसमें एक बार पतझड़ हो जाने पर फिर उद्भव नहीं होता। मानव-मन में केवल एक बसंत है, केवल एक पतझड़।

मेरे जीवन का बसंत कितना छोटा था। कितना रमणीय! और यह पतझड़, क्या कभी जायगा!

एक दिन जेन बाहर गई थी गाड़ी लेकर, शायद डाक्टर के यहां। उसी समय डाकिया चिट्ठियां दे गया। वैसे तो जेन बराबर डाक देखकर आया करती थी, मेरी डाक उसके अतिरिक्त कोई छूता न था, परन्तु आज वह थी नहीं, इसलिए भोला एक थाल में लेकर उपस्थित हुआ।

यह भी भोला की मनमानी थी, जेन के अधिकार का प्रतिवाद-मात्र था जो उसने जेन का इन्तजार न कर पत्र मुझे भेंट किये। खैर, मैंने सभी पत्रों को पढ़ा। उनमें एक पत्र नीरा का भी निकला।

नीरा ने लिखा था :

'भैया, तुम्हें यह चौथा पत्र दे रही हूं। क्या तुम इतने नाराज़ हो गए कि अपनी जीजी को उत्तर तक नहीं देते? नीरा के प्राण तो, लगता है, तुम लेकर ही रहोगे। मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने निष्ठुर निकलोगे।'

पत्र पढ़कर मैं तड़पकर रह गया। 'नीरा के प्राण तो, लगता है, तुम लेकर ही रहोगे।'

ओह, क्या नीरा के प्राण संकट में हैं और सो भी मेरे कारण! और मुझको पता भी नहीं। जीजी के तीन पत्र आ चुके और जेन सब को पी गई! देखने में कितनी भोली-भाली लगती है, कितनी सेवा करती है, परन्तु इतने सुन्दर तन में कितने मलीन विचार हैं!

क्या जेन सोचती है कि योंही नीरा का अंत हो जाय! कितने पतित विचार हैं!

मैं मारे क्रोध के पागल हो उठा। इतने दिनों से जो आवा ऊपर से लीप-पोत कर चिकना बना था व भीतर ही भीतर सुलग रहा था,

एकाएक भड़क उठा। ज्वालामुखी के मुख से धुवां, फिर गैस, फिर जलते, पिघलते, उबलते अंगारे बरसने लगे। मैं कमरे में चक्कर काटने लगा, जैसे शेर पिंजरे में चक्कर काटता है।

मैं बड़ी व्यग्रता से जेन के आने का इन्तजार कर रहा था। इतने में मोटर के आने की आवाज़ सुनाई दी। गैरेज में मोटर छोड़ वह उछलती हुई मेरी ओर चली। मैं अभी भी उसे घास पार करते देख रहा हूं। आज बड़ी प्रसन्न नज़र आ रही है। कमीज-पतलून व लहराते हुए जुल्फों के बीच लड़कानुमा लड़की बनी खिली पड़ती है। हाथों में फूलों का एक गुच्छा भी है। लगता है 'हेग मार्केट' भी गई थी।

उछलकर ज़रा हाँफती सी मेरे कमरे में दाख़िल हुई व फूलों के गुच्छे को मेरी ओर बढ़ाती हुई बोली, "कुमार!"

यह क्या! मेरा रौद्र रूप देखते ही उसके मन का उत्साह मन ही में सूख गया। बात होंठों पर ही जमकर रह गई। जीभ हिली नहीं, कण्ठ खुला नहीं।

वह चकित, भयभीत, मौन खड़ी हो गई! छोटी सी मेज पर पड़ी खुली चिट्ठी उसने देखी, परन्तु शायद मामला समझ न सकी हो।

मैंने गरजकर पूछा, "जेन, मीरा की कितनी चिठिया आ चुकी हैं?"

वह मुख खोले ताकती रही। जरा चौंकी भी, होंठ हिले भी, परन्तु उत्तर न जाने कहां अटक गया। क्या अपराध का भान उसे हो गया?

"बोलो न!" मैं तड़पा।

"तीन," वह आहिस्ते से बोली।

"मुझे क्यों नहीं दी?"

"मैंने समझा............"

उसके बोल कण्ठ में अटककर रह गए। मैं बीच ही में बरस पड़ा, "तुमने समझा कि योंही चिट्ठियों को निगल जाने से तू मीरा को भी निगल जायगी? डायन कहीं की!"

"कुमार!"

उसके मुख से केवल यही निकला। हाथ से फूलों का गुच्छा छूट

पड़ा और वहीं फर्श पर बिखर गया। वह अपने कमरे में भाग गई व जाकर बिस्तर पर पड़ रही। मैं क्रोध के कारण कमरे में चक्कर काटने लगा।

मैं सोचता था कि इसने जीजी के सभी पत्र खोले होंगे, पढ़े होंगे, नेरा की मरणासन्न अवस्था का उनमें बयान होगा। सोचती होगी कि न हो इन पत्रों में थोड़ा एक दिन नेरा की मृत्यु का भी समाचार आजायगा। वही दे देगी। ओह, कितने हीन विचार हैं। कितने पतित।

इतने सुन्दर तन में इतना विषमय मन !

मैं मारे गुस्से व झल्लाहट के कमरे में चहलकदमी कर रहा था कि भ ला दोड़ा दौड़ा आया और बोला कि मेम साहब बेहोश पड़ी हैं।

मैं घबरा गया, परन्तु फिर भी सोचा कि यह सब नाटक है, त्रिया-चरित्र है। दौड़कर उनके कमरे में गया। वह पेट के बल पड़ी थी और सिर तकए से ढका था। मैंने तकिए को हटाया और उसे बांहों में समेटकर चित लिटाया। उसका सिर मेरी गोद में लटक गया।

तो क्या जेन चल बसी ?

भोला दौड़कर ठंडा जल लाया। मैंने पानी के छींटे जेन के मुख पर दिये। कुछ देर बाद उसकी आंखें खुलीं। वे बड़ी बड़ी मोहक आंखें जैसे कोई स्वप्न देखकर अलसाती हुई खुली हों और तुरंत बन्द भी होगईं।

मैं उसके बाल, उसका सिर, उसका भाल थपथपाता रहा, सहलाता रहा और वह चुपचाप पड़ी रही। थोड़ी देर में वह फिर बेहोश होगई।

क्या जेन न बचेगी ? उसने कुछ खा तो नहीं लिया ?

मैंने फिर पानी का छींटा दिया व उसने ज़रा देर में आंखें खोल दीं। मेरा मन घबराहट के कारण तड़पता रहा था। बराबर मन में एक ही प्रश्न उठता कि जेन ने कुछ खा तो नहीं लिया।

इस बार आंखें खुलते ही फिर मुंद गईं व फिर खुलीं। अब उसने करवट ले ली व अपना सिर मेरी गोद में गाड़कर औंधे मुख पड़ रही। अब मैंने समझा कि वह होश में है।

भोला ने भी समझा और वह कमरे से बाहर चला गया।

और मैं बैठे बैठे सोच रहा हूँ कि इस लेटने व वेनिस की झील के किनारे चादनी रात में बेंच पर मेरी गोद में लेटने में कितना अन्तर है।

तब स्वप्नों का सृजन हुआ था।

आज जेन के स्वप्न चूर हो रहे हैं।

याद आया, फ्रांस व इंग्लैण्ड के बीच जहाज का वह सफर जब मैं व जेन मिले थे— वह चमकती धूप, चमकता पानी, चमकते छींटे, ठंडी बयार, जेन के लहराते केश व विहंसती आखें।

कोयल की 'कुहू-कुहू' पास के पेड़ से सुनाई दी। मन ने कहा कि कितनी अर्थहीन है यह कूक।

जेन का सिर हिला, वक्ष हिले; लगा कि अब वह सिसक सिसककर रो रही है। मैंने फिर उसको बांहों में समेट, मुख फेर अपनी ओर कर लिया। वह मौन चित पड़ रही और आखों से अश्रु-जल बह चला। मैंने देखा कि मेरे कपड़े भी आसुओं से गीले हो रहे हैं; लगा कि आँधी पड़ी, कुछ देर से मौन रो रही थी।

मुझे छेड़ना, रोकना या चुप कराना ठीक न लगा। कौन सा मुख लेकर यह सब करता भी, सारे संकटों की जड़ में मैं ही तो था।

फिर ऐसे में जी भरकर रो लेना ही अच्छा होता है। मन की व्यथा आखों की राह बह जाती है; धुंआ बनने से तो पल-पल छीजने की नौबत आजाती है।

जेन ने फिर करवट बदल अपना सिर मेरे वक्ष में छिपा लिया और फूट फूट कर रोने लगी। मैं उसे मौन अपनी बाहों में थामे रहा और उसकी पीठ सहलाता रहा।

यह दशा काफी देर तक चली, मेरे नयन-कोर भी गीले हो गए, परन्तु आंसू निकले नहीं, बहे नहीं। भीतर जो ज्वालामुखी जल रहा था, जो बवण्डर चल रहा था उसमें सभी वाष्प बन उड़ गये।

अब वह कुछ शान्त हो चली, तो मैंने उसे वक्ष से अलग कर उसकी आंखें पोंछ दी, कपोल पोंछ दिए और एक हलका सा चुम्बन लिया।

कितनी शान्त व शीतल थी यह अनुभूति, जैसे किसी संगमरमर की प्रतिमा को कोई चूम ले।

जेन अब भी मेरी गोद में पड़ी थी, हिली नहीं। बड़े शान्त स्वर में बोली, "मेरी साध पूरी न हुई।"

ठीक ही तो कहती है, उसकी साध कहां पूरी हुई। कितने अरमान लेकर वह आई थी भारत; अमेरिका छोड़ा, योरुप छोड़ा, पेरिस में फ्रेंच का अध्ययन छोड़ा। सब को छोड़कर जिस स्वप्न को पकड़ने आई वही हाथ से फिसलकर चूर चूर होगया। मन की साध मन में ही मर गई।

जेन की साध कहा पूरी हुई!

मैंने आहिस्ते से पूछा, "कौन सी साध?"

"तुम्हारी बांहों में आंखें मूँद लेने की।"

मेरे चेहरे पर क्षीण मुस्कान नाच गई। मैंने कहा, "आखें मूंदे पड़ी तो थी अभी।"

"पर आंखें खुल जो गई!"

क्या उसके होंठों पर भी वह मुस्कान खेल गई है? नहीं, शायद मेरा भ्रम हो।

"तो फिर से मूंद लो।"

मैंने अपनी उंगलियों से उसकी बड़ी बड़ी आखें मूंदने का प्रयत्न किया। वह बोली, "काश, मुँद जातीं सदा के लिए!"

तो क्या यही उसकी साध थी? कितनी विषादमय यह लालसा है, कितनी दर्दीली?

नीरा भी तो चरम सुख की अनुभूति की घड़ियों में कुछ ऐसे ही स्वप्न संजो रही थी, कुछ ऐसी ही साध पूरी होने की कल्पना कर रही थी।

ये लड़कियां कितनी निराली हैं?

इनकी साध कितनी दर्दीली है?

इनकी व्यथा कितनी मोहक!

—oOo—

बाईसवां परिच्छेद

कुतुक की परी

उस दिन की घटना की प्रतिक्रिया को लेकर मैं जब भी सोचता हूँ, तो बड़ा आश्चर्य होता है। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता कि दिल व दिमाग की विचार-धारा में ऐसा परिवर्तन कैसे हुआ, कैसे हो सकता था!

मेरे मन पर निरंतर हावी रहने वाला तनाव घट चला। तापक्रम साधारण के आसपास उतर आया। मैं मन में कुछ कुछ शान्ति व स्वस्थता का अनुभव करने लगा। जेन अब पहले जैसी मीठी व प्यारी लगने लगी। हम लोग, लगता था, फिर से एक दूसरे के काफी निकट आगए। कभी कभी यों प्रतीत होता कि जैसे हमारे जीवन के आकाश में एक तूफान आया था सो अब चला गया, परन्तु जाते जाते पेड़ों की डालियां, पत्तियां, फल-फूल बहुत कुछ नुकसान कर गया; पर गया अब!

एक पेड़ लगभग उखड़कर पुनर्जीवन प्राप्त कर उठा व दूसरा धाराशायी पड़े पड़े भी नव-जीवन की आशा में मुस्कराने का प्रयत्न करने लगा।

ऐसा भला क्यों हुआ?

तीसरे पहर की चाय हम लोगों ने फिर पेड़-तले घास पर ली। सामने 'कॉसमॉस' के फूल खिले हुए थे। मधुमक्खियों व तितलियों के अतिरिक्त चींटे, चींटियां और कुछ और प्रकार की मक्खियां भी 'कॉसमॉस' का रूप-रस पीने में तल्लीन थीं। और वे कॉसमॉस थे कि रंग-बिरंगी कोमलता व मधुरता लिए खिले पड़ते थे।

क्या 'लुटेरे' व 'लुटे हुए' दोनों को इस व्यापार में बराबर रस मिल

रहा था।

जेन ने व मैंने एक साथ ही इस क्रिया को देखा व मुस्करा पड़े, कुछ बोले नहीं। उसने धीरे से कहा, "दूसरा प्याला ………।"

और आंखों आंखों में ही वह मुस्कराई, होंठ भी मुस्काए। मैं भी मुस्करा पड़ा और बोला, "हां, दूसरा प्याला।"

अब तो वह खिल गई। तुरंत बोली, "आप छोड़ दीजिए, मैं दूसरा प्याला बनाए देती हूं।"

और हम दोनों हंस पड़े। जिस बात पर, जिस नाम पर हम दोनों के बीच प्रतिरोध की दीवार खड़ी थी वह ढह गई। इसे उसने भी समझा व मैंने भी। वही बोली, "आपकी रानी ने यही तो कहा था। कहीं प्याला पटक न दें बिदुरा।"

मैं लगातार मुस्करा रहा था। नीरा का नाम व उसकी बातें हम दोनों के बीच कितनी सरल होती आ रही हैं, और कैसे!

जेन ने चाय का दूसरा प्याला मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, "उतने झगड़े तो यह न होगी।"

"कितनी?"

"जितनी नीरा बना पाती है।"

"पर झगड़े तो होती ही। हां, दूसरे प्रकार की। क्या सब झगड़ों का निदान हो सकता है? वे भिन्न भिन्न प्रकार की भी तो हो सकती हैं।"

जेन मुस्कराकर रह गई।

कहा 'नीरा का प्रेम' उतर गया जेन पर से। और मुझ पर से भी।

इसके इतने बाद ही तो पता है कि हम दोनों इतनी सरल, सहज गति से उसके बारे में बातें कर पाते हैं।

ओह, इस नाम के प्रेम ने हम दोनों को कितना सताया!

यह सोच ही रहा था और चाय का एक एक घूंट पी ही रहा था कि इतने में अचानक एक नाटू [illegible] व्यक्ति को बरामदे की कुर्सी पर बिठाकर [illegible] चला गया। उसके जाते ही मैंने पूछा, "क्या है, भोला? यह कौन

आदमी है ?"

"भइया, ई हैं एक बड़े भारी ओझा ।"

"ओझा ? इस जटा व गेरुआ में ? इनका यहां क्या काम ?"

इस समय जेन एकटक उस ओझा को देखे जा रही थी, उसकी आंखों में इतनी भोलीभाली उत्सुकता नाच रही थी जैसे भालू को देखकर बच्चों की आंखों में नाचती है।

भोला बोला, "भइया, भूल होय त माफ करिहउ। हम समझा तोह पर कौनों भूत के जोड़ है, यही से इनके बोलावा, तू तनिक इनके दिखाय दे, सब ठीक करि दी हैं, मेमो साहब के ऊ प्रेत परेशान करत है।"

जेन यहां आने पर भूत-प्रेत कुछ कुछ समझने लगी थी। भोला की बात से उसने भांप लिया। फिर तो हम दोनों इतना हंसे, इतना हंसे कि हंसने का कोई अंत न रहा। और भोला हक्का-बक्का हम दोनों का मुख ताकता रहा।

भोला क्या सोचता है कि हम लोगों पर भूत का फिर ज़ोर होगया ? भूत हमें हंसा रहा है ? कितना निराला भूत है यह ? कभी रुलाता है, कभी हंसाता है।

भोला को पूरा विश्वास है कि हम लोगों पर किसी प्रेत का प्रकोप है। उसने कई दिन तक हम लोगों को उल्टे-सीधे बोलते, चलते, बरतते देखा होगा; इधर-उधर चर्चा की होगी; नौकरों को न जाने क्या क्या समझाया होगा; कितनी जगह चक्कर काटने के बाद इस 'ओझा' का पता चलाया होगा; न जाने कितने पैसे के लोभ में ये महाशय, साहब के बंगले पर पधारे होंगे।

मैं यही सब सोच रहा था और भोला को डांटकर इस ओझा को भगाने वाला ही था कि जेन बोल पड़ी, "हां, भोला, तुम्हारा सवाल ठीक है, तुम उनको बुलाओ।"

और भोला चला गया इस ओझा को बुलाने। यही तो बात है कि अब भोला की हर बात मेम साहब मान लेती हैं, तभी तो वह जेन को इतना मानता-जानता है। भोला के पांव कितनी खुशी खुशी बराण्डे की

ओर बढ़ रहे हैं, जैसे उड़ रहे हों, धरती पर पड़ते ही न हों।

इस जेन की आंखों में कितनी शरारत नाच रही है। कल कितना रोई थी, आज कितना हंसे जा रही है! जीवन की यही गूढ़ पहेली तो कुछ समझ में नहीं आती।

मैंने नाराज़ होने का पूरा प्रयत्न करते हुए जेन से कहा, "यह क्या करती हो, जेन, इस आदमी को बुला क्यों लिया?"

"क्योंकि वह ओझा है; तुम्हारा 'भूत' उतारेगा और मुझे देखने का मज़ा मिलेगा।"

जेन को छोटी सी बच्चों की तरह चुहुल सूझ रही है।

"तो तुम समझती हो कि मुझ पर प्रेत सवार है?"

"और नहीं तो क्या! भोला कभी गलत सोच सकता है, तुम्हारे बारे में! वह बचपन से ही तुम्हारा नोकर है, तुम्हें खूब जानता है।" कहते कहते वह हंस पड़ी।

मैंने कहा, "भूत मुझ पर नहीं, तुम पर सवार है, जो दांत लग जाते हैं और बेहोश हो जाया करती हो।"

वह ज़रा सा झेंपी व फिर बोली, "तब तुम पर कोई चुड़ैल होगी" और हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

वे महाशय अब हमारे पास आरहे थे। वे आगे आगे और भोला पीछे पीछे। जेन धीरे से बोली, "लो अब पहले अपनी चुड़ैल उतरवा लो फिर......"

"फिर तुम्हारा भूत अपने आप उतर जायगा।"

हम फिर हंसी के एक फौवारे में नहा उठे। मैं समझ गया था कि जेन यह सब भोला का मन रखने के लिए कर रही है। वह कभी भोला का मन नहीं तोड़ती, जैसे भोला को भी वह मेरा एक आवश्यक अंग मानती हो। सोचा कि इन महाशय को कुछ दान-दक्षिणा तो देनी ही होगी, फिर भोला लाया है तो उसकी भी इज्ज़त का सवाल है, चलने दो इस नाटक को। जेन इनके कारण इतना हंस रही क्या यह कम है!

कभी तो मैं उसकी एक मुस्कान पर सारी दुनिया लुटा देने को तैयार था, आज इतना भी नहीं !

जब वे महाशय मेरे सामने आ हम दोनों को अभिवादन कर खड़े हो गए तो मैंने पूछा, "कहिए, महाराज, कैसे पधारना हुआ ?"

"बच्चा, सुना है कि इस बंगले में कुछ असंसारी जीवों का उपद्रव बढ़ गया है।"

जेन एकटक देखे जा रही है इस महाराज के गेरुए वस्त्र, सिर पर दस सेर का बालों का गट्ठर—जटाजूट कहिए — लम्बी दाढ़ी, लाल अंगारे सी बड़ी बड़ी आखें, उम्र चालीस से नीचे होगी परन्तु बातें साठ वर्ष के आदमी सी करते हैं। एक हाथ में चिमटा व दूसरे में कमण्डल भी है। उसमें बल भी अवश्य होगा। एक गेरुए वस्त्र का ही झोला भी कंधे से लटक रहा है।

मैंने चर्चा जारी रखी।

"आपको कैसे मालूम, महाराज ?"

"बच्चा, साधना से अन्तर्दृष्टि खुल जाती है और हम वह सब देख लेते हैं जो तुम नहीं देख पाते।"

"यह कोई जादू-टोना तो नहीं, महाराज ?"

"नहीं, बच्चा, तुम साधक होकर ऐसी बातें क्यों पूछते हो ?"

चकित होकर आंखें फाड़ मैंने पूछा, "मैं और साधक ? कैसे महाराज ?"

"किसी भी ध्येय की प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न किए जाते हैं उसी का नाम तो 'साधना' है। फिर तुम साधक हुए या नहीं ?"

आदमी तो समझदार लगता था, फिर इस भूत-प्रेत के चक्कर में कैसे फंस गया ? कहीं भूत-प्रेतों की योनि सत्य तो नहीं है ?

मैंने फिर इस दुविधा की स्थिति को चीरते हुए पूछा, "क्या आज्ञा है, महाराज ?"

"भीतर नहीं चलोगे, बच्चा ?"

मैंने जेन की ओर देखा। वह अभी भी मुस्कान व उत्सुकता के बीच झूल रही थी। उसने निगाहों के ही संकेत से बताया, 'यहीं'। मैंने झट कहा, "यहीं होने दीजिए, महाराज।"

ओझा कुछ असमंजस में दिखाई दिया। क्या सोच रहा है कि प्रेत का वास तो बंगले में है और हम लोग घास पर भगाने का प्रयत्न कर रहे हैं? परन्तु नहीं, प्रेत का निवास तो मेरे व जेन के भीतर है। अपनी विचार-शृंखला पर मैं स्वयं चकित हो मुस्करा पड़ा।

महाराज ने भोला को आग लाने का संकेत किया और वह आग लाने चला गया। जेन भी उठ पड़ी। मैंने पूछा, "कहां चलीं? रुको तो।" परन्तु वह न रुकी और कैमरा लेकर तुरंत उपस्थित होगई। उसने मेरा व महाराज का चित्र लिया।

● ● ● ● ● ●

मुझे याद आगई बरसों पहले की बात जब मैं केवल दस बरे का था। मुन्नी पन्नरवाले इमली के पेड़-तले अकेली दोपहरी में इमली चुनने के लिए गई थी और उसको सागर ने पकड़ लिया था। यह सागर भी कभी इमली के पेड़ पर इमली तोड़ने चढ़ा था, गिरकर मर गया और प्रेत होकर उसी पेड़ पर रहने लगा। जो कोई अकेले दोपहर में या रात को इमली तोड़ने आता उसे पकड़ लेता व खूब सताता।

मुन्नी को एक ओझा ने आसन पर बैठा, मंत्र पढ़, गुग्गुल व लोहबान का धुआं दिया व फिर झन्नाटेदार थप्पड़ सिर पर जमाये तो वह कहने लगी, "यह रोज इमली तोड़ने आती है, मैं इसे न छोड़ूँगा।"

तब ही मां हाथ जोड़, पुक्के रोने लगी, "नहीं नहीं, छोड़ दो, छोड़ दो, यह कभी न आएगी अब इमली-तले।"

"नहीं, यह मान नहीं सकती। इसकी जान अब लेकर ही रहूँगा।"

भूत के हठ को देखकर उस बचपन में भी मेरा रोष जाग उठा व मैंने कहा, "मैं इसे ठीक करूंगा। मारने से तो भूत भागता ही है।"

और, मैं मारने वाला ही था कि मन में आया, 'अरे, यह तो मैं मुन्नी को

ही मरम्मत कर डालूंगा, भूत को चोट भला लगेगी।' और रुक गया था। मुन्नी की मां की बड़ी आरज़ू व मिन्नत के बाद उस भूत ने छोड़ कर भागने का वायदा किया था और तब मुन्नी अपने होश में आई थी।

उसके बाद डर के मारे मुन्नी कभी भी उस पेड़-तले अकेली न जाती थी।

* * * * * *

खैर, आग आगई। भोला हम दोनों के लिए दो आसन भी लाया। हम दोनों बड़ी उत्सुकता के साथ आसनों पर बैठ गए। महाराज ने कुछ और मंत्र पढ़े। *गुग्गुल व लोहबान के धुएं की गंध वातावरण में छा* गई। मन्त्रों के निरंतर उच्चारण के साथ वे कमण्डल का जल हम दोनों पर छिड़के जा रहे थे। कुछ लाल फूल भी देवता पर चढ़ा रखे थे। देवता या प्रेत!

खैर, इस क्रिया का भी अंत हुआ। जेन ने फिर चित्र लिया। उसे खूब मजा आ रहा था, इसीलिए तो मैं भी इस कुकाण्ड को बर्दाश्त कर रहा था। कमण्डल का शेष जल भोला को दिया गया कि वह सारे बंगले में छिड़क दे, विशेषकर मेरे व जेन के बिस्तरों पर। महाराज ने दो तावीज़ें भी निकालीं। उनको लगातार बाँधे रहने से प्रेत कभी न सतायगा ऐसा उन्होंने आश्वासन दिया।

अंत में मैंने पूछा, "यह प्रेत कैसा था, महाराज?"

"बच्चा, तुम लोग दिल्ली गए थे?"

दिल्ली का नाम सुनते ही जेन ज़ोर से हंस पड़ी व फिर झट बोली, "हां, महाराज, हम दिल्ली गए थे।"

"वहां किसी कब्रगाह वगैरह की सैर की थी?"

"हाँ, हाँ महाराज, हम कुतुब गए थे।"

"यह कुतुब का ही अशरीरी जीव है।"

जेन की व मेरी हंसी का रुकना कितना मुश्किल हो रहा था सो हम ही जानते थे। वह झट बोली, "पर वह तो शरीरी थी, महाराज।"

"क्या !"

महाराज ने विस्मय में कहा ।

मैंने झट कहा, "वह देखिये, महाराज, भैया आपकी पूजा व विदाई का सामान लाया । अब कृपा हो ।"

और ये महाराज फिर से कुछ मंत्र पढ़ हम दोनों पर जल छिड़क विदा हुए।

उनके जाते ही हमारी हंसी का फौवारा छूट पड़ा । जेन थी कि हंसी के मारे लोट-पोट हो रही थी । मैं तो इस कुतूहल के अतिरिक्त जेन के खुश होने पर ही प्रसन्न हो रहा था । हंसी कुछ कम हुई तो बोली, "कुमार, तुम पर कुतुब की परी का वास है ।"

"और तुम पर किस जिन का वास है ?"

"सो तो सामने ही है ।"

और हम फिर हंस पड़े । वही फिर बोली, "लाओ, यह ताबीज तुम्हारी बांह में बांध दूं, नहीं तो रात को फिर सताएगी !"

हम दोनों के हंसने का अंत नहीं । मैं बार बार मना कर रहा हूं, परन्तु यह जेन है कि बच्चों का सा हठ पकड़ लेती है ।

जब वह किसी भी तरह न मानी तो मैंने बड़ी आरज़ू व मनौवल के बाद उसे ताबीज एक बार बांध ही लेने दिया ।

अब मैंने हठ किया कि दूसरी ताबीज उसे बांध दूं, परन्तु वह बोली, "मैं अपने जिन को भगाना नहीं चाहती, अतः ताबीज क्यों बांधूं ?"

हम फिर जोर से हंस पड़े । मैंने कहा, "और कहीं तुमको भी कुतुब की परी लग गई तो ?"

"तो लो, बांध दो ।"

और उसने सुन्दर सी गोरी बांह मेरे सामने फैला दी । इस कैसी बांह को देखते ही मन ने पुकारा, 'मैं चाहता हूं कि तुम्हारा हाथ चूम लूं ।'

'शॉकिंग न ।'

'कुफरिश ।'

इसकी भी कसक उठकर रह गई । मैंने उसकी बांह में वह ताबीज बांध दिया ।

तेईसवां परिच्छेद

ईर्ष्या का प्रभाव

दिन यों ही कटते रहे। पुराने पत्ते पेड़ों की डालियां छोड़ छोड़ धराशायी होते रहे और उनका स्थान नवीन, कोमल, लाल-लाल पत्ते लेते रहे। पत्तों की जड़ में फूल और फूलों को धकेलकर फल आते रहे। प्रकृति का क्रम ज्यों का त्यों जारी रहा, जैसे विद्रोही मानव से उसे कोई सरोकार न हो।

अंधेरा पाख गया और उजाला पाख आया। क्षण क्षण छीजने वाला चांद भी एक एक कला पर कदम रखता बढ़ने लगा—बढ़ने लगा सावन-भादों में गंगा के जल सा, किशोरी के यौवन सा। जाड़ा धीरे-धीरे घट चला। वसन्त की मादक बयार बहने लगी। दिन सुहावने होते और रातें पागल करने वाली।

मैं काफ़ी अच्छा व स्वस्थ हो चला। इधर मीरा के कई पत्र आए, परन्तु मैंने एक को भी न खोला। क्या खोलता? इतनी मुश्किल से तो भूत उतरा था, प्रेत से पीछा छूटा था। जेन ने भी पहले वाले तीनों पत्र लाकर बन्द ज्यों के त्यों मेरी मेज पर रख दिये, परन्तु वे वैसे ही पड़े रहे। जिनके लिए इतना तूफ़ान मचा उनके खोलने की इच्छा तक मर चली। अब मैं जेन के साथ चांदनी रात में कभी कभी विक्टोरिया मेमोरियल घूमने जाता और चांद के बरसाए अमृत में नहाकर दोनों लौटते। अनायास भाव से मीरा की भी हल्की सी चर्चा कर लेते।

एक दिन मैं जेन के साथ उस अमेरिकन डाक्टर—डा॰ जोन्स—के पास उन्हें अपने इलाज के लिए धन्यवाद देने गया। वे अलीपुर में

रहते थे, हमारे बंगले से लगभग डेढ़ मील दूर। बड़े प्रेम से मिले व तपाक के साथ। गोरे-चिट्टे जवान, मुझसे चार इंच ऊंचे, सोने की गोराई कुछ सफेदी लिए हुए, अवस्था यही तीस-बत्तीस की होगी।

मैंने उनको रात्रि-भोज के लिए निमंत्रण दिया जिसे उन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार किया। कभी कभी ऐसा लगता था कि वे अपना ध्यान विशेष रूप से जेन पर जमा रहे हैं और जेन है कि बार बार बचने का प्रयत्न कर रही है।

हो सकता है कि मेरा भ्रम-मात्र हो! मैं भी तो इन्सान हूं, इन्सान की सारी कमज़ोरियां मुझ में हैं। यदि मेरे भीतर बसने वाली ईर्ष्या ने उन निगाहों को यह अर्थ प्रदान किया हो तो क्या आश्चर्य!

वहां से लौटते समय जेन बड़ी प्रसन्न नज़र आई। वह धीरे धीरे कुछ गुनगुना भी रही थी। न जाने क्यों, मुझे यह अच्छा नहीं लगा। मैंने जेन को छेड़ा, "बड़ी खुश नज़र आती हो, जेन, क्या बात है?"

"तुम्हारे साथ जो हूं।"

"सो तो आते समय भी थी।"

उसने बड़ी बड़ी आंखें उठाकर मेरी ओर देखा व ज़रा घूरकर बोली, "सुनोगे?"

"और गुनगुना किस लिए रही हो?"

"नाराज़ तो न होगे?"

"होने लायक बात होगी तो ज़रूर होऊंगा।"

"ना मैं नहीं कहती, जाओ।"

"नहीं, जेन, तुम्हें कहना ही होगा।"

और मैंने उसकी बांह में चिकोटी काट ली। वह चिल्लाकर बोली, "अरे बाप रे, कुदरत की परी ने तुम्हें कितनी शैतानी सिखा दी!"

"हां, सिखा दी। अब बताओ क्या बात है?"

"अच्छा सुनो, तुमने डा० बोल्स को रात्रि-भोज का निमंत्रण दिया इसलिए।"

"इसमें कौन सी बड़ी बात है, निमंत्रण तो तुम भी दे सकती थीं।"

"पर तुम्हारी ओर से निमंत्रण की बात ही और है।"

मैं चुप रहा। थोड़ी दूर तक दोनों चुप रहे। मैं सोच रहा था कि जेन के मन में क्या है।

क्या जेन भी यही सोचती थी कि कुमार के मन में क्या है।

फिर मैंने छेड़ा, "यह डाक्टर तुम्हें कैसा लगता है, जेन?"

"बहुत अच्छा, और तुम्हें?"

मेरे चेहरे पर शायद त्योरियां चढ़ते चढ़ते रुक गईं। जेन ने कुछ देखा होगा। वह बोली, "बस, जलने लगे न?"

"और क्या, मैं ही तो *कुतुब पर से छलांग मारता हूं।*"

"कुतुब पर से न सही, आक्टरलोनी मोन्युमेंट पर से मार लो।"

हम दोनों हंस पड़े, परन्तु तन हंसा, मन क्या हंस सका? वहां पर एक कांटा रह रह कर हल्का सा चुभने लगा।

दोनों अमेरिकन हैं, दोनों जवान हैं, गोरे हैं, खूबसूरत हैं, कुंवारे हैं, धन व शिक्षा की कमी नहीं — अच्छे लगते ही हैं, बहुत अच्छे। और क्या चाहिए?

तो यह बात है! जेन मेरी दवा तो कर ही रही थी, अपनी दवा भी साथ साथ किए जा रही थी।

मुझे गम्भीर व मौन देख वही बोली, "क्यों, तावीज घर छोड़ आए हो न?"

हम दोनों मुस्कराए, फीकी मुस्कान। मैंने कहा, "क्या बात है, जेन?"

"कुतुब की परी का दौरा आता जान पड़ता है।"

"तुम पर?"

"नहीं, तुम पर।"

"चुप, शैतान कहीं की।"

बंगले पर पहुंचते ही 'पोर्टिको' में जेन को उतार मैं गाड़ी गैरेज में ले गया। लौटकर अपने कमरे में जो आया तो क्या देखता हूं कि

मेरी 'ड्रेसिंग टेबिल' पर तीन तस्वीरें 'स्टैण्ड' में लगी रखी हैं—बाईं ओर नीरा बैठी हुई मुझे संतरे की फांक दे रही है व मैं राजघाट की घास पर लेटा हूं; दाईं ओर कुतुब के लताकुंज की छाया में वह लेटी है व मैं उसे सेव दे रहा हूँ; मध्य में नृत्य करते समय नीरा झुककर जेन को प्यार कर रही है।

मैंने पहले बाईं ओर क्षण भर देखा, फिर दाहिनी ओर। मन का यंत्र बड़ी तेजी से चलने लगा। फिर मध्यवाली को देखा। लगा, जैसे वही तस्वीर हो जो आनन्द ने दिल्ली छोड़ने से पहले अंतिम संध्या को मुझे दिखाई थी।

जेन की जगह आनन्द खड़ा मालूम होने लगा। भान हुआ, जैसे नीरा झुककर आनन्द को चूम रही है। मेरा सिर चकराने लगा, धरती डोलने लगी। फिर से ध्यान से देखा। यह क्या!

लगा, जैसे यह नीरा नहीं डा० जोन्स है, जेन को प्यार कर रहा है। दोनों ही झांकियां चक्कर काटने लगीं। अन्त में घबराकर पसीने से तर होकर, मैंने हाथ से झटका मारा और एक ही झटके से तीनों तस्वीरें स्टैण्ड के साथ फर्श पर गिरकर चूर चूर होगईं। मैंने अपना माथा थाम लिया व ड्रेसिंग टेबल के साथ लगे स्टूल पर बैठ गया।

गिरने व टूटने की आवाज़ सुनकर जेन भागी हुई अपने कमरे से आई। वह शायद कपड़े बदल रही थी और बदल न पाई थी, अपने 'अण्डरवीयर्स' में ही थी।

उसने आते ही मेरा माथा पकड़ा। मैं झट से उठ खड़ा हुआ व दोनों हाथों से उसका गला धर दबोचा। ओह, मेरा चेहरा तब कितना भयानक हो गया था; ज़रा सी आइने में निगाह न पड़ती तो शायद जान भी न पाता। लाल आंखें कौड़ी सी निकली हुईं, ऐंठा हुआ चेहरा, किटकिटाते दांत, लगता था कि मैं ही प्रेत हूँ या हत्यारा। मैंने कहा, "आज इस हुस्न का ही अन्त कर दूंगा, जिस पर तुम्हें नाज़ है।"

शहीद के चेहरे पर बिखरने वाली दैवी मुस्कान के साथ वह

बोली, "कर दो, यही साध तो महीनों से संजो रही हूँ, पर तुमसे यह भी न होगा।"

अनजाने मेरे हाथ ढीले पड़ने लगे। मस्तिष्क के तो सारे पुर्जे रुँधे पड़े थे, न जाने कौन सी शक्ति यंत्र की भाँति सब कुछ चालित कर रही थी। मैंने धीरे धीरे उसे छोड़ दिया।

ज्यों ही मेरे हाथ ढीले पड़े व गिरे वह बोली, "बुजदिल!"

मैं चौंक पड़ा और पास ही पड़े पलंग पर धम्म से जा गिरा। आँखें मुँद गईं। पता नहीं इस अवस्था में कितनी देर पड़ा रहा।

जब होश में आया तो जेन की आधी गोद में अपना सिर पाया। आँखें खुलते ही जेन का आतंकित, दुःखी, भयभीत चेहरा दिखाई दिया और डा॰ जोन्स कुर्सी पर। मैंने फिर आँखें मूँद लीं।

चौबीसवां अध्याय

आसाम की ओर

मेरी गई-बीती बीमारी इस प्रकार फिर लौट आई। 'सेट-बैक' होगया। परन्तु पहली बीमारी में व इस में काफ़ी अन्तर था। अब तापक्रम १०३° न छूता था, ९९° और १०१° के बीच झूलता था। मन व मस्तिष्क में अब तूफ़ान न उठते, केवल ज्वार-भाटे आते। गुस्सा भी कम हो चला था।

आग शान्त हो रही थी।

मगर सब से बड़ा अन्तर तो मुझ में न आकर जेन में आगया था। वह मेरी देखभाल तो पूर्ववत् करती, परन्तु उसमें एक विचित्र रसहीनता आगई थी, निराला सूखापन, जैसे कोई नर्स अपनी ड्यूटी करती हो। न तो पहले जैसी आर्द्रता थी, न चाव। हाथ-पांव यन्त्रवत् काम करते, आंखें सूनी सूनी निगाहें लिए ताका करतीं, जैसे देखकर भी वे कुछ न देखती हों।

क्या जेन का प्रेम दम तोड़ रहा था?

क्या वहां नये प्रेम का उदय हो रहा था?

कौन जाने? कौन कहे?

पास रहते हुए भी वह न जाने कैसे दूर-दूर सी लगती। बातें वैसे ही कोमल, शान्त व मधुर स्वर में करती, परन्तु उनमें से न जाने कुछ खोया खोया सा लगता। उसके हर काम, हर बात, हर मुद्रा में से लगता कि एक जादू निकल गया है।

वह जादू क्या था?

मैं भी अनासक्त हो चला कुछ, क्यों ? काफी अनासक्त होगया। संसार के सारे व्यापार अर्थहीन व असार लगते। क्या जिस स्थिति को संत लोग घोर तपस्या के बाद प्राप्त करते हैं वह मुझे सहज ही प्राप्त हो गई थी ? प्रतीत होता जैसे वैर, क्रोध, ईर्ष्या, मोह, लोभ, प्रेम सभी पर विजय प्राप्त हो गई हो। मैं सबसे परे, सबसे मुक्त, अपने आपको पाने लगा।

मैं सोचता कि यदि 'यही संत-चरित्र' है तो वह है तो काफी 'नीरस' पर 'विशद गुण मय' कहां है ? वे गुण कहां छिपे हैं जिनकी चर्चा संत तुलसीदास ने की है ?

इस नीरस अनासक्ति से मेरा जी घबराने लगा। मैंने जरा अच्छा होते ही निश्चय किया कि आसाम जाकर अपने चाय के बाग देख आऊं। स्थान-परिवर्तन से मन भी बहलेगा और काम की देख भाल भी होगी।

जेन ने साथ चलने के लिए कई बार कहा, जोर भी दिया परन्तु मैंने स्वीकार न किया। उसने भी 'हठ' न किया, मान गई। मैंने चैन की सांस ली। परन्तु क्या यह स्थिति सचमुच अच्छी लगी मुझे ?

मैं चला जा रहा था आसाम के बागों में और वह। जेन.........।

कोई कहीं भी हो, जिसका जहां जी चाहे रहे, मेरी बला से। मैं चला आसाम।

इस बार मैंने निश्चय किया था, किसी को भी साथ न लेने का। भोला ने बहुत हठ किया कि कम से कम वह तो जरूर साथ चले, परन्तु मैंने इन्कार कर दिया। मुझे किसी की आवश्यकता न थी और न शायद किसी को मेरी। ऐसा लगता कि सारा संसार, संसार का हरेक प्राणी स्वयं अपने में मग्न है, और पूर्ण भी—पूर्ण शायद न भी हो परन्तु मग्न तो है ही, फिर मैं ही क्यों किसी के लिए सिर धुनता फिरूं ? क्यों ?

अपने 'सूनेपन' के साम्राज्य को लेकर मैं अत्यंत सूने स्थल में जाना चाहता था। जहां कोई मुझे छेड़े नहीं, पूछे नहीं, सताए नहीं, ललचाए नहीं।

परन्तु मैं भाग ही न रहा था। यह भागने की प्रवृत्ति भी इन्सान में निराली है। यह अपने स्नेही से, प्रिय जनों से, परिवार से भागना चाहता है, अपने ईश्वर से ही भागना चाहता है, भागता भी है, परन्तु क्या भाग सका है? विश्लेषण करने पर उसे पता चलता है कि वह निरंतर, प्रति पल, हर पल अपने से ही भागता रहता है। परन्तु यह क्या सम्भव है कि कोई अपने से भाग सके!

इस असम्भव की ही साधना में वह जीवन के हीरे जैसे अनमोल क्षणों को बिता देता है और भागते भागते जब थक जाता है तो फिर अपने ही स्वरूप के सामने पाकर हार मान, थक कर गिर जाता है व चूर चूर हो जाता है।

जो भी हो, मैं अपने निश्चय से टस से मस न हुआ। जेन व भोला ने मिलकर मेरा सामान बांधा। हवाई जहाज सवेरे आठ बजे जाता था।

सात बजे मैं लगभग चलने को तैयार था। सवेरे की चाय लेने के लिए भोला को भेजा कि जेन को बुला लाए। भोला ने आकर खबर दी कि जेन आराम कुर्सी पर झुकी पड़ी रो रही है।

हा पगली! जेन दिन पर दिन भारतीय होती जा रही है!

मैं उनके कमरे में गया, प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरा, उसकी आंखों के आंसू और भी तेज हो चले। पास बैठकर मैंने उसका सिर अपनी गोद में ले लिया व बच्चों सा थपथपाने लगा, अब तो उसका रहा-सहा धैर्य भी टूट गया। वह सिसकियां भरने लगी।

आंसुओं से भीले होकर न जाने कौन सी भाषा बोल रहे थे।

मैंने हठ भी किया कि जेन साथ चले परन्तु वह थी कि हिलने का नाम न लिया। न चली, न चली। भोला ने भी थोड़ा बहुत कहा-सुना परन्तु जेन ने एक न सुनी। आंसू बहाती रही, परन्तु बनी रही वहीं की वहीं।

हम दोनों ने चाय पी। उसके प्याले में उसके आंसू ढुलक पड़े उसने छोड़ दी। मैंने, कहा, "चाय अच्छी नहीं है, छोड़ो दूसरा प्याला बना दूं।"

वह क्षीण मुस्कान बिखेर कर दूसरा प्याला बनाने लगी। चाय पी हम दमदम हवाई अड्डे पर चल पड़े। बीस मिनट का रास्ता मौन ही कटा। मैं गाड़ी चला रहा था, वह बग़ल में बैठी थी, और भोला पीछे।

हवाई अड्डे पर विदा होते समय उसने जेब से एक गुलाब का अध-खिला फूल निकाल मेरे कोट के कॉलर में लगाया व धीरे धीरे बोली। बोलते समय मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर बोल रही थी व सिर नीचे किए, मेरी उंगलियां दबा व उमेठ रही थी जैसे घबराहट को इस प्रकार जीत रही हो।

"अकेले जा रहे हो, अपना ध्यान रखना।"

मैं मौन रहा, कुछ उत्तर देते न बना। भला क्या उत्तर देता? फिर वही बोली, ज़रा रुककर, "मुझे भूलने का प्रयत्न करना।"

मेरा मन मारे व्यथा के हाहाकार कर उठा। परन्तु वहां की जमी बर्फ की परत कोई साधारण न थी जो चिनगारी से पिघल जाती, मन को एक झटका लगा, कुछ हरकत हुई और फिर विषाद की काली चादर ज्यों की त्यों।

मैंने प्यार से जेन का भाल चूमा उसके कपोल थपथपाए व भोला को कहा, "भोला, मेम साहब का खयाल रखना भला।"

"*भइया, हम इनके अपनी आंख के पुतली में रखब।*"

और मैं जहाज़ में बैठने चल पड़ा।

जहाज़ के उड़ते ही मैंने खिड़की से झांक कर देखा कि जेन अपना

छोटा सा रंगीन रूमाल हिला रही है और भोला अब भी हाथ जोड़े है। मैंने भी जेब से रूमाल निकाल कर हिलाया। विदा की रस्म समाप्त हुई।

बड़े बड़े पेड़, बाग-बगीचे, मकान, नन्हे नन्हे घरौंदो जैसे लगने लगे। सड़कें रेखाएँ मात्र रह गईं, दौड़ती मोटरें बच्चों के खेलने वाली चाभी भरी मोटरों सी होगईं। इन्सान के गरूर से भरे व्यापार की यह 'लघुता' मुझे भायी। बड़ा तूफानी जीव है यह, न जाने अपने को क्या समझता है। इसके सारे प्रपंच कितने छोटे व हीन हैं।

इन्सान के प्रपंच व उनकी बस्ती से दूर, ऊपर आकाश में मुझे बहुत अच्छा लगा। एक विचित्र संतोष की सांस ली मैंने। आकाश में मंडराते बादल और धरती पर चेक डिज़ाइन की हरी चादर से धान के खेत सुहावने लगे। छोटी मोटी नदियां भूगोल पढ़ाए जाने के लिए मिट्टी के प्रतीक बनी गोल जैसी दिखाई दीं, जहां एक बड़ा ताल मानसरोवर का काम चला देता है।

क्या इन दृश्यों को देखने में भी मैं अपने को बहका ही रहा था?

उधर से ध्यान ज्यों ही हटा तो निगाह पड़ते मेरे रूमाल पर पड़ी। जेब का यह रूमाल नोरा की प्रीति-पताका है जिसे उसने परिचय की पहली संध्या को दिया था।

इसी रूमाल से तो मैंने जेन को विदाई दी है। भला जेन क्या समझेगी? वह इस रूमाल को पहचानती है, खूब पहचानती है।

और इसी रूमाल से मैंने उसके आंसू भी पोंछे आज सवेरे। जेन क्या सोचती होगी, क्या समझती होगी?

और उसके हाथ का रूमाल? वह तो वही रूमाल था जिसे मैंने पैरिस में उसे भेंट किया था, खरीदा था। वह कितनी प्रसन्न हुई थी उस दिन उस रूमाल को पाकर। और आज? आज उसी रूमाल से वह मुझे विदा दे रही थी।

क्या इस विदाई का इन रूमालों से कोई सम्बन्ध है? रूमाल कोई जानबूझ कर तो जेब में विदा के लिए रखता नहीं, फिर इतनी बे फिर

पैर की बात सोचने से लाभ ?

रूमाल को यथा स्थान ठीक से रखते रखते ध्यान कॉलर में लगे फूल पर जम गया। मैंने उस गुलाब की अधखिली कली को निकाला, पहले भर निगाह देखता रहा, कितनी कोमल है रंग में कैसा लावण्य है, पंखुड़ियाँ अभी आखें तक ठीक से न खोल पाई हैं, अधमुंदी हैं जैसे नींद से भरी पलकें किसी को झुकी पड़ती हों, मुंदी पड़ती हों।

मैंने उसे अब सूंघा। कितनी मीठी सुगंध है, गुलाब की कली की। रूप है, रस है, गंध है, लावण्य है, कोमलता है, तभी तो मुझे गुलाब पसन्द है, उसकी कली प्रिय है।

परन्तु क्या इतनी ही बात है उसकी प्रियता की ? नहीं उसकी जड़ में काटे भी तो हैं ? काटों के बीच यह कली पलती है, खिलती है, हंसती है, तब कहीं आकर वह मुझे भाती है। कितना कवित्वमय है इसका जीवन, इसका विकास !

याद आया बचपन में इन्हीं महीनों में हम फूल चुनने जाते थे। पलाश के फूल पीले पीले बासंती रंग के। उससे साड़ियां रंगी जाती थीं। फागुन चैत में भी सवेरे की हवा में एक हल्की सी ठंढक, एक मन गुदगुदाने वाली सिहरन तो रहती ही है। ऐसे ही सवेरे में मैं मुन्नी के साथ निकल जाता। आधे घंटे से लेकर घंटे भर तक हम फूल चुनते, जब तक उन पर हल्की सी ओस बनी रहती। धूप चढ़ते ही पलाश के काटे तन कर अड़ जाते व फूल चुनना दूभर हो जाता।

पलाश दो प्रकार के होते हैं, एक की मुठियों में काटे नहीं होते व दूसरे के काटे होते हैं। मैं कभी बिना काटे वाली पलाश का फूल न चुनता उसे मुन्नी के लिए छोड़ देता, स्वयं हमेशा काटे वाली ही मुठिया चुनता व उंगलियां मेरे अनाड़ीपन से लहू-लहूलुहान हो जातीं।

तब मुन्नी कितने प्यार से उन उंगलियों को अपने आंचल से पोंछ देती व उलाहना तथा खीझ भरी निगाहों से मुझे डांटती, तू कांटेदार कलियों को ही क्यों चुनता है मुन्नू !

"बिना कहे मानी निकली मदिरा मेरे लिए भी छोड़ देना हूँ।"

वह झुंझला उठी व बोली, "यह बात नहीं, तुझमें शैतानी बहुत है, इसी से तू कड़ी बातें सुनाता है।"

"हाँ तो क्या? मैं लड़का नहीं हूँ? तेरी तरह लड़की हूँ? छुईमुई!"

"बड़ा आया लड़का बनने! तेरी तरह के लड़के मैं इन कानी उंगली में रखती हूँ।" और वह अपनी कनिष्ठिका दिखाकर मेरी आंख के सामने कर दिखाती। मैं झट पकड़कर उसे जोर से उमेठ देता। वह 'हाई रे' करके चिल्ला पड़ती।

परन्तु क्या वह कभी मन से नाराज होती थी? मैं सोच रहा हूँ वह पलाश की कांटों-भरी कली जिसके ऊपर पाले पीले रेशम के तार से कोमल फूल के रेशे ताज की तरह दमकते रहते हैं और यह कांटों के भीतर छोई गुलाब की कली! मुन्नी! और मैं!

और मेरा का रूमान!

जाने यों कब तक मैं ऊब-चूब में पड़ा रहता यदि जहाज की 'होस्टेस' बांहों में ढेर सी पत्रिकाएं लादे मेरे सामने आ न उपस्थित होती। मैंने एक निगाह देखा। वह तो श्वेत साड़ी व छोटे से ऊंचे ऊंचे ब्लाउज में एक तेईस-चौबीस वर्ष की युवती थी। कोई आभूषण नहीं, ऊंचे सैण्डल, कटे हुए बाल, गोल गोल भरा हुआ मुख, बड़ी बड़ी आंखें, कुछ कुछ 'गीताबाली' से मिलती जुलती थी।

मैंने तुरंत कहा, "गुड मार्निंग।"

उसने मुस्कराकर प्रत्युत्तर दिया। उसे यों किसी यात्री का नमस्कार करना कुछ नया सा लगा व हल्का सा चौंक कर शान्त हो गई।

वह पत्रिकाओं के भार से, दोनों बांहों में भरी, उलझी हुई, यों मेरे पास झुकी थी और मेरी निगाह जो जरा सी उधर अटकी तो उसने झट कहा, "मैगज़ीन प्लीज।"

मैंने ऊपर ही 'फिल्म-फेयर' देखा व उठा लिया। शायद कुछ जल्दी व कुछ चोरी पकड़े जाने की घबराहट से चुनाव न कर सका। चलो छुट्टी

मिली, वह आगे बढ़ गई।

मैं यों ही फिल्म-फेयर के पन्ने उलटता रहा, फिल्म स्टारों की तसवीरें देखता रहा। सच पूछिए तो मेरा मन कहीं भी टिकता न था किसी काम में लगता न था। मनकी ऐसी उदासीन व उचटी उचटी स्थिति में मेरी आदत थी कि चीटियों की किसी माद के पास किसी टीले पर बैठकर उनका व्यापार देखना; चीनी या मैदा के किसी नन्हें से टुकड़े को उनका ढोकर ले जाना; रास्तेमें ही दूसरी को देकर लौट आना, मुख से मुख मिलाकर उनका बातें करना या कोई संवाद देना-लेना; यह सब मुझे अच्छा लगता व मैं घंटे घंटे भर तक चीटियों के संसार का निरिक्षण किया करता व सोचता कि क्या मानव के व्यापार चीटियों से बड़े हैं? या अधिक महत्वपूर्ण? दोनों में कितना साम्य है?

परन्तु इस जहाज में भला चीटियां कहां मिलती व उनकी माद? नीचे झांका तो किसी नदी में डोंगियों नावें बंधी पड़ी दिखाई दी, कितनी बड़ी बड़ी? बचपन में गांव का बढ़ई हमारे लिए लकड़ी की छोटी छोटी नावें बनाता जिन पर गुड्डे-गुड़िया उनकी सवारी, भूसा भरे या काठ के हाथी, घोड़े, बराती चढ़ा करते। वैसी ही दीखीं ये नावें। यही तो है मानव का व्यापार व मानव की महत्ता!

जब कहीं कुछ न मिला तो होस्टेस को ही लेकर सोचने लगा। वह अब हल्की हल्की ट्रे में प्रातःकाल का जलपान सबको दे रही थी। मैं पीछे की सीट पर था। वह सामनेवाली सीट से आरम्भकर एक एक यात्री को देती व दूसरे से पूछती जाती। हर बार उसे सामान लेकर जाना पड़ता जहाज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक व झट लौटना पड़ता। इसमें परिश्रम व अंग संचालन काफी होता। मैं यही देख रहा था व सोचता था कि इसका जीवन कितने बड़े श्रम का है; कच्ची नींद में अलसाई सवेरे सवेरे घोर अनिच्छा के साथ उठती होगी; बांहें दोनों फैला कर, सारा तन उमेठ कर अंगड़ाई लेती होगी; फिर मन मन भर के पान व नींद के भार से बोझिल पलकें उठाकर मुख हाथ धो तैयार होती होगी।

क्या कोई उसे एक प्याला चाय प्यार से देता होगा ! कौन जाने, बदनसीब !

और यहां आठ घंटे की ड्यूटी, नाना प्रकार के यात्री, रोज नए नए, सब को प्रसन्न रखना, कोई उल्टी-सीधी रिपोर्ट कर दे तो नौकरी खतरे में।

इतना भरा यौवन, ऐसा लावण्य, इतनी सौम्यता, कौड़ी के मोल लुटती है इस जहाज में, तिल तिल कर मिटती है, प्रतिक्षण, प्रतिपल, प्रतिदिन।

क्या कुछ फूल योंही बिखर जाने के लिए खिलते हैं !

मैं अपनी उधेड़-बुन में डूब उतरा रहा था कि वह मेरे पास आकर बोली, "नाश्ता शाकाहारी अथवा मांसाहारी लीजियेगा ?"

मैंने हल्का सा मुस्करा कर कहा, कुछ भी नहीं, धन्यवाद !"

वह वैसे ही शान्त स्वर में बोली, "चाय या कॉफ़ी ?"

मुझे इस प्रश्न की आशा न थी। इसलिए मैं फिल्म-फेयर के ऊपर की तसवीर देखने लगा था। इस प्रश्न पर मैंने सिर उठाकर पूछा, "यह आपकी तसवीर इन्होंने कैसे चुरा ली ?"

इसे कहते हैं सच्ची मुस्कान। आंखें चमकीं, गाल दमके, होंठ फड़के और लगा जैसे सारा तन क्षण भर को खिल पड़ा। वह जरा ज़ोर व आजिज़ी के साथ बोली, "मैंने कहा चाय या कॉफ़ी ?"

"काफ़ी।"

"काली या सफ़ेद ?"

"क्या ?"

मेरे चेहरे में तनाव आगया, बोल में तनाव आगया शायद आंखों में भी छागया हो। वह कुछ घबरा गई मेरी बदली हुई मुद्रा देखकर, बोली, "मुझे अफ़सोस है, काली या सफ़ेद ?"

मैंने अपने को सँभाला व संयत स्वर में बोला, "सफ़ेद।"

वह चली गई और मैं दुहराता रहा काली या सफ़ेद। वह कब कॉफ़ी लाकर मेरे हाथ में रख गई मैं जान न सका। धन्यवाद भी देना शायद

भूल गया। प्याले में पड़ी हुई कॉफ़ी को चम्मच से चलाने लगा, तो बस देर तक चलाता ही रहा। ऐसा लगता कि जैसे प्याले में कभी नीरा नाचती है, कभी जेन, कभी दोनों—कुतुब पर नाचती थीं। जेन-नीरा नीरा-जेन।

ज़रा देर में वह आई व भरा प्याला देख बोली, "यह तो ठंडा हो गया होगा, दूसरा प्याला बनाए देती हूं।" और हाथ से प्याला लेकर चली गई।

मैं अपने में ही खो गया। जब वह दूसरा प्याला लेकर आई तो मैंने अपने मुख से निकलते सुना, "धन्यवाद।"

पचीसवां परिच्छेद

शीला से परिचय

हवाई-अड्डे पर मि. जैक्सन व मिसेज़ जैक्सन मिलीं। गत क्रिसमस में इनकी शादी हुई और ये उड़ आए यहां पर। मि. जैक्सन लगभग २५-२६ वर्ष के इकहरे बदन के जवान हैं, इंजीनियर हैं व चाय की 'स्टेट' चलाने में बड़े पटु हैं।

मिसेज़ जैक्सन के बारे में जितना कह सकूं थोड़ा है। बड़ी खूबसूरती पाई है। इकहरा पर पुष्ट शरीर, बड़ी बड़ी आंखें, पतले ला रसीले होंठ, भरे भरे कपोल, सुनहरे केश, उभरती-कांपती छाती, र रह कर एक विचित्र प्रकार से सारे तन को हिलोर देती हुई। बस कु न पूछिए। परिचय के साथ ही बड़े तपाक से उन्होंने हाथ मिलाया। मैं मुस्कराते हुए कहा, "नव वधू से मिलकर प्रसन्नता हुई। बधाई व भार में स्वागत भी।" वे दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

मि. जैक्सन ने मेरा सामान सहेजा तब तक मैं खड़े-खड़े मिसे जैक्सन से वहां की जलवायु के बारे में बातें करता रहा।

धूप ज़रा तेज़ हो गई थी इसलिए मिसेज़ जैक्सन ने स्वेटर तो निकाल फेंका था, रह गया था उनका स्वच्छ धवल, जालीदार खुले गले का ब्लाउज़, लम्बी गोरी गोल गोल बांहें भी तो खुली ही थीं। सजीव स्वर्ण रह रह कर भीनी भीनी जालियों से दमक उठता था।

उनकी टांगें तो क्या थीं सचमुच कोमल गोल कदली खम्भ थीं, परन्तु हरी न होकर सुनहरी थीं। मेरा ध्यान उधर गया तो उन्होंने भी मेरी निगाह का पीछा किया। मैंने झट कहा, "मच्छर बहुत हैं क्या!".

वे बोलीं, "देश ही मच्छरों का है !"

"नहीं, खूबसूरत मेहमान का मीठा खून वे पहचानते हैं !"

"तो सावधान रहिएगा।"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। सचमुच दो-तीन जगह मच्छरों ने उनकी पिंडलियों पर अपनी शरारतों के चिन्ह अंकित कर दिए थे।

मिसेज़ जैक्सन को शायद धूप कुछ तेज लगी या क्या बात थी कि उन्होंने अपनी दोनों बांहों को ऊपर उठाकर अंगड़ाई ली, फिर पीछे थोड़ा सा मेड़कर शान्त हुई। अंगड़ाई में निखरते उनके उभार को देखकर मैं ज़रा सा चौंका व निगाहों को दूर की पहाड़ियों पर गड़ा लिया। फिर झट से हम दोनों की निगाहें मिलीं तो उनके होंठों व आंखों में मुस्कान भरी पड़ी थी। मैं भी मुस्करा उठा।

उन्होंने झट से सुनहरा सिगरेट केस निकाला व मेरे सामने बढ़ा दिया मैं ज़रा सा ठिठका, झिझका, तब तक उनकी निगाहों से निगाह मिली और वे बड़ी अपील के साथ उन्हीं की राह कह गईं, "लीजिए न, इतने से भी इन्कार !"

मैंने सिगरेट ले ली। जिन्दगी की पहली सिगरेट। नीरा व जेन के प्यार के बीच कुचलते-तड़पते मन ने कितनी बार सोचा था सिगरेट या सुरट या सिगार में अपने को भुलाने का, खोने का। न हो तो केवल बहकाने को ही सही। पर कभी ऐसा कर न सका। न जाने कौन सी रुकावट, कैसी झिझक रोक देती थी, फिर भय भी तो था कि धुंआ बर्दाश्त न होगा, खांसी आजायगी, लाभ !

परन्तु आज जब इस मन से धर्म, संस्कार, विचार, पाप-पुण्य, लाभ हानी, सभी प्यार की विदाई के साथ विदा ले रहे थे तो मुझे कुछ भी करने व न करने में अन्तर नहीं लगा। सिगरेट पीने व न पीने की बात दोनों ही अर्थहीन लगी, बल्कि न पीना भी एक ढोंग लगा, न पीने से प्राप्त संतोष दंभ सा जान पड़ा। मानव की किसी भी प्रकार की हेकड़ी से मुझे नफरत लगी।

चुपचाप सिगरेट ले लिया। मिसेज़ बैकमन ने एक सिगरेट अपने भी पतले, खूबसूरत होंठों के बीच दबा लिया व 'लाइटर' से मेरी सिगरेट जलाई और फिर अपनी।

सामान सब आगया था। हम गाड़ी में बैठे। मि. बैकमन चला रहे थे। हम दोनों पीछे बैठे थे। छोटी छोटी पहाड़ियों के बीच पतले मार्ग में हमारी गाड़ी जारही थी और हरे हरे बांस व कास हमारा स्वागत कर रहे थे। इस स्थान के रम्य दृश्यों ने मन को कुछ शान्ति दी। चाय के खेत व सिरिस के लम्बे लम्बे पेड़ भी भले लगे। छोटी छोटी नदियों पर हल्के हल्के पुल भी सुहावने लगे।

मैं इन दृश्यों के बीच एकाएक अकेला हो गया। भूल गया मि. बैकमन को, भूल गया मिसेज़ बैकमन को। दूर दूर पर फैली लुशाई व मनिपुर की पहाड़ियों में न जाने क्या खोजने लगा, पास के बांस व कास भी खो गए। हाथ की सिगरेट जलती रही, पतली रेखा टेढ़ी मेढ़ी धुंए की बनती रही और मेरी निगाहें उन पहाड़ियों में कुछ खोजती रहीं, न जाने क्या!

शायद मेरा ध्यान तोड़ने के लिए ही उन्होंने पूछा, "यह स्थान कैसा लगता है?"

"अति सुन्दर।"

"क्या सुन्दर लगा?"

"सब कुछ।"

'सब कुछ।' पर ज़रा सा ज़ोर पड़ गया। हम दोनों मुस्कराए। फिर वे ही बोलीं, "आपकी सिगरेट तो यों ही जलकर समाप्त हो गई।"

"ज़िन्दगी यों ही जलकर समाप्त हो रही है।"

क्या मेरे चेहरे पर कोई व्यथा भर गई यह कहते कहते? पता नहीं, परन्तु मिसेज़ बैकमन तो एकाएक गंभीर व दुःखी हो गईं। ओह, मैंने क्या कह डाला, क्या कर डाला! क्या मेरा काम यही है? हर हंसती कली को रुलाना, हर खिलती कली को मसलना, हर मुस्कान को आंसू में

हो गया था। यहां के शान्त वातावरण में मेरे एकाकीपन तथा सूनेपन ने पूरी तरह दबोच लिया व मैंने इस गढ़ की किलेबन्दी भी अच्छी तरह से कर डाली।

कभी कभी इस पत्थर के विशाल, अंधेरे, सुनसान किले में निर्मल प्रेमघन—अब सीधा कहूँ—यही उनका नाम था— फाटक खोलकर आ घुसतीं। जैसे काले घने बादलों में बिजली कौंध जाय उसी प्रकार मेरे मन के इस अंधेरे किले में वे एक लौ की तरह—प्रकाश रेखा की तरह चमक जातीं। परन्तु इससे भला क्या होना था? प्रेत या परी की तरह उस क्षणिक प्रकाश में उन्हीं का मुख दीख जाता और फिर वही दुर्भेद्य अंधकार जिस में मेरा व्यक्तित्व भयानक विशाल प्रेत सा वास करता था। इस किले में किसी भी प्रकार का प्रकाश तथा किसी का भी आवागमन मना था।

क्या मैं किसी साधना में लीन था?

कैसी साधना? कहां की साधना? कितने शौक से धरती और आकाश के सबसे बड़े कलाकारों ने, कारीगरों ने यह खूबसूरत मंदिर बनाया था — श्वेत संगमरमर का मंदिर—जिस पर स्वर्ण-कलश सूर्य की किरणों में चमकते दमकते थे। चादनी रातों में अमृत से नहाए इस मंदिर की शोभा नैसर्गिक हो जाती थी।

हीरे मोती व पुखराज से जड़ी सुन्दर, सजीव प्रतिमा की प्रतिष्ठा भी इस मंदिर में न जाने कब, चुपके से, बिना किसी घंटा-घड़ियाल के हो गई। मंदिर जगमगा उठा। उसकी शोभा दस गुनी, सौ गुनी, हजार गुनी बढ़ गई। मंदिर की ही प्राण प्रतिष्ठा हो गई, उसे नव जीवन मिला, वह विहंस पड़ा, उसकी मुस्कान में सारा जग मुस्करा उठा।

पुजारी के आनन्द का सचमुच कोई अन्त न रहा। रात-दिन वह . मन-मंदिर की देवी की अर्चना में लीन रहता। सोते-जागते देवी ,, तन में, मन में, नयन में बसा रहता। बाल-रवि की पहली के साथ वह अलसाई आखों से पलकें उठा निहारता तो देवी का

दर्शन कर निहाल हो जाता, आनन्द में नहा उठता, फिर सारे दिन वही ध्यान, वही अर्चना, — और कोई भी तो न रुचता। धरती की हर शय में उसे प्रीत की एक डोर बंधी मिलती, एक जादू का ताना-बाना बुना मिलता।

पुजारी बाग में फूल चुनने जाता, देवी के लिए तो, फूल मुस्कराते, कलियां ठिठोली करतीं, पवन छेड़ता, ओस के कण मन में आर्द्रता भर देते।

यों ही क्रम चलता रहा पुजारी सब कुछ भूल गया देवी के ध्यान में; तन भूला, जग भूला, सारा संसार ही भूल गया!

साधना उस सीमा को पहुंच गई कि अब उसे देवी के दर्शन केवल मंदिर में न होते, बल्कि प्रातः रवि की अरुणमय किरणों में उसकी प्रीति के तीर चुभते, मन्द पवन के झोंकों में उसे देवी के वरद हस्त के स्पर्श का भान होता, चाद की रुपहली चादनी में नहाकर देवी की प्रीत में स्नान का भान करता, चाद की शीतल चमक में उसे देवी की मुस्कान का भ्रम होता।

और एक दिन जब थका-मादा सूर्य रजनी की काली काली लटों में मुंह छिपाकर सो गया तो पुजारी फूलों की डलिया भरे संध्या की आरती के लिए मंदिर में आया।

पर यह क्या! मंदिर सूना पड़ा था, प्रतिमा गायब थी। देवी अंतर्धान हो गई, लोप हो गई; मंदिर सूना-सूना, सांय सांय, पुजारी पर वज्र टूट पड़ा, सहस्रों बिजलियां एक साथ कड़क उठीं, आकाश गरज उठा, धरती डोल गई, मंदिर की दिवारें-गुम्बज चरमरा उठे, भूचाल आ गया।

पुजारी ने आंखें मूंद ली, माथा पकड़ कर बैठ गया। कितनी देर इस अचेतन दशा में पड़ा रहा, कौन जाने!

और अब!

अब उसने मंदिर के सारे दीप बुझा दिए, हर झरोखे-खिड़की को

मूंद दिया, विशाल मंदिर में घोर अंधकार छा गया। सूरज की धूप, चांद की चांदनी व पवन के झोंकों की वहां पहुंच नहीं, वहां चिड़ियों की चहक नहीं, फूलों की मुस्कान नहीं, घंटा-घड़ियाल, शहनाई की माधुरी नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं, किसी की पहुंच नहीं।

और उसके मध्य में पुजारी स्वयं प्रेत की तरह वास करता है। अंधेरे में टटोलता था, पहले प्रतिमा को पाने के लिए, अब वह भी नहीं करता, कुछ भी नहीं।

अंधकार, निविड़ अंधकार, घोर अंधेरे में उसका निवास है अब भी प्रातःकाल सूर्य की रागभरी सुनहरी किरणें सहस्रों जन-मन को प्रीत की पिचकारी मारती हैं, अब भी कलियां भौंरों को छेड़ती हैं, रिझाती हैं, अब भी पवन डालियों को झकझोरता फिरता है, अब भी चांद सरिता की चंचल लहरों से छेड़खानी करता है, पर पुजारी को इससे क्या?

कोयल कूकती है, कूके; मोर नाचता है, नाचे; पपीहा स्वाती-घन पर अघाता है, अघाय; चकोर आग खाता है, आग खाय; चांदनी छिए; पुजारी को इससे क्या?

उसका संसार लुट गया उसकी देवी उससे रूठ कर अंतर्धान हो हो गई। वह भी मानव लोक देवी का देवलोक छोड़कर प्रेत-लोक का वासी बन गया, और इतने भव्य मंदिर को प्रेत का बसेरा बना डाला।

क्या यह साधना थी?

क्या इसी का नाम साधना है?

● ● ● ● ● ●

मेरे दैनिक कार्य-क्रम में प्रति दिन चार बजे शीला के साथ चाय पीकर घूमने निकलना था। हम तीसरे पहर की चाय अपने अहाते की मौलश्री के पेड़ के नीचे लेते। आम के नीचे तो यह सम्भव था नहीं क्योंकि इतने बौर आये थे कि उन पर चींटी, चिउंटे, मारे, मक्खियों की बराबर भीड़ लगी रहती और वे टपक कर सिर पर, बालों में, मेज पर, चाय में पड़ जातीं। एक दिन प्रयत्न किया गया था, परन्तु सफलता न

मिली। मिठास के पीछे सत्र का यों पिल पड़ना देखकर मैं व शीला दोनों मुस्करा उठे।

हम दोनों चाय के खेतों के बीच से पतली सड़क से दूर दूर निकल जाते। सिरिस के पत्र-हीन वृक्षों को खड़ा देख मुझे एक विचित्र संतोष होता। बागों के अंत में पहाड़ियां थीं जिनके नीचे से एक नन्हीं सी दुबली-पतली सरिता फुर-फुर करके बहती थी। उसमें बड़े ही चिकने व सुडौल पत्थर होते।

हम दोनों वहां तक जाते। एक शिला-खण्ड पर बैठकर सूर्यास्त की सुषमा निहारते। मुझे अब डूबता सूर्य अच्छा लगता परन्तु उस में से कोई अर्थ, कोई भाव, कोई भावना न निकलती।

कभी कभी यों ही बातें करते जाते व पत्थर के नन्हे नन्हे गोल गोल टुकड़ों को जल में फेंकते जाते। शीला के साथ अब मैं कभी कभी सिगरेट पी लेता, परन्तु पीता तो क्या बहुधा यों ही जल कर समाप्त हो जाती और तब फेंक देता, पाव—तले बहती सरिता के जल में। जलती सिगरेट की आग बुझ जाती, धुआं शान्त हो जाता शीतल जल में पड़ते ही। परन्तु मेरी आग कौन शान्त करे!

मेरा धुंआ कौन शान्त करे!

वह शीतल जलभरी सरिता कहां है! कहां!

एक दिन हम दोनों चाय के बाद जब घूमने निकले तो एक स्थान पर एक घेरे में कुछ स्त्रियों को पत्थर तोड़ते देखा, वे ही गोल गोल चिकने पत्थर। उन पत्थरों को छोटी छोटी हथौड़ियों से ये स्त्रियां तोड़ रही थीं छोटे छोटे टुकड़ों में। ये टुकड़े शायद कहीं सड़क पर बिछाये जाते या मकान बनाने में काम आते।

इन पहाड़ी स्त्रियों द्वारा पत्थर का सीना तोड़ना इतनी छोटी छोटी हथौड़ियों से मुझे कुछ अजीब सा लगा। मैंने शीला से पूछा, "यह काम पुरुष क्यों नहीं करते!"

"चिकने पत्थरों का सीना उन से न टूटेगा।" कहकर वह स्वयं

मुस्करा उठी। मैं भी क्षीण मुस्करा कर रह गया। वे स्त्रियां भी हम दोनों को घूर घूर कर देखतीं व हथौड़िया चलाती जाती थीं। उनमें अधिकतर तो नव-जवान लड़कियां ही थीं। काम परिश्रम का था।

उनमें एक बड़ी स्वस्थ, मांसल, गोरी लड़की को देखकर मैं दंग रह गया। इतनी सुन्दर बनावट, बड़ी बड़ी आंखें, सुडौल शरीर और पत्थर तोड़ने में एकदम व्यस्त!

पर यह क्या! उसके दोनों कपोलों पर दो लम्बी लम्बी काली काली मोटी रेखाएं, यह तो जलने का निशान है, दागने के चिन्ह हैं, यह भला कैसे हुआ!

मैंने कौतूहलवश शीला से पूछा। वह बोली, "इसकी भी एक लम्बी कहानी है, मि. कुमार। यह खड़िया जाति की लड़की है। खड़िया यहां की एक पहाड़ी जाति है। इसका बाप यहीं लेबरलाइन्स में बहुत दिनों से रहता है और चाय के बाग में काम करता है, इसकी मां भी जब थी तो यही काम करती थी। यह लड़की यहीं पैदा हुई, यहीं पली, यहीं बढ़ी।

"मां तो जन्म के तीन साल बाद ही इस दुनिया से चल बसी। हां, बाप ने मां का भी प्यार समेट कर बड़े लाड़-प्यार के साथ इसे पाला-पोसा व बड़ा किया। मारे दुलार के यह लड़की मनमानी व ज़िद्दी हो गई। कुछ बड़ी होते ही इसने श्रमिकों के लड़के-लड़कियों पर रोब गांठना शुरू कर दिया व स्वभावतः 'रानी' बनकर उन पर शासन चलाने लगी।

"यह कली धीरे धीरे बढ़कर फूल बनने लगी, उच्छृंखलता बढ़ती गई, ज़िद, मनमानीपन व शासन की भावना भी बाढ़ की तरह बढ़ती रही। यह सब पर शासन चलाती उस पर कोई शासन न कर पाता। उसका बाप भी नहीं।

"गत वर्ष यहां एक उड़िया मिस्त्री आया। बाईस-तेईस वर्ष का जवान, सजधज पर स्वस्थ, मिडिल स्कूल तक पढ़ा हुआ, शौकीन। दोनों [illegible] मिले निगाहें, टकराईं व झुक गईं। इसका शासन, [illegible] भी [illegible] व [illegible] भी गया! चाय के खेतों, नदी के कछारों व पहाड़ियों के झुरमुट में

इनका प्रेम पलने लगा, बढ़ने लगा, रोज़ रोज़ नई करवटें लेने लगा।

"धीरे धीरे काना-फुसी होने लगी। बात खड़िया जाति के पंचों तक पहुँची। तुरंत पंचायत की बैठक हुई। दोनों की पुकार हुई। दोस्तों की सलाह से मिस्त्री ने इसे भाग जाने की सलाह दी। दोनों कहीं और चले जाएँ व शादी कर लें, परन्तु यह लड़की तो शेरनी की तरह तन गई।"

"तुमने शेरनी देखी है, शोला ?" कहकर मैं मुस्कराया और वह भी मुस्कराई।

बोली, "हां चिड़ियाघर में! खुली शेरनी तो नहीं देखी, इसी को।"

"अच्छा, फिर क्या हुआ ?"

"हुआ क्या ? इसने पंचायत के सामने सब कुछ सच सच बता दिया। बाप कहता रहा कि वह झूठ बोल दे, कहीं भाग जाय, पर इस छोकरी ने दोनों में से एक भी न किया। झूठ से भी इन्कार, भाग जाने से भी इन्कार। बोली, 'न तो मैंने कोई गलती की है, न पाप, हम दोनों ने प्रेम किया है, हमारी शादी कर दो।'

"मगर आप के देश के पंच भी तो निराले हैं। फ़ैसला दिया कि इस छोकरी ने एक उड़िया को प्यार करके जाति की नाक कटवा डाली है इसलिए, इसे छः स्थानों पर गरम लोहे से दाग दिया जाय—दोनों कपोल, दोनों वक्ष व दोनों रानें!"

मैं चौंक पड़ा। इतना विभत्स फ़ैसला! मेरी धमनियों का रक्त खौलने लगा। नसें तन गईं। मैंने इतना ही पूछा, "सचमुच ?"

"और क्या, मि. जैक्सन ने एक दिन सारी बातें मुझे बताईं।"

"तो क्या फ़ैसले पर अमल भी हो गया ?"

"देखते नहीं ? रात का समय था। तुरंत आग जलाई गई। लोहे की छड़ गरम की गई, और पंचायत के सामने इसको छः स्थान पर दाग़ा गया। यह छोकरी है कि बेहोश हो गई पर मुख से 'उफ़' न निकाला।"

मैं स्तम्भित रह गया, इस क्रूर-कर्म पर, इस भयानक सज़ा पर, इस सहन शक्ति पर। प्रेम में इतनी शक्ति ?

जी में आया कि अभी लौटकर इस देवी के सामने घुटने टेक दूं, सिर झुका दूं। परन्तु हम तो नदी तीर पहुंच चुके थे। बदस्तूर शिला खण्ड पर बैठ गए। मेरा मन एक विचित्र तूफान के बीच पड़ गया था। मैंने पूछा, "पुलिस ने कुछ भी न किया?"

"आपके देश की पुलिस भी तो निराली है। मि. जैक्सन ने वहां के पुलिस सुपिन्टेंडेंट को खबर दी। पुलिस आई, पंच हिरासत में ले लिए गए, परन्तु कुछ जांच पड़ताल करके सारा मामला ठण्डा हो गया।

"पंचों ने पुलिस को खुश कर दिया होगा?"

"सुनती तो ऐसा ही हूं।"

"और वह लड़की अभी भी जीवित है?"

"जी हां, जीवित है और गोल गोल चिकने सख्त पत्थरों का सीना तोड़ रही है।"

"तुम ठीक कहती हो, शीला, पत्थरों का सीना वे ही तोड़ सकती हैं।"

हम दोनों मुस्कराकर रह गए।

छब्बीस परिच्छेद

रुसिया 'जाने'

नदी तीर से हम दोनो मौन, उदास मन लौटे। इस भयानक घटना ने मेरे हृदय को झकझोर दिया था। वहां एक आंधी आगई थी, एक तूफान चल रहा था। मानव की मान्यताओं को लेकर एक भूकम्प आगया था। जंगल की हरिणी ने सभ्यता व समाज के शेर को ललकारा था चुनौती दी थी।

और मैं सोचता प्रेम की अंतर्निहित शक्तियों को, क्षमता को, धैर्य को, शौर्य को। इस वन-बालिका के पास कुछ भी तो न था, न धन, न ऐश्वर्य, न शिक्षा, न समाज में मान, न धर्म, न संस्कार। और उसने इन सबको ललकारा, युद्ध किया, और पछाड़ा भी, चाहे घायल बुरी तरह क्यों न हो गई।

कभी मन में आता कि उसके झोंपड़े में चलूं, देखूं क्या करती है। इतने बड़े त्याग व तपन के बाद इन युगल-प्रेमियों की साँझें कैसी बीतती हैं। कभी मन सोचता कि यदि कहीं उसके झोंपड़े में जाकर उसकी पद-रज अपने माथे पर लगाऊं तो? किन्तु पद व मर्यादा की रस्सियों में जकड़ा, भुलसा कायर, सभ्य मानव क्या कुछ मनमानी कर पाता है? यदि मैं ऐसा कर बैठता तो आसाम के सारे चाय-क्षेत्र में मेरी ही 'कहानी' एक चर्चा का विषय बन जाती।

'काश, मुझ में इस लड़की के बराबर साहस होता, शक्ति होती, प्रेम-बल होता।'

अब तक हम दोनों बंगले पर लौट कर आए त्रयोदशी का चांद

आकाश में पूरी गरिमा के साथ मुस्करा रहा था, सिरिस के ऊंचे ऊंचे पत्र-हीन पेड़ों की डालियों के बीच से। परन्तु यहां तो दूसरी ही आग लगी थी। एक चांद को समाज के राहु-केतु ने मिलकर ग्रसा था। मैंने बंगले में घुसने से पहले एक बार निगाह भर कर चांद को देखा और लगा उसी खसिया लड़की का चमकता, दमकता चेहरा है, जिस पर गरम लोहे के दाग-निशान पड़े हैं, और यदि यह 'नीरा' का चेहरा हुआ तो!

आग लग गई तन में, मन में!

मंदिर में प्रकाश भी हुआ तो स्नेह-दीप से नहीं, बल्कि आग के धधकते शोलों से, छत व दीवारें, कंगूरें सभी जल-बल कर, गल-गल कर, पिघल-पिघल कर गिरने लगे।

पुजारी की एक मात्र अभिलाषा है, इन शोलों के बीच होम हो जाने की। वह इसी दानवी साधना का, तप का इच्छुक है।

आज रात्रि के भोजन में मैं शामिल न हुआ। सीधे अपने कमरे में चला गया व नौकर से खबर भेज दी कि मैं कुछ अस्वस्थ हूं, डाक्टर की आवश्यकता नहीं। मुझे छेड़ा न जाय।

मैंने कमरा बन्द कर लिया व बक्स खोल डाला। कपड़ों की ढेरी के बीच से मैंने वह एल्बम ढूंढना आरम्भ किया जिसे जेन ने मीरा की मदद से देहली में तैयार किया था।

बराबर मन में आता कि कहीं जेन ने न रखा हो तो! क्या पता, इन लड़कियों की ईर्ष्या कब क्या करेगी, कौन कह सकता है!

फिर सोचता कि मेरा मन अब धीरे-धीरे, हीन व संशयशील होता जा रहा है जेन को लेकर। ऐसा क्यों?

इसी उधेड़ बुन में था और जल्दी जल्दी कपड़ों को उलट-पुलट रहा था, उनकी तहें बिगड़ रही थीं, बक्स में भूचाल आया था कि काले, चिकने जिल्द का दर्शन हुआ जिसमें देहली की सारी तस्वीरें खिंच रहे।

पहले पृष्ठ को पलटा। ऊपर ही वह चित्र दिल्ली स्टेशन का जब मैं

पसीने से तर-बतर हो रहा था प्रथम परिचय में ही और नीरा मेरे हाथ में छोटा सा रूमाल दे रही थी, पसीना पोंछने के लिए। शरारत मीरा की थी उसने चुपके से यह स्नैप ले लिया था।

फिर वही रूमाल, वही दर्द!

हाय ज़ालिम, तू कहीं चैन से न रहने देगी!

किसी ने फिर कान में कहा :

'क्या हुआ मि. कुमार! आप तो पसीने से तर हो रहे हैं। यह रूमाल लीजिए और चेहरे का पसीना पोंछ डालिये।'

वही मुद्रा, वही बोली, वही शैतानी, जो मेरी जिन्दगी बरबाद कर रही है; मेरी जवानी बरबाद कर रही है; क्षण में अमृत घोल जाती है, क्षण में जहर का घूंट बन जाती है, हलाहल, घोर हलाहल!

पहली ही तसवीर देखता रह गया। लैम्प जलाया व स्वयं पलंग पर पड़ रहा। तकिए को समेट कर छाती के नीचे दबाया व एल्बम देखने लगा।

दूसरे पृष्ठ में टेनिस कोर्ट में हम दोनों का 'पोज़' था जब वह एक बार पसीने से तर, हांफती मेरे पास खड़ी हो गई थी। मैं श्रम-बिन्दुओं से नहाई उस सौंदर्य को हांफती-कांपती, डोलती प्रतिमा को देखकर अवाक् रह गया था और इतना ही बोल सका था :

'तुम सचमुच सुन्दर हो नीरा रानी।'

'सच!'

'सच!'

'और खेल!'

और लगा जैसे मारे शैतानी के अभी भी कह रही है, 'उकता गए न! लगे भागने!'

फिर मिला नेट के पास का वह पोज़ जब मेरा शॉट लौटाने पर वह लचनवी मुद्रा में झुककर बड़ी श्रद्धा के साथ सलाम कर रही है, मैं नेट के दूसरे पार सामने खड़ा हूँ हाथ में रैकेट लिए। लगा अभी अभी

सुनाई दिया :

'बुज़दिल !'

गूँज उठा, 'बुज़दिल ! बुज़दिल !!'

किसी के चरमराते व 'कड़क-कड़क' करते सैंडलों की आवाज़ सुनाई दी। आँखें बिजलियां ढाती, चिनगारी बरसाती चली गईं।

मेरे हाथ से एल्बम छूटकर फ़र्श की कालीन पर जा गिरा और मैं फूट फूट कर रोने लगा। नीरा की उस चुनौती में मुझे इस खसिया लड़की की चुनौती दिखाई दी।

ओह, नारी में कितना बल है !

प्रेम में कितनी शक्ति है !

और एक मैं हूँ जो भागा भागा फिर रहा हूं भागते भागते भारत की सीमा की पहाड़ियों तक भागा आया। केन्द्र से चला था न ? दिल्ली से, राजधानी से !

और भाग भी रहा था किससे ? उसी से जो अपने ही प्राणों में रमा है, जो सांस-सांस में व्याप रहा है, जो पुतलियों में रात-दिन बसा है।

भला उससे भाग कर जाता कहां ?

तकिए में सिर छिपाए रोता रहा, रोता रहा। आंधी शान्त हुई, बिजली की कड़क भी बन्द हुई, मेघों की गर्जना भी समाप्त हुई परन्तु घिर आए हृदय के आकाश में बादल, जम गए, शान्त, सुस्थिर, और बरसने लगे, बरसते रहे, बरसते रहे, तकिए का खोल भीगता रहा, खोल के भीतर सोई रूई का तन भीगता रहा, मेरे प्राण इस प्रीति की वर्षा में छटपटाते रहे, नहाते रहे।

यों ही पड़े पड़े रात के नौ बज चले। आंसू तो थमे, आखें धुलीं, पर मन था कि इस पानी के बीच भी बड़वानल की तरह धधकता रहा, उबलता रहा।

मैंने चुपचाप कमरे का दरवाज़ा खोला व बंगले से बाहर हो गया। इन भागों में रात को कोई निकलता नहीं, मैं जानता था कि चीते, तेंदुए,

सूअर कभी भी किसी झाड़ी के पीछे से निकलकर उछल सकते हैं, झपट सकते हैं। मुझे मालूम था कि कितनी ही बार छोटी छोटी पहाड़ी गायों को, बछड़ों को और झाड़ियों में चाय की कोमल पत्तियां चुनती लड़कियों को ये बात की बात में मार, ले जाते हैं।

यदि मि. जैक्सन को मालूम हो जाता कि मैं बंगले से बाहर जा रहा हूं तो वे कभी न जाने देते। परन्तु मैं इस जलते, तपते, तड़पते दिल को लेकर क्या करू, कहां जाऊं ? यह आग कहां बुझे, कौन शान्त करे!

चादनी थी कि आकाश से कर्पूर की वर्षा कर रही थी; दूध का फेन बरस रहा था; हल्की हल्की बर्फ की फुहार सी पड़ रही थी; कितना स्निग्ध, कितना शीतल!

मैं सड़क पर आया और चलने लगा, चलता रहा, चलता रहा। चाँद रह रह कर सिरिस की डालियों के बीच से मुस्करा पड़ता, झाड़ियों के बीच से केवल झन झन कर झींगुरों जैसी आवाज सुनाई देती थी जो उस शान्त वातावरण की शान्ति को बड़ी गहराई से नाप रही थी। कभी कभी किसी पेड़ पर से एक चिड़िया ज़ोर से 'चिहुँक' उठती 'चीं चीं' और फिर शान्त।

मैंने क्रेप सोल वाला कपड़े का जूता पहन रखा था। इसलिये आवाज़ बिलकुल न होती थी। दूर दूर पर मजदूरों के झोंपड़े चाय के खेतों के पार दिखाई दे रहे थे जिनमें से किसी किसी के मध्य से क्षीण प्रकाश भी कांपता दिखाई दे जाता।

मैं मन में सोच रहा था कि इन झोंपड़ों में से कोई भी झोंपड़ा खसिया-बाला का हो सकता है। भला कौन सा है? वह पहला? नहीं, दूसरा? नहीं! वह शायद, ज़रा सबसे अलग जिसमें से एक दिए की लौ झांकती दिखाई दे रही है।

परन्तु उसके घर में क्या यही साधारण दीप जलते होंगे? नहीं, नहीं वह तो स्नेह का दीप जलाती होगी। वह दीप क्या कभी बुझेगा? नेह का दीप, युग युग तक जलने वाला।

भला उसका नाम क्या है? मैंने अभी तक न तो जानने की कोशिश की थी न पूछने की। पूछ कर होता भी क्या? वह तो इन्दिरा, मुमताज मार्ग्रेट, यूलुंग इत्यादि कुछ भी हो सकती थी, भारतीय, अमेरिकन, चीनी, रशियन, बर्मी, अफ्रिकन कुछ भी हो सकती थी। क्या वह केवल एक *खसिया लड़की थी? नहीं, नहीं!*

वह संसार को, सभ्यता को, धर्म को, ढोंग को एक चुनौती थी। वह प्रेम की प्रतिमा प्यार के क्षेत्र में जोन ऑफ आर्क थी जोन जिसके *शौर्य पर मैं बरसों से फ़िदा हूं, जिसके स्थान रायन (फ्रांस) से गुजरते* हुए मेरी आखों में आसू भर आए थे, जिसके बलिदान, त्याग व दिलेरी का मैं कायल हूँ।

और यह खसिया 'जोन' कहीं इन्हीं झोंपड़ों में रहती है। अपनी प्रीति के बल पर छोटी छोटी हथौड़ियों से चिकने पत्थरों का सीना तोड़ती है और उसी पर तोड़ती है, धनान्धता के सड़े ढचरे को, रिवाज-रस्म के गुलाम पंचों की पंचायत को तथा मुझ जैसे बुज़दिलों के भगोड़ेपन को।

मैं चलता गया, चलता गया! सामने से एक आदमी साईकिल पर धीरे धीरे आता नजर आया जो अपनी धुन में मस्त था और गाए जा रहा था:

'भीगा भीगा है समा, अब आऊं मैं कहां,

पे चाँद मुझे बतला जा।'

गीत को यह कड़ी 'नागिन' चित्र की थी। दिल्ली में एक दिन तीसरे पहर नीरा के साथ मैंने यह चित्र चुपके से देखा था। काम से जल्दी फुर्सत होगई। भागकर मि. सहाय के बंगले पर गया। वहां मीरा तो न मिली, नीरा थी। अतः उससे मैंने प्रस्ताव रखा और वह सहमत हो गई। दो मिनट में वह कपड़े बदल कर आगई थी, परन्तु केश-विन्यास न कर सकी थी इसलिए उसके लट रह रह कर सामने आंखों पर आ गिरते थे। यह चोरी मैंने कभी जेन को न बताई। पता नहीं नीरा ने मीरा से कहा या नहीं। परन्तु मैं तो समझता हूं कि शायद ही कहा हो।

चित्र जो कहाँ तक याद है मुझे समझ न आता था, कुछ बेहूदा किस्म का था, परन्तु उसके गीत मे कि तीर की तरह दिल में चुभते थे। अपूर्ण सहसा उसके गीत पर गीत ने मुझे चिकोटी काटी थी और मैंने उसका हाथ अपनी गोद में लेकर सहलाया था। हम दोनों ने एक दूसरे को देखा भी था व मौन ही तरह से उसकी उंगली सटी में उस समय 'नागिन' के साथ कितना सामंजस्य था। जब चित्र समाप्त हुआ तो मैंने पूछा था, "तुम्हें कैसा लगा?"

उदास मन, वह बोली थी, "अब तुम्हारे साथ कभी न आऊंगी, चित्र देखने।"

मैं दंग रह गया था। इन शब्दों पर एक तो 'तुम्हारे' दूसरे 'कभी न आऊंगी'। मैंने तुरन्त पूछा था, "क्यों?"

"मेरे प्राण तड़पने लगते हैं।"

"किस लिए?"

उसने मुस्कराकर आंखें नीची कर ली थीं और मैं भी मुस्कराकर रह गया था।

और आज! आज मैं स्वयं चाँद से पूछ रहा था कि इस भीगे समां, *इस भीगी रात में मैं कहां जाऊं, इतनी तपन लिए कहां जाऊं!* कहां!

एकाएक झाड़ी से कोई जानवर निकला व रास्ता काटकर दाएं से बाएं चला गया। मैं तो चौंक पड़ा कि चीता तो नहीं है। परन्तु लगा कि इतने बड़े मेरे भाग्य कहां थे कि कोई तेंदुआ निकलता या चीता आता। वह तो केवल सियार था।

मैं लौट पड़ा। सोचने लगा कि सचमुच कोई तेंदुआ निकल पड़ता और मुझे बुरी तरह घायल कर देता तो कितना अच्छा होता। यह तपन तो शान्त हो जाती।

यह घायल होने की भावना क्यों प्रबल हो उठी, यह मेरी समझ में . . . । क्या इसमें सखिया के घायल होने से कोई सामंजस्य था?

क्या इसमें अनजान शूरता का बहाना था? या अपने को सताकर मैं शान्ति खोज रहा था?

खैर, ऐसा कुछ भी न हो सका। दहकती चांदनी में मैं दस बजे रात को लौटकर बंगले में आया। बरामदे में मेरे पांव की आहट पाकर मिसेज जैक्सन निकल आईं, परन्तु मुझसे कुछ बोलीं नहीं!

क्या मेरी मुद्रा भयावह हो गई थी? या अस्वाभाविक थी? जो भी हो मैंने उनके चेहरे पर भय व आशंका देखी। मैं चुपचाप कमरे में चला गया और दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। किसी नौकर को मुझ तक आने का साहस न हो सका।

रात भर शमा जलती रही और परवाना तड़पता रहा।

चित्र तो जहां तक याद है मुझे पसन्द न आया था, कुछ बेहु किस्म का लगा, परन्तु उसके गीत थे कि तीर की तरह दिल में चुभ थे। जादूगर सइयां वाले गीत पर नीरा ने मुझे चिकोटी काटी थी औ मैंने उसका हाथ अपनी गोद में लेकर दुलराया था। हम दोनों ने एक दूसरे को देखा भी था व मौन हो गए थे उसकी उलझी लटों में उस समय 'नागिन' के साथ कितना सामंजस्य था। जब चित्र समाप्त हुआ तो मैंने पूछा था, "तुम्हें कैसा लगा?"

उदास मन, वह बोली थी, "अब तुम्हारे साथ कभी न आऊंगी, चित्र देखने।"

मैं दंग रह गया था। इन शब्दों पर एक तो 'तुम्हारे' दूसरे 'कभी न आऊंगी'। मैंने तुरन्त पूछा था, "क्यों?"

"मेरे प्राण तड़पने लगते हैं।"

"किस लिए?"

उसने मुस्कराकर आंखें नीची कर ली थीं और मैं भी मुस्कराकर रह गया था।

और आज! आज मैं स्वयं चाँद से पूछ रहा था कि इस भीगे समां, इस भीगी रात में मैं कहां जाऊं, इतनी तपन लिए कहां जाऊं! कहां!

एकाएक भाड़ी से कोई जानवर निकला व रास्ता काटकर दाएं से बाएं चला गया। मैं तो चौंक पड़ा कि चीता तो नहीं है। परन्तु लगा कि इतने बड़े मेरे भाग्य कहां थे कि कोई तेंदुआ निकलता या चीता आता। वह तो केवल सियार था।

मैं लौट पड़ा। सोचने लगा कि सचमुच कोई तेंदुआ निकल पड़ता और मुझे बुरी तरह घायल कर देता तो कितना अच्छा होता। यह तपन तो शान्त हो जाती।

यह घायल होने की भावना क्यों प्रबल हो उठी, यह मेरी समझ में नहीं आया। क्या इसमें सविता के घायल होने से

क्या इसमें अनजान शूरता का बहाना था? या अपने को रुलाकर मैं शान्ति खोज रहा था?

खैर, ऐसा कुछ भी न हो सका। दहकती चांदनी में मैं दस बजे रात को लौटकर बंगले में आया। बराण्डे में मेरे पांव की आहट पाकर मिसेज़ जैक्सन निकल आई, परन्तु मुझसे कुछ बोलीं नहीं?

क्या मेरी मुद्रा भयावह हो गई थी? या अस्वाभाविक थी? जो भी हो मैंने उनके चेहरे पर भय व आशंका देखी। मैं चुपचाप कमरे में चला गया और दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया। किसी नौकर को मुझ तक आने का साहस न हो सका।

रात भर शमा जलती रही और परवाना तड़पता रहा।

सत्ताईसवां परिच्छेद

नागिन की स्मृतियां

दूसरे दिन पलंग-चाय मैंने नौ बजे ली और बिस्तर में ही पड़ा रहा। न जाने कितनी बातें उमड़-घुमड़ कर मन में उठतीं और विलीन हो जातीं। कभी कभी जेन के लिये प्यार के कारण जी भर आता और मन करता कि अभी कलकत्ता भाग पड़ूं, जाकर सीधे उससे क्षमा मांगूं और उसे बांहों में भरकर तन-मन की तपन शान्त करूं, उसकी भी व अपनी भी।

ओह, मैंने जेन को कितना सताया! वह कितनी सहनशील है, मौन, मूक। मेरे भरोसे उसने क्या नहीं छोड़ा। घर-बार छोड़ा, मां-बाप छोड़े देश-दुनिया छोड़ी, धर्म-कर्म छोड़ा और आगई इस दूर देश में एक कच्चे धागे में बंधी हुई, मुझ 'काले' आदमी के साथ — उसके देश में कालों के प्रति कितनी नफरत है! हमारे राजदूत को एक रेस्टोरेंट में चाय तक न मिली। और एक जेन है!

जेन तो, सचमुच, प्रीति-प्यार के क्षेत्र में इस खसिया से कम नहीं, जोन ऑफ आर्क से कम नहीं।

और मैं कैसा आदमी हूं कि जो उसका पत्र तक खोलकर नहीं पढ़ता उसका तो क्या किसी का भी नहीं पढ़ता; हां, जीवन-चक्र चलाना है इसलिए काम-काज के पत्रों को देख लेता हूं, दिल की दुनिया पर तो मैंने मोहर लगा दी है, ऐसा ताला जो कभी न खुले।

और यह एक लड़की है खसिया — लालमनि — जिसने अपनी छोटी सी हथौड़ी से एक झटके में इस ताले को चूरचूर कर दिया। मेरे

इस भगोड़ेपन से भला क्या होगा ! सत्य के सामने आंखें मूंद लेने
लाभ !

अच्छा है इसका सामना ही करूं, लालमनि की तरह । भला, देख
तो जेन ने लिखा क्या है ?

मैं पलंग से उठा । पहले तो जेन का एक चित्र निकाला जो जहा
पर मैंने लिया था — लहराते केश, उड़ती स्कर्ट, मुस्कराते कपोल
विहंसती आंखें, गीले अधर । उसे सामने रख लिया और फिर लिखाव
पहचानकर उसके तीन पत्र निकाले । पढ़ने लगा, पढ़ता गया । पहल
दूसरा और तीसरा पत्र भी पढ़ गया ।

पत्र छोटे छोटे थे जो जीवन व वातावरण के प्रति उसकी सह
अन्यमनस्कता के द्योतक थे । हरेक में बात भी एक ही सी थी, 'यहां स
ठीक है, सभी स्वस्थ व प्रसन्न हैं, कोई नया समाचार नहीं । जीजी
पत्र आपके पास भेज रही हूँ ।'

हां, तीसरे पत्र में एक बात थी जो तीर की तरह आकर अन्तस्त
में चुभ गई और मैं कराह उठा :

'तुम्हारे बिना यहां सूना सूना लगता है, जी नहीं लगता ।'

हाय, जेन ! काश, तू जान पाती मुझे स्वयम् कितना सूना-सूना
लगता है । मेरी तो दुनिया ही 'सूनी-सूनी' हो गई है, मेरा जी तो
नहीं लगता, न कलकत्ते में और न चाय के

मैंने पत्र को रख दिया और
वेनिस में एक दूसरे के कानों में
जिन्हें हमने 'लूवर
बिताई थीं ।

देखकर ठिठक गई और बोली, "मुझे अफसोस है कि मैंने आपको छेड़ा।"

"कोई बात नहीं, कहो भी आओ।"

"यह कौन है, आपकी प्रियतमा?"

मैं मुस्कराकर रह गया। उसने चित्र उठा लिया और देखकर बोली, "अति सुन्दर, कोई फ्रेंच लड़की लगती है, कहां पर है आजकल? उसे भी बुला क्यों नहीं लेते? हम लोगों का खूब मन लगेगा।"

एक साथ ही भला इतने प्रश्नों का उत्तर मैं क्या देता? केवल इतना ही कहा, "यह मेरी प्राईवेट सेक्रेटरी है।"

"समझ गई," कहकर वह मुस्कराई। मैं भी अपने को रोक न सका, मुस्करा पड़ा। उसी ने फिर कहा, "फिर अकेले क्यों आये?"

"तुम जो थीं यहां पर।"

फिर हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। उसने ही कहा, "पर मैं तो आपकी व्यक्तिगत बात कोई भी नहीं जानती। कल से ही आपको न जाने क्या हो गया है, मैं कुछ भी नहीं जानती। फिर कैसे आपकी प्राइवेट सेक्रेटरी हूं?"

"अच्छा, शीला, मेरी व्यक्तिगत बातें तुम्हें पता चल जायंगी। तुम आज से ही प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुई? बात पक्की?"

"पक्की।"

मैंने जो हाथ बढ़ाया था उसने मेरी हथेली पर अपना पंजा मारकर बात की पुष्टि की। मेरे घायल व उदास मन को यह स्पर्श सुखकर लगा। मैंने ही फिर कहा, "देखना कहीं, जैक्सन नाराज़ न हो जाएं।"

"नहीं जी, वे मुझको खूब जानते हैं व आपको भी।"

"अच्छा, अब बोलो कैसे आई थीं?"

"आपकी तबियत का हाल जानने।"

"अहो भाग्य, मैं ठीक हूं, पर तुम्हारी आंखों में और कुछ चमक रहा है।"

"आप तो सचमुच बड़े पारखी हैं !"

"सो तो कुछ भी नहीं, अपनी बात कहो।"

"मैंने क्लब में सुना है कि कोई हिन्दी तस्वीर आयी है, नैगन।"

मैं मुस्कराया और बोला, "हां, नैगन नहीं, 'नागिन', तो ?"

"वह कैसी है ?"

"मुझे क्या मालूम ?"

"आपको मालूम है, आपकी आंखें बता रही हैं।"

"क्या ? मेरी आंखों में नागिन दिखाई देती है ?"

"जी हां !" वह मुस्करा पड़ी।

"तो सावधान रहना।"

मैं उसे देखना चाहती हूं और आपको साथ चलना पड़ेगा ; मुझे सब हिन्दी से अंग्रेजी में समझा दीजियेगा ; सब कहते हैं, बहुत अच्छी है।"

मैं बड़े असमंजस में पड़ गया। मैं नागिन की स्मृतियों को कुरेदना नहीं चाहता था, सो भी आज। मेरे असमंजस को देखकर वह बोली, "प्राइवेट सेक्रेटरी की पहली ही बात से इन्कार ?"

ओह, उन आंखों में कितना इसरार था, कितनी अनुनय-विनय थी, अधिकार तो अभी नाम-मात्र को भी न था। मैंने बिना समझे-बूझे कह दिया, "अच्छी बात है, शाम को चलेंगे, छः बजे 'गार्डन टाइम', 'स्टैंडर्ड' पांच बजे।"

"ओह, आप बहुत अच्छे हैं !" कहते कहते उसने मेरा हाथ उठाकर हथेली चूम ली व छोड़ दी और मैं कुछ कुछ खोने-खोने सा लगा। इतना ही तो मैं कर न सका था, नीरा के साथ।

वह कमरे से जाने लगी तो मैंने कहा, "जैक्सन से पूछ लेना, वह भी चलें तो अच्छा।"

"डर लगता है !" वह मुस्कराती हुई बोली।

मैं मौन ही मुस्कराता रहा और बोला, "हां !"

"तो पूछ लूंगी।" और वह कमरे से चली गई।

मैं फिर अपनी उधेड़-बुन में लगा। मीरा के पत्र ढेर से इकट्ठे थे दस-बारह। मैंने ऊपर की मोहर देखकर तारीखवार उनको रखा और सब से पहला पत्र खोला जो मेरे दिल्ली छोड़ने के दूसरे ही दिन लिखा गया था। उसके कुछ अंश यों थे:

मेरे भैया,

तुम भले जानोगे, मुझे ऐसी आशा नहीं थी। न जाने क्यों मैं पूरी आशा लिए कल जब तुम्हारे होटल पहुँची तो बड़ी उत्सुकता से नौकर से पूछा, परन्तु उसका उत्तर सुन मुझे-मेरे विश्वास पर ठेस लगी और मैं फिर अपनी गाड़ी में बैठकर रोने लगी। क्यों? स्वयं नहीं जानती।

उस दिन जब तुम मेरे घर से गये तो रात्रि को लगभग साढ़े आठ बजे मुझे तुम्हारी खूब याद आई थी और इस कल्पना में कि कहीं तुम आ न रहे हो मैं रोई भी थी।

ऐसा सब क्यों है? सोच नहीं सकती।

रानी, पगली खूब रोई। कल खाना भी नहीं खाया। कल अनुरोध किया था बहुत, गाना सुनाऊं, वही:

'तुम गये, छुट गये प्यार का यह बहा।'

और अब सुनाया तो खूब रोई। और साथ ही आज वचन ले रही है कि अब न गाऊं उस गाने को भविष्य में।

है न पगली, भैया? क्यों।

देखो, रानी को निरंतर पत्र देना न भूलना, वरन अब तो पहचान ही गये हो, उसकी क्या स्थिति बन जाती है।

मीरा तथा रानी की ओर से भी वन्दना।

बहन,

मीरा

पत्र पढ़ा, एक बार, दो बार, बार बार। जी न भरा। दिल्ली का . . . रानी का एक चित्र सामने कर लिया। सादा सा, कहीं

कुतुब पर लिया गया था, पैण्ट व चुस्त स्वेटर में। बिखरे बाल, होंठों पर चुहुल, गालों में मुस्कान व आंखों में शरारत भरी थी। कुछ सूझता न था, यह चेहरा कैसे रोया होगा, कितना रोया होगा।

रोते रोते हिचकियां बंध गई होंगी। याद आये वे तीन दिन 'बुज़दिल' के बाद वाले। वह पगली, सच कितना रोई थी। फिर भीजी ने उसे संभाला होगा, पुचकारा होगा, नन्हीं बच्ची की तरह। भीजी के पुचकारने पर वह और भी रोई होगी, फूटफूटकर रोई होगी, तब जाकर कहीं वायदा लिया होगा, *'अब न गाऊंगी उस गाने को, भविष्य में।'*

ओह, कितना दर्दनाक है यह वायदा लेना व देना। कुतुब पर भी जब यह गीत गाया था तो वह क्षितिज के छोर पर न जाने क्या ढूंढ रही थी। जब मैंने पूछा तो बोली थी :

'मैं सोच रही थी कि तुम चले जाओगे तो कैसा लगेगा।'

और अब मालूम हो रहा है कि कैसा लगता है।

मैं उस पत्र को लेकर बिस्तर पर पड़ गया। पड़े पड़े उसका चित्र देखता रहा, देखता रहा। लगा कि जैसे उन मुस्कान-भरी शरारती आंखों से आंसू ढुलक पड़े। मेरे भी नयन-कोर गीले हो चले।

मैंने मीरा का दूसरा पत्र खोला :

भैया,

आज रानी फिर सुबह सुबह मेरे निकट आकर रोई। आज वसंत-पंचमी है न, मैं स्वयं ही दुःखी हूं, मां की स्मृति को लेकर। पूछा, 'क्यों रोती है' तो बोली, 'तुम्हारा कोई पत्र न आया!'

भला, मेरी रानी को — अपनी रानी को यों सताने से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम भी सब जानकर अनजान बन जाते हो, भैया!

क्या तुम सचमुच नाराज़ हो?

विश्वास नहीं होता।

बहन,

मीरा

यह दिन प्रति दिन रोने का कार्यक्रम — सच मैंने लहलहाए, हरे-भरे, रस-भरे अंगूर के दाने को तीर मार दिया। टप्-टप्-टप्, हृदय का सारा रस आंखों की राह बहने लगा, बहता रहा।

क्या ये आंसू कभी थमेंगे नहीं ?

जीजी के और पत्रों को भी मैंने एक एक करके खोला, एक एक करके पढ़ा। बाद वाले पत्रों में जीजी ने केवल नीरा की गिरती दशा का संकेत किया था। अपने व सुरेन्द्र के विषय में कुछ भी नहीं लिखा था।

जीजी के ही पत्रों से ज्ञात हुआ कि नीरा ने यूनीवर्सिटी जाना बन्द कर दिया है, इस वर्ष परीक्षा भी न देगी। डैडी ने बहुत समझाया, परन्तु वह अपना हठ नहीं छोड़ती। कहती है कि फ़ेल होने के लिये परीक्षा न देगी।

वह कहीं आती-जाती भी नहीं, क्लब जाना तो बिलकुल बन्द है, सिनेमा-थियेटर भी त्याग दिया है, बस दिन-रात कमरे में पड़ी रहती है, उपन्यास पढ़ती है और मन में आता है तो घास पर घूम लेती है।

सूखकर पीली पड़ती जाती है, उसे न जाने क्या होता जारहा है। जीजी उसको लेकर मन ही मन बहुत नाराज़ है मुझसे।

किसी दिन सुरेन्द्र ने किसी गाने-बजाने के प्रोग्राम में दोनों को आमन्त्रित किया था। नीरा जाने को तैयार न थी। जब जीजी ने धमकी दी कि वह भी न जायगी तो उसका मन रखने के लिये गई, परन्तु किसी ने 'परदेसी का प्यार' गीत आरम्भ किया तो वह उठकर चल दी। लाचार जीजी भी चली आई।

इतने बेहूदे ढंग से उठकर चले आने पर जीजी घर आकर गुस्से हुईं तो वह रो पड़ी और बोली, 'जीजी, यों भरी मजलिस में मन का राज़ खोलने से तो और भी बुरा होता। क्या मेरे आंसू थमते ? तुम ही कहो !'

और कहते कहते वह जीजी की छाती में सिर डाल नन्हीं बच्ची की तरह सिसकियां भरने लगी। बोली, 'जीजी, अब जीने को मन

नहीं करता ।'

इन सारी बातों को पढ़ पढ़कर मैं तड़पने लगा, मन छटपटाने लगा। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मैंने कोई पीड़न-गृह खोल रखा हो और उसमें नीरा व जेन दोनों को कैद कर दिया हो। उनकी पीड़ा मेरी बर्दाश्त के बाहर हो चली।

मैंने फिर वही चित्र निकाला जिसमें नीरा लड़के के वेष में जेन का चुम्बन ले रही है। दोनों कितनी सुन्दर हैं। नीरा की कितनी ग्रीशियन गठन है, जेन कैसी नाज़ुक फ्रेंच लड़की सी लगती है। दोनों भव्य हैं। प्यार व करुणा से मेरा मन दोनों के लिये साथ साथ ही आर्द्र हो उठा।

मैंने सूटकेस से क्षुद्रवीक्षण यंत्र (मैग्नीफाइंग ग्लास) निकाला जो कभी कभी मन-बहलाव में हस्त-रेखाएं देखने के काम आता है। उसको पहले नीरा की छवि पर लगाया। भरे भरे कपोल व कांपते-थिरकते होंट कितने स्पष्ट हो उठे। जी ललचाया कि वह जेन को प्यार कर रही है, मैं यदि उसे करूं तो!

मैं इस पीड़ा के बीच भी मुस्करा पड़ा। मानव का मन कितना चोर और कितना कौतुकी है कि इस व्यथा के बीच भी चुहुल न गई। मैंने शीशा उसकी आंखों पर लगाया। बड़ी बड़ी भरी हुई अमियों की फांक सी आंखें, खुलते कमल सी खिलती लगीं। मन को खूब भाईं।

सोचने लगा कि क्या ये आखें रोने के लिये बनी हैं! ये कैसे रोई होंगी! इनमें से रोने पर क्या आंसू छलकेंगे! ना, ना, हृदय का सारा रस, मीठा मीठा अंगूर के रस सा छलक पड़ेगा। यह भला कैसे हो सका होगा!

नहीं, नहीं, जीजी ने झूठ लिखा है। ये रोने वाली आंखें नहीं। यह *लड़कानुमा लड़की भला क्या यों पिघलेगी! यों पानी बनकर बहेंगी;* बहायगी! ना, ना, यह हो नहीं सकता।

और कैसा होगा वह दानव जो हंसती-खेलती आखों को रुलायेगा! कैसा होगा वह पिशाच जो इस लहलहाते सेब में दांत गड़ाकर इसके

चीथड़े कर देगा !

और वह मैं हूँ !

फिर जेन पर लगाया वह शीशा। वही उल्लास-भरी मुद्रा नृत्य की, सच, जेन कितनी 'लड़की' है, पोट पोट से लड़की है। जो भी देखे एक बार भी मरकर मोह जाय। और वही जेन एक दैत्य के पल्ले पड़कर रस रही है। बूंद बूंद रस मार बनकर तन से मन से अंतरिक्ष में विलीन हो रहा है। एक दानव, प्रेत की तरह हवा में लड़ा, यह रस पिये जा रहा है।

और वह मैं हूँ !

मेरा सिर चक्कर खाने लगा। मैं चुपचाप कमरे से निकला और भरी दोपहरी में चल पड़ा उसी सरिता के तट पर। देर तक बैठा रहा वहां अकेले। सरिता का जल फुर-फुर बहता रहा पांव-तले और मैं चिकने पत्थरों को समेटता रहा, फेंकता रहा और सोचता रहा वह छोटीसी हथौड़ी लालमनि की — जेन की, नीरा की!

वहां से चार बजे लौटा तो लालमनि को और लड़कियों के साथ फिर पत्थर तोड़ते पाया। उसके भरे हुए सुंदर कपोलों पर वे दो काली धारियां देखकर एक बार नये सिरे से सिहर उठा। मैं हल्का सा रुका— पर क्या देर तक रुक सकता था? वही लोक-लाज जो बीच में अड़ी थी, खड़ी थी। मैं हल्का सा रुका और आगे बढ़ गया। जाते जाते एक बार और मैंने उसे देखा और लगा कि वैसे वे धारियां नीरा के चेहरे पर हों। मैं कांप उठा और आखें मूंद लीं।

बंगले पर लौटकर मैंने छोटे-छोटे से तीन पत्र लिखे, परन्तु सभी गीले थे — भावों से आर्द्र व संयम से दबे शब्दों में — जेन को, मीरा को व नीरा को।

पत्रों को बन्द कर डाकघर भिजवाया। तब कहीं मन को कुछ सन्तोष मिला। जाकर टब में उछल पड़ा। पड़ा रहा काफी देर तक बड़े आराम के साथ गुनगुने जल में।

निकला तो अब कुछ मन शान्त व हल्का हल्का सा लगा। ज़रा स्फूर्ति सी आन पड़ी। कपड़े बदलकर संध्याकालीन सूट पहन साढ़े पांच बजे शीला व जैक्सन के साथ चाय पीने बैठ गया — शाम की चाय।

आज शीला मुझे बार बार निहार रही थी, न जाने क्यों? मैं कुछ विशेष जंच रहा था क्या? चाय के बीच में एक फ़ोन आगया। मि. जैक्सन उठ गये। अकेले पाकर शीला बोली, "अब मैं समझ गई कि क्यों वह लड़की पागल है?"

"कौन लड़की?"

"वही फ़ोटो में की आपकी पी० ए०।"

"हो तो अब तुम हो?"

हम दोनों मुस्करा पड़े। मैंने ही पूछा, "भला क्या समझ गई?"

"कि आप बहुत सुन्दर हैं।"

"मन से?"

"तन से भी।"

हम फिर मुस्कराकर रह गये। मैंने ही फिर पूछा, "मि. जैक्सन नहीं चलेंगे?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"उनको हिन्दी के गीत समझ में नहीं आते व नृत्य में भी कोई खास दिलचस्पी नहीं।"

"फिर?"

"फिर क्या? हम दोनों चलेंगे।"

"और आप न चलें तो?"

"तो मैं आपके साथ कभी घूमने न जाऊंगी, कहीं नहीं जाऊंगी।"

ओह, उन बड़ी बड़ी आंखों में कितनी खीझ कितना उलाहना भर गया। खूबसूरत लोगों का नाराज़ होना भी कितना मोहक लगता है। इतने में मि० जैक्सन भी आगये। शीला बोली, "मि० जैक्सन, आप न

चलेंगे तो मि० कुमार भी नहीं जायेंगे ।"

"क्यों, आप दोनों आओ। आप क्यों नहीं आते, मि० कुमार !"

मैंने मुस्कराते हुए दोनों की ओर देखा, कुछ कहा नहीं। शीला ही बोली, "अकेले मेरे साथ जाते घबराते हैं !"

इस पर तो हम तीनों ठहाका मारकर हंस पड़े। और इस हंसी में ही बात स्वतः पक्की हो गई।

शीला कपड़े बदलकर जब आगई तो लगा कि जैसे चांद आकाश से उतरकर धरती पर आगया हो। एक बार नये सिरे से मान हुआ कि शीला सचमुच बहुत सुन्दर है। वह चमकता लिबास; बनाये गये लहराते ललकारते केश; खुला गला; गले में व कानों में हीरे की चमकती नेकलेस व कौलें; शीला को मैं एक बार तो पहचान ही न सका।

'फ़र-कोट' डाल लेने पर याद आगया 'ब्यूटी ऐण्ड बीस्ट' — इन दोनों में कैसा सामंजस्य !

मुझे एकाएक अवाक् देख शीला मुस्करा पड़ी। मि० वैस्तन भी कम हंसोड़ नहीं। एकाएक बोल उठे, "आप दोनों को यह सांझ मुबारक हो।"

और झेंप मिटाते, मुस्कराते हम दोनों गाड़ी में जा बैठे। कुछ देर तक तो भारतीय नृत्य-संगीत तथा पश्चिमी नृत्य-संगीत के अंतर पर हम बातें करते रहे, फिर यों चुप हो गये जैसे बात ही समाप्त हो गई हो और नया विषय कोई मिल ही न रहा हो।

डूबते सूर्य की लाल किरणें बिल्कुल सामने पड़ती थीं और आसपास के खेतों, ताल-तलैयों तथा पहाड़ियों की हरी-भरी चुन्नी को लाल-पीले, सुनहरे रंग में रंग रही थीं।

शीला उन चोटियों पर क्या ढूंढ रही थी ? किसे ? मैं क्या कह सकता हूँ !

मैं स्वयम् एकाएक अपने में ही व्यस्त हो चला था। और ऐसी ही एक रागभरी संध्या आंखों में नाच उठी थी, पलकों में अटककर, उलझकर कांप उठी थी।

एकाएक लगा कि जैसे शीला की समाधि टूटी हो। उसने फ़र-कोट को, जो अकारण अभी भी तन पर पड़ा था, उतारकर रख दिया। मेरा भी ध्यान उधर गया। श्वेत-सुनहरी वह चमक उठा और 'ब्रे सरी' के बांध को तोड़ फेंकने की असफल उतावली दिखाने लगा।

शीला को बनाने वाले ने इतना सुन्दर बनाया सो तो ठीक था, परन्तु उसे इतने सुन्दर, चमकीले, चिकने व चुस्त कपड़े न पहनने थे। कुछ मेरा भी तो ख्याल करती।

खैर, मैं स्वयम् ही कहीं और डूबा था। अतः शीला ने सुनहरी सिगरेट-केस खोलकर एक सिगरेट अपने लाल अधरों के बीच दबाई व केस मेरी ओर बढ़ा दिया।

मैं हिचकिचाया, आंखें मिलीं व चुपचाप एक सिगरेट निकाल मैंने भी होंठों के बीच दबा ली। मन में एक शैतान विचार आया और छेड़ कर भाग गया। मेरे होंठों से तो यह सिगरेट ही भाग्यशाली है, कितनी आसानी से उन लाल अधरों पर पहुंच गई। अब टिकी रहेगी, स्वयम् जलेगी धीरे धीरे, जलायेगी भी, अधरों को, फेंफड़ों को, दिल को। और छा जायगी धुवां बनकर दिल पर, दिमाग पर।

यदि उस सिगरेट के स्थान पर मेरे अधर होते तो। मन की एक चुहुल थी, आई और गई। कोई जान न पाया, शीला न जान पाई, यही बहुत था। उसने 'लाइटर' से पहले मेरी सिगरेट जलाई और फिर अपनी।

हम दोनों फुक-फुक धुंवा फेंक रहे थे। परन्तु लगता था कि गाड़ी में साथ न थे। गाड़ी चलती रही, सूरज का गोला डूबता रहा और हम दोनों पहाड़ियों पर मंडराती धुंध को चुपचाप देखते रहे।

कुछ देर बाद मैंने पूछा, "शीला, क्या देख रही हो?"

"ब्लैकपूल का टॉवर।"

हम दोनों मुस्कराये। फिर लम्बी सांस छोड़कर बोली, "और आप?"

"कुतुब मीनार।"

बन गई, 'बुज़दिल !'

हॉल नर-मुण्डों से ठसाठस भरा था। शीला तो इस मानव-समुद्र को बाहर-भीतर उमड़ते देख चकित रह गई।

'न्यूज़-रील' के बाद फिल्म आरम्भ हुई। सर्पों को इतनी बड़ी संख्या में देख शीला सिहर उठी और बोली, "मुझे तो डर लगता है, स्वप्न में भी ये नाग फन काढ़े सामने आयेंगे।"

"तो समझ लेना कि तुम स्वयम् भी नागिन हो।"

वह मेरे इस वाक्य का आशय समझ नहीं सकी। फिर मैंने उसे समझाया कि किस प्रकार सर्पिणी भी 'नागिन', नागा जाति के सरदार की लड़की भी 'नागिन' और लचकती, चमकती, थिरकती नवयौवना सुन्दरी भी 'नागिन'। तब तो वह मुस्करा उठी।

फिल्म का संगीत और नृत्य उसे बहुत भाया। स्वर बड़े लुभावने थे, तो कि वह उनकी आदी नहीं थी। मैं कदम कदम पर कथोपकथन को अंग्रेजी में अनुवाद कर समझाता जाता था। गीतों को भी अंग्रेजी में बताता जाता था। सारे गीत व कथोपकथन उसको अत्यन्त काव्यमय लगे। वह बोली, " इस फिल्म को तो 'टेक्नीकलर' होना चाहिये था।"

"और 'सिनेमास्कोप' नहीं ?"

"क्यों नहीं ?"

वह मुस्करा पड़ी। मैं भी मुस्करा पड़ा।

नदी-किनारे बालू पर पड़े पड़े एक दूसरे को छेड़ना तथा फूलों का गजरा कंगन की तरह हाथ में बांधना देखकर वह विह्वल हो गई। उसकी आंखें भर आईं। मैं तो स्वयम् तड़प रहा था। इसी दृश्य के समय तो नीरा ने चिकोटी काटी थी और कंधे से कंधा, पांव से पांव सटा लिये थे। इसी दृश्य के समय तो मैंने उसका हाथ अपनी गोद में ले लिया था व निरंतर उसे दुलारता रहा था।

मैंने ही अपनी जेब से रूमाल निकाला और उसके नयन-कोर पोंछ दिये। रूमाल ? वही नीरा का दिया हुआ।

फिर हम हँस पड़े। दोनों में कितने मुद्दत बाद थे, आँखों में ही मानो बात कह डाली, मन की व्यथा खोल डाली।

कनाट की पहाड़ियाँ ऐसी ही प्यार भरी हैं। न जाने किस किस के मन का राज बात की बात में खोल डालती हैं।

कहीं जाना था, वापस नहीं। हमने मोटर के साथ नहीं पार की और सिनेमा-हॉल पहुँच गये। सिनेमा के सामने अपार भीड़ थी; ज्यादा तो गरीब लोग ही थे, परन्तु भला इतना पागलपन क्यों!

शीला को बड़ा आश्चर्य हुआ इस भीड़ को देखकर। वह बोली, "क्या यह फिल्म सचमुच इतनी अच्छी है?"

"अच्छी नहीं, प्रिय।"

"क्यों?"

"क्यों क्या! प्रीति-प्यार अमीरों की ही बपौती तो नहीं। हर पुतले को एक दिल का प्याला मिला है; उसमें प्रेम का अमृत-रस भरा है; नहीं, नहीं, दिल का सागर मिला है, खारे पानी का नहीं, क्षीर-सागर प्रीति का। उसमें प्रेम की लहरें उठती-गिरती रहती हैं।"

शीला मेरे इस अप्रत्याशित काव्यरस पर हँस पड़ी और मारे शरारत के ही बोली, "ये इतने लोग अगर अपना अपना प्याला भी लाये होंगे तो मैं उसमें डूब जाऊंगी। और यदि हरेक के पास दिल का सागर हुआ तो मेरा कहीं ठिकाना ही न लगेगा।"

"घबराओ नहीं, मैं साथ हूँ न!"

हमारे गम्भीर चेहरों पर मुस्कराहट छा गई। चिन्तन का विषय, प्रेत की छाया की तरह, थोड़ी देर के लिये हट गया। वह बोली, "तो हाथ पकड़े रहियेगा, नहीं तो मैं ...."

"लाओ, अभी से पकड़े रखूं।"

और उसने अपनी लम्बी, गोरी बांह पसार दी। पतली उंगलियां मेरी आंखों के सामने नाच उठीं। मैंने झट हथेली को पकड़कर उसे आहिस्ते से गाड़ी से उतारा; परन्तु भीतर एक झटका लगकर रह गया, एक खरोंच

बन गई, 'बुज़दिल।'

हॉल नर-मुण्डों से ठसाठस भरा था। शीला तो इस मानव-समुद्र को बाहर-भीतर उमड़ते देख चकित रह गई।

'न्यूज़-रील' के बाद फिल्म आरम्भ हुई। सर्पों को इतनी बड़ी संख्या में देख शीला सिहर उठी और बोली, "मुझे तो डर लगता है, स्वप्न में भी ये नाग फन काढ़े सामने आयेंगे।"

"तो समझ लेना कि तुम स्वयम् भी नागिन हो।"

वह मेरे इस वाक्य का आशय समझ नहीं सकी। फिर मैंने उसे समझाया कि किस प्रकार सर्पिणी भी 'नागिन', नागा जाति के सरदार की लड़की भी 'नागिन' और लचकती, चमकती, थिरकती नवयौवना सुन्दरी भी 'नागिन'। तब तो वह मुस्करा उठी।

फिल्म का संगीत और नृत्य उसे बहुत भाया। स्वर बड़े लुभावने थे, सो कि वह उनकी आदी नहीं थी। मैं कदम कदम पर कथोपकथन को अंग्रेज़ी में अनुवाद कर समझाता जाता था। गीतों को भी अंग्रेज़ी में बताता जाता था। सारे गीत व कथोपकथन उसको अत्यन्त काव्यमय लगे। वह बोली, "इस फिल्म को तो 'टेक्नीकलर' होना चाहिये था।"

"और 'सिनेमास्कोप' नहीं?"

"क्यों नहीं?"

वह मुस्करा पड़ी। मैं भी मुस्करा पड़ा।

नदी-किनारे बालू पर पड़े पड़े एक दूसरे को छेड़ना तथा फूलों का गजरा कंगन की तरह हाथ में बांधना देखकर वह विह्वल हो गई। उसकी आंखें भर आईं। मैं तो स्वयम् तड़प रहा था। इसी दृश्य के समय तो नीरू ने चिकोटी काटी थी और कंधे से कंधा, पांव से पांव सटा लिये थे। समय तो मैंने उसका हाथ अपनी गोद में ले लिया था व रहा था।

जेब से रूमाल निकाला और उसके नयन-कोर पोंछ दिया हुआ।

हम दोनों के संयम का बांध टूट रहा था। हम दोनों विचलित मन हो उठे थे। तार तार ढीले पड़ रहे थे। शीला तो लगातार थरथर कांप रही थी। मैंने उसका सिर अपने कंधे पर टिका लिया, अब उसने अपना कंधा भी मेरे कंधे से टिका लिया व पांव से पांव।

मैंने पूछा, "इतनी व्यथा क्यों, शीला !"

"स्नैकपुल के 'बीच' पर ठीक ऐसा ही हुआ था।"

मैंने इस नाजुक घाव को विशेष कुरेदना ठीक न समझा, कहीं और ढीली पड़ी तो उठकर चल देना होगा। उसी ने कुछ रुककर कहा, "काश, मैं उसके बाद सदा के लिये आंखें मूंद लेती !"

'बादूगर सइयां......' वाले गीत का अर्थ बताने तथा बार बार नृत्य में 'घेरघार' होने पर उसके आंसू तेज हो गये। फिल्म तो केवल बहाना थी। उसका 'नाग' उसे सता रहा था, छेड़ रहा था, तड़पा रहा था। मेरी 'नागिन' मेरे तन-मन पर जुल्म ढा रही थी।

फिल्म आगे बढ़ी। साधु के वेष में दर्शन की प्यास बुझाने के दृश्य पर वह सचमुच एक बार मुस्करा उठी। मुझे संतोष हुआ। अपने से ज्यादा मुझे उसकी चिन्ता थी।

भला, शीला के मन में कितनी गहरी व्यथा थी !

मैं अपनी व्यथा को भीतर ही भीतर दबाने की चेष्टा कर रहा था और स्मृतियां थीं कि सोए से चौंक चौंक कर जाग पड़ती थीं। मैं जितना ही उनका गला दबोचता वे उतना ही उछलतीं चिल्लातीं, छटपटातीं। मेरा बुरा हाल हो रहा था इस कशमकश में।

चूड़ियां पहनाने का दृश्य भी आया। कुतुब पर पहनाई गईं चूड़ियां खनखना उठीं। कलाइयां फैल गईं। मैं विह्वल हो उठा। सारे बांध ध्वस्त गये। मैं बह चला। थरथर कांपने लगा।

'न बारात न शहनाई, फिर भी दुलहिन का मन मारे खुशी के...' मैं सुन न सका, देख न सका। आंखें आंसुओं से भर गईं। धुंधला- . पर छा गया। शीला ने अपनी रूमाल से मेरे आंसू पोंछे व

बोली, "घबराओ नहीं, कुमार, मैं तुम्हारी व्यथा समझती हूं।"

ठीक ही तो उसने कहा। मेरी व्यथा वह न समझती तो कौन समझता। कोई भुक्त-भोगी ही तो इसे समझ सकता है।

शीला ने अपनी बाईं भुजा मेरी पीठ के पीछे से फैलाकर मेरे कंधों को, मुझको उसमें हल्के से जकड़ लिया। कितनी कोमल वह सांत्वना थी जो रहे-सहे बांध को तोड़-मरोड़ रही थी।

फिल्म और आगे बढ़ी। वह गीत आया, 'भीगा भीगा है समां, ऐसे में है तू कहां' इत्यादि। उसके अंत में 'नागिन' बांध तोड़, नदी पार कर जब प्रियतम के पास पहुंची तो शीला एकदम तड़प उठी और बोली, "हाय, मैं इतना कर सकी होती।"

आंसू तेज़ हो गये। मैंने अब रोका नहीं, पोंछे भी नहीं। केवल उसके थरथर कांपते हाथ को गोद में ले धीरे धीरे दबाता रहा।

हम दोनों इतने पास थे कि किसी भी दृश्य से जब हमारे दिल की घबराहट बढ़ती, छाती तेज़ धड़कने लगती, सांस तेज़ होती, आंसू बरसने लगते तो, बिना एक दूसरे को देखे हम समझ जाते कि, साथी के तन-मन में क्या हो रहा है।

यों ही सारी फिल्म में आंधी चलती रही हमारे तन-मन में। बिजली कौंधती रही स्मृतियों की। आंसू बहते रहे धुंआधार। हम एक प्रकार से अपनी अपनी सुधि-बुधि खोकर पास पास बैठे थे। मन प्रियतम के लोक में विचर रहा था और तन लापरवाही में मनमानी कर रहा था। धीरे धीरे कब शीला ने अपना हाथ मेरे कंधों से खींच लिया, मुझे पता न चला। धीरे धीरे कब मेरा हाथ उसके कन्धों पर पहुंच गया और वह मेरी ओर बच्ची सी दुबकी रही, पता न चला।

आशा-निराशा की कच्ची डोरी में युगल-प्रेमी प्रणय की मार से झूलते रहे, डूबते-उबरते रहे। सर्प के आह्वान, उसे रोकने, उसके काटने के सारे दृश्य [illegible] प का नाम लबों पर लेकर मरने की बेला आई; [illegible] द्रलोक के रंगीन सपने आंखों में लिए,

आकुल अधर और व्याकुल प्राण प्रियतम को खोजते रहे; दिल को टूक टूक करने वाले गीत और मन को डावांडोल करने वाले नृत्य चलते रहे परन्तु हम दोनों थे कि इतने पास-पास होकर भी दो दुनिया में विचरते रहे, सुबकियां भरते रहे। दोनों में से अब किसी ने किसी को छेड़ा नहीं।

फिल्म के मधुर मिलन में समाप्त होने से लगा कि शीला ने सुख-सन्तोष की सांस ली हो, दिल का भार कुछ हल्का हुआ हो।

समाप्त होने से पहले मैं झट से हाथ हटा, संभल कर बैठ गया और जेब से रूमाल निकालकर शीला के आंसू पोंछ डाले।

उसने भी शायद मेरे आंसू पोंछने के लिये ब्लाउज में वक्ष के बीच उंगलियों से टटोलना शुरू किया। तब तक मैंने 'धन्यवाद' कहकर स्वयं अपनी आंखें साफ़ कर लीं।

कोई देखता तो क्या कहता।

हम दोनों औरों से पहले उठकर चल भी दिये ताकि कोई हमारे गीले रूप को देखे नहीं। फिर गाड़ी में बैठकर चल दिये तुरंत। कोई कुछ बोला नहीं। दस मिनट में ही नदी-तीर आ गये। रात कुछ ठंडी व गीली हो चली थी। अंधेरी रात तो थी ही, चांद के निकलने में अभी देर थी। आकाश में असंख्य तारे छिटक रहे थे।

गाड़ी नाव पर चढ़ गई और नाव चल पड़ी। हम दोनों गाड़ी से निकलकर नाव पर खड़े हुए। शीला ने सिगरेट सुलगाई अपने लिए व मेरे लिए भी।

तारों-भरी रात व ठंडी हवा का झोंका, उसका शीला मन और भी बेकाबू हो चला। बोली, "जी में आता है कि नदी में कूद पड़ूं।"

मुझे शरारत सूझी। मैंने कहा, "उस पार कोई 'नाग' तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है क्या?"

"वही तो रोना है, नहीं तो क्या मैं कहती?"

मैं मन ही मन डरा। क्या पता कहीं मन की गहरी व्यथा में सचमुच कूद पड़े तो? मैंने कहा, "ठंड बढ़ रही है, अन्दर ही बैठें।"

वह मुस्करायी। मैंने उसका हाथ पकड़कर गाड़ी में अन्दर बैठा लिया। क्या वह मेरा मन्तव्य समझ चुकी थी? कौन जाने!

नदी पार कर गाड़ी चल दी। रात के सन्नाटे में, सड़क के किनारे की तलैयों से झींगुरों की झन झन तथा दूर पर मजदूरों की बस्ती से ढोल व मंजीरे की आवाज़ आ रही थी और हमारी गाड़ी थी कि रात के अंधेरे को चीरती हुई चली जा रही थी।

एक स्थान पर सड़क की मरम्मत हो रही थी, इसलिए बीचोबीच बांस गाड़कर बन्द कर दी गई थी। सूचना लगी थी कि रास्ता दाहिने से है। दाहिने से एक पतली मेड़ खेतों के बीच से जा रही थी। हमने गाड़ी उधर ही मोड़ी। गाड़ी आगे बढ़ती गई, रास्ता विकट होता गया, कहीं वह बायें तो मुड़ता न था जो हम पक्की सड़क पकड़ने की आशा करते।

अंत में एक झोंपड़े से आगे बढ़कर हम भयानक अंधकार में डूब चले। झींगुरों की आवाज तेज़ हो गई। कुछ और आगे बढ़ने पर हम भयानक खड्ड के सामने रुक गये जो मुख बाए पड़ा था। एक कदम और आगे होते ही हम रसातल को पहुँच जाते। शीला चौंककर चीख पड़ी और ज़ोर से मुझे पकड़ कर मेरी छाती में सिर छिपा लिया।

टॉर्च लेकर इधर-उधर देखने पर मालूम हुआ कि हम फिर नदी के सामने कगार पर खड़े हैं। नदी मुड़कर फिर सामने!

और सबेरे पत्रों में हम दोनों की मृत्यु का समाचार जब साथ साथ छपता तो क्या होता? लोग क्या क्या चर्चा करते? हम सिहर उठे।

बड़ी मुश्किलों से गाड़ी पीछे लौटाई गई। हम फिर पक्की सड़क के अवरुद्ध पथ पर आगये और निश्चय किया कि अब बांस का फन्दा तोड़कर चलेंगे। मगर फन्दे के पास जाने पर ऐसी आवश्यकता ही न रही, कारण एक पतली सी कच्ची सड़क वहीं से ढुलक कर पक्की सड़क के नीचे-नीचे किनारे-किनारे चली गई थी।

छिः छिः यह भी क्या गुनाह बेलज्जत रहा, सो भी इस अंधियारे में। एक-पौन घंटा लग गया इस चक्कर में। पार होते ही शीला तो भय व

व्यथा से शिथिल हो, मेरी गोद में सिर रखकर मन व मस्तिष्क के तनाव को ढीला करने लगी।

मैं उसकी बेतकल्लुफी पर हैरान था। वह मुझे क्या समझती है! बिलकुल देवता!

उसे क्या पता कि मैं कितना साधारण प्राणी हूँ और मेरा मन कितना कमजोर व चंचल है। ऐसी भावुकता अच्छी नहीं।

उसे शान्त करने के लिये मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा और उसके कपोल थपथपाये। तब वह धीरे धीरे करवट ले अपनी बांहों में मुझे कसने लगी।

मैं समझ गया कि उसे कोमल सान्त्वना व सहानुभूति की आवश्यकता है। उन बांहों में गरमी नहीं, चंचलता नहीं; नसों में गरमी नहीं; आंखों में अंगारे नहीं; होंठों में कम्पन नहीं; यह तो एक बिलकुल दूसरे किस्म का मिलन है, कसन है। यह तो थके अंगों व तनी नसों को ढीला करने की मांग-मात्र है।

अब मैंने भी आहिस्ते आहिस्ते उसके स्वस्थ व उभरे वक्ष को अपने वक्ष से धीरे धीरे दबाते हुए उसके सारे धड़ को अपनी बांहों में भर लिया, फिर धीरे धीरे कसने लगा, कस दिया और उसके उठे हुए भाल को चूम लिया। मेरा सिर झुकते ही उसने मेरे कपोल पर हल्का सा चुम्बन दिया। फिर मैंने बाहें धीरे धीरे ढीली कर दीं। वह भी अपनी बाहें ढीली कर मेरी गोद में 'पुसी' की तरह पड़ रही। मैंने और भी शान्त करने के लिये उसे थपथपाया व उसके सिर को सहलाया।

इस समय मुझे याद आरहा था कि बचपन में, किस प्रकार प्यार के उमड़ने पर, हम अपनी गाय के गले में बाहें डाल झूल जाते, अंगड़ाई लेते तथा उसके कान व सिर सहलाते और थपथपाते।

क्या इन दोनों स्नेहों में सामंजस्य था?

मैं मुस्करा पड़ा अकेले। वह पड़ी पड़ी ही बोली, "क्यों मुस्कराये!"

मैंने मन की बात मन में ही छिपाते हुए कहा, "कोई हम दोनों को

इस प्रकार देखेगा तो क्या कहेगा ?"

"आप अभी इतना सोच लेते हैं मि. कुमार !"

"क्यों नहीं ? क्या तुम नहीं सोचती ?"

"सोच ही नहीं पाती। वह मंज़िल तो बहुत पीछे छूट गई कि जब लोगों के देखने न देखने, सोचने न सोचने, पसन्द करने न करने का ध्यान रहता था; बहुत पीछे !"

"फिर अब ?"

"अब तो मुक्त आकाश है। उसमें एक ही चांद है जो रात-दिन अमृत बरसाता है और मैं छकी रहती हूं। आसपास और कोई है ही नहीं जो देखे अथवा हंसे।"

वह कितने गहरे में है, मैं कुछ समझ न सका। बोला, "कुछ और स्पष्ट कहो, शीला, मैं समझा नहीं।"

"क्या कहते हो, कुमार ? अभी तक केवल एक तुम्हीं तो समझदार मिले, और तुम कहते हो कि समझा नहीं। यदि तुम भी न समझ सके तो अब इस दुनिया में कोई न समझ सकेगा।"

फिर कुछ रुक कर बोली, "न समझो, मेरी बला से।"

ओह, इतना दर्द ! इतनी गहरी व्यथा ! इतनी निराशा ! मैं तो दंग रह गया। यह कच्ची उमर की उभरती शीला कितनी बड़ी अग्नि परीक्षा से गुज़र चुकी है।

फिर ज़रा उछलकर बोली, "मैं एक बात कहूँ, कुमार !"

"बोलो।"

"तुम कुतुब मीनार से देखो तो सब कुछ दिखाई देगा, सब कुछ समझ में आजायगा।"

"सच ?"

"हां सच !"

"तब तो यहां से ब्लैकपूल का टॉवर भी दिखाई देगा ?"

"और पेरिस का एफिल टॉवर भी।"

"लिली।"

मैंने अब छेड़ना ठीक न समझा। उसे आगे बढ़ने दिया। आखिर कहानी भी मैंने ही तो पूछी थी। वह आगे बढ़ी :

"लिवरपूल में एक इंजिनीयरिंग कम्पनी में वह 'सेल्स-मैनेजर' था। मैं उसकी पी० ए०। हम दोनों धीरे धीरे एक दूसरे को प्यार करने लगे। हम बराबर एक दूसरे की पलकों में बसते, सोते-जागते। बराबर साथ रहने का प्रयत्न करते। अकेले होने पर मन नहीं लगता, कुछ खोया खोया सा लगता। हम छुट्टियां बहुधा ब्लैकपूल में 'बीच' पर, समुद्र-तट पर बिताते। नाव चलाने और तैरने का हम दोनों को शौक था। नाचते नाचते कभी थकते न थे, फिर एक दूसरे में यों खो जाते कि लगता हम एकाकार हो गये व संसार का यही आदि-अन्त था और उसकी अथ-इति हो चुकी।

"ओह, वे सोने के दिन, वे चांदी की रातें, अब कभी न लौटेंगी, कुमार, कभी नहीं, कभी नहीं।"

वह छटपटाने लगी। उसने अपने धड़कते सीने को दोनों हाथों से दबा लिया और एकदम से व्याकुल हो उठी।

ओह, मैंने यह क्या कर डाला! अब उसे कैसे शान्त करूं?

मैंने फिर उसे अपनी बांहों में भर लिया, कस लिया और सिर व गालों पर हाथ थपथपाते हुए कहा, "शान्त होओ, शीला, शान्त होओ, मैं सब कुछ समझ गया, सब कुछ, अब तुम कुछ न बोलो, चुप हो जाओ।"

मैंने उसके मुख पर हथेली रखकर चुप कराना चाहा, परन्तु उसने मेरे हाथ को एक हल्के से झटके से हटाकर कहा, "अब तो कह ही लेने दो, कुमार, आज की नींद तो गई ही। उस कम्पनी से अवधि पूरी होने पर वह अमेरिका जाने लगा। विलियम अमेरिकन था, हो भी जर्मन-वंश का। उसने मुझे भी साथ चलने को कहा, पर मेरे मां-बाप, परिवार, जाति, पड़ोसी किसी को भी यह बात जंची नहीं। मेरा दुर्भाग्य। मैं ठिठक गई, झिझक गई, साथ न जा सकी। वह चला गया। हमारा दिल टूक-टूक

हो गया।

"इसके बाद कहूँ क्या, मैं समझ गया कि वह विवाह उसने डूबकर प्राण को बेचा। कारण प्रेम में निराशा थी।"

और शीला सिसकियाँ भरकर रोने लगी। मेरी आँखें भी आँसुओं से भीग चलीं। हम दोनों ने एक दूसरे को बाँहों में कस लिया व कपोलों को एक दूसरे से सटा लिया। आँसुओं की धार एक दूसरे से मिलती रही।

वही फिर धीरे धीरे बोली, "मैं न तो मर ही सकी, कुमार, न आत्मदमन की तरह विद्रोह ही कर सकी। अब रात दिन स्मृतियाँ कुरेदने लगीं तो सोचा कि कौतूहल छोड़कर कहीं चली जाऊँ, दूर देश।

"इस विलायत में मि० जैक्सन मिले। मनोनुकूल लगे। इनके साथ यहां भाग आने का बहाना चाहिये था, अतः मैंने शादी कर ली और चली आई।"

शादी को इतने हल्के से ढंग से कहे जाने पर मैं तो स्तम्भित रह गया। बहुत धीरे से मैंने कहा, "जब तुम्हें जैक्सन से प्रेम न था तो विवाह क्यों किया?"

"मैंने कहा न, कुमार, तुम समझे नहीं। जिसका यह तन था, मन था, प्राण था, जब वही न रहा तो इनका मोल? ये कौड़ी के तीन हो गये। मैंने सोचा कि ले जाय जिसे जो मैं आये। केवल अपनी आत्मा के मन्दिर में मैंने प्रेम की एक ही लौ जलाई और वह विनियम की थी जो रात-दिन निरंतर जलती है। वहां किसी की पहुँच नहीं, किसी बयार का झोंका नहीं जाता। कहा न कि उस स्नेह-शिखा की ज्योति अमर ज्योति है, अनन्त है, अनश्वर है। वहां तक जैक्सन की पहुँच नहीं, किसी की भी पहुंच नहीं। होगी भी नहीं।"

"तुमने जैक्सन को यह सब बता दिया है?"

"नहीं, परन्तु उनको जानने की जरूरत भी नहीं। उन्होंने उस प्रकार के प्रेम की कभी मांग नहीं की, नहीं तो मैं बता देती। उनको तो एक जीवन-साथी चाहिये था, मुझे भी जीवन चलाना ही था और वह भी कहीं

दूर देश में, इसलिए हम दोनों ने जीवन का यह सामंजस्य बैठा लिया। विवाह तो उसका केवल सामाजिक व कानूनी रूप था, सो दे दिया।"

"तुमको इसमें कोई अड़चन नहीं मालूम होती कि तन किसी और को, मन किसी और को?"

"नहीं तो। तन का तो मेरी दृष्टि में अब कोई मोल नहीं, प्रयोजन भी नहीं, मन उनको जितना चाहिये देती हूं और हम दोनों काफी प्रसन्न रहते हैं, तुमने देखा है। केवल आत्मा में, प्राणों में किसी की प्रेम-समाधि निरंतर लगी रहती है। वह न तो अभी तक टूटी है और न किसी के तोड़े टूटेगी।"

मुझे असमंजस में देख फिर बोली, "तुम्हें भी अटपटा लगता है, कुमार? अभी लगता है, क्यों कि तीर आरपार नहीं हुआ। मुझे ज़रा भी गड़बड़ नहीं लगती। तुम सब समझते हो, सब जानते-बूझते हो फिर मुझसे क्यों इस प्रकार पूछते हो?"

"तुम सचमुच देवी हो, शीला। तुम्हारी तो चरण-रज सिर पर लेनी चाहिए।" और मैंने उसके पांव छूकर हाथ अपने सिर पर लगा लिया।

वह बोली, "छिः छिः क्या बचपना करते हो?"

और कुछ देर रुक कर बोली, "अच्छा, अब तुम कुसुम की कथा कहो।"

इतने में बंगला पास आ पहुँचा। कमरे में जाने पर घड़ी में देखा तो बारह बज चुके थे। फिर हम दोनों का मौन कॉफ़ी-पान चलता रहा और हमारी प्रीति की अमर कहानी का पाठ पिछली रात तक चलता रहा।

अट्ठाईसवां परिच्छेद

सच्चे प्यार की कसौटी

नाटक देखने के बाद से मैं व शीला एक विचित्र स्नेह-सूत्र में बंध गये—बंधन जिसमें चन्दन की सुगन्धि तथा शीतलता थी, जिसने तन-मन को स्वच्छता व स्निग्धता दी, जो जलकर भी कपूर की तरह शीतलता एवं प्राणों को ज्योति प्रदान कर सकता था।

इसे कैसे स्पष्ट करूँ ? कुछ भी तो सूझता नहीं। भाई-बहन सा कहते तो कुछ कुछ संकोच हो रहा है। बहुत सयाने भाई-बहन हों तो कुछ पता नहीं, परन्तु बहुत कुछ वैसा सा ही था। 'सा' इसलिये कि हम एक दूसरे से अपने प्रिय-पात्र के विषय में खूब खुलकर बातें करते—बातें जैसी भाई-बहन करते शायद हिचकें, शर्मायें व मौन रह जायें।

फिर शुद्ध स्नेह-वश ही सही, परन्तु निःसंकोच हम एक दूसरे को चूम लेते ; कभी कभी बांहों में भी भर लेते, गो कि ऐसा करते समय कभी भी तन में या मन में गरमी न होती। केवल यही भान होता कि 'स्प्रिंग' की भरी चाबी को कोई उल्टा घुमाकर तनाव दूर कर रहा है। इससे मुझे तो काफी शान्ति मिलती, पता नहीं शीला को कुछ महसूस होता या नहीं, या केवल मेरा मन बहलाने भर को ही ऐसी शरारतें कभी कभी कर बैठती। क्या पता। वह बराबर कहती, "यह तन तो मिट्टी का है, उसका मोल कौड़ी भर का है।"

जब मैं कहता, "तुम्हारा तन तो सोने का है, शीला ; नहीं, नहीं, सजीव चमकता, दमकता श्वेत हीरा है।"

तो वह झट कहती, "जब जौहरी ही इस तन का न रहा तो क्या होग

और क्या कोयला, कुमार। उसकी निगाहों के जादू ने इस कोयले को फूंक फूंककर हीरा बना दिया था। अब तो यह फिर कोयले का कोयला!"

मि० जैक्सन तो चले जाते दफ्तर। बंगले में रह जाते हम दो प्राणी। अतः खूब घुलघुलकर वार्तालाप करते। मैंने उसे दिल्ली का सारा एल्बम दिखाया। एक एक चित्र के साथ अटकी हुई स्मृतियों को दिखाया।

जेन ने यूरोप वाला एल्बम मेरे सूटकेस में न रखा था। क्या जान बूझकर? कौन कहे।

जेन से भेंट, उसके साथ बिताये गये यूरोप के भ्रमण के दिन और न जाने कितनी बातें मैंने शीला को बताईं। वह बड़े चाव से सुनती। बीच बीच में बड़े नोकीले, चुभते प्रश्न कर बैठती। कभी कभी शरारतन भी ऐसे प्रश्न कर बैठती जिनका उत्तर 'मुस्कान' छोड़ और कुछ भी न हो पाता। वह भी मुस्करा पड़ती।

किसी एक वार्ता के अन्त होने पर कहती, "तुम सचमुच जादूगर हो, कुमार!" और अपने दोनों हाथों से मेरा मुख थाम चूम लेती झट से, जैसे वह किसी दस वर्ष के बच्चे को चूम रही हो। मुझे यह अच्छा लगता, इसमें शीतलता बहुत होती, उष्णता का नाम भी न होता।

उसने भी अपना एल्बम दिखाया। विलियम के साथ समुद्र-तट पर, विलियम के साथ 'स्विमिङ्ग-पूल' में, विलियम के साथ नृत्य, आहार-विहार, न जाने कितने रूपों में दोनों की तस्वीरें थीं। हर एक के विषय में, कितने चाव व प्यार के साथ वह बताती कि कब, कैसे समय में वे चित्र लिये गये और फिर क्या हुआ।

विलियम की बातें करते करते कभी कभी उसकी आंखें भर आतीं। गम्भीर वातावरण को हल्का करने के लिये मैं उसके बाल खींचकर बिगाड़ देता, कोख में गुदगुदा देता, या झट चूम लेता। वह क्षीण मुस्कराकर रह जाती।

इस प्रकार हम दोनों अपने प्रिय-जनों के श्रवण-कीर्तन में लीन रहने लगे। एक दूसरे से बातें करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। उसके बिना मुझे

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

सच्चे प्यार की कसौटी

नागिन देखने के बाद से मैं व शीला एक विचित्र स्नेह-सूत्र में बंध गये—चिर जिसमें चन्दन की सुगन्धि तथा शीतलता थी, जिसने तन-मन को स्वच्छता व स्निग्धता दी, जो अवसर भी कपूर की तरह शीतलता एवं प्राणों को स्फूर्ति प्रदान कर सकता था।

इसे कैसा सम्बन्ध कहूँ! कुछ भी तो सूझता नहीं। भाई-बहन सा कहने में कुछ कुछ संकोच हो रहा है। सगे भाई-बहन हों तो कुछ पता नहीं, परन्तु बहुत कुछ वैसा सा ही था। 'सा' इसलिये कि हम एक दूसरे से अपने प्रिय-पात्र के विषय में खूब खुलकर बातें करते—बातें वैसी भाई-बहन करते शायद झिझकें, शर्माएँ व मौन रह जाएँ।

फिर शुद्ध स्नेह-वश ही सही, परन्तु निःसंकोच हम एक दूसरे को चूम लेते; कभी कभी बाँहों में भी भर लेते, गो कि ऐसा करते समय कभी भी तन में या मन में गरमी न होती। केवल यही भान होता कि 'स्प्रिंग' की भरी चाबी को कोई उल्टा घुमाकर तनाव दूर कर रहा है। इससे मुझे तो काफी शान्ति मिलती, पता नहीं शीला को कुछ महसूस होता या नहीं, या केवल मेरा मन बहलाने भर को ही ऐसी शरारतें कभी कभी कर बैठती। क्या पता। वह बराबर कहती, "यह तन तो मिट्टी का है, उसका मोल कौड़ी भर का है।"

जब मैं कहता, "तुम्हारा तन तो सोने का है, शीला; नहीं, नहीं, सजीव चमकता, दमकता श्वेत हीरा है।"

तो वह झट कहती, "जब जौहरी ही इस तन का न रहा तो क्या हीरा

और क्या कोयला, कुमार। उसकी निगाहों के जादू ने इस कोयले को फूंक फूंककर हीरा बना दिया था। अब तो वह फिर कोयले का कोयला।"

मि० जैक्सन तो चले जाते दफ्तर। बंगले में रह जाते हम दो प्राणी। अतः खूब घुलघुलकर वार्तालाप करते। मैंने उसे दिल्ली का सारा एल्बम दिखाया। एक एक चित्र के साथ अटकी हुई स्मृतियों को दिखाया।

जेन ने यूरोप वाला एल्बम मेरे सूटकेस में न रखा था। क्या जान बूझकर? कौन कहे!

जेन से भेंट, उसके साथ बिताये गये यूरोप के भ्रमण के दिन और न जाने कितनी बातें मैंने शीला को बताईं। वह बड़े चाव से सुनती। बीच बीच में बड़े नोकीले, चुभते प्रश्न कर देती। कभी कभी शरारतन भी ऐसे प्रश्न कर बैठती जिनका उत्तर 'मुस्कान' छोड़ और कुछ भी न हो पाता। वह भी मुस्करा पड़ती।

किसी एक वार्ता के अन्त होने पर कहती, "तुम सचमुच जादूगर हो, कुमार!" और अपने दोनों हाथों से मेरा मुख थाम चूम लेती झट से, जैसे वह किसी दस वर्ष के बच्चे को चूम रही हो। मुझे यह अच्छा लगता, इसमें शीतलता बहुत होती, उष्णता का नाम भी न होता।

उसने भी अपना एल्बम दिखाया। विलियम के साथ समुद्र-तट पर, विलियम के साथ 'स्विमिङ्ग-पूल' में, विलियम के साथ नृत्य, आहार-विहार, न जाने कितने रूपों में दोनों की तस्वीरें थीं। हर एक के विषय में, कितने चाव व प्यार के साथ वह बताती कि कब, कैसे समय में वे चित्र लिये गये और फिर क्या हुआ।

विलियम की बातें करते करते कभी कभी उसकी आंखें भर आतीं। गम्भीर वातावरण को हल्का करने के लिये मैं उसके बाल खींचकर बिगाड़ देता, कोख में गुदगुदा देता, या झट चूम लेता। वह क्षीण ...र रह जाती।

...दोनों अपने प्रिय-जनों के श्रवण-कीर्तन में लीन रहने ...से बातें करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। उसके बिना मुझे

कल नहीं पड़ती, मेरे बिना उसे चैन न मिलती।

कभी कभी, मुझे याद आता, गांव में सत्यनारायण की कथा होने पर हर अध्याय की समाप्ति पर शंख फूंका जाता है, जिसकी ध्वनि सारे वायुमंडल में गूंज उठती है। हमारी कथा के हर अध्याय के अन्त में एक शीतल परन्तु मीठा प्यार था, जो काफी अच्छा लगता, दुःखी व जलते मन पर मरहम का काम करता।

एक दिन मैंने कहा, "शीला, तुम यों बार बार चूमकर मेरी आदत बिगाड़ रही हो। यह टीक नहीं।"

"जब आदतें बनाने वाली साथ रहेगी तो वह भी यही करेगी।"

हम मुस्करा पड़े। मैंने कहा, "पर उसमें गरमी कितनी होगी, लपटें निकलती होंगी।"

"अभी तो आईसक्रीम खा लो। फिर जलती लपटों से होंठ जला लेना और दिल भी।"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। मैंने फिर कहा, "परन्तु तुम ऐसा करती क्यों हो? क्या मुझे निरा बच्चा समझती हो?"

"नहीं, मेरे भोले बाबा, बच्चा नहीं, देवता समझती हूँ, समझे? और गलत नहीं समझती।"

ओह, इसको मुझ पर इतना विश्वास है, मेरे ऊपर इतना भरोसा है? परन्तु मेरा मन तो इतना शुद्ध नहीं, उसमें तो चोर हो सकता है, शैतान बस सकता है।

फिर रुककर जरा गम्भीर होकर वही बोली, "जानते हो, तुम कभी कभी ठीक विलियम की तरह बातें करते हो, तब मन नहीं मानता, मैं चूम लेती हूँ।"

"ओह, समझा, तब तुम विलियम को चूमती हो, मुझे नहीं?"

वह मुस्करा पड़ी। मैंने ही फिर छेड़ा, "परन्तु तुम्हारे चुम्बन में फिर क्यों नहीं होती?"

"क्योंकि मैं जानती रहती हूं कि तुम विलियम नहीं हो।"

हम दोनों हंस पड़े। बात तो वह ठीक ही कहती थी। वह स्वयम् कितनी नीरा जैसी स्वस्थ, सुन्दर, मांसल व भरी हुई है, उस पर बहुधा नीरा जैसे बोलने लगती है, मुझे भ्रम होने लगता है, परन्तु मैं बराबर जानता रहता हूं कि वह नीरा नहीं, इसीलिए जब वह मेरी बांहों में होती है, तब भी कहीं गरमी, जलन व तपन का नाम नहीं होता।

फिर इन सब का वास कहां है? क्या मन में? तो यह बेचारी काया सोने जैसी होकर भी मिट्टी की मिट्टी ही है? मैं इसी उधेड़-बुन में था कि वह बोली, "गरमी तो सारी, कुमार, मैं पी गई; उसे लगा दिया आत्मा में जलते अमर-दीप को जलाने में। सब कुछ वहीं समर्पित हो गया। इस-लिये अब मेरे तन में, मन में वह गरमी नहीं छा सकती जो प्रेम व जवानी के साथ उमड़ती है, लपटें लेती है। तभी तो निश्शंक, निर्द्वन्द्व तुम्हारे साथ मैं ऐसा बर्ताव कर लेती हूँ। तुम तो क्या मैं इस धरती के हर प्राणी के लिए मां-बहन मात्र रह गई हूं, फिर मेरे चुम्बन में तुम्हें वह गरमी कैसे मिलेगी?"

मैं मंत्र-मुग्ध सा उसकी बातें सुन रहा था। इतनी बड़ी बात कहकर वह गम्भीर हो गई थी। मैं भी स्तम्भित सा हो गया था। होश में होते ही वह मुस्करा पड़ी। उसकी हंसी बादलों के छंटने पर धूप सी बिखर गई।

मैंने कहा, "अब मैं कभी अपने को चूमने न दूंगा। तुम विलियम को चूमती हो, मुझे नहीं।"

"अच्छा, यह बात।" और वह झपट पड़ी मेरी ओर। मैं अपने स्थान से उठकर भाग पड़ा। कमरे में मैं चक्कर काटता रहा और वह पीछा करती रही। मैं पकड़ में आता न था।

मैंने चुनौती देते हुए कहा, "अब कभी तुम्हारे हाथ न पड़ूंगा।"

बोली, "अच्छा, अभी बताए देती हूं।"

हम पलंग के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे थे। वह अब काफी परेशान हो चुकी थी, थकने से हांफने लगी थी। उसके चेहरे पर कभी तो टेनिस कोर्ट की हांफती 'नीरा' झलक जाती और कभी पिंगपांग के बाद की

कल नहीं पड़ती, मेरे बिना उसे चैन न मिलती।

कभी कभी, मुझे याद आता, गाँव में सत्यनारायण की कथा होने पर हर अध्याय की समाप्ति पर शंख फूंका जाता है, जिसकी ध्वनि सारे वातावरण में गूंज उठती है। हमारी कथा के हर अध्याय के अन्त में एक चुम्बन परन्तु मीठा प्यार था, जो काफी अच्छा लगता, दुःखों व अपने मन पर मरहम का काम करता।

एक दिन मैंने कहा, "शीला, तुम यों बार बार चूमकर मेरी आदत बिगाड़ रही हो। यह ठीक नहीं।"

"जब आदतें बनाने वाली साथ रहेगी तो यह भी यही करेगी।"

हम मुस्करा पड़े। मैंने कहा, "पर उसमें गरमी कितनी होगी, लपटें निकलती होंगी।"

"अभी तो आइसक्रीम खा लो। फिर जलती आँखों से होंठ जला लेना और दिल भी।"

हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। मैंने फिर कहा, "परन्तु तुम ऐसा करती क्यों हो? क्या मुझे निरा बच्चा समझती हो?"

"नहीं, मेरे भोले बाबा, बच्चा नहीं, देवता समझती हूँ, समझे! और इन्सान नहीं समझती।"

ओह, इसको मुझ पर इतना विश्वास है, मेरे ऊपर इतना भरोसा है! परन्तु [illegible] इतना दृढ़ नहीं, उसमें तो चोर हो सकता है, इन्सान [illegible]

[illegible] हँसकर वही बोली, "जानते हो, तुम कभी [illegible]

[illegible] हो, तब मन नहीं मानता, मैं चूम

[illegible] को चूमती हो, मुझे नहीं?"

"परन्तु तुम्हारे चुम्बन में फिर [illegible]

[illegible] विश्वास नहीं है?"

हम दोनों हंस पड़े। बात तो वह ठीक ही कहती थी। वह स्वयम् कितनी नीरा जैसी स्वस्थ, सुन्दर, मासल व भरी हुई है, उस पर बहुधा नीरा जैसे बोलने लगती है, मुझे भ्रम होने लगता है, परन्तु मैं बराबर जानता रहता हूँ कि यह नीरा नहीं, इसीलिए जब वह मेरी बांहों में होती है, तब भी कहीं गरमी, जलन व तपन का नाम नहीं होता।

फिर इन सब का वास कहां है? क्या मन में? तो यह वेचारी काया सोने जैसी होकर भी मिट्टी की मिट्टी ही है? मैं इसी उधेड़-बुन में था कि वह बोली, "गरमी तो सारी, कुमार, मैं पी गई; उसे लगा दिया आत्मा में जलते अमर-दीप को जलाने में। अब कुछ वहीं समर्पित हो गया। इस-लिये अब मेरे तन में, मन में वह गरमी नहीं छा सकती जो प्रेम व जवानी के साथ उमड़ती है, लपटें लेती है। तभी तो निश्शंक, निर्द्वन्द्व तुम्हारे साथ मैं ऐसा बर्ताव कर लेती हूँ। तुम तो क्या मैं इस धरती के हर प्राणी के लिए मां-बहन मात्र रह गई हूं, फिर मेरे चुम्बन में तुम्हें वह गरमी कैसे मिलेगी?"

मैं मंत्र-मुग्ध सा उसकी बातें सुन रहा था। इतनी बड़ी बात कहकर वह गम्भीर हो गई थी। मैं भी स्तम्भित सा हो गया था। होश में होते ही वह मुस्करा पड़ी। उसकी हंसी बादलों के छंटने पर धूप सी बिखर गई।

मैंने कहा, "अब मैं कभी अपने को चूमने न दूंगा। तुम विलियम को चूमती हो, मुझे नहीं।"

"अच्छा, यह बात।" और वह झपट पड़ी मेरी ओर। मैं अपने स्थान से उठकर भाग पड़ा। कमरे में मैं चक्कर काटता रहा और वह पीछा करती रही। मैं पकड़ में आता न था।

मैंने चुनौती देते हुए कहा, "अब कभी तुम्हारे हाथ न पड़ूंगा।"

बोली, "अच्छा, अभी बताए देती हूं।"

हम पलंग के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहे थे। वह अब काफी परेशान हो चुकी थी, थकने से हांफने लगी थी। उसके चेहरे पर कभी तो टेनिस कोर्ट की हांफती 'नीरा' झलक जाती और कभी पिंगपांग के बाद की

'जैन तो क्या, आज सारी दुनिया को अपनी बांहों में समेट लेने को मन करता है।'

'इतना सर्वग्रासी प्यार ?'

'सर्वग्रासी नहीं, सर्वव्यापी।'

मैंने भी उसे टेनिस व पिंगपांग की नीरा की मुद्राओं को बताया और शीला से क्षमा मांगी। उसने झट कहा, "मुझसे क्या क्षमा मांगते हो। मांगना हो तो नीरा जी से मांगो। मैंने तो तुमसे क्षमा नहीं मांगी, केवल विलियम से मांगी।"

"तुम ठीक कहती हो, शीला।"

फिर इस वातावरण को मिटाने के लिये मैंने शीला से कहा कि किस प्रकार मेरी बाल-सखा मुन्नी दौड़ी दौड़ी मेरे पास आई थी एक दिन यह कहने कि 'शहर में लड़के-लड़की एक-दूसरे का चुम्मा लेते हैं।' और एक-दूसरे को चूमकर पूछा था :

'कैसा लगा री ?'

'कुछ भी नहीं, तुझे कुछ मालूम हुआ ?'

'नहीं तो।'

'तो यह सब बेकार का झूठ है। तू जा, घर भाग जा। नहीं तो रसोई बनाने की वेला है, मां मारेगी।'

शीला मारे हंसी के लोटपोट होने लगी। उसको इस बचपन की कथा में खूब मजा आया। बोली, "पर तुम हो नटखट बचपन से ही, कुमार।"

"नहीं तो; मुन्नी बराबर कहती थी, 'तू पूरा बुद्धू है, कुमू, कहीं अपना काटा अपने से निकलता है ?'"

"तब तो वह बड़ी तेज़ थी ?"

"और क्या ! तुम आगे की कहानी सुनो न :

"साल दो साल बाद जब मैं चौदह-पन्द्रह का हो चला और वह बारह-तेरह की तो एक दिन खेल-खेल में ऐसी घटना घट गई जो अन्तर-पट पर अमिट छाप छोड़ गई एक नये अनुभव की।"

'नीरा'। मेरा मन एकदम से घबराने लगा। मैं दूर रहने के प्रयत्न में और भी तेज़ भागने लगा और वह थी कि प्रेत की तरह मेरा पीछा कर रही थी।

अंत में, एक बार वह उछलकर पलंग पर चढ़ गई और मेरे गले को दोनों बांहों में लपेट लिया तथा मेरे अधरों को अपने अधरों के बीच दबा पान करने लगी।

कुछ देर के लिये दोनों के होश गुम थे। दोनों हांफ रहे थे, छाती की धड़कन एक दूसरे से टकरा रही थी, होंठ जल रहे थे और थरथर कांप रहे थे। वह कुछ देर बाद मेरे अधर छोड़ आंखों को चूमने लगी व बोली, 'विलियम, मेरे विलियम!'

मैं कहां था अपने होश में। मैंने उसे और कसकर बांहों में दबा लिया। मुख से रह रहकर निकलता था, 'नीरा, मेरी रानी!'

कुछ देर में बादल छंटे व आंधी शान्त हुई। हम दोनों इस बात पर शर्मिन्दा हुए। तय हुआ कि ऐसा फिर कभी न होना चाहिए। मन की स्थिरता किसी भी बहाने डोलनी उचित नहीं।

उस दिन मैंने उसे नीरा का एक चित्र दिया और उसने विलियम का। परन्तु हम दोनों का मन उदास हो गया। न जाने क्यों।

उस दिन शाम को घूमने जाते समय भी दोनों उदास व गम्भीर थे। नदी-तीर टहलकर जब हम शिला-खण्ड पर बैठे तो वह बोली, "मैं तो अपने कमरे में जाकर रोई, खूब रोई। हाथ जोड़ कर विलियम से क्षमा मांगी और तब तक हाथ जोड़े रही, सिसकती रही जब तक ऐसा न लगा कि विलियम मुझ पर मुस्करा रहा है और कह रहा है, 'पगली, इसमें घबराने की क्या बात है। कुमार में भी तो तूने मुझ को ही प्यार किया, फिर इसमें भूल कहां है। कभी तू हर चेहरे में मुझे देख सकेगी और तब सारी दुनिया को प्यार करेगी।' मुझे इस बात से काफी सन्तोष हुआ।"

मैं चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था और याद आ रही थी नीरा की

बैठाकर खेतों-खलिहानों या घाट तक जाता और रास्ते में पैदल चलने समय, हैंडिल संभालने समय शरारतें कर बैठता। वह विह्वल हो उठती। बोलती, 'देख, कुम्मू, अब तू बहुत परेशान न कर, शरारतें बन्द कर। लगता है कि अब हम बड़े हो रहे हैं।'

" 'तू बड़ी हो रही होगी, मैं तो अभी बच्चा हूं।'

" मुंह चिढ़ाकर बोलती, 'दूध-पीता बच्चा। क्यों न मला!'

" 'और क्या!'

"अच्छा रह, मैं तुझे बताती हूं।'

"और साइकिल का हैंडिल बड़े ज़ोर से घुमा देती, हिला देती। साईकल गिरते गिरते को हो जाती। मैं बड़ी मुश्किल से सम्भाल पाता। पर एक बार संभल जाने पर फिर तो मैं शरारतें दूनी कर देता। वह कांप उठती। मेरे वक्ष पर अपना सिर टिका देती और कहती, 'अब मेरे होश गुम हो रहे हैं, कुम्मू, मैं गिर जाऊंगी।'

" 'गिरेगी तो मेरी बाहों में ही क्यों!'

" 'ओह, तू अब बहुत सयाना होगया।'

" 'और तू नहीं!'

"वह मेरी ओर ताकती रह जाती।"

"तो यह प्रेम का पहला पाठ था!" शीला बोली।

और हम सरिता-तीर से चले आये। परन्तु बाद को भी शीला ने मुझे हल्का-सा गाल पर चूमना न छोड़ा। जब मैं पूछता, 'यह क्या!' तो कहती, 'सच्चे प्यार की कसौटी है, रोज़ मन को जांच लेना ठीक है।'

"तुम मेरा मन जांचती हो या अपना!"

"दोनों का।" और हम हंस पड़ते।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

खुर्जी की तलाश

यह आसाम है न, सो भी पूर्वी भाग। छोटी छोटी पहाड़ियों पर बादल घिर आये झुंड के झुंड। बांसवारी और चाय के खेतों पर भी छा गये। सिरिस की पत्रहीन डालियों को घेर लिया — सिरिस, जो बाहर से ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे किसी सन्यासी के मुड़े-मुड़ाये सिर हों, जिनमें रस व हरियाली का कहीं नाम न हो।

फुहारें आईं व चली गईं। चाय की कटी-छंटी ठूंठ जैसी झाड़ियों का अन्तर गुदगुदा गईं। हवा में भी एक ताज़गी, एक स्फूर्ति छागई। बोहिनिया पत्रहीन होकर भी पुष्प-शृङ्गार से ही लद गई। बंगले के लॉन में नटेशियन और भी मुस्करा उठी। डेलिया खिलकर बड़ी बड़ी आंखों जैसा फैल गया। चाय की झाड़ियों पर नये नये पत्ते झांकने लगे। धरती पर हरियाली की एक कालीन बिछ गई। मेरे मन में भी एक लहर, एक उल्लास का आभास हुआ।

शीला के कारण मेरे मानसिक वातावरण का तनाव काफी घट चुका था। एक शुद्ध, स्वस्थ वातावरण में हम पल रहे थे, बढ़ रहे थे। हमारा सम्बन्ध, हमारा संसर्ग आपस की प्रीति के लिये न होकर, अपने अपने प्रियजनों की ही अर्चना का प्रेरक बन रहा था। उस दिन की घटना तो केवल सहायक का काम करने वाली थी। आपस में, एक दूसरे में अपने अपने प्रिय-पात्र का क्षणिक आभास होजाने के कारण हमारी विरह-व्यथा में 'नोक' नहीं बनती थी, 'धार' नहीं पड़ती थी, वह 'तीक्ष्णता' और 'तेज़ी' न आती थी जो जिगर के पार होकर लहू-लुहान

बैठाकर खेतों-खलिहानों या घाट तक आता और रास्ते में पैदल चलाते समय, हैंडिल संभालते समय शरारतें कर बैठता। वह विह्वल हो उठती। बोलती, 'देख, कुम्मू, अब तू बहुत परेशान न कर, शरारतें बन्द कर। लगता है कि अब हम बड़े हो रहे हैं।'

"'तू बड़ी हो रही होगी, मैं तो अभी बच्चा हूं।'

" मुख चिढ़ाकर बोलती, 'दूध-पीता बच्चा। क्यों न भला!'

"'और क्या!'

"अच्छा रह, मैं तुझे बताती हूं।'

"और साइकिल का हैंडिल बड़े ज़ोर से घुमा देती, हिला देती। साइकिल गिरने गिरने को हो जाती। मैं बड़ी मुश्किल से सम्भाल पाता। पर एक बार संभल जाने पर फिर तो मैं शरारतें दूनी कर देता। वह कांप उठती। मेरे वक्ष पर अपना सिर टिका देती और कहती, 'अब मेरे होश गुम हो रहे हैं, कुम्मू, मैं गिर जाऊंगी।'

" 'गिरेगी तो मेरी बांहों में ही क्यों!'

" 'ओह, तू अब बहुत सयाना होगया।'

" 'और तू नहीं!'

"वह मेरी ओर ताकती रह जाती।"

"तो यह प्रेम का पहला पाठ था!" शीला बोली।

और हम सरिता-तीर से चले आये। परन्तु बाद को भी शीला ने मुझे हल्का-सा भाल पर चूमना न छोड़ा। जब मैं पूछता, 'यह क्या!' तो कहती, 'सच्चे प्यार की कसौटी है, रोज़ मन को जांच लेना ठीक है।'

"तुम मेरा मन जांचती हो या अपना!"

"दोनों का।" और हम हंस पड़ते।

उन्तीसवां परिच्छेद

मुर्गी की तलाश

यह आसाम है न, सो भी पूर्वी भाग। छोटी छोटी पहाड़ियों पर बादल घिर आये झुंड के झुंड। बांसबारी और चाय के खेतों पर भी छा गये। सिरिस की पत्रहीन डालियों को घेर लिया -- सिरिस, जो बाहर से ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे किसी सन्यासी के मुड़े-मुड़ाये सिर हों, जिनमें रस व हरियाली का कहीं नाम न हो।

फुहारें आईं व चली गईं। चाय की कटी-छंटी ठूंठ जैसी झाड़ियों का अन्तर गुदगुदा गईं। हवा में भी एक ताज़गी, एक स्फूर्ति छागई। बोहिनिया पत्रहीन होकर भी पुष्प-शृङ्गार से ही लद गई। बंगले के लॉन में नटेशियन और भी मुस्करा उठी। डेलिया खिलकर बड़ी बड़ी आखों जैसा फैल गया। चाय की झाड़ियों पर नये नये पत्ते झांकने लगे। धरती पर हरियाली की एक कालीन बिछ गई। मेरे मन में भी एक लहर, एक उल्लास का आभास हुआ।

शीला के कारण मेरे मानसिक वातावरण का तनाव काफी घट चुका था। एक शुद्ध, स्वस्थ वातावरण में हम पल रहे थे, बढ़ रहे थे। हमारा सम्बन्ध, हमारा संसर्ग आपस की प्रीति के लिये न होकर, अपने अपने प्रियजनों की ही अर्चना का प्रेरक बन रहा था। उस दिन की घटना तो केवल सहायक का काम करने वाली थी। आपस में, एक दूसरे में अपने अपने प्रिय-पात्र का क्षणिक आभास होजाने के कारण हमारी विरह-व्यथा में 'नोक' नहीं बनती थी, 'धार' नहीं पड़ती थी, वह 'तीक्ष्णता' और 'तेज़ी' न आती थी जो जिगर के पार होकर लहू-लुहान

कर दे और मारे दर्द व छुटपटाहट के कहीं चैन न लेने दे।

शीला और मैं इस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे थे जैसे दो भक्त दो देवताओं की आराधना करते हों अपने अपने प्रकार से, और अवकाश मिलते ही फिर आपस में अपने अपने आराध्य की ही चर्चा, भजन-कीर्तन करें। दोनों में भक्ति का पारस्परिक सूत्र ही तो था जो एक दूसरे को बांधे हुए था चाहे वे भक्ति में शाक्त व शैव ही क्यों न हों।

हमारे मानसिक स्वास्थ्य को यह लाभकर ही था कि मुझे शीला में कभी कभी 'नीरापन' झलकता, मेरी 'शक्ति' के दर्शन होते; उसे मुझ में कभी कभी 'विलियमपन' का आभास मिलता, उसे अपने 'शिव' के दर्शन हो जाते। दोनों एक दूसरे की साधना का हल्का सा सहायक 'प्रतीक' का काम कर जाते।

हमारे पारस्परिक सम्बन्ध की मिठास बराबर मधुर व सुवासित बनी रही। यह सम्बन्ध हम दोनों के लिये भी एक पहेली थी। इसमें भाँलरड की शीतलता थी, परन्तु जलती मसालेदार चाट की गरमी नहीं।

हमारी हल्की-सी छेड़छाड़ भी बराबर बनी रही। इससे साधना में और भी शुद्धता ही आती और रहे-सहे मनोविकार भी इस प्रकार के 'निष्कासन' से दूर हो जाते। उसके भुनहरे, लहराते केशों से खेलना, उन्हें वितर-बितर कर देना, उसे चिकोटी काटना या कोख में गुदगुदाना, हंसते हंसते एक दूसरे पर लोट-पोट होजाना, 'नीरा' कहकर उसे पुकारना व हल्का-सा चूम लेना — यह सब चलता; वह भी ये सारे कार्य मेरे साथ करती, मुझसे बहुत ज्यादा।

मन को आंचने की कैसी निराली कसौटी थी यह!

मुझे 'विलियम' कहकर जब भी वह पुकारती तो मैं जान जाता कि यह चूम लेने की भूमिका है। हम दोनों साधारण स्तर पर प्रिय-पात्रों का अभिनय भी कर लेते। एक दिन सरितो-तीर, चुपके चुपके हम लोग 'बेदिंग-सूट' लेकर गए व उसी प्रकार स्नान किया व समुद्र-तट के बदले कंकरों पर थोड़ी देर लेटे रहे जैसे विलियम ने कभी शीला के साथ किया था।

एक दिन मैंने शीला को ब्लाउज़-पैंट पहनाकर अपने हाथ से चूड़ियां पहनाईं। वह मारे खुशी के नाच उठी और नीरा की अनुभूति में मुझे पकड़कर चुम्बनों से विह्वल कर दिया। मैं तो अपने मन के विकारों से डरता था कि कहीं आग न जागें और उस दिन की घटना कि पुनरावृत्ति हो जाय। इसलिये मैं सांस रोके, मन को थामे इस प्यार के प्रहार को सहता रहा। मेरी आंखें उसके घने केशों में मुंद गई थीं।

जब उसने मुझे छोड़ा तो मेरा चेहरा शायद उतना प्रसन्न न था जितना वह आशा करती थी। वही बोली, "तुम उदास हो गये, क्यों?"

"क्या पता!"

"अच्छा, समझी। तुम्हारे मन में तो नीरा जी से मिलने की आशा है न, इसलिए वह आशा ही कभी कभी इतना उदास बना देती है। मेरे मन में सदेह मिलने की तो कोई आशा नहीं, इसलिए इस प्रकार उतार-चढ़ाव जल्दी नहीं आता।"

"मैं तो कुछ भी नहीं समझता, शीला। न जाने कौन मुझे उदास बना देता है, इस प्रकार और क्यों?"

"यह भी तो संभव है कि तुम्हारे हृदय का सिंहासन अभी भी रिक्त हो। एक ओर नीरा और एक ओर जेन खड़ी हों। तुम किसी को उस पर बैठने का संकेत नहीं करते, अतः दोनों ठिठक गई हों।"

यह उक्ति मुझे बड़ी प्रिय लगी। मैंने कहा, "मैं क्यों संकेत करूं, जो अपने को अधिकारी समझे बैठ जाय।"

"और भूल हो जाने पर तुम उठाकर दूसरे को बैठने को कहो तब?"

"नहीं, ऐसा नहीं होता। उस सिंहासन पर बैठने वाला कभी पूछ कर या बिठलाने से नहीं बैठता। वह तो उछलकर, सिंह की तरह झपटकर बैठ जाता है।"

"फिर एकांगी प्रेम किसे कहते हैं?"

"मैं क्या जानूं?"

"मैं क्या जानूं—तुम नहीं जानते, बड़े भोले हो? नहीं जानते तो

किसी दिन जैन से पूछना, क्या देती।"

यह क्या कह रही थी शीला? क्या मेरे अन्तर के चोर को उसने पकड़ लिया है? क्या मेरी दुनिया को उसने पारदर्शी की भांति पढ़ लिया है! क्या पता।

बात को दूसरी दिशा में मोड़ देने के लिये मैंने कहा, "जानती हो, शीला, मुन्नी क्या कहा करती थी?"

वह मुस्कराई। बोली, "बताना भी तुम्हारी मुन्नी! गले-फंद!"

"हां, हां, वही।"

"सुनाओ, क्या कहती थी?"

"कहती थी, 'कुम्मू, तेरी शादी हो जायगी तो तू अपने घर में मुझे बांदी रख लेना। मैं तुम दोनों को सिंहासन पर बैठाकर चंवर डुलाऊंगी। पंखा झलूंगी। सब सेवाएं करूंगी।'

"अब मैं कहता, 'और यदि तूने मुझे छेड़ा तो मेरी बहू तुझे झाड़ू मारकर घर से निकाल देगी।'

"तो कहती, 'नहीं, कुम्मू, मैं चुपचाप देखती रहूंगी। तुझे हरगिज न छेड़ूंगी। तू मुझे समझता क्या है!'

"'अपने मन की रानी।'

"'धत्।'

"और हम दोनों मुस्करा पड़ते।"

"तब तो तुम्हारी मुन्नी बड़ी समझदार थी, कुमार!"

"बस, कुछ पूछो नहीं। काश, वह कहीं मिल जाती।"

"तो तुम नीरा व जैन दोनों को भूल जाते, क्यों!"

"और तुम्हें भी। शैतान!"

हम दोनों मुस्करा पड़े। वही फिर बोली, "अच्छा, सुनो, तुम तो कहते थे कि वह कहीं 'पूरब देश' चली गई, अपने मां-बाप के साथ!"

"हां, सुना तो ऐसा ही था।"

"तुम लोगों का पूर्व देश तो यह आसाम ही है न! यहां बाग के

मजूरों में मुर्जी नाम की लड़की तो जरूर है, मैं जानती हूं।"

मेरा हृदय धड़कने लगा। न जाने क्या होने वाला है। लगा कि मुर्जी अतीत की कब्र से उठाकर आजाने वाली है। उसके आते ही क्या पता कि कितनी बड़ी आंधी उठे। उस तूफान में, न जाने, कौन धाराशायी हो जाय। मैंने अन्यमनस्क भाव से ही कहा, "वह तो भला क्या होगी! छोड़ो भी!"

"वाह रे संत महाराज! अपनी चमकती आंखों व धड़कते दिल को काबू करो तब तो! बात से क्या होता है। 'छोड़ो भी' कह गये। मन तो कहता होगा कि अभी मुर्जी मिले तो भर लूं बाहों में ...।"

"तुम अब बहुत बोलने लगी हो, शीला।"

"चाटे मार दो। और क्या! दिल में तो मुर्जी के नाम से फूल खिल रहे हैं। रुको, मैं अभी स्त्री-मजूरों का रजिस्टर मंगवाती हूं।"

" ी, यह क्या करती हो!"

था कि उसने पर्चा लिखकर नौकर को भेज दिया

। मैंने कहा, "यह तुमने अच्छा न किया।

कि तुम 'मजूरी' की छानबीन करना

स्त्री-मजूरों की ही मजूरी की

। मैंने सारे हाजिरी के

घूम लूं।" और मैं

। बोली. "तुम

ी, "अब तो मुर्जी का ही

रहना दिन-रात।"

किसी दिन जेन से पूछना, बता देगी।"

यह क्या कह रही थी शीला? क्या मेरे अन्तर के चोर को उसने पकड़ लिया है? क्या मेरी दुविधा को उसने पारदर्शी की भांति पढ़ लिया है? क्या पता।

बात को दूसरी दिशा में मोड़ देने के लिये मैंने कहा, "जानती है, शीला, मुन्नी क्या कहा करती थी?"

वह मुस्कराई। बोली, "बचपन की तुम्हारी सखी! गर्ल-फ्रेंड!"

"हां, हां, वही!"

"सुनाओ, क्या कहती थी?"

"कहती थी, 'कुम्मू, तेरी शादी हो जायगी तो तू अपने घर में मुझे बांदी रख लेना। मैं तुम दोनों को सिंहासन पर बैठाकर चंवर डुलाऊंगी। पंखा झलूंगी। सब सेवाएं करूंगी।'

"तब मैं कहता, 'और यदि तूने मुझे छेड़ा तो मेरी बहू तुझे झाड़ू मारकर घर से निकाल देगी।'

"तो कहती, 'नहीं, कुम्मू, मैं चुपचाप देखती रहूंगी। तुझे हरगिज न छेड़ूंगी। तू मुझे समझता क्या है?'

" 'अपने मन की रानी!'

" 'धत्!'

"और हम दोनों मुस्करा पड़ते।"

"तब तो तुम्हारी मुन्नी बड़ी समझदार थी कुमार!"

"बस, कुछ पूछो नहीं! काश, वह कहीं मिल जाती।"

"तो तुम नीरा व जेन दोनों को भूल जाते, क्यों?"

"और तुम्हें भी! शैतान!"

हम दोनों मुस्करा पड़े। वही फिर बोली, "अच्छा, सुनो, तुम तो कहते थे कि वह कहीं 'पूरब देश' चली गई, अपने मां-बाप के साथ!"

"हां, सुना तो ऐसा ही था।"

"तुम लोगों का पूर्व देश तो यह आसाम ही है न! यहां बाग के

मजूरों में सुर्जी नाम की लड़की तो जरूर है, मैं जानती हूं।"

मेरा हृदय धड़कने लगा। न जाने क्या होने वाला है। लगा कि सुर्जी अतीत की कब्र से उठाकर आजाने वाली है। उसके आते ही क्या पता कि कितनी बड़ी आंधी उठे। उस तूफान में, न जाने, कौन धाराशायी हो जाये। मैंने अन्यमनस्क भाव से ही कहा, "वह तो भला क्या होगी! छोड़ो भी!"

"वाह रे संत महाराज! अपनी चमकती आखों व धड़कते दिल को काबू करो तब तो। बात से क्या होता है। 'छोड़ो भी' कह गये। मन तो कहता होगा कि अभी सुर्जी मिले तो भर लूं बाहों में ...।"

"तुम अब बहुत बोलने लगी हो, शीला।"

"चाहे मार दो। और क्या? दिल में तो सुर्जी के नाम से फूल खिल रहे हैं। रुको, मैं अभी स्त्री-मजूरों का रजिस्टर मंगवाती हूं।"

"नहीं, नहीं, यह क्या करती हो?"

मैं कह ही रहा था कि उसने पर्चा लिखकर नौकर को भेज दिया मि॰ जैक्सन के पास। मैंने कहा, "यह तुमने अच्छा न किया। जैक्सन क्या सोचेगा?"

"सोचेगा क्या? सोचेगा कि तुम 'मजूरी' की छानबीन करना चाहते हो, 'मजूरनी' की थोड़े?"

हम मुस्कराये। मैंने कहा, "केवल स्त्री-मजूरों की ही मजूरी की छानबीन करनी है?"

"तुम मुझे इतना बुद्धू समझते हो, कुमार? मैंने सारे हाजिरी के रजिस्टर मंगवाये हैं।"

"वाह, शाबाश, [illegible] चूम लूं।" और मैं बढ़ा उसका [illegible]। बोली, "तुम क्या [illegible]

[illegible] तो सुर्जी का ही [illegible] दिन-रात।"

काला-कलूटा, कुरूप होगा। नहीं, नहीं, न मिलना ही अच्छा है। मैं न जाऊंगा कल मजूरी बांटने के समय। हर्गिज नहीं। बीमार पड़ जाऊंगा, शीला क्या कर लेगी। बीमार? नहीं, नहीं, तब तो वह मेरे पास ही जम जायगी और छेड़छाड़कर, मनाकर, जबरदस्ती, चाहे जैसे भी हो, घसीट ले आयगी वहां पर। मैं दुपहर के भोजन के बाद से ही गायब हो जाऊंगा नदी तीर पर।

परन्तु यह मन भागने दे तब न? वहीं जम गया यहीं पर। पांव जकड़ गये, उठे ही नहीं, तब?

मैं टहलते टहलते बैठ गया। आह, मुर्जी, यह आंख-मिचौनी! कितनी दर्दीली है! इन्हीं आसपास की झोंपड़ों में तू पन्द्रह वर्ष से छिपी है, मेरे ही बागों में, मेरे ही झोंपड़ों में और मैं जानता भी नहीं 'तेरा कुम्मू'! तूने ठीक कहा था, 'कुम्मू, तू पूरा बुद्धू है।' मैं सच बुद्धू निकला, मुर्जी, पूरा बुद्धू।

मारे बेचैनी के मैं फिर उठकर टहलने लगा। इतने में शीला हाथ में पत्र लिये आई। बोली, "क्यों मुर्जी से मिलने का 'रिहर्सल' कर रहे हो?"

इसकी शरारतों का तो कोई अन्त नहीं। इसी ने सारी आग लगा रखी है और सब कुछ करके अब किनारे खड़ी हाथ सेंक रही है। मैंने झट कहा, "नहीं तो 'रिहर्सल' शीला बिना कैसे हो सकता है।"

"नहीं, मई, मैं तो मुर्जी बन साइकिल के डंडे पर न घूम सकूंगी! लो, यह पत्र लो।"

पत्र लेते हुए मैंने कहा, "आंख-मिचौनी तो खेल सकोगी?"

"पर यह दरद न भरूंगी।"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। मैंने पत्र का लिफाफा अब तक फाड़ दिया था। पढ़ने [illegible] जेल का था [illegible] -अच्छा सा। पर अन्त का एक वाक्य मेरे मन [illegible] । शायद मेरी बेचैनी चेहरे पर ना[illegible] बात है!"

मैंने जेन का खत उसकी ओर बढ़ा दिया। वह पढ़ गई और खत मेरे हाथ में लौटाते हुए बोली, "'तुम्हारे बिना सब कुछ सूना सूना लगता है। क्या अब कलकत्ते न आओगे कभी?' बात तो जेन ने ठीक ही लिखी है, उसे न जाने कितना सूना लगता होगा। तुम्हें आए भी काफी दिन होगये। अब तुम कलकत्ते चले जाओ।"

परन्तु इतना कहते कहते शीला का मुँह उदास होगया, आभा उतर गई, चमक गायब होगई, हंसती आखें नत होगईं, मुस्कान होठों से, कपोलों से, आंखों से विलीन होगई जैसे किसी ने 'स्विच ऑफ़' कर दिया हो व विद्युत-प्रकाश अन्तर्धान होगया हो।

मैंने कहा, "कोई बहुत बड़ी बात होगई है, नहीं तो जेन यों न लिखती।"

"बहुत बड़ी बात?"

"हां, वह बड़ी संयमशील है। शायद कलकत्ते में मेरी सख्त जरूरत है और बात केवल उसके 'सूनेपन' की नहीं है, दिल से आगे भी 'कुछ' है जरूर, पर क्या?"

"भला, क्या हो सकता है? वह बीमार तो नहीं बुरी तरह से? या कोई और संकट······"

"यही तो मेरी समझ में नहीं आता। शीला, तुम जानती नहीं, मैं जेन के लिये जान भी दे सकता हूं, कितनी प्यारी लड़की है वह।"

"हो तो मैं समझती हूं। तुम जिसे थोड़ा भी प्यार करोगे उसके लिये जान दे दोगे, फिर यह तो जेन ही ठहरी।" वह क्षीण मुस्कराकर रह गई।

कमरे में व्यग्रता से मैं टहलने लगा। शीला चुपचाप खड़ी मुझे निहारती रही। इतने में मैंने उछलकर पूछा, "ओह! और कुछ?"

"हां, यह रही पोस्टऑफ़िस की रसीद।"

उसने एक रसीद मेरी ओर बढ़ा दी और कहती गई, "शायद कोई रजिस्टर्ड पार्सल या खत आया है, इस पर दस्तखत कर दो, तो मैं

आदमी भेजकर मंगवा लूं।"

मैंने चुपचाप उस पुरजे पर दस्तखत किया। पोस्टऑफिस वहां से पास पड़ता था नई दिल्ली का। समझते देर न लगी, किसने भेजा होगा। मीरा ! या मीरा ! मगर रजिस्टर्ड क्यों ?

मेरी व्यग्रता देख, शीला सारी चुहल भूल गई। शरारतें न जाने कहां गईं, हंसी का लोप होगया। डेवढ़ाक का साहस जाता रहा। आदमी पुरजा लेकर साइकिल पर भागा। ज़रा रुककर शीला बोली, "यहां चहल-कदमी करने से क्या लाभ ? चलो, सब्ज़ी-बारी में थोड़ी सब्ज़ी ही चुन लाएं।"

'चलो' कहकर मैं चुपचाप उसके पीछे पीछे हो लिया। हम दोनों सब्ज़ी-बारी में पहुंचे। वहां से एक मील की दूरी पर पहाड़ियों की हरी-भरी पंक्ति उत्तर से दक्षिण को चली गई थी और उनके पीछे सूरज का लाल गोला छिपने की तैयारी कर रहा था। उसकी सुनहरी किरणों में शीला नहाकर नैसर्गिक सौंदर्य में निखर उठी थी। उसके सुनहरे केश, खुले वक्ष, नंगी बाँहों व सुडौल पिंडलियों पर ये किरणें अपना जादू बिखेर रही थीं और मैं निरन्तर सोच रहा था, 'जेन को क्या हुआ ?'

लेट्स की पत्तियां तोड़कर वह मुझे देने लगी। मैं समेटता जाता था। उसने एकाध पत्ता खाना शुरू कर दिया, पर मेरे तो दोनों हाथों में ये पत्ते भरे थे, खाऊं तो कैसे। उसने एक नरम पत्ता चुनकर मेरे मुख में दे दिया। मैं खाने लगा। हम दोनों मुस्कराए। मैंने कहा, "बचपन में मैं अपनी गैया के बछड़े के मुंह में हरी घास के पत्ते यों ही दिया करता था।"

"बछड़े तो तुम हो ही और ज़िन्दगी भर भी बने रहोगे बछड़े ही।"

"वाह, देखो न, कितना बड़ा, लम्बा-चौड़ा, सांड की तरह मेरा आकार है।"

शीला हंस पड़ी। मेरी ओर निगाह कर बोली, "पर तुम अन्तर से निरे बछड़े हो। सांड होते तो मनमाना चरते फिरते, एक खेत से दूसरे

खेत में। यों मुझे मुँह में पत्ते न ठूंसने पड़ते।"

मारे हँसी के हम लोटपोट हो रहे। लेट्यूस के सारे पत्ते मेरे हाथ से बिखर गए धूल में। शीला मीठी नाराज़गी जाहिर करते हुए बोली, "कर दिया न सब सत्यानाश, अब तोड़ो न फिर से।"

"मैं नहीं तोड़ता। बिखर गए तो बिखर जाये।"

"तो जाने दो, मैं भी नहीं तोड़ती।"

वह तुनक कर मीठी मटर की बेल की ओर चली गई जहां बास की व सरकण्डे की खड़ी जालियों पर लताएं बिखरी पड़ी थीं व लम्बी लम्बी मोटी मोटी भरी हुई मटर की फलियां झूल रही थीं।

मैं भी उसके पीछे पीछे उधर ही गया। हम दोनों मटर की फलियां तोड़कर खाने लगे। वहीं मैंने बताया कि किस प्रकार बचपन में मैं मुर्जी के साथ साग तोड़ने खेतों में जाता था। चने की नरम नरम कोंपलें वह मेरे लिए अलग से चुनती और घर के लिए अलग से। मुर्जी की उंगलियां पतली व लम्बी थीं तथा वह दोनों हाथों से तोड़ सकती थी। मैं अपनी मोटी मोटी उंगलियों से एक हाथ से ही तोड़ता, फिर नाज़ुक कोमल कोंपलें मेरी पकड़ में न आतीं। मैं इस तोड़ने से जल्दी उकता जाता। फिर वह मुझे तो बैठने को कहती व मेरे कुरते के दामन में सारा साग जमा कर देती, स्वयं तोड़ती रहती। जब मैं अकेले उकताने लगता तो उसे पुकारता, "अब बहुत होगया, मुर्जी, तू चली आ।"

"अभी तो छोटी हंडिया भी न भरेगी, कुम्मू।"

"कितनी बड़ी है हंडिया तेरी री।"

"तेरे मुँह के बराबर।"

और हम दोनों हंस पड़ते। मैं कहता, "ले, सब ज़मीन पर ढेर किए देता हूँ।"

"अरे ना, ना, ना, कुम्मू, मुझ पर मार पड़ जायगी," कहती हुई वह दौड़ी दौड़ी मेरे पास आजाती। मैं रुक जाता। मेरा काम तो सध ही जाता, वह मेरे पास होती। और फिर वह बताती कि किस प्रकार पिछले

रविवार को मैंने साग जमीन पर डाल दिया था सो पकने पर जब दांतों-तले किन-किन लगा तो उसका बाबू बिगड़ा व मां ने रात को ही मरम्मत की। सुनकर मेरी आंखों में आंसू भर आते।

मैं कहता, "ला, तेरी पीठ आज सहला दूं।"

तो हंसकर कहती, "कुम्मू, तू तो लड़की होता तो अच्छा था।"

"क्यों री?"

"क्यों क्या, इतनी सी बात में आंसू टारने लगता है। देख न मुझे, इतनी मार पड़ती है तब भी शेर की शेर।"

"शेर नहीं, शेरनी।"

और हम आंसुओं के बीच हंस पड़ते।

फिर वह कहती, "अच्छा ला, तुझे नरम नरम साग तो खिला दूं।"

"मगर नमक कहां है व हरी मिर्च।"

"बिना नमक के गले से न उतरेगा?"

"नहीं।"

"तो रहो फिर, मेरे पास नमक नहीं है।"

"है जरूर, तू लाई है; निकाल दे सीधे से नहीं तो फिर पटका-पटकी हो जायगी।"

"अच्छा ले, बाबा, ले।"

और वह बांस की पत्ती में नमक व हरी मिर्च साथ पिसी हुई निकालती। फिर साग में लपेटकर मेरे मुंह में देती और कहती जाती, "तू पूरा नवाब है, बिना नमक के साग कभी नहीं खाता, परेशान मुझे ऊपर से करता है।"

मैं कुछ न कहता। अपने मटे मोटे साग के तिनकों को उसके मुंह में ठास देता। वह खाती खाती कहती जाती, "कितना मीठा है तेरा साग, कुम्मू।"

"मुझे तो तेरा साग नमकीन लगता है री।"

हम फिर हंस पड़ते। अन्त में मैं कहता, "अब चल, कुसी, घर चलें;

बहुत होगया।"

वह बोलती, "मुझे थोड़ा सा और तोड़ लेने दे, कुम्मू, नहीं तो मां जान खा जायगी। मक्‍ई के भात या रोटी के साथ और कुछ तो खाने को घर में है नहीं। यह साग ही तो सहारा है, वह भी पूरा न हुआ तो मां जीने न देगी।"

मैं रुक जाता और बोलता, "तेरी मां सौतेली है न, इसी से प्यार नहीं करती। देख मेरी मां मुझे कुछ भी नहीं कहती। मगर तेरा बापू तो तुझे प्यार करता है ?"

"प्यार तो करता है, मगर मां से झगड़ा होने पर हमेशा मां की तरफदारी करता है।"

"यह बहुत बुरा है।"

"बुरा हो चाहे अच्छा। है तो यही मेरे भाग्य में।"

वातावरण फिर गम्भीर हो गया। शीला की मटर की फलियां मुँह की मुँह में व हाथ की हाथ में रह गईं।

वही बोली, "क्यों इतना परेशान होते हो, कुमार। कल तो वह मिल ही जायगी।"

"मिलेगी तो वह क्या अब! हां, आज अकारण ही व्यग्र कर रही है। अब यही लो न मटर की फलियां। हम दोनों खेत में जाते, मटर की फलियां तोड़ते, पर मेरे जैसा काहिल आदमी! फलियों को छुड़ाकर दाने खाते न बनता। वही छुड़ाकर खिलाती तो मैं खाता, नहीं तो, बस यों ही रह जाता। एक बार मैं उसकी सारी छुड़ाई हुई फलियों के दाने खा गया। वह अन्धेरा होने पर खाली हाथ घर लौटी। उसके घर पर कोई दाल-साग अलग अलग तो बनते नहीं। मक्‍ई के भात को नमक के साथ उस रात खाना पड़ा। बेचारी मुर्गी की मरम्मत हुई पूरी तरह। मुझे पता चला तो मैं सिसक सिसक कर रोने लगा। मां ने पूछा तो साफ साफ बता दिया, मेरे कारण मुर्गी को मार पड़ी। दूसरे दिन माँ ने ढेर सी दाल अरहर की मुर्गी की मां को बुलाकर दी।

"मगर इससे होता क्या! मुर्गी की मार तो लौट न पड़ी। हां, वह दाल भी उसे नसीब न हुई। उसने बताया कि मां ने छिपाकर नातेदारों के लिए रख दी है।"

शीला करे तो क्या करे। मेरा मन स्मृतियों से बोझिल हो रहा था। मुर्गी पास ही के किसी भौंरड़े में थी। परन्तु कितनी दूर, पहुंच से परे।

कुछ फूल गोभी, कुछ बन्द गोभी, कुछ टमाटर, कुछ शलगम, कुछ लेट्यूस के पत्ते, कुछ गाजर तोड़कर जल्दी जल्दी मेरे हाथों में रख शीला बंगले में लौट आई।

क्या वह मन ही मन पछता रही थी मुझे सब्ज़ी-बारी में ले जाकर! कौन जाने।

सारी सब्ज़ी बावर्ची के हवाले कर, हाथ धो, कमरे में आया तो शीला हाथ में पैकेट लिए मेरा इन्तजार कर रही थी। मैंने बड़ी उत्सुकता से पैकेट खोला। खोलते ही निकला क्या! पत्रों का ढेर!

नीरा ने प्रतिदिन मुझे पत्र लिखा था, जिस दिन मैंने दिल्ली छोड़ी उसी दिन से। बस, भेजती न थी शायद मारे झिझक या अभिमान के।

दो-तीन पत्रों को पढ़ा, सहम उठा। सब को बन्द कर बक्स में डाल दिया। यह कुरेदन असह्य सी लगी। शीला स्तम्भित रह गई। बोली, "ये नीरा के पत्र हैं। और तुमने पढ़े नहीं!"

"पढ़ूंगा, शीला, इन पत्रों के लिए दिल व दिमाग तो होश में चाहिए। जब अपना होश ही गुम हो रहा हो तो कौन पढ़े इनको, कैसे पढ़े!"

पत्रों को बक्स के हवाले कर मैं सोफे पर आ बैठा, सिर पर हाथ रख लिया। मन में घूम रही थी, चक्कर काट रही थी—मुर्गी! बेन! नीरा!

शीला भी आकर मेरे पास खड़ी हो गई। बोली, "आज तुम्हारी व्यथा असह्य है, कुमार, मैं क्या करूं! कुछ भी तो सूझता नहीं!"

मैं मौन रहा। उसने अपनी कोमल उंगलियां मेरे सिर पर फेरीं, पर, फिर कानों पर। अन्त में दोनों हथेलियों में मेरा मुंह भरकर

उसने चूम लिया, और मेरी बगल में बैठ गई।

मैं न जाने क्या सोच रहा था, क्या देख रहा था, कुछ भी तो समझ में नहीं आता। सब कुछ उमड़-घुमड़ कर रह जाता।

शीला ने सिगरेट जलाई। मेरी ओर संकेत किया तो मैंने उसके होंठों से ही जलती सिगरेट ले ली और उसने दूसरी जला ली। दोनों मौन धुँआ छोड़ते रहे। धुँए के गोल गोल चक्रों में न जाने कितनी ही प्यारी, सुहावनी, डरावनी शक्लें बनती रहीं।

शीला ने चाय मंगवाई, बनाई और प्याला मेरी ओर बढ़ा दिया। कुछ खाने को मेरा मन न किया। चाय का प्याला लेकर मैं धीरे धीरे सुरकियां भरता रहा; एक प्याला, दो प्याले, तीन प्याले।

शीला ने और चाय देने से इन्कार कर दिया। मैंने सिगरेट मांगी। उसे भी 'ना' करने जा ही रही थी कि मेरी मुद्रा देखकर चौंक गई व तुरन्त सिगरेट जला मेरी ओर बढ़ा दी।

मैं फिर धुँआ छोड़ने लगा। होंठ जलते, दिल जलता, दिमाग जलता। सारे आशियानें में ही तो आग लगी थी। धुएं में शक्लें बनतीं, बिगड़तीं; फिर बन जातीं; टिकतीं, मिटतीं और फिर स्थिर होने लगतीं और फिर वही उमड़-घुमड़।

पेरिस से ब्रसेल्स जाते समय जेन ने साथ चलने को कहा था। मैंने 'नाहीं' कर दी। वह बोली तो कुछ भी नहीं, मगर पेरिस के प्लेटफ़ॉर्म पर उसके नेत्र आंसुओं से भर गए। मैं देख रहा था वही बिखरते आंसू, गीले कपोल जिनको मैंने थपथपाकर, चूमकर विदा लिया था। आख़िर नहीं ही रही अकेले, नहीं ही रही। मेरा प्रोग्राम उसे मालूम था। तीसरे दिन जेनीवा में आ मिली। वह कितनी बड़ी खुशी थी। हम दोनों, लगा, पोत-दुर्घटना के बाद, समुद्र पार कर, तैरकर मिले हों। एक दूसरे से घंटों चिपके रहे जैसे अलग होते ही डूब जाने वाले हों, वही जेन।

जब मैंने पेरिस स्टेशन पर गुस्से में कहा था कि काले आदमी के साथ जाते शर्म नहीं लगती तो कितने बड़े बड़े आंसू टप-टप टपक पड़े थे।

सचमुच, मैं कभी कभी शैतान के हाथ में पूरी तरह से आजाता हूँ। फिर तो सारे होश-हवाश गुम हो जाते हैं। वह कुछ बोली नहीं, हिली नहीं, बस मोतियों के दाने बरसाती रही और मैंने जब उसके आंसू पोंछ जरा सांत्वना दी तो बोल फूट पड़े, 'तुम बड़े कठोर हो' और क्षीण मुस्कान दोनों के अधरों पर, आंखों में, कपोलों में नाच उठी थी।

सिगरेट समाप्त हुई, मैंने दूसरी जलाई। शीला बगल में बैठी रही मौन, उदास। मैंने कहा, "शीला, तुम जाओ, आराम करो, मुझे छोड़ दो।"

"छोड़ दूं तुम्हें ऐसे में? यों तड़पते हुए? क्या कहते हो?"

"तो तुम कर ही क्या सकती हो?"

"यही तो सूझता नहीं, कुमार, कि करूं क्या?"

"फिर जाओ नहीं सूझता तो, मुझे एकान्त चाहिए।"

वह चुपचाप उठी व जाने को खड़ी होगई। मैंने देखा उसके कदम उठ नहीं रहे हैं। और उदास होगई बेहद, क्या अपनी बेबसी से?

दरवाज़े के बाहर होने ही वाली थी कि मैं झट से उठकर उसके पास गया व उसका हाथ पकड़कर कहा, "अच्छा, आओ, बैठो मेरे साथ।"

उसके चेहरे पर एक हल्की सी खुशी नाचकर रह गई। मैंने कहा, "देखो न, मैं कितना अभागा हूँ। तुम्हें भी सताने लगा। मैं तुम्हें उदास देख नहीं सकता, तुम्हें यहां बैठना अच्छा लगता है तो यहीं बैठो।"

"मुझे तुम्हारी दशा देख रोना आता है, कुमार।"

"तो रोओ न, मना कौन करता है।"

मैंने जेब का रूमाल दिखाते हुए कहा, "आंसू पोंछने के लिए यह रूमाल तो है ही। मेरे भाग्य में सब को रुलाना ही लिखा है, शीला। मैंने हंसती, फूल की कली जैसी सुबी को रुलाया, जेन को रुलाया, नोरा को रुलाया और अब तुम्हारा मन करता है रोने को। अच्छा जलाओ सिगरेट, दो मुझे।"

शीला ने सिगरेट जलाई। एक मुझे दे दी और एक स्वयं ली। मैंने

कर हवा में छोड़ा तो मुर्ज़ी नाच उठी धुंए के घुमड़ में। मैंने कहा :

"मुर्ज़ी को एक बार मैंने बुरी तरह रुलाया था, शीला। बात यों हुई कि मेरे घर में मौसम का सब से पहला तिल का लड्डू बना। तुम नहीं जानती ये तिल के लड्डू क्या हैं। खैर, बड़े स्वादिष्ट व मीठे होते हैं, एक प्रकार की मिठाई समझ लो। हमारे गांव देहात में बहुत बनती है। मां ने मुझे चार लड्डू दिये खाने को। मैं स्वयं अकेले न खाकर मुर्ज़ी के पास पहुंचा। वह समझ गई मामला कुछ ज़रूर है, संकेत पर ही हम दोनों निकल पड़े। गए पुआल के ढेर के पीछे। उसने पूछा, 'क्या लाया है, कुम्मू?'

"'तिल के पहले लड्डू।'

"'सच, गुड़ के हैं या चीनी के?'

"'चीनी के। चख के देख तो!'

"मैंने लड्डू उसकी ओर बढ़ाया। उसने मुंह में डालते ही कहा, 'ये चीनी के हैं। बड़े अच्छे।'

"'तुझे गुड़ के अच्छे नहीं लगते?'

"'नहीं, काले काले गन्दे लगते हैं, और स्वाद में न जाने कैसे कैसे।'

"'नखरे तो तेरे रानियों जैसे हैं।'

"'तू अमीर है तो मुझे चिढ़ाता है, कुम्मू!'

"'ख़बरदार जो मुझे अमीर कहा।' मैं तड़पा।

"'तू है अमीर, मैं कहूंगी, तू क्या कर लेगा? अमीर, अमीर, अमीर।'

"'देख, मुर्ज़ी, गुस्सा न दिला।'

"'अमीर, अमीर, अमी······।'

"बात पूरी भी न हुई कि मैंने बढ़कर एक थप्पड़ उसके गाल पर जड़ दिया। वह हक्की-बक्की मेरा मुंह ताकने लगी पर ज़िद न छोड़ी। शैतान जो थी, बोली, 'मार, कुम्मू, तू जी भर आज मुझे मार ले, मगर मैं कहूंगी, तू अमीर है, अमीर, अमी······।'

"मैंने दूसरा थप्पड़ जमाया और बोला, 'ज़बान बन्द कर, नहीं तो तेरी जीभ खींच लूंगा।'

"वह सिसकती हुई बोली, 'नहीं बन्द करती, तू खींच ले जबान। सच कह दिया तो लगा तिलमिलाने। तू मार, और मार। अमीर है इसी से मुझ गरीब को मारता भी है। तू क्या जाने, हम कितने दिन खाली साग पर, सत्तू पर गुज़र करते हैं। तू क्या जाने, हम कितनी रातें बिना खाए सो जाते हैं। तू नहीं जानेगा, कुम्मू, तू मार ले।'

"मेरे हाथ उठकर, कांपकर रह गए। मुन्नी ने कटु सत्य कह दिया था। मैंने मुन्नी को दोनों बांहों में भर लिया और कुरते के छोर से उसके गाल सहलाने लगा, आंसू पोंछने लगा।

"फिर मैं भी सिसक सिसक कर रोने लगा। मुन्नी कुछ देर में चुप हो, मुझे मनाने व चुप कराने लगी।

"रो-धोकर हम दोनों घर गए। तब एक दूसरे से क्षमा मांगने, लेने-देने की तमीज़ हम लोगों में न थी।"

शीला चुपचाप इस कहानी को सुन रही थी। उसके नयन-कोर गीले हो चले थे और मेरे भी। उसने मेरे आंसू पोंछे, कपोल चूम लिए व कमरे से चली गई।

रात धुंद के गुम्बज में तड़पती रही।

तीसरा परिच्छेद

प्रपात पर

ज्यों त्यों करके सवेरा हुआ। रात को देर तक जागने के कारण सवेरे की सुहावनी ठंडक में मुझे नींद आगई, नींद तो क्या आई झपकी आगई, उसमें भी सपने देखने लगा। सुर्जी, वही सुर्जी मेरी थप्पड़ों की मार से सिसक-सिसककर रो रही है। मैं पूरी चेष्टा करता हूं कि उसके पास पहुँच जाऊं, उसे चुप कराऊं पर मेरे पांव जैसे उठते ही नहीं, किसी ने कील जड़ दी हो। हाथ दोनों फैले हैं सुर्जी को बांहों में भर लेने के लिए परन्तु आगे बढ़ नहीं पाते, मैं छटपटाता जा रहा हूं, सुर्जी रोए जा रही है।

आंख खुलते ही देखा कि मेरे बिस्तर से लगी आराम-कुर्सी पर शीला बैठी है और एकटक मेरी ओर ताक रही है। तो यह कब से यहां है और क्यों?

हम दोनों ने मुस्कराकर अभिवादन किया।

मैंने कहा, "आज का दिन तो अच्छा कटना चाहिए, सवेरे सवेरे एफ्रोडाइटिस (ग्रीक देवी—सौन्दर्य की) के दर्शन हुए हैं।"

वह मुस्करा पड़ी। कौन सुन्दरी अपने रूप की प्रशंसा पर पागल नहीं हो जाती! बोली, "मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जाओ, फिर छोटी हाज़िरी लेकर बाहर चले चलेंगे।"

"कहां?"

"यों ही चाय के खेतों में, सरिता-तीर थोड़ा घूम आयेंगे; मन बहल जायगा।"

मैं मुस्कराया। सोचने लगा कि मेरे सुख-संतोष के लिए इस लड़की को कितनी चिन्ता है! भला, इससे मेरा क्या सम्बन्ध है जो रात से ही इतनी परेशान है। लगता है कि यह भी रात को सोई नहीं है, परन्तु कुछ कहती नहीं। इसकी आँखें बता रही हैं, रात को इसे नींद नहीं आई।

मैंने कहा, "नहीं, पहले मैं पलंग-चाय लूंगा तब कुछ करूंगा।"

"अच्छी बात है, यही सही।"

उसने नौकर को पुकारा। वह तुरंत चाय का साज-सामान लिए हाज़िर हुआ। शीला ने चाय बनाई, मुझे दी व स्वयं ली। चाय पीते हुए मैंने कहा, "ओह, चाय भी कितनी सुखकर पेय है! काश इन्सान भी इतने ही सुखकर होते।"

"इन्सान होते तो इससे बहुत सुखकर हैं, कुमार, तुम जानते हो; हां, जब लेखा-जोखा बराबर होकर शून्य होने लगता है तभी अखरता है हर किसी को। हर 'क्रेडिट' का 'डेबिट' तो भरना ही पड़ता है, कुमार।"

"तुम ठीक कहती हो, शीला, मगर एक का दस भरना तो अखरता है न! और अखरना भी चाहिए। मुझे किसी से मिलकर जितना सुख मिलता है, प्यार मिलता है उसके बिछुड़ने पर तो उससे दस गुना भरना पड़ता है और यही मुझे अखरता है।"

"मैं तो समझती हूँ, भरना बराबर ही पड़ता है। हां, जो बहुत सेंसेटिव होते हैं उनकी व्यथा दसगुनी हो जाती है। चोट सहने की ताकत सब की तो बराबर नहीं होती; कोई इस्पात है, कोई चांदी तथा कोई सोना। एक ही हल्की सी चोट में सोना कांप उठता है, चांदी कसमसाकर रह जाती है, और इस्पात को तो जैसे कुछ लगा मालूम ही नहीं होता।"

इन्हीं बातों में चाय समाप्त हुई और मैं नित्य-कर्म वगैरह के लिए उठ पड़ा। शीला भी कमरे से चली गई।

छोटी हाज़िरी साढ़े दस बजे समाप्त हुई, फिर शीला मुझे लेकर निकली बागों में घूमने-घुमाने।

सवेरे की एक फुहार के बाद दिन बड़ा सुहावना निकल आया था। बादल

अमृत बरसाकर छिटक गये थे। भाप की पसीनों ने मुख धो लिया था। हवा हल्की हल्की चल रही थी, समय बड़ा ही सुहावना था।

इस समां से मेरा मन कुछ हल्का हुआ। थोड़ी ताज़गी व स्फूर्ति मालूम हुई। शीला ने ब्राउ स्कर्ट व पैन्ट डाल रखी थी, पुलओवर निकालकर पिछली सीट पर फेंक दिया था। केश लहराने लगे थे। बंगले से निकलते ही जिस पक्की सड़क पर हम लोग आये थे उसके दोनों ओर लम्बी कतारें 'बोहीनिया' की लगी थीं; क्रम यों था कि एक गुलाबी फूलोंवाली तो दूसरी श्वेत। इन दिनों में 'बोहीनिया' बड़े ज़ोर पर थी। फूल थे कि टहनियों से लहक उठे थे। सड़क उन फूलों से बिछ गई थी। इन फूलों का इतना मोहक सौन्दर्य और उनके बीच से हमारी गाड़ी गुज़र रही थी।

शीला बोली, "यह ऐवेन्यू कितना सुन्दर है!"

"हां, मुझे तो बड़ा मनोहारी लगता है, जैसे प्रकृति ने हम दोनों के स्वागत में बिछा दिया हो।"

"*वैसे बिछाया तो हर आने-जाने वाले के लिए है।*"

"नहीं, केवल ख़ास व दिल वाले पथिकों के लिए है।"

हम हंस पड़े। सड़क के किनारे से लड़कियों की एक टोली जा रही थी, होंगी पन्द्रह-सोलह। सभी पन्द्रह से बीस वर्ष के बीच की थी, उठती जवानी में पागल, मस्त। बात बात पर हंसती थीं, हंसने में फूल झरते थे। एक तो यों ही पथ पर 'बोहीनिया' के रंग-बिरंगे फूल लहरा रहे थे फिर इनका किलकना, मुस्कराना, हंस-हंस पड़ना और भी गज़ब का था।

यह टोली आधी मज़ूरी पाने वालों की थी। इनकी गिनती बालिकाओं में होती है, उम्र सोलह वर्ष से कम समझी जाती है, बाबुओं की कृपा-दृष्टि होने पर ये बीस-इक्कीस की उम्र में किसी दिन बालिग समझ ली जाती हैं और उनका नाम बालिकाओं के रजिस्टर से कटकर बालिग स्त्रियों के रजिस्टर में चला जाता है। तब इनको दूनी मज़ूरी व अधिक काम मिलता है।

साहस न करे।"

"ठीक कहते हो, कितनी बड़ी खाई है समाज में पैसों को लेकर—हर समाज में, चाहे यहां, चाहे इंगलैण्ड-अमेरिका में।"

मैं हल्का सा मुस्कराते हुए बोला, "यदि कहीं इन भाड़ियों में मिल गई तब तो मैं उछलकर उसे उठा लाऊंगा इस गाड़ी में, चाहे वह हक्की-बक्की होकर बेहोश ही क्यों न हो जाय या मारे डर के चिल्ला पड़े।"

"देखूं तुम्हारा मुँह, *तुम्हारी तो अभी से बाछें खिली पड़ती हैं,*" ऐसा कहते कहते उसने अपनी उंगलियों से मेरी ठोडी को उठाया। *पास ही भाड़ियों में खड़ी लड़कियों की टोली ठठाकर हंस पड़ी।* हम चिहुँक उठे व हंसने लगे। गाड़ी आगे बढ़ी।

मैंने पूछा, "ये लड़कियां हम दोनों के बारे में क्या सोचती होंगी?"

"जो तुम अभी सोच रहे हो।"

"मैं तुम्हारे बारे में नहीं सोच रहा हूँ।"

"कौन कहता है, तुम मेरे बारे में सोच रहे हो। तुम तो अपनी लाड़ली मुर्जी के ध्यान में मस्त हो!"

हम दोनों फिर हंसे। गाड़ी आगे बढ़ी। बोहीनिया समाप्त हुई। कुछ आम के पेड़ मिले, बौर से लदे हुए, डालियां थीं कि भार से झुकी पड़ती थीं, पथ सफ़ेद बौर से बिछा पड़ा था, मक्खियों व चींटे-चींटियों के झुंड चक्कर काट रहे थे। शीला बोली, "इन आमों पर तो बसन्त बुरी तरह छा जाता है।"

"अपना अपना भाग्य!"

हम और आगे बढ़े। लड़कियों की कई टोलियां मिलीं। जब भी ये टोलियां पास से गुज़रतीं, शीला गाड़ी धीमी कर देती और मुस्कराते हुए कहती, "देखो तो, इनमें से है कोई मुर्जी।"

मैं उसकी इस शरारत पर मुस्कराकर रह जाता। धीरे धीरे चाय के बाग के कई विभाग पार कर हम नदी-तीर पहुँचे जहां वह पहाड़ियों को छूती हुई बहती है। धार तेज़ थी, पत्थर के चिकने टुकड़े काफ़ी बड़ी

संध्या में पड़े थे। उन पर हम धीरे धीरे चलने लगे।

जहां हम बहुधा शाम को घूमने जाने पर बैठा करते थे उसी शिला पर, पहाड़ी व नदी की पृष्ठभूमि में शीला ने हम दोनों का चित्र लिया। तत्कालिन कैमरे से यह सहज ही संभव था, स्वयं बनाना व चित्र में शामिल हो जाना।

वहां से दूसरे रास्ते से हम लौट पड़े। रास्ते में एक सेमल का पेड़ मिला जिसके लाल लाल फूल धरती पर बिखरे पड़े थे। मैंने कहा, "शीला, देखती हो इन फूलों को, इनका रंग इतना चटकीला है, पर सुवास बिल्कुल नहीं। इनका पुरदों को पका देख कौवे चोंच मारते हैं शायद कोई फल हो, पर बार बार चोंच मारने पर भी निकलती है केवल रुई जो उनके किसी काम की नहीं।"

"इस फूल को देखकर तुम इतना सोच ले गए, क्यों!"

"मैं सोच रहा हूं कि हमारा सुर्जी को खोजने का प्रयत्न भी कुछ ऐसा ही सा है।"

"कुमार, तुम सुर्जी का भी अपमान कर रहे हो व मेरा भी। यह ठीक नहीं!" वह हंसी।

"सो कैसे!"

"न तो सुर्जी .... !"

इतने में छोटी छोटी भेड़ों जैसी आसामी गायों का एक झुण्ड सड़क पर सामने आ डटा। मैंने कहा, "ये गाएं भी रास्ते की पूरी बला हैं!"

"तुम क्यों ऐसा कहते हो, हिन्दुओं के लिए तो ये माताएं हैं न!"

"हां, मगर ये नहीं, वे जो पुत्रों को दूध, दही, घी से भर देती हैं, ये तो आधा सेर दूध बमुश्किल देती होंगी।"

हमारी गाड़ी आगे बढ़ती जाती थी। कुछ देर हम मौन रहे। हवा के झोंकों से शीला के लहराते केश मेरे चेहरे को छू छू जाते, मुझे कुतुब का दृश्य याद आता, नीरा याद आती। मैंने कुछ कहा नहीं। मेरा मन शिथिल व कमज़ोर हो गया था। सुर्जी, जेन, नीरा...... एक अजीब

उलझन थी परन्तु सब सही थी, ठीक थी। मेरे मन में सब कुछ था, कुछ भी न था, एक पहेली थी, एक समस्या थी जिसका कोई ओर-छोर न था, कोई सिर-पैर न था।

मेरा हृदय इस समय एक ऐसा रण-स्थल बना था जो स्वयं अपने में व्यस्त था; युद्ध होते, उठते-गिरते, आंधियां आतीं-जातीं और मैं मात्र दर्शक रह गया था, जैसे इन पर मेरा कोई काबू न हो। सब कुछ बेकाबू हो रहा था।

अब हमारी गाड़ी मजदूरों की बस्ती से गुजर रही थी। शीला बोली, "अब पहचानो कौन सा झोंपड़ा सुर्जो का है और कौन सा लालमनी का।"

"यह काम तो तुम्हीं से होगा, शीला, मुझसे नहीं।"

"सच्ची मोहब्बत सूंघ लेती है, कुमार!"

इतने में एक बड़ी सी मुर्गी रास्ता पार करने लगी सामने से, गाड़ी रोक देनी पड़ी। उसके पीछे पीछे सात-आठ नन्हे नन्हे बच्चे थे। हम दोनों ने साथ ही देखा व एक दूसरे को देखकर मुस्करा दिए। मगर क्यों? शीला शैतानी से बोली, "तुम्हारी सुर्जो के आगे-पीछे इतने ही बच्चे होंगे!"

"तुम्हारे भी तो आगे-पीछे हो सकते हैं!"

"सिली!"

मजदूरों की बस्ती समाप्त हो चली। अंत के तीन घरों से पहले वाले घर के सामने सचमुच लालमनी खड़ी मिली। हमने गाड़ी रोक दी और दोनों उतर पड़े। शीला ने पूछा, "तुम काम पर नहीं गई?"

वह कुछ बोली नहीं, सिर नीचा करके अंगूठे से मिट्टी खुरेचने लगी। मुझे यह प्रश्न बड़ा अटपटा लगा। वह बेचारी क्या सोचेगी, मालिक घर में भी चैन से नहीं रहने देते।

मैं तो उसके कपोलों पर बने निशान को देखकर एक बार नए सिरे से सिहर उठा। उसके लिए मेरे आर्द्र मन में बड़ी श्रद्धा जाग उठी।

मन ही मन मैंने उसे प्रणाम किया और सोचने लगा कि यदि अभी मैं उसके पांवों से खुरची हुई मिट्टी को उठाकर माथे से लगा लूं तो क्या होगा ! कितनी बड़ी कहानी बनेगी, कितना बवण्डर फैलेगा, और लाभ ? कुछ भी नहीं, किसी को नहीं। यह बहादुर लड़की सारी दुनिया, समाज व कानून को चुनौती देकर हमारे सामने नत-मस्तक खड़ी अंगूठे से धरती खोद रही है और हम दो 'भगोड़े' उससे बातें कर रहे हैं। शीला ने भी परिस्थितियों का सामना न कर भागना श्रेयस्कर समझा और भागते भागते धरती के दूसरे छोर पर पहुंच गई और मैं हर जगह से भागकर आसाम के जंगलों में खाक छानता फिरता हूँ। हां, जेन में इसके विपरीत साहस व शक्ति अवश्य है।

शीला ने अपना प्रश्न दूसरे ढंग से पूछा, "क्यों तबियत ठीक नहीं?"

"जी नहीं," कहकर लालमनी मुस्करा पड़ी। कपोलों पर मुस्कान छा गई, दांत खुलते खुलते रह गए, आंखें मटककर झुक गईं। इतने में ही उसका पति झोंपड़े से निकला, आकर सलाम किया व सामने खड़ा हो गया। बोला, "हजूर, इसके पांव भारी हो रहे हैं। यह आजकल छुट्टी पर है।"

बात पूरी भी न हुई थी कि वह शरमाती, खिलती झोंपड़े में घुस गई। मैंने शीला की ओर देखा व हम हल्का सा मुस्कराकर रह गए।

मैंने कहा, "मिस्त्री, तुम भी काम पर नहीं गए।"

वह बोला, "हजूर, मेरी आज हफ्तावारी छुट्टी है, रविवार को काम किया था उसके बदले में।"

"तुम तो इजन-घर में काम करते हो न ?"

"पहले करता था, हजूर, आजकल मिस्त्रीखाने में हूं।"

ये बातें हो ही रही थीं कि लालमनी ने झोंपड़े से फूलों के दो गुच्छे लाकर हम दोनों के हाथों में रख दिये। उसकी इस तीव्र बुद्धि व हृदयस्पर्शिता को देखकर मैं दंग रह गया व शीला भी। मेरे संकेत से शीला ने एक गुच्छे में से एक सुन्दर फूल निकालकर उसके जूड़े में

लगा दिया। मारे प्रसन्नता के वह खिल उठी।

मैंने सौ रुपये का एक नोट मिस्त्री को दिया और कहा, "आनेवाले बच्चे पर खर्च करना मेरी ओर से। लालमनी, तेरा बच्चा मणि होगा और लाल भी, जवाहरलाल की तरह! अभी से बधाई व आशिष दोनों लो!"

लालमनी ने आंचल का पल्ला गले में लपेट मेरे चरण छू प्रणाम किया। इसी समय शीला ने झट से हम दोनों का चित्र लिया। कितनी शैतान है शीला! मिस्त्री ने फिर से सलाम किया। शीला को उसने सलाम किया बोलकर व लालमनी ने चुपचाप हाथ जोड़कर।

अब हम वहां से विदा हुए। चिन्ता अब कुछ घटी। सुर्जी न मिली न सही, लालमनी से तो आज अनायास भेंट हो गई। शीला बोली, "चलो, आधा काम तो हो गया, बाक़ी भी शाम तक हो जाय तो मज़ा आ जाय।"

"तो क्या तुम लालमनी की ही तलाश में इधर चली थीं?"

"तलाश में तो किसी के नहीं चली थी, फिर आपके मन से जो भी मिल जाय। आओ, अब तुम्हें थोड़ी नाव पर सैर करा लाऊं।"

"नहीं, शीला, चलो, अब लौट चलें।"

"भोजन में अभी घंटे भर की देर है। बारह बज रहे हैं, तब तक हम हो आएंगे।"

"अच्छा, चलो। मैं सो [illegible] हूं [illegible] जाऊं।"

"कल! आपने सीट बुक [illegible]

"नहीं, अभी पक्का [illegible] सलाह ही नहीं की। [illegible] आना चाहिए,

[illegible] किन्तु मेरा मतलब [illegible] अटककर रह गई।

"मैं कहां कहती हूं कि अभी……………" और बात फिर अधूरी रह गई। कुछ देर मौन चलने के बाद वह बोली, "कल का पुलिन्दा तो नीरा जी का था!"

"हां।"

"आपने पढ़ा, क्या लिखा है?"

"दो-चार लाईनें देखीं जरूर पर बर्दाश्त न हो सकेंगी इसलिए बन्द कर रख दिया।"

"आप बड़े जालिम हैं!"

एकाएक इतना बड़ा आरोप 'आप बड़े जालिम हैं!' मैं सोचने लगा, क्या बात है। वह नीरा के लिए कह रही है या स्वयं अपनी ओर से कह रही है, नीरा के बहाने।

गाड़ी चलते चलते फिर नदी के किनारे दूसरे घाट पर पहुंच गई। यहां पर कई छोटी छोटी नावें थीं, एक 'मोटर बोट' भी थी। आसपास की कई चाय कम्पनियों ने मिलकर इसे सैर के लिए रख छोड़ा था।

हम दोनों मोटर बोट पर सवार हुए और वह हवा की तरह फर-फर करती नदी की छाती पर उड़ चली। नाव में बैठने के लिए गद्देदार सीटें बनी थीं। हम दोनों एक सिरे पर जा बैठे। आकाश में कुछ बादल-खण्ड चक्कर काट रहे थे, फिर भी धूप सुहावनी व चटकदार थी, हवा का झोंका पानी पर से होकर कुछ ठंडा ठंडा सा आरहा था और एक श्वेत, चमकती, पिघली चांदी की सी रेखा बनाते मोटर बोट भाग रही थी। मैं कभी तो इंगलिश चैनल पार करते समय स्टीमर पर जेन के साथ बिताई घड़ियों को सोचता, तो कभी टेम्स पर वेस्टमिनिस्टर से ग्रीनविच तक मोटर बोट में आने की कल्पना करता, और कभी वेनिस की मोटर बोट नाच उठतीं आंखों में जिनमें जेन के साथ चक्कर काटे थे। एकाएक मोटर बोट व वेनिस की बात सोचते सोचते 'गोंडोला' आंखों में नाच उठे, वेनिस की जल की गलियां, जल की सड़कें, जल के फील्ड और गोंडोला की काव्यमयी सवारी: परन्तु किनारे के दृश्यों को देखकर मैं अपने गांव की बात सोचने लगा, किस

प्रकार एक बार एक डोंगी के चक्कर में मैं गंगा में डूबते डूबते बचा। मेरे बचने पर, सुर्जी ने गंगा जी को दो पैसे के बताशे चढ़ाए।

कितने महंगे थे सुर्जी के बताशे ! कितने कीमती ! कितने मीठे !

नाव बड़ी तेज़ी से धारा के विपरीत बढ़ रही थी। मैदान वाला भाग अब समाप्त हो चला था। अब एक किनारे पर चाय के खेत व दूसरे पर उठती हुई पहाड़ियां, उन पर जंगली पेड़, कहीं कहीं पपैया व अनानास के पेड़ दिखाई देते थे। धारा और भी तेज़ व चक्करदार मिल रही थी।

एकाएक मेरा ध्यान शीला की ओर गया तो क्या देखता हूँ कि उसकी दृष्टि दूर दूर पहाड़ियों पर गड़ी है जहां से नदी की यह धारा निकली है। मैंने छेड़ा, "क्या सोच रही हो, शीला ?"

"आपने कभी 'नियाग्रा' प्रपात देखा है ?"

"नहीं तो, एक बार एक रंगीन फ़िल्म देखी थी नियाग्रा की।"

मेरा मन घबराया, शीला क्या सोच रही है ? विलियम, नियाग्रा, यदि कहीं जल में कूद पड़े तो ? ना ना !

मैंने कहा, "अब लौटना चाहिए, शीला, नहीं तो भोजन के लिए देर हो जाएगी। मि. जैक्सन राह देखेंगे।"

"अभी आए ही कितनी दूर हैं, मि. कुमार। आप तो यों ही घबराने लगते हैं। डर लगता है क्या ?" और वह मुस्करा दी, परन्तु आज मैं इसमें उसका साथ न दे सका।

मैं सटकर शीला के पास बैठ गया और उसकी अंगूठी देखने के बहाने उसका हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया। बात बदलने के लिए मैंने कहा, "शीला, तुम्हारा हाथ खूबसूरत है और उंगलियां उससे भी बढ़कर।"

"विलियम भी यही कहा करता था।"

मैं और भी डर गया। कदम कदम पर मुझसे भूल हो रही है और मैं ग़लत ढंग से छेड़ बैठता हूँ। नियाग्रा, विलियम और पहाड़ी के उन्मुख सर-सर भागती यह नाव !

"मैं कहा कहती हूं कि अभी………" और बात फिर अधूरी रह गई। कुछ देर मौन चलने के बाद वह बोली, "कल का पुलिन्दा तो नीना को का था।"

"हां।"

"आपने पढ़ा, क्या लिखा है।"

"दो-चार लाईनें देखीं अन्त पर बर्दाश्त न हो सकेंगी इसलिए बन्द कर रख दिया।"

"आप बड़े ज़ालिम हैं।"

एकाएक इतना बड़ा आरोप 'आप बड़े ज़ालिम हैं।' मैं सोचने लगा, क्या बात है। वह नीना के लिए कह रही है या स्वयं अपनी ओर से कह रही है, नीना के बहाने।

गाड़ी चलते चलते फिर नदी के किनारे दूसरे घाट पर पहुंच गई। यहां पर कई छोटी छोटी नावें थीं, एक 'मोटर बोट' भी थी। आसपास की कई चाय कम्पनियों ने मिलकर इसे सैर के लिए रख छोड़ा था।

हम दोनों मोटर बोट पर सवार हुए और वह हवा की तरह फर-फर करती नदी की छाती पर उड़ चली। नाव में बैठने के लिए गद्देदार सीटें बनी थीं। हम दोनों एक सिरे पर जा बैठे। आकाश में कुछ बादल-खण्ड चक्कर काट रहे थे, फिर भी धूप सुहावनी व चटकदार थी, हवा का झोंका पानी पर से होकर कुछ ठंडा ठंडा सा आ रहा था और एक श्वेत, चमकती, पिघली चांदी की सी रेखा बनाते मोटर बोट भाग रही थी। मैं कभी तो इंगलिश चैनल पार करते समय स्टीमर पर जेन के साथ बिताई घड़ियों को सोचता, तो कभी थेम्स पर वेस्टमिनिस्टर से ग्रीनविच तक मोटर बोट में जाने की कल्पना करता, और कभी वेनिस की मोटर बोट नाच उठतीं आंखों में जिनमें जेन के साथ चक्कर काटे थे। एकाएक मोटर बोट व वेनिस की बात सोचते सोचते 'गोंडोला' आंखों में नाच उठे, वेनिस की जल की गलियां, … की सड़कें, जल के फील्ड और गोंडोला की आकर्षक सवारी। परन्तु …रे के दृश्यों को देखकर मैं अपने गांव की बात सोचने लगा, किस

प्रकार एक बार एक डोंगी के नज़र में मैं गंगा में डूबते डूबते बचा। मेरे बचने पर, मुन्नी ने गंगा जी को दो पैसे के बताशे चढ़ाए।

कितने महंगे थे मुन्नी के बताशे! कितने कीमती! कितने मीठे!

नाव बड़ी तेज़ी से धारा के विपरीत बढ़ रही थी। मैदान वाला भाग अब समाप्त हो चला था। अब एक किनारे पर चाय के खेत व दूसरे पर उठती हुई पहाड़ियां, उन पर जंगली पेड़, कहीं कहीं पपैया व अनानास के पेड़ दिखाई देते थे। धारा और भी तेज़ व चक्करदार मिल रही थी।

एकाएक मेरा ध्यान शीला की ओर गया तो क्या देखता हूँ कि उसकी दृष्टि दूर दूर पहाड़ियों पर गड़ी है जहां से नदी की यह धारा निकली है। मैंने छेड़ा, "क्या सोच रही हो, शीला?"

"आपने कभी 'नियाग्रा' प्रपात देखा है?"

"नहीं तो, एक बार एक रंगीन फ़िल्म देखी थी नियाग्रा की।"

मेरा मन घबराया, शीला क्या सोच रही है? विलियम, नियाग्रा, यदि कहीं जल में कूद पड़े तो? ना ना!

मैंने कहा, "अब लौटना चाहिए, शीला, नहीं तो भोजन के लिए देर हो जायगी। मि. जैक्सन राह देखेंगे।"

"अभी आए ही कितनी दूर हैं, मि. कुमार। आप तो यों ही घबराने लगते हैं। डर लगता है क्या?" और वह मुस्करा दी, परन्तु आज मैं इसमें उसका साथ न दे सका।

मैं सटकर शीला के पास बैठ गया और उसकी अंगूठी देखने के बहाने उसका हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया। बात बदलने के लिए मैंने कहा, "शीला, तुम्हारा हाथ खूबसूरत है और उंगलियां उससे भी बढ़कर।"

"विलियम भी यही कहा करता था।"

मैं और भी डर गया। कदम कदम पर मुझसे भूल हो रही है और मैं ग़लत ढंग से छेड़ बैठता हूँ। नियाग्रा, विलियम और पहाड़ी के उन्मुख सर-सर भागती यह नाव!

मैंने उसका हाथ दुलारते हुए अंगूठी को ध्यान से देखना आरम्भ किया। बड़ी खूबसूरत अंगूठी थी हीरे की। मैंने कहा, "तुम्हारी 'वेडिंग रिंग' तो अत्यंत सुन्दर है और महंगी भी। इसकी बनावट भी निराली है, अद्वितीय।"

"जी हां 'रिङ्ग' ही भर तो है, 'वेडिंग' कहां हो सकी!"

मैं सुनकर अवाक् रह गया। शीला कह क्या रही है। मैं अपनी सारी व्यथा भूल उसका मुंह ताकने लगा। गहन व्यथा, घोर दर्द आंखों की गहराई में भरता आ रहा था; हंसी गायब, चुहल गायब। ऐसा तो मैंने कभी शीला को न देखा था। चलो थी मेरा मन बहलाने और लगी स्वयं ही डूबने-उतराने।

"तो क्या यह विलियम की भेंट है?"

"जी हां।"

"और जैक्सन?"

"मैंने उनको समझा दिया है।"

"समझा दिया है? क्या?"

"कुछ भी नहीं। यही कि यह अंगूठी मेरी मा की भेंट है और मैं उसे ही पहनूंगी।"

हम दोनों क्षीण मुस्कराकर रह गए। वह भरे गले से धीमी आवाज़ में बोली, "कुमार, वह ज़ालिम रात-दिन सताता है।"

"कौन? जैक्सन?"

"जैक्सन? मुर्झी ने ठीक ही तो कहा था।"

"क्या?"

"कुछ भी नहीं।" और वह चुप लगा गई। उसके हृदय के आकाश में वेदना के बादल घिरते आ रहे थे जिनको उमड़-घुमड़ आंखों में उतर पड़ती थी। वह कैसी उखड़ी-उखड़ी बातें कर रही थी। यदि नाव का चालक न होता तो मैं उसे उसी प्रकार ठीक करता जैसे कभी कभी वह करती थी। उसकी वेदना, कातरता बढ़ती जाती थी। उसे थोड़ा सा सहारा,

थोड़े से प्यार की आवश्यकता थी। विलियम का प्रतीक पास में बैठा था परन्तु कुछ भी नहीं कर सकता था।

मुझसे तो कुछ कहते-सुनते न बन पड़ा। मैं चुपचाप उसकी उंगलियां अपनी हथेलियों में दबाता रहा, सहलाता रहा। फिर वही बोली, "आओ तुमको इस अंगूठी की एक खूबी दिखाऊं।"

ऐसा कहकर उसने अपना हाथ जरा अपनी ओर खींचा और मेरी ओर झुकी। मैं भी उसकी ओर झुका। इतने में हमारे सिर एक दूसरे से टकरा गए। हम दोनों मुस्कराए। मैंने कहा, "एक बार और नहीं तो सींग निकल आयेंगे।"

"सच ? क्यों ?"

'ऐसी ही कहावत है।"

और मैंने एक बार फिर जानबूझकर अपने सिर से उसका सिर टकरा दिया। मुस्कान बिखर गई हमारे चेहरों पर। फिर उसने एक नन्ही सी कील, जो अंगूठी में एक स्थान पर मात्र सौंदर्य के लिए लगी जान पड़ती थी, दबाई और उस हीरे के अन्तर में विलियम का रूप झलकने लगा। मैंने कहा, "ओह, यह बात है!"

"हां हां, तभी तो कहती हूं, जालिम रात-दिन सताता है।"

"सच; जो भी हो, शीला, यह अंगूठी बड़ी कीमती व अनुपम है।"

"उसमें बसने वाला उससे भी कहीं बढ़कर कीमती व अनुपम है।"

"मान गया। अच्छा अब तो लौट चलना चाहिए।"

"नहीं, कुमार, आज मेरा मन बड़ा घबरा रहा है। इन्हीं पहाड़ियों में कहीं प्रपात भी होगा।"

"विलियम से मिलने का यह पागल तरीका है, शीला, अब लौट पड़ें।"

"तुम घबराओ नहीं, मैं कुछ करूंगी नहीं। परन्तु नाव को अभी चलने दो ऊपर और ऊपर।"

जाते जाते हम पहाड़ियों के ऐसे मोड़ पर पहुंच गए जहां पानी सौ-डेढ़ सौ फुट की ऊंचाई पर से गिरता था और जिसका शोर भी काफी

तेज सुनाई देता था। चालक बोला, "अब आगे नहीं बढ़ सकते, हुजूर!"

"फिर लौट चलो," मैंने कहा।

"नहीं, किनारे लगाओ," शीला बोली।

नाव किनारे लगी। शीला ने मेरा हाथ पकड़ा व कंधे का सहारा ले नाव से उतर पड़ी। मैं भी उतरा। दोनों पहाड़ी पर चढ़ने लगे। थोड़ी दूर जाने पर ही हांफने लगे, कारण चढ़ाई ऊंची थी और कोई रास्ता तो था नहीं।

एक पेड़ के नीचे एक शिला-खण्ड पर हम दोनों बैठ गए। बैठते ही मेरे गले में दोनों बाहें डाल शीला मेरी गोद में झूल गई। बोली, "कुमार, तुम साक्षी हो, आज मेरा मन जीने को नहीं करता, लौटने को नहीं करता। मैं आज तुम्हारे सामने इस प्रपात में कूद पड़ूंगी। यह अंगूठी तुम ·······।"

मैंने उसका मुंह अपने हाथ से बन्द कर दिया। वह अंगूठी उतारने का प्रयत्न कर रही थी। उसे भी अपने हाथ से रोका और दोनों बांहों में भर उसे चुम्बनों से ढेर करने लगा—भाल पर, गले पर, कपोल पर। कहता जाता था, "नहीं, शीला, नहीं, प्राण खोओ नहीं, नहीं!"

मैं उसकी पीठ को सहलाता रहा, वक्ष को अपने वक्ष से दबाता रहा। धीरे धीरे उसके मन की तड़प शान्त हुई तो वह सम्भल कर बैठी और झपटकर मेरी गरदन पकड़, मोड़, मेरा सिर अपनी गोद में कर लिया जैसे मैं कोई बच्चा होऊं और झुककर अपने सुनहरे केश से मेरा सारा चेहरा ढक लिया व बार बार चूमने लगी। पर न तो उसमें आतुरता थी, न तपन। बोलती जाती थी, "तुम कितने भोले हो, कुमार, कितने अच्छे!"

"मैं या विलियम ?"

मेरी गाल पर एक हल्की चपत जमाते हुए बोली, "विलियम, नटखट कहीं के।"

उसकी पकड़ ज़रा ढीली पड़ी तो मैं सम्भलकर बैठ गया। वह भी कुछ शान्त हुई। बोली, "देखते हो यह समा, ये उठती-गिरती पहाड़ियां,

लहराती नदी की धारा, उस पार चाय के हरे-भरे खेत, और दहाड़ता हुआ यह प्रपात। मेरा मन बहुत घबराने लगा था, विलियम—कुमार।"

"तुम कितनी विलियममय होगई हो इस समय!"

"हां, पर जानते हो यह दोष इस समां का नहीं है, तुम्हारा भी है।"

"मेरा? सो कैसे?"

"तुम न जाने कितने विलियम की तरह हो! दर्द भी तुम्हीं बोते हो, दवा भी तुम्हीं से हो पाती है।"

"तब तो ठीक है। मैं चला जाऊंगा तो न दर्द होगा, न दवा की जरूरत पड़ेगी।"

"नहीं, कुमार, *तुम चले आओगे तो दर्द अधिक होगा और दवा* बिल्कुल न होगी। सोचती हूं, तुम चले आओगे तो मेरा क्या होगा!"

कितनी व्यथा थी उसके कथन में। मीरा की सजीव प्रतिमा बनी बैठी थी। मैंने कहा, "होगा क्या? विलियम तो तुम्हारे साथ है ही तुम्हारी मुट्ठी में।"

"आज तुम न होते, कुमार, तो मैं शायद इस प्रपात से प्रेम कुछ बढ़ाती। बार-बार ऐसा लगता था कि झरने के जल में विलियम की छाया है। वह संकेत से मुझे बुला रहा है। मेरा मन कहता, "मैं आई विलियम!" आज मेरा मन अभी भी काफी घबरा रहा है व उद्विग्न है। तुम्हारे कारण कुछ शान्त जरूर हुआ है मन व काबू में भी आया है।"

"पूरी शान्ति तो विलियम से ही मिलेगी, शीला।"

"चुप, नटखट कहीं के," कहते हुए उसने मुझे पकड़कर एक बार फिर चूम लिया और चल पड़ी। हम दोनों नाव में आए और धारा के उतार पर नाव तेजी से भाग चली।

हां, उस शिला-खण्ड पर से चलने से
का और एक हम दोनों का लिया।

लगभग डेढ़ बजे हम बंगले पर लौटे,
लिया पड़ा था।

इकतीसवाँ परिच्छेद

गुर्जी का शव

सड़क के किनारे, 'वर्दमिल' के कुंज में, तिनके पत्तों के ढेर में खून से लथ पथ एक स्त्री—मजदूर स्त्री पड़ी थी। मजदूरों के एक टोली उसे घेरे हुए थे। हमने देखते ही गाड़ी रोक दी और उतर पड़े। पूछने पर मालूम हुआ कि एक तेंदुआ झाड़ियों से निकलकर झपट पड़ा और गरदन पकड़कर भाग गया।

हम दोनों के लाश के सामने आते ही मजदूर-मण्डली कुछ तितर-बितर होगई। शीला तो उस लहूलुहान लाश को देख कांप गई। मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखकर उसे आश्वस्त किया। पंजों से मुख, नाक, गाल, होंठ, आंखें इतनी बुरी तरह जख्मी होगई थीं कि कुछ भी पहचान सकना मुश्किल था।

मैंने एक मजदूर सरदार से पूछा, "फिर यह लाश मिली कैसे ?"

"हजूर, तेंदुआ जब झपटकर इसे बाग से ले भागा तो और मजूरें सब भाग गईं चिल्लाती हुईं। मैनेजर साहब को खबर दी गई। वे बन्दूक लेकर निकल पड़े। झाड़ियों में हाँका दिया गया। साहब का माली, कोंपा, मशाली लेकर इधर उधर झाड़ियों में तेंदुए को तलाश कर रहा था। वह साहब से भी आगे आगे था। एकाएक उसके पास की ही झाड़ी से तेंदुआ उस पर उछल पड़ा। दोनों भिड़ गए। कोंपा को तेंदुए ने बुरी तरह जख्मी किया और तब उसे बेहोश छोड़ इस मागी (स्त्री) के पंजे मार ढेर कर दिया। यह भी वहीं बेहोश पड़ी थी। साहब ने दो गोली मारीं और वह वहीं का वहीं ढेर होगया।"

"तेंदुआ कहा है?"

"हजूर, तेंदुआ बंगले पर है।"

"और कोपा माली?" शीला बोली।

"अस्पताल में।"

"इस स्त्री को अस्पताल में नहीं पहुंचाया?"

"हजूर, मुर्दा लाश क्या पहुंचाई जाय। हम लोग क्रिया-कर्म का इन्तज़ाम कर रहे हैं।"

"यह कौन थी, सरदार?" मैंने पूछा।

"यह हिन्दुस्तानी गोंड थी, सरकार, पन्द्रह बरस पहले बनारस से आई थी।"

"इसके कोई बाल-बच्चे हैं?"

"नहीं, सरकार, बड़ी होनहार लड़की थी व नेक मगर ब्याह न किया। इसे कोई यहां पसन्द ही न आया। सोना थी, हजूर, सोना। अब तो क्या ऐसी लड़कियां होंगी। यह सतजुग की लड़की थी, हजूर।"

"उसका नाम क्या था, सरदार," शीला बोली।

"भला, अच्छा तो नाम था उसका, स-सु···सुर्जी, सुर्जी न रे?" एक मजदूर स्त्री को सम्बोधन कर उसने हुंकारी मारी। उसने भी स्वीकारात्मक हां कर दिया। वह फिर से पुष्टि के स्वर में बोला, "सुर्जी, हजूर।"

"सुर्जी! मेरे मुंह से निकल पड़ा, बड़े ही स्तम्भित व भयभीत स्वर में। सब अवाक् रह गए। शीला ने मेरी बांह में अपनी बांह डालकर मुझे सम्भाल लिया। धीरे से बोली, "चेहरा देखकर कुछ पहचान सकते हो?"

"नहीं, वह तो घायल होकर विकृत होगया है," मैंने धीरे से कहा। शीला एक प्रकार से घसीटती हुई मुझे गाड़ी में लाई। पास बिठालकर बंगले पर चल दी।

बंगले पर आकर मैंने मृत तेंदुए को देखा। गोली एक माथे पर व एक छाती पर लगी थी। मैंने जैक्सन को इस शूरता पर बधाई दी व झट से अपने कमरे में चला गया।

मेरा मस्तिष्क किसी इंजिन के पहिए की तरह से [illegible] से चल रहा था—भनभनभन। एक विचित्र सनसनी सब ओर, मस्तिष्क [illegible] आ रही थी। कुछ भी मुझे सूझ न रहा था। अकस्मात् दिमाग में [illegible] आ रहा था। लगता था, मैं इसके [illegible] बुरी तरह से [illegible] जा रहा हूं।

मेरे पर ऐसा गहरा हुआ है सिगरेट का कड़ा [illegible] धुआं उड़ता मेरे मुंह से, नाक से, दिल से, दिमाग से। कुण्डली बना बनाकर वातावरण में छा जाता। कभी कभी सर्प की कुण्डली सा लगता कभी मन्दिर में जलाई गई आरती के धुएं सा।

और तस्वीरें सी बनतीं, बिगड़तीं और फिर बन जातीं, नये नये वेश में, नये नये प्रकार से। धुएं को हवा में देख याद आया, जाड़े के दिनों में मैं व मुन्नी मुंह से भाप छोड़ने की, हवा में आते ही जमकर भाप बन जाती। इस खेल में वह बाजी लगाते कि किस के मुंह से धुआं ज़्यादा व घना निकलता है, और देर तक टिकता है। वह बराबर हार जाती। फिर वह बाजी लगाती घास के डण्ठल को सिगरेट की तरह जलाकर धुआं छोड़ने की। हम दोनों जलाते, उसमें से धुआं खींचते व हवा में छोड़ते। मैं इस खेल में बराबर हारता क्योंकि घास के डण्ठल का कड़ा धुआं मुझसे कभी बर्दाश्त न होता। मेरे हारने पर वह अंगूठा दिखाती, पहले दूर से फिर मेरी नाक के पास ले जाकर।

एक बार हार व खीझ के गुस्से में मैंने अंगूठा उसका पकड़कर एक तरह से तोड़ ही दिया था। बाद को उसे अच्छा करने के लिए गाय के दूध का फेन मैं उस पर मला करता। जब मैं कहता, तू बड़ी रानी बनी है, आप क्यों नहीं मलती ?" तो बोलती, "देखो, कुम्मू, दवा अपने लगाने से असर नहीं करती, नहीं तो मैं जरूर लगाती।"

"तू बहाना बनाती है, मुन्नी, मैं जानता हूँ।"

"नहीं रे, जब तेरी भी उंगली टूट जायगी तो मैं दूध का फेन मल दिया करूंगी।" और हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ते।

मैं कहता, "न जाने कब मेरी उंगली टूटेगी व तू दूध मलेगी।"

"इसीलिए तोड़ न लेना।"

फिर ज़रा रुककर कहती, "अच्छा, सच सच बता दूं?"

"बता दे।"

"तेरा मलना मुझे अच्छा लगता है।"

"अच्छा, यह बात है? तब तो मैं नहीं मलता, और मैं उसका अंगूठा छोड़कर किनारे होजाता।"

वह तुरन्त मेरे ऊपर झपट पड़ती, बोलती, "मलेगा कैसे नहीं, तूने छोड़ा क्यों है।"

"अच्छा, ला मल दूं।"

और मैं फिर फेन मलने लगता। कुछ रुककर मैं भी कहता, "मुझे भी अच्छा लगता है री।"

"क्या?"

"तेरा अंगूठा मलना।" और हम हँसकर रह जाते।

क्या वह सचमुच मेरी सुर्जी थी? कौन जाने? कौन कहे?

इसी उधेड़बुन में मैं डूब-उतरा रहा था कि शीला ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। शायद मि० जेक्सन भोजन के बाद जा चुके थे दफ्तर। सोफ़े के पीछे से आकर मेरे सिर के ऊपर झुक गई और दोनों बाहें मेरे गले में डालती हुई बोली, "यों उदास न हो, कुमार, तुम ऐसा करोगे तो मेरा क्या हाल होगा?"

"तुम्हारा?" मैंने चौंककर कहा।

"हां, मेरा। मैं तुम्हें यों कलने, मरते, तड़पते नहीं देख सकती," आंखों में आंखें डालकर उसने कहा।

मैं बोला, "सो तो ठीक है पर तुम कर भी क्या सकती हो?"

घूमकर सामने से, सोफ़े पर वह मेरी बगल में बैठ गई। मैं भी थोड़ा खिसका व लम्बे पड़े की स्थिति को छोड़कर सीधा बैठने लगा क्योंकि उसके बैठने के बाद अब इतनी जगह सोफ़े पर न थी कि लेटा

पड़ा रहता। उसने झट से मुझे ऐसा करने से रोका और मेरा सिर अपनी गोद में डाल लिया। मैं भी कुछ बोला नहीं, एतराज न किया, चुपचाप उसकी गोद में पड़ रहा व लम्बे सोफे पर पांव फैला दिये।

सिगरेट का कश खींचकर मैंने उसके मुंह पर फेंका। धुएं में उसका चेहरा छिप गया; फिर धीरे धीरे स्पष्ट होगया जैसे हल्के, भीने, मटमैले बादल के बीच से चांद निकल आए।

वह मुस्कराई। उसने भी एक सिगरेट सुलगा ली और धुएं से मेरा मुँह भर दिया। जब मैं ऊबचूप में पड़ा, तो मुस्कराते हुए उसने मेरे माथे पर हाथ फेरा व बोली, "यह भी तो हो सकता है कि यह मुर्जी तुम्हारी मुर्जी न हो!"

"सो तो ठीक है, पर मेरी मुर्जी भी तो हो ही सकती है।"

"फिर हम व्यर्थ के संदेह में क्यों मरें!"

हम दोनों थोड़ी देर चुप रहे। फिर मैंने मौन भंग करते हुए कहा, "मैं कल कलकत्ता चला जाऊंगा, तुम किसी आदमी को भेजकर 'एयर-ऑफिस' से टिकट मंगवा लो।"

"हां ठीक है, तुम अब चले ही जाओ। वहां जेन भी तो······"

इतना कहकर धीमी मुस्कान के साथ शीला चुप होगई, परन्तु चेहरा कुछ गिर गया। मैंने जरा चौंककर संदेह के साथ पूछा, "जेन भी क्या? ·····क्या शीला? जेन भी क्या ·· ··?"

"वह बीमार है, कलकत्ते से तार आया है, किसी तुम्हारी भाभी ने भेजा है।"

मैं एकदम से उठ बैठा उसकी गोद से व सोफे पर सम्भलकर बैठ गया। पूछा, "कहां है तार वह?"

'यह रहा,' कहकर शीला ने ब्लाउज़ से निकालकर दे दिया। मैंने तार पढ़ा। भाभी का तार था, जल्दी बुलाया था, जेन सख्त बीमार है।

तार को पढ़कर पहले तो मैं सन्न रह गया। 'क्या सारे संकट मेरे ही ऊपर टूटकर गिरने वाले हैं, सो भी एक साथ ही, कैसा मुहूर्त है यह!"

मुर्दों शायद चल ही बसी, सो भी इतनी बुरी मौत। जेन सख्त बीमार है, नीरा के खत पढ़े ही नहीं।

जेन! नीरा!

और अब यह एक शीला भी है, तड़पने के लिए, तड़पाने के लिए। मैं कितना बड़ा दुर्भाग्य लेकर पैदा हुआ हूँ, किसी को सुख न दे सका। जब किसी को दिया तो दुःख, व्यथा, तड़पन। यही मेरी भेंट है, मेरा उपहार है, जो लेने को तैयार हो, मेरे पास आए वरना दूर ही रहे। यह तड़पते दिल व टपकते आंसुओं का सौदा है, भला कौन करेगा ऐसा सौदा? जो करता भी है उसे पछताना पड़ेगा। शायद पछताता भी हो।

शीला ने सहमते हुए पूछा, "अब क्या सोच रहे हो?"

"सोच रहा हूँ? सोचने की शक्ति अब कहां शेष है? ......न जाने कैसे जी रहा हूं।"

मैंने देखा, शीला को कुछ भी सूझ न रहा था। क्या कहे, क्या न कहे, क्या करे, क्या न करे। अन्त में उसने नौकर को पुकारा और चपरासी को साइकिल पर भिजवाकर कलकत्ता का एक टिकट 'एयर पोर्ट' से लाने को कहा दूसरे दिन के लिए।

नौकर चला गया। मेरी सिगरेट बुझकर समाप्त हो चली थी। उसने हम दोनों के लिए सिगरेट निकाली व 'लाइटर' से जलाई मेरी व अपनी भी। फिर बोली, "तुम कुछ आराम न करोगे? तुम्हें आराम की सख्त जरूरत है।"

"और कर ही क्या रहा हूं, शीला? दो महीने से आराम ही तो कर रहा हूँ।" मैं मुस्कराया, एक व्यथा भरी मुस्कान, दर्दीली।

उसने बिना ध्यान दिए कहा, "तुम थोड़ा सोने का प्रयत्न करो।"

"क्या प्रयत्न करने से ही नींद आ जायगी?"

"मैं समझ रही हूं, कुमार, तुम्हारी व्यथा को। तुम्हारे सिर में इस समय हथौड़े चल रहे हैं, क्यों? नसें सारी तन गई हैं तन की, मस्तिष्क की। किसी तरह उनका तनाव घटना...?" फिर कुछ रुककर बोली, "मैं

पड़ा रहा। उसने प्यार से मुझे ऐसा करने से रोका और मेरा सिर अपनी गोद में डाल लिया। मैं भी कुछ बोला नहीं, एतराज न किया, चुपचाप उसकी गोद में पड़ा रहा व आगे सोफे पर पांव फैला दिये।

सिगरेट का कश खींचकर मैंने उसके मुंह पर फेंका। धुएं में उसका चेहरा छिप गया। फिर धीरे धीरे स्पष्ट होगया जैसे हल्के, मटमैले बादल के बीच से चांद निकल आए।

वह मुस्कराई। उसने भी एक सिगरेट सुलगा ली और धुएं से मेरा मुंह भर दिया। अब मैं उलझन में पड़ा, तो मुस्कराते हुए उसने मेरे माथे पर हाथ फेरा व बोली, "यह भी तो हो सकता है कि वह मुर्गी तुम्हारी मुर्गी न हो!"

"सो तो ठीक है, पर मेरी मुर्गी भी तो हो ही सकती है।"

"फिर हम व्यर्थ के संदेह में क्यों मरें?"

हम दोनों थोड़ी देर चुप रहे। फिर मैंने मौन भंग करते हुए कहा, "मैं कल कलकत्ता चला जाऊंगा, तुम किसी आदमी को भेजकर 'एयर-ऑफिस' से टिकट मंगवा लो।"

"हां ठीक है, तुम अब चले ही जाओ। वहां जेन भी तो……"

इतना कहकर चीण मुस्कान के साथ शीला चुप होगई, परन्तु चेहरा कुछ गिर गया। मैंने जरा चौंककर संदेह के साथ पूछा, "जेन भी क्या? ……क्या शीला! जेन भी क्या……?"

"सख्त बीमार है, कलकत्ते से तार आया है, किसी तुम्हारी भाभी ने भेजा है।"

मैं एकदम से उठ बैठा उसकी गोद से व सोफे पर सम्भलकर बैठ गया। पूछा, "कहां है तार वह?"

'यह रहा,' कहकर शीला ने ब्लाउज से निकालकर दे दिया। मैंने तार पढ़ा। भाभी का तार था, जल्दी बुलाया था, जेन सख्त बीमार है।

तार को पढ़कर पहले तो मैं सन्न रह गया। 'क्या सारे संकट मेरे ही ऊपर टूटकर गिरने वाले हैं, सो भी एक साथ ही, कैसा मुहूर्त है यह!"

मुझें शायद चल ही बसी, सो भी इतनी बुरी मौत। जेन सख्त बीमार है, नीरा के खत पढ़े ही नहीं।

जेन! नीरा!

और अब यह एक शीला भी है, तड़पने के लिए, तड़पाने के लिए। मैं कितना बड़ा दुर्भाग्य लेकर पैदा हुआ हूँ, किसी को सुख न दे सका। जब किसी को दिया तो दुःख, व्यथा, तड़पन। यही मेरी भेंट है, मेरा उपहार है, जो लेने को तैयार हो, मेरे पास आए वरना दूर ही रहे। यह तड़पते दिल व टपकते आसुओं का सौदा है, भला कौन करेगा ऐसा सौदा? जो करता भी है उसे पछताना पड़ेगा। शायद पछताता भी हो।

शीला ने सहमते हुए पूछा, "अब क्या सोच रहे हो?"

"सोच रहा हूँ? सोचने की शक्ति अब कहा शेष है? ......न जाने कैसे जी रहा हूं।"

मैंने देखा, शीला को कुछ भी सूझ न रहा था। क्या कहे, क्या न कहे, क्या करे, क्या न करे। अन्त में उसने नौकर को पुकारा और चपरासी को साइकिल पर भिजवाकर कलकत्ता का एक टिकट 'एयर पोर्ट' से लाने को कहा दूसरे दिन के लिए।

नौकर चला गया। मेरी सिगरेट बुझकर समाप्त हो चली थी। उसने हम दोनों के लिए सिगरेट निकाली व 'लाइटर' से जलाई मेरी व अपनी भी। फिर बोली, "तुम कुछ आराम न करोगे? तुम्हें आराम की सख्त जरूरत है।"

"और कर ही क्या रहा हूं, शीला? दो महीने से आराम ही तो कर रहा हूँ।" मैं मुस्कराया, एक व्यथा भरी मुस्कान, दर्दीली।

उसने बिना ध्यान दिए कहा, "तुम थोड़ा सोने का प्रयत्न करो।"

"क्या प्रयत्न करने से ही नींद आ जायगी?"

"मैं समझ रही हूं, कुमार, तुम्हारी व्यथा को। तुम्हारे सिर में इस समय हथौड़े चल रहे हैं, क्यों? नसें सारी तन गई हैं तन की, मस्तिष्क की। किसी तरह उनका तनाव घटना..?" फिर कुछ रुककर बोली, "मैं

तुम्हारे सिर पर कुछ मल दूं?"

"क्या मलोगी?"

"कोई 'बाम' वगैरह।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

कोई 'हॉट ड्रिंक' लोगे?"

"नहीं", फिर कुछ रुककर मैंने कहा, "लाओ न, कोशिश कर देखूं।"

"नहीं, रहने दो, कहीं लेने के देने न पड़ जायें।" और उठकर कोई 'बाम' लाने चली गई। मैं भी उठकर पलंग पर पड़ रहा। वह एक आराम-कुर्सी, जो पलंग के बगल में पड़ी थी, घसीटकर उस पर बैठ गई और धीरे धीरे अपनी पतली, नाज़ुक उंगलियों से मेरे माथे पर बाम मलने लगी।

मैं सिगरेट अभी भी पिए जा रहा था। मलते मलते उसने पूछा, "जेन ने बीमारी के बारे में तो कुछ लिखा न था?"

"न, किन्तु वह निराली लड़की है, बीमार भी होगी तो झट से न लिखेगी।"

"कल की चिट्ठी में क्या था? 'तुम्हारे बिना सूना-सूना लगता है?'"

"हां, कुछ ऐसा ही तो था।"

"यह भी तो था 'क्या अब कलकत्ते कभी न आओगे?'"

"हां, इसी से तो सोचता हूं कि वहां कोई तूफान ज़रूर चल रहा है। जेन बीमार नहीं है।"

"मगर आज का तार भी यही कहता है कि जेन बीमार है।"

"फिर यह भाभी कौन है तुम्हारी?"

"हमारी? कोई नहीं, एक पड़ोसी। जेन बीमार होती तो भेजा तार देता जेन के नाम पर। यह भाभी जी का तार बड़ा रहस्यमय लगता है।"

रोज़ी कुछ देर सोचती रही, फिर बोली, "भाभी जी की भाई [illegible] से बनी है?"

"हाँ, खूब, दोनों ने प्रेम-विवाह किया है, अन्तर्प्रान्तीय।"

"यह बात दूसरी है, कुमार। आजकल बनती है या नहीं?"

"सो तो मैं नहीं जानता बनती होगी, बनना चाहिये। प्रेम-विवाह है, कोई खिलवाड़ नहीं।"

"यह बात छोड़ो। हमारे देश में सभी विवाह प्रेम-विवाह होते हैं और दो वर्ष के भीतर ही तलाक-कोर्ट देखनी पड़ती है।"

"फिर तुम्हारा मतलब क्या है?"

"भाई साहब का जेन से परिचय है या नहीं?"

"क्यों नहीं, खूब परिचय है।"

"तब जेन संकट में है, भाई साहब के कारण। यों भाभी जो के सिर में दर्द न उठता तार देने के लिए। तुम जाओ।"

"यह बात मुझे कुछ बेतुकी लगती है, शीला। पहले, तो उन दोनों दम्पति में खूब पटती है। दूसरे, जेन कोई साधारण लड़की नहीं।"

"सो तो मैं भी समझ गई हूँ, जेन को तुमसे अधिक। पर भाई साहब तो *साधारण हो सकते हैं। क्या पता अब अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम की बात सोच रहे हों।*"

"मिली, ऐसा नहीं हो सकता।" मैंने कुछ रुककर कहा, "हाँ, एक अमेरिकन डाक्टर है, उसकी निगाह जेन पर जरूर है।"

शीला मुस्कराई, मैं भी मुस्कराया, पर क्यों?

शीला बोली, 'यदि यह मुसीबत होती तो तुम्हारी वे भाभी जी हर्गिज तार नहीं देतीं। समझे।"

"क्या पता, भाभी ही ने तार दिया है या नहीं।"

"फिर और किसी को क्या पड़ी है कि उनके नाम पर तार दे।"

"यह भी तो हो सकता है कि जेन बीमार हो, वह अमेरिकन डाक्टर आया हो देखने। उसने सलाह दी हो तार देने की मुझे। भाभी जी वहाँ पर मौजूद हों। उन्होंने अपने ऊपर यह बीड़ा उठा लिया हो।"

"नहीं, कुमार, तुम सचमुच इन मामलों में......।"

"कुछ हैं, यही न कहना चाहती हो।"

हम दोनों लोग मुस्कराए। वही बोली, "मुझी ने तो तुमको यही उपाधि दी थी।"

"दी तो सही थी।" मुझी के नाम से दर्द की एक नई लहर मेरे भीतर हिलोरें ले उठी।

शीला बोली, "जैन बीमार होगी तो अमेरिकन डाक्टर इसे मुफ्तखोर समझ जी-जान से सेवा करेगा। तुम्हें तार देने को हर्गिज, हर्गिज न कहेगा, समझे? अच्छा, अब तुम सिगरेट फेंक दो और सो जाओ।"

उसने मेरे मुंह से सिगरेट निकालकर ऐश-ट्रे में डाल दी। मैंने कहा, "सोऊं कैसे? आंखों में, तो लगता है, किसी ने मिर्चें झोंक दी हैं।"

"मैं ठीक किए दे रही हूं।"

शीला ने अपनी उंगलियों से मेरी आंखें ढक दीं व दूसरे हाथ से थपथपाने लगी। मैंने आंखें बन्द किए ही पूछा, "अब क्या लोरी गाओगी?"

"हो तो तुम इसी काबिल।" और झुककर उसने मुझे चूम लिया भाल पर। मैंने आंखें बन्द कर लीं। कुछ देर में मुझे सोया जानकर वह कमरे से चली गई, परन्तु मेरी आंखों में नींद कहां?

शीला चली गई। मैं सिगरेट पर सिगरेट फूंकता रहा। कमरा धुएं से भर गया। ऐश-ट्रे सिगरेट के जले नन्हे-नन्हे टुकड़ों से भर गई, परन्तु मन को चैन नहीं, मस्तिष्क को चैन नहीं। आंधियां उठतीं, तूफान उठते, धरती हिलती, आकाश कांपता, पेड़ गिरते, पहाड़ हिलते, एक प्रलय आ गई थी मेरे मन में, मेरे मस्तिष्क में, मेरी दुनिया में।

शाम के पांच बजे शीला आई मेरे कमरे में धीरे धीरे पांव रखती। उसने देखा धुएं से भरा कमरा, खाली सिगरेट का डिब्बा, भरी हुई ऐश-ट्रे। मैं पलंग से उठकर सोफे पर बैठे बैठे सिगरेट पी रहा था। मेरे पास आकर उसने बड़े प्यार से पीछे से गले में बांहें डाल दीं व माथे को हल्का सा चूमकर बोली, "अब बस करो। लगता है, तुम ठीक नहीं।"

मैंने कुछ भी कहा नहीं। उसने हाथ से सिगरेट लेकर फेंक दी ऐश-ट्रे

में और बोली, "चलो, कहीं थोड़ा घूम आएं।"

"नहीं, मैं अब कहीं न जाऊंगा।"

"सरिता-तीर नहीं चलोगे?"

"नहीं।"

"आखिरी संध्या!"

"हो आया सवेरे।"

"सब्जी-वारी?"

"नहीं।"

"बहुत दर्द होता है न? मैं क्या करूं, मैं क्या करूं? मुझे कुछ भी नहीं सूझता, कुमार। तुम्हारी व्यथा अब सही नहीं जाती। यदि जान देकर भी तुम्हारे मन का दर्द हर सकती तो ऐसा मैं जरूर करती।"

मैंने बड़े प्यार से उसके केश पर हाथ फेरते हुए कहा, "मैं जानता हूं, शीला, मैं समझता भी हूं। सब समझता हूं, पर जिस रोग की दवा ही नहीं, तुम भला उसके लिए क्या करोगी? इस रोग की दवा चुपचाप सहना है, *उफ भी न निकलनी चाहिए।*"

"अच्छा बाहर ही चलो।"

उसने मेरा हाथ पकड़कर खींचा। मैं बच्चे की तरह चुपचाप उठ खड़ा हुआ। बोली, "मैं चाय मंगवाती हूँ, आज 'लॉन' पर चाय पियेंगे।"

"ठीक है, मैं भी मुँह-हाथ धो कपड़े बदलकर आता हूँ।"

वह चली गई। मैं जाकर ठंडे पानी के टब में पड़ रहा। क्या पता इसी से कहीं तपन शान्त हो। कुछ देर पड़ा रहा। जब ठिठुरने सा लगा तब बाहर आया। ताज़े कपड़े पहनने से व ठंडे स्नान से मन में कुछ स्फूर्ति आई। सुनहली धूप 'लॉन' पर फैली थी। शीला एक छोटी मेज़ पर सारा सामान रखे हमारा इन्तज़ार कर रही थी।

मैं जाकर उसके सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। आज चाय के सामान में टोस्ट व बिस्किट के अलावा उड़द की, पोदीने की, आलू की, मटर की ढेर सी पकौड़ियां रखी थीं। गाजर का हलुवा भी था। मैं समझ

गया कि इन पर शीला ने स्वयम् काफी समय लगाया होगा और बा
के साथ माथापच्ची की होगी। पकौड़ियां व गाजर का हलुआ दोनों
मुझे बहुत पसंद हैं। शीला को मेरी कमज़ोरी मालूम है, आज वह
ज्ञान का लाभ उठाने को तैयार थी मुझे खिलाने के प्रयत्न में।

परन्तु मेरा मन कुछ भी लेने को तैयार नहीं था। मैंने सहज ही पूछ
"यह इतनी तैयारी किस के लिए है, शीला?"

"किस के लिए? तुम्हारे लिए।"

"मैं तो यह सब कुछ भी न लूंगा, केवल एक प्याला चाय लूंगा।"

"यह सब मेरे घर में नहीं चलेगा, मि० कुमार, समझे; उपवा
करना हो तो कहीं और जाइए, धरना दीजिए।"

मैंने देखा कि शीला के चेहरे पर सहज रोष छा गया। मैं मना क्य
बोलता। धीरे से कहा, "कल तो चला ही जाऊंगा, घबराती क्यों हो!
एक रात के लिए किसी परदेसी को घर से निकालना अच्छा नहीं।"

मेरे इस उत्तर से वह और भी तिलमिला उठी। बोली, "अर्थ का
कुअर्थ लगाना आपको खूब आता है। कौन निकालता है आपको
घर से?"

"क्यों, अभी तो धमकी दे रही थी, कहीं और जाने का आदेश दिया
जा रहा था, किस को?"

"तुम जीने न दोगे, कुमार, किसी को। कल से ही न कुछ खाया है,
न पिया है। खाली पेट पिओगे चाय? जाओ, मैं नहीं देती चाय तुम्हें।"

"मर्ज़ी तुम्हारी, लो मैं चला उठकर।"

मैंने ज्यों ही उठने का उपक्रम किया, शीला ने झपटकर मेरा हाथ
पकड़ लिया और बोली, "खबरदार, जो उठे कुर्सी से।"

और उसकी आंखों से हीरे-मोती झड़ने लगे। मैं चुपचाप बैठ
गया और पकौड़िया उठाकर खाने लगा। बोला, "लो, अब तो खुश हुई,
ज़रा हंस दो तो, शीला रानी।" और आंसुओं के बीच वह मुस्करा पड़ी।

वह बोली, "बहुत नटखट हो तुम, बहुत परेशान करते हो।"

"और कल से कौन करेगा परेशान ?"

"यही तो रोना है।"

उसने धीरे धीरे चाय बनाई दो प्याले। एक मेरी ओर बढ़ा दिया। बोली, "*गाजर का हलुवा तो तुमने छुआ ही नहीं। यह नहीं चलेगा, कुमार, तुम्हें हलुवा खाना पड़ेगा।*"

"बस इसका हठ न करो, शीला, पकौड़ियां तो खा ली हैं।"

"नहीं, नहीं, नहीं। थोड़ा तो चखकर देखो। ये गाजर अपनी बगिया की हैं। मैंने स्वयम् इनको खोदा था और तुम न खाओगे।"

"*आज नहीं, शीला, आज नहीं।* तुम हठ न करो, एक बात मेरी भी तो मान लो।"

"आखिर इन्कार क्यों?" बड़े आश्चर्य व निराशा के साथ वह बोली। मैंने कहा, "तुम हठ छोड़ दो, मैं अभी कारण बताए देता हूं।"

"अच्छा बताओ, हठ न करूंगी।"

"एक प्याला और बनाकर दे दो पहले।"

"अच्छी बात है, लाओ प्याला।"

उसने प्याले में फिर चाय बनाकर दी। मैं पीने लगा। सामने देखा तो बोहीनिया के लाल फूलों पर सूरज की लाल लाल किरणें पड़ रही थीं। लगता था, पेड़ों में आग लगी है, पश्चिमी दिशा अग्निमय हो रही थी। मैंने कहा, "*वह देखती हो, शीला, बोहीनिया में आग लगी है,* और इन्हीं के तले मुर्दों पड़ी है।"

"क्या पता वह कौन थी? तुम्हारा भ्रम निर्मूल है।"

"खैर, जो भी हो। आज से युगों पहले की बात है। गांव पर मेरे घर घोड़ा रहता था। पिता जी को अच्छे अच्छे घोड़े व उनकी सवारी का बड़ा शौक था। हम लोग खेत में गाजर भी काफी बोते थे घोड़े को खिलाने के लिए।"

"यही जाड़े के दिन थे। गाजर काफी अच्छी बैठ गई थीं। रोज़ थोड़ी-बहुत उखाड़कर खाती और घोड़े को डाली जाती। एक शाम को

अंधेरे में आंगन में से एक औरत निकली। मेरे नौकर ने उसको पकड़ा। उसके आंचल में गाजरें भरी थीं। वह पिता जी के सामने लाई गई। मैं भी वहां मौजूद था। जानते हो, वह औरत कौन थी ?"

"मुर्जी ?"

"नहीं, मुर्जी तो लड़की थी, औरत कहां।"

हम दोनों मुस्करा दिए। मैं आगे बढ़ा, "वह मुर्जी की मां थी। गाजर चुराने के लिए पिता जी ने उसे बहुत डांटा। वह गाजर वहीं छोड़ रोती हुई भागी गई। दूसरे दिन मुर्जी मिली, तो मालूम हुआ कि उसके घर में कुछ भी खाने को उस रात न था, इसीलिए वह गाजर चुराने आई थी। कहते कहते मुर्जी की आंखें भी भर आईं। वह रात को बिना खाए सो गई थी।

"जब मैंने ढेर सी गाजर उखाड़कर मुर्जी के आंचल को भर दिया तो उसने ठुनक कर सब धरती पर ढेर कर दीं और बोली, 'रखो अपनी गाजर, मुझे नहीं चाहिएं, बड़े नवाब बने हो।'

"मैंने कुछ भी न कहा। मुझे उस घटना की चोट बहुत दिनों तक रही। और आज वही गाजर, वही मुर्जी !"

मेरे बोल बन्द होगए। गला भर आया। मैंने चाय छोड़ दी। लॉन में हम दोनों टहलने लगे। टहलते रहे, टहलते रहे जब तक कि अंधेरा न होगया।

मेरी सब से बड़ी दुविधा तो यह थी कि वह स्त्री मुर्जी थी या नहीं, मेरी मुर्जी। जेन बीमार है या नहीं। दोनों ही मामलों में स्थिति इतनी भ्रमात्मक व कुचलने वाली थी कि मैं पिसता जारहा था, मन को चैन न थी, मस्तिष्क भट्टी की तरह जल रहा था, धधक रहा था।

लगभग सात बजे मैं अपने कमरे से चुपचाप निकला और चल दिया अंधेरे में। बोगेनविलिया के कुंज से होता हुआ आया उस स्थान पर जहां मुर्जी का मृतक शरीर पड़ा था। वहां कुछ देर खड़ा रहा, फिर . . . उस स्थान को प्रणाम कर वहां से दो-चार फूल बटोरकर जेब में रख

लिए। फिर गया नदी-तीर जहां शाम को मैं और शीला घूमने जाया करते थे। वहां से थोड़ी ही दूरी पर मजदूर-मण्डली मुर्झी के शव को जला रही थी। मैं शिला-खण्ड पर बैठ इस दृश्य को देखता रहा।

दिन को मैंने शव-संस्कार के लिए सौ रुपये भिजवा दिए थे। वहीं शाम के साथ मजदूरों ने मुर्झी के शव का जलूस निकाला था, जैसे वह कोई शहीद हो। मुझे शीला से पता चला कि मजदूरों में कानाफूसी हो रही थी कि मुर्झी मालिक के गाव की थी। कोई कहता, 'मुर्झी का मालिक से जरूर कोई सम्बन्ध रहा होगा,' कोई कहता, 'नहीं, मालिक शाह खर्च आदमी हैं मन में आया दे दिया।'

खैर, मुझे इस कानाफूसी की परवाह नहीं थी, परन्तु सोच रहा था कि अभी शव-संस्कार के स्थान पर चला जाऊं तो कितने बड़े आश्चर्य की बात होगी। कितनी कहानियां रातों-रात गढ़ी जायंगी, कितने विवरण इस घटना के होंगे। यों ही मुझे व शीला को लेकर कानाफूसी सुनने को मिल जाती थी। अब तो उसमें और पंख लग जाएंगे।

मगर मैं जाऊं ही क्यों? वह मेरी मुर्झी तो थी ही नहीं। होगी कोई मुर्झी। छोटी जातियों में यह कितना प्रचलित नाम है। इसी बाग में पांच मुर्झी हैं फिर और बागों में भी दस-बीस होंगी। हो सकता है कि इन सभी में एक भी मेरी मुर्झी न हो।

परन्तु फिर, मैं नदी तीर आया क्यों हूं? यदि यही मुर्झी मेरी रही हो तो? गोर थी, बनारस की रहने वाली, छब्बीस-सत्ताईस वर्ष की उम्र, बड़ी नेक, ब्याह न किया, कोई पसन्द ही न आया। सभी कुछ तो लक्षण मेरी मुर्झी के हैं। ये छलिया मुर्झियां बनारस की न होंगी, सत्ताईस की न होंगी, बिन ब्याही, अभिमानिनी न होंगी, गोर न होंगी। फिर?

वह तो एक हठीली थी व मानिनी भी। कहती थी, "देख, कुम्मू, मैं तेरे जैसा ही गोर खोजकर ब्याह करूंगी।"

मैं कहता, "मेरे जैसा गोर होगा ही नहीं, फिर क्या करेगी?"

"क्वांरी रह जाऊंगी और क्या।"

"फिर लोग क्या कहेंगे ?"

"सब को अंगूठा दिखा दूंगी।" और हम दोनों हंस पड़ते।

तो क्या करूं ? चलूं उस चिता के पास जहां मेरे बचपन का प्यार धू-धू करके जल रहा है। चलूं ? मगर लोक-लाज ! कदम उठते नहीं। मैं शिला-खण्ड पर ज्यों का त्यों गड़ा बैठा हूं एकटक ताकता हुआ दाह-संस्कार को, पर पांव हैं कि हिलते नहीं।

कायर ! भगोड़ा ! बुज़दिल !

मुर्दों के फूल में से एक मुट्ठी, एक चुटकी राख समेटने की लालसा मन के भीतर तड़पती रह गई। पांव हिले नहीं, मन तड़प-तड़प कर पत्थर पर सिर पटकता रहा।

इतने में आकाश में बादल काले काले छा गए। गरजे, आकाश के इस पार से उस पार तक, जैसे कोई भयंकर चक्की आसमान में चल रही हो। मैंने ऊपर देखा, फिर सामने की चिता को। मन ही मन प्रणाम किया। फिर उस शिला-खण्ड पर भी सिर टेक दिया जहां मैं व बीना बैठा करते थे रोज़ संध्या को।

पर यह क्यों ? क्या यहां भी कोई स्नेह-सूत्र उलझा पड़ा है ?

मैंने एक चिकने पत्थर को शिला-खण्ड की कोख से निकाल जेब में रख लिया व जल्दी जल्दी कदम बढ़ाता चल दिया, परन्तु पानी मुझसे भी तेज़ी से आ धमका। झरर-झरर मूसलाधार पानी। मैं भीगने लगा, भीग चला, सिर के बालों से कानों पर, कान से गले पर और गले से कमीज़-कोट के भीतर पानी की धार बह चली। हवा के थपेड़ों से, पानी के छींटों की मार ने सारे तन में कपकपी पैदा कर दी। मगर इन सब के बावजूद मन में थोड़ी तृप्ति जान पड़ती थी। भला क्यों ? क्या इन स्वयं में भीगने, कांपने, बीमार पड़ने को जोखिम उठाने से कोई प्रायश्चित होता था ? मुर्दों के प्यार को चार चांद लग रहे थे ?

बंगले पर आते आते मैं बुरी तरह भीग चुका था। नौ बजने वाले थे। मेरा संध्या-भोजन का तो कोई प्रश्न ही न था। बीना भी बैठक में

ही मुझे देखा व झट बिना कुछ कहे सुने मेरे कमरे में दाखिल होगई ।
आते ही बोली, "तुम जान देने पर तुले हो क्या ?"

"नहीं तो ।"

"नहीं तो क्या, ये आसार तो जान ही देने के हैं। कहां गए थे ?"

"कहीं नहीं ।"

"तुम मुर्शी का शव-संस्कार देखने गए थे न ?"

मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखा और पूछा, "तुम कैसे जानती हो ?"

"तुम कैसे जानते हो ! मैं तुम्हारे मन को तुमसे अधिक जानती हूं, लड़की हूं न ।"

"जानती होगी ।"

"बदलो कपड़े ।"

उसने इतनी देर में मेरा कोट उतार दिया था। अब मुझे 'ड्रेसिंग रूम' में ढकेलकर उसने किवाड़ बन्द कर लिया। बोली, "पांच मिनट में कपड़े पहनकर आजाओ ।"

मैं करता क्या, वह तो सिर पर सवार थी। मैंने सारे गीले कपड़े खोल फेंके, फिर शरीर को मुलायम तौलिए से अच्छी तरह पोंछ डाला और स्वच्छ धोती, कुरता, पुलओवर पहनकर आगया बड़े कमरे में । शीला ने मेरा हाथ पकड़कर घसीटते हुए मुझे पलंग पर लिटा दिया व ऊपर से कम्बल ओढ़ा दिया। सिगरेट व लाइटर बगल में रख दिये । तब नौकर को बुलाकर ब्रांडी मंगवाई । मैंने इन्कार कर दिया । बोली, "तुम्हें जरूरत है, कुमार, नहीं तो तुम कल तक उठ भी न सकोगे ।"

"मैं उठ जाऊंगा, तुम घबराओ नहीं, शीला, मुझे कॉफी पिला दो, हो सके तो ।"

"अच्छी बात है, जैसे तुम्हारी मर्ज़ी, कॉफ़ी ही लो ।" वह उठ गई और पांच मिनट में नौकर के साथ कॉफ़ी लिए आगई । नौकर तो चला गया । उसने कॉफ़ी बनाई, फिर हम दोनों ने कॉफ़ी पी, मैंने दो प्याले उसने एक ।

उसने मेरे ललाट पर हाथ फेरा। उसका हाथ बड़ा शीतल लगा। उसने कमीज़ के भीतर छाती पर हाथ फेरा, और भी शीतल लगा। जब वहाँ से हाथ हटाने लगी तो मैंने उसकी कलाई पकड़ ली और कहा, "थोड़ी देर तो रहने दो, शीला, बड़ा ठंडा लगता है तुम्हारा हाथ।"

"बड़ा ठंडा लगता है? जानते हो मुझे तेज़ बुखार है, मुझे थर्मामीटर लाने दो।" और उसने झटककर अपना हाथ छुड़ा लिया। दूसरे कमरे से जाकर थर्मामीटर लाई। १०२° निकला मेरा तापक्रम। धीरे धीरे यह तापक्रम बढ़ता गया। रात के ग्यारह बजते बजते १०३·५° हो गया। उसने डा० वॉट्सन को बुलाने को कहा, पर मैंने मना कर दिया। हठ करके उसे भी सोने जाने के लिए भेज दिया। बड़ी अनिच्छा से गई वह।

रात ज्यों त्यों करके ऊबते-चूबते, डूबते-उतराते कट ही गई। सवेरा हुआ। शीला छः ही बजे मेरे कमरे में धमक पड़ी, प्रेक्सन के 'कामआरी' से आते ही। उसने मेरा तापक्रम फिर लिया। १०१·५° निकला। बोली, "मैं जेन को तार भेज देती हूँ, तुम आज न जा सकोगे।"

"मगर उसे मालूम ही कहाँ है कि मैं आज कलकत्ता आने वाला हूँ।"

"उसे मालूम है। कल टिकट लाने वाले आदमी के हाथ जेन को भी तार से सूचना दे दी थी कि तुम आ रहे हो।"

"तब तो तुमने सचमुच पी० ए० का काम किया है।"

"करती तो बहुत दिन से हूँ, तुम कुछ समझो तब तो।"

"अब समझकर क्या करूँगा, शीला, अब तो बिछुड़ने की वेला आ गई।"

"सवेरे सवेरे से दिल न तड़पाओ। तार भेज दूँ न? क्या लिखूँ?"

"नहीं, तार न भेजो; मैं आज ज़रूर जाऊँगा। पता नहीं उस पर क्या गुज़र रही हो। कम से कम उसे तो बचाऊँ।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा, पर डा० वॉटसन को फ़ोन कर बुला लेती हूँ।"

"अच्छी बात है, पर मेरे जाने की तैयारी करो।"

डा० वॉटसन आए। मुझे देख गए। पहले तो उन्होंने हवाई-सफ़र

मना किया, पर मेरा हठ देख कुछ दवाएं लिख, कुछ हिदायतें दे चले गए। आज की पलंग-चाय मैंने शीला के साथ ली और नाश्ता भी थोड़ा सा मैंने यों ही शीला का मन रखने के लिए ले लिया। कैसे बताता उसे कि आज सुर्जी के लिए उपवास करना है।

मि० जैक्सन व शीला एयरपोर्ट पर पहुंचाने आए। हम एक बार फिर बोहीनिया के कुंज से गुजरे। उस स्थान को देखा जहां सुर्जी की लाश पड़ी थी। जाते हुए दूर से उस स्थान को भी देखा नदी-तीर पर जहां उसका दाह-संस्कार हुआ था। वहां अब भी कुछ न कुछ राख पड़ी होगी, पर वह मेरे लिए कितनी दुर्लभ है। क्या कोई लाकर मुझे दे सकता है? कैसे कहूँ, किससे कहूं, कोई क्या कहेगा? काश, शीला मेरे मन की बात स्वयम् जान जाती व भेज देती किसी को, काश!

पर ऐसा कुछ भी न हुआ। इतनी भोंडी चीज भला वह अपने मन से क्या जानती?

खैर, ज्यों त्यों करके एयरपोर्ट पहुंचे। रास्ते भर हम सभी लगभग मौन ही रहे। जाते ही मि० जैक्सन मेरा सामान वजन कराने व अधिक सामान की रसीद लेने में व्यस्त हो गए। उसी समय शीला ने एयरपोर्ट के लॉन पर टहलते हुए कहा, "तुम काफी अस्वस्थ हालत में जा रहे हो, वहां सेहत का ख्याल रखना।"

"उसकी जरूरत नहीं होगी।"

"क्यों!" आश्चर्य से शीला ने पूछा।

"वह काम जेन का है।"

"पर वह तो खुद ही सख्त बीमार है।"

"तब भी मेरा ख्याल वही करेगी, उसकी आदत है।"

"तुम उसके साथ अन्याय न करना, कुमार।"

"क्या यह तुम्हें सम्भव लगता है!"

"प्रेम बड़ा शक्तिशाली होता है। वह कुछ भी रौंद सकता है। फिर जेन तो एक नाजुक लड़की है।"

"प्रेम बंधि भेजा नहीं जाता, शीला, यह तो बलिदान होना ही जानता है।"

"तब तो तुम भूल जाओगे इन दो सालों के बीच में।"

"लंदन की गलियों में तुम्हें कभी न भूलूंगा।"

"अहोभाग्य।"

मि० मैमन आ गए। हवाई जहाज जाने की घड़ी भी आ पहुंची। मैंने मैमन से हाथ मिलाया तथा एकाध आवश्यक आदेश दिया। फिर शीला से भी हाथ मिलाया व उसकी कलाई उठाकर हाथ चूम लिया। वह बोली, "गुडविश!"

हम दोनों हंस पड़े। हंसते हंसते भी शीला के नयन-कोरों में अश्रु चमक पड़े या यह मेरा भ्रम था, कुछ कह नहीं सकता; पर मैंने अपने आंसुओं को पीठ फेरकर छिपा लिया।

वायुयान की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए लगा, शीला ने पुकारा, 'विपिन,' पर यह भी शायद भ्रम ही था। मैं मुड़ा, मुंह से कहना चाहा, 'शीला,' पर बात गले में ही अटककर रह गई। होंठ कांपकर रह गए। मैंने हाथ हिलाया। उन दोनों ने हाथ हिला जवाब दिया और मैं वायुयान के भीतर एक कोने में जा बैठा।

और वायुयान उड़ चला।

बत्तीसवां परिच्छेद

नियति के चक्र

कभी कभी मानव की बस्ती व उसके संसार से थोड़ा दूर होकर उसे देखना, उसे समझने का प्रयत्न करना अधिक अच्छा होता है। समुचित दूरी पर से ठीक ठीक रूप-रेखा व आकार का ज्ञान होता है, जैसे किसी 'कैन्वस' पर बनी बड़ी भारी छवि को एक दूरी पर से अवलोकन किया जाय व उसके सौंदर्य का ठीक ठीक लेखा-जोखा लगाया जाय।

वैसे वायुयान भी मानव-संसार के भीतर ही है, फिर भी कुछ दूरी तो प्रदान करता ही है। ऊंचाई पर से नीचे पड़े चाय के खेत, छाया वृक्षों की पंक्ति, बांस की बारी, छोटी छोटी पहाड़ियों की हरी-भरी चोटियां, छोटी छोटी नदियों का झर झर बहाव, बीच बीच में पतली पगडण्डी सी सड़कें, फूस के झोंपड़ों के झुण्ड, चमकते ऐल्यूमिनियम पेण्ट से रंगी गई टीन की छतें, टीलों पर ऊंचे ऊंचे बंगले—सब मिल-जुलकर मानव व्यापार की एक विचित्र सामूहिक कल्पना उपस्थित करते हैं।

समूह के चलने, बरतने का एक तरीका है, जो प्रकृति से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। प्रकृति में पतझड़ है, बसंत है, आंधी है, नीरवता है, वर्षा है, हरियाली है, फूल हैं, फल हैं, जीवन है, मृत्यु है और मृत्यु की जड़ में से ही पुनर्जीवन है। सारा व्यापार अमर है, अनन्त है, गोल गोल घूमता रहता है, एक चक्र सा, वृत्ताकार।

मानव भी हंसता है, खेलता है; बढ़ता है भोजन से, प्यार से। जवानी आती है, मन में गुदगुदी छा जाती है, तन चरमराता है, अंगड़ाइयां लेता है, बाहें फैलती हैं, किसी को जकड़ लेने के लिए तलाश करती हैं,

आँखें मिलती हैं, होंठ मुस्करा पड़ते हैं, कलेजे धिरकने लगते हैं, एक जादू—एक नशा छा जाता है।

मानव के भीतर भी प्रकृति ज्यों का त्यों काम करती है, नर-नारी का संयोग। इस क्रिया को मानव नाना रूपों में स्वीकार करता है, नाना प्रकार से इन्कार करता है, विचित्र विचित्र नाम देता है. नहरें काटता है, तालाब खोदता है, कुएं खोदता है, शासन की डींग हांकता है. और प्रकृति—कभी कभी भयानक बाढ़ सी छा जाती है, मानव के घरौंदे बह चलते हैं, कभी रेगिस्तान की छाती फाड़कर सोते निकल पड़ते हैं। मानव उन्हें लिपिबद्ध कर 'प्रेम' का इतिहास बनाता है।

प्रकृति है कि मानती नहीं, अपना काम किए जाती है, नर-नारी का आकर्षण सृजन करती ही रहती है, उस मिलन से सृजन का कार्य होने का उपक्रम तैयार करती रहती है, परन्तु मानव है कि न तो प्रकृति के 'सत्य' को स्वीकार करता है, न 'हार' मानता है। वह नये नये नाम, नये नये रूप गढ़ता ही जाता है। इस प्राकृतिक आकर्षण का एक स्वीकारात्मक नाम उसने 'विवाह' दिया है, शेष सभी 'प्रेम' है।

और यह घटघटवासी आकर्षण हर प्राणी में प्रकृति के संकेत के साथ काम करने लगता है। देखता नहीं वह विवाहित है, वह विधुर है अथवा विधवा है, वह सुजाति है, कुजाति है, देशी है, विदेशी है, धनी है, गरीब है, अपढ़ है, कुपढ़ है, कुछ भी नहीं देखता। जब दो दिलों को एक रंगीन धागे से बांध देता है तो आँखें सपना देखने लगती हैं, दिल उछलने लगता है, सारा जग सुन्दर हो जाता है इन्द्रधनुष के रंगों सा, एक बहार आ जाती है तन में, मन में, नयनों में, सारे जग में। प्रेम सौंदर्य को जन्म देता है। लोग उछल-कूद मचाते हैं, 'हां' किया तो किया नहीं तो प्रकृति उकसाती है और दो दिल 'विद्रोह' का झण्डा खड़ा कर बैठते हैं मानव की न हार मानने की ढोंग के खिलाफ, उसकी सामाजिक मान्यताओं व परिभाषाओं के खिलाफ, उसके 'धर्म' से आँखें मूँदने के खिलाफ।

जो डरते हैं वे पछताते हैं, घुलते हैं, डूब जाते हैं, मरते हैं और काल
के मुँह में चले जाते हैं, जीवन की सहज अभिव्यक्ति का गला घोंटघुंट
कर। जो साहस से काम लेते हैं, विद्रोह करते हैं, झेलते हैं वे पार होते
हैं; *अपना झण्डा गाड़ देते हैं, नया राज्य, नये नियम, नया नाम* बनाते
हैं और मानव की मान्यताओं की छाती में कील ठोककर एक नयी
'मान्यता' को जन्म देते हैं। उनकी जीवन-अभिव्यक्ति सफल होती है
दुर्बल मानव हार जाने पर उन्हें 'हीरो' मान पूजने लगता है, या उसे
असाधारण व्यक्ति मान फिर अपने घोंघे में सिर डाल पूर्ववत चलने
लगता है।

जैसे शरीर में नाड़ियां हैं, नाड़ियों में रक्त का संचार है, संचार में
धड़कन है, धड़कन में बिन्दु हैं; उसी प्रकार नीचे सोए इन खेतों, बागों
बनों, झोपड़ों में न जाने कितने दिल बराबर धड़कते रहते हैं, जहां धड़
धड़कन अन्य धड़कन से मिले कि एक नन्हे से, परन्तु नये संसार का
सृजन हुआ, घेरा (सरकिट) पूरा हो गया, *विद्युत-धारा* उतने में ही पूरी
हो गोल गोल घूमने लगी, साबुन के फेन पर नाचते सहस्रों इन्द्रधनुष
से ये नन्हे-नन्हे बुलबुले रंगीन संसार, प्यार की दुनिया बसाने लगते
हैं, चाहे वे कितने ही छोटे व अस्थिर क्यों न हों।

जब तक मिलते नहीं, मिलने की कितनी आतुरता होती है; लपटें
निकलती हैं आंखों से, दिल से, सारे आकाश में चकाचौंध हो जाती
विद्युत की रेखा सी; दो दिलों के बीच एक नैसर्गिक विद्युत-ज्योति, एक
प्रकाश-पुंज चमक उठता है, अंधेरे में भी उजाला हो जाता है, अंधों को
भी दूर की सूझने लगती है, फिर!

ये ही लपटें, यही विद्युत-धारा, यही चमक दो दिलों के बीच पुल का
काम करती है; इसी क्षणिक, चकाचौंध करने वाले प्रकाश में पुरुष व स्त्री
एक दूसरे की झांकी पाते हैं, दर्शन करते हैं, और प्रीति की घटाएं छा
जाती हैं, सावन उमड़ आता है, वर्षा होती है— घनघोर वर्षा, *दोनों दिल*
इस अमृत-वर्षा में नहाकर तृप्त हो उठते हैं; तब प्यार का यह तरल रू

समास ही ठोस रूप धारण करता है, प्यार परिपूर्णता को प्राप्त होता है और प्रकृति !

प्रकृति मुस्करा पड़ती है अपनी विजय पर !

एक निराला सामंजस्य सारे विश्व में छाया है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर काटती है, अनन्त चक्कर। वस्तु का सब से छोटा भाग अणु (ऐटम) भी अपने भीतर एक संसार बसाए है, ऋण (इलेक्ट्रॉन) धन (प्रोटोन) के चारों ओर चक्कर काटता है, गोल गोल, निरंतर घूमता रहता है। परेवी परेवा के चारों ओर चक्कर लगाती है, प्रकृति पुरुष के चारों ओर चक्कर काटती है, नारी नर के चारों ओर चक्कर काटती है। यह चक्कर ही तो अनवरत है और दोनों मिलकर एक पूर्ण इकाई को जन्म देते हैं। अणु इकाई, परेवा-परेवी की इकाई व नर-नारी के एक जोड़े की इकाई में, पूर्णता में, भला क्या अन्तर है !

एक आकर्षण, एक जादू, एक खिंचाव, एक शक्ति सभी को बांधे है और गोल गोल घुमाती है। उसी के भरोसे, उसी के अदृश्य रंगीन धागे में बंधी धरती डोलती है, ग्रह-उपग्रह डोलते हैं, विद्युत कण डोलते हैं और मानव का जोड़ा डोलता है।

कितना महान सामंजस्य है और कितना सूक्ष्म !

जो इस सत्य को अस्वीकार करते हैं या उससे आंखें मूंद लेते हैं उनकी समझ को क्या कहा जाय। नासमझी में सिर उठाते हैं और प्रकृति अपने भयानक 'रोलर' के नीचे उनका सिर कुचलकर रख देती है। यह सत्य का ज्ञान कितना महंगा पड़ता है, इसको मानव 'बलिदान' के नाम से पुकारता है।

फिर किसी किसी ऋण (निगेटिव) विद्युत्-कण की व्यग्रता निरंतर जारी रहती है, उसे ठीक ठीक धन (पोज़िटिव) विद्युत्-कण नहीं मिलता। वह कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होता, घेरा (सरकिट) पूरा नहीं हो पाता। शायद मुन्नी का विद्युत्-कण — उसके दिल की तड़पन — यों ही अपूर्ण इस संसार से चली गई। शीला का ऋण विद्युत्-कण गलत धन विद्युत्-कण

से मिलकर 'घेरा' तो 'पूरा' हो गया, परन्तु तड़पन न गई।

जेन व नीरा के विद्युत-कण!

अभी भी तड़प रहे हैं, पूर्णता के अभाव में।

वायुयान की सीट पर बैठा बैठा मैं नीचे झाँक रहा था और यों ही अनाप-शनाप बेसिर-पैर की बातें सोच रहा था। मुर्दों का संदेहास्पद अन्त मुझे और भी खरोंच रहा था। शीला का निराला सामंजस्य, जीवन के साथ, और भी आश्चर्य में डाल रहा था नए सिरे से।

इस सर्वव्यापी आकर्षण-शक्ति के विभिन्न नाम भी हैं— सुन्दर नाम 'प्रेम' व असुन्दर नाम 'वासना', एक ही सिक्के के दो पक्ष; पर लोग हैं कि एक से लिपट पड़ते हैं, उसको आध्यात्मिक नाम दे डालते हैं और दूसरे से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। दोनों को पूर्णतः भिन्न समझते हैं। इस सर्वव्यापी शक्ति को विभिन्न स्तरों पर देखने व पहचानने के वे आदी नहीं। वे पहचान नहीं पाते जब वह एक ही शक्ति आत्मा में ज्योति बनकर जलती है, सूर्य में प्रकाश व गर्मी बनकर तपती है और दिल में तड़पन बनकर उछलती है तथा आखों में आंसू व होठों पर प्यास बनकर थिरकती है।

शीला ने एक के लिए उन्नततर स्तर पर विलियम को बिठाया व दूसरे के लिए स्थूल-स्तर पर जैक्सन को। मिट्टी का तन मिट्टी वाले को, सोने का मन सोने वाले को व हीरे का आत्मिक प्यार हीरे वाले को बांट दिया। कितना सीधा है व कितना अटपटा! परन्तु जब है तो इस सत्य से इन्कार क्यों करें! कैसे करें!

और विलियम से भी बढ़कर उसे 'विलियमपन' से प्यार हो गया है। उसका प्रेम निरंतर स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता जा रहा है। मुझ में जब भी ज़रा सा 'विलियमपन' झांका कि वह झुक पड़ी, और उस झांकी के मिटते ही वह ज्यों की त्यों शीला। उसे न तो इसमें गड़बड़ी मालूम होती है, न पछतावे की बात; परन्तु उसकी बात बहुत कुछ सही भी तो जान पड़ती है। जब कभी उसमें 'नीरापन' झांक उठा,

उसने ठीक ही तो कहा: जब सर्वव्यापी मंगलमय प्यार, 'सत्यं शिवम् सुन्दरम्' की महान ज्योति उसकी आत्मा में जागृत हो उठी तो उसे और क्या सूझता, और कौन सी अनुभूति होती ? उसकी आत्मा भी इस महान ज्योति-पुंज से प्रज्वलित होकर चमकने लगी: विद्युत्-कण तड़प उठे और पूर्णता की प्राप्ति के अभाव में सारे विश्व का दर्द, विरह, व्यथा, उसकी आत्मा में समा गई।

मैं सचमुच कितना निष्ठुर हूं। मैंने यह देखा तक नहीं कि उसने लिखा क्या ? अब तो फुर्सत ही फुर्सत है; यों लड़के आराम व कलकत्ते के बीच में यही कर डालूं। मेरी नीरा, तुझे मेरे लिए कितना तड़पना पड़ा होगा, काश मैं........

मैंने उठकर अटैची से नीरा के पत्रों का पुलिन्दा निकाला। सिलसिलेवार पढ़ने लगा, और दिल घोर व्यथा से तड़पने लगा। परन्तु यह ऐसा दर्द था कि इससे दूर भी न रहते बनता था, एक बार आरम्भ कर दिया तो बस बढ़ता ही गया। कुछेक अंश तो तीर की तरह चुभे व मैं तड़पता रह गया। इन अंशों को तो पढ़ते पढ़ते होश गुम होने लगा और मैं तड़पकर, शिथिल होकर पढ़ रहा:—

"जब से तुम गए सब कुछ सूना लग रहा है। लगता है जैसे मैंने कोई अमूल्य निधि खो दी है। और लाख प्रयत्न करने पर भी मैं उसे ढूंढ नहीं पा रही हूं। आखिर थककर रो रो पड़ती हूं।

"मेरे अच्छे से कुमार, मेरे महान कुमार, तुम्हारी याद आते ही ये नयन बरस पड़ते हैं।"

* * * * *

"कल भोजी ने यह गीत गाया :

"'तुम गए, लुट गया प्यार का यह जहां।' और मैं फूट फूटकर रो पड़ी। इतनी दुःखी हुई कि खाना भी न खा सकी। शाम होने पर चाय पी, सो भी जबरदस्ती।

"जानते हो यह सब क्यों हो रहा है ? केवल स्नेह के कारण। इतना

प्यार मैंने जीवन में किसी से न पाया और न ही पाने की इच्छा है।"

* * * * *

"जिन्दगी के ये क्षण मैं कभी भूल न सकूंगी, कितना दुलार किया तुमने मेरा! इन दिनों कितनी मनुहारें कीं। मैं बेहद जिद्दी होते हुए भी तुम्हारा कहा एकदम से मान लेती थी, न मालूम क्यों।

"न जाने क्यों, तुम पर मेरा अटूट विश्वास है व रहेगा। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ कर सकती हूँ, कुमार।

"तुम आए। मैं अपने महान कुमार को देखते ही मौन हो गई। मैं ताड़ के पेड़ की तरह खड़ी कांपती। मेरा हिमालय जैसा उन्नत व दृढ़ कुमार देखकर हैरान था, आखिर इस शैतान नीरा की शैतानी कहाँ गई!"

* * * * *

"मेरा प्यार अमर है, कुमार। मैं तुमको युग युग से पहचानती आ रही हूं। भगवान यदि मुझे अगला जन्म दे तो मैं बड़ी बड़भागी होऊं और फिर ·········। मैं कहती हूं कि मैं ही नहीं बल्कि सब तुमको इतना प्यार करें कि बस ·········। मैं तो तुम्हारे पावों की धूल भी नहीं।

"जोजो कहती है, जेन ने लिखा है कि तुम बहुत उदास हो, रोते हो। यह ठीक नहीं। अब हंस दो न, तुम्हारी नीरा कहती है। हंसो, खूब हंसो, इतना कि तुम्हारी रानी भी हंस पड़े।"

* * * * *

"आज ही के दिन तो तुमने मुझे चांटा मारा था। उसका निशान अभी तक है मेरे मुंह पर। रोज शीशे में देख लेती हूँ। चाहती हूं, कभी मिटे नहीं यह निशान। पर यह कहां·······!

"आज ही सेब जूठे करने पर तुमने मेरे कान खींचे थे। मैं कान मसमसाती रह गई थी।

और आज ही तुम यहां से चले गए थे, निर्दयी बनकर। किसी की परवाह तक न की थी, ऐसे हैं मेरे ···········।"

* * * * *

"मैं जानती हूं, कुमार, तुमको; आज से नहीं—युग-युग से, जन्म-जन्मान्तर से। मेरे महान देवता, खुश रहा करो। मत रोया करो इतना, लड़कियों जैसे भावुक न बनो, मेरे राजा!

"कहोगे, 'देखो न, चली पुरखिन की तरह उपदेश देने। खुद को तो संयम का बांध नहीं, स्वयं याद कर-कर के रो-रो पड़ती है, और मुझे तसल्ली देने चली है।' हूँ न पगली!"

* * * * *

"आज मन भारी है। अब लिखा नहीं जा रहा है। लगता है, रो पड़ूंगी। सारा दिन उदास रही, वह भी विशेष, तुम उदास न होना।

"तुम्हारी बेहद याद आती है। कभी कभी यह याद तीव्र वेदना में बदल जाती है और उस समय मैं कुछ भी नहीं कर सकती। केवल एक तड़पन के सिवा कुछ भी नहीं मिलता। यह सोचकर चुप रह जाना पड़ता है कि मिलन के बाद 'विरह' ही तो नियम है। यह दुनिया की रीत है, इसमें तुम्हारा व मेरा सोचना व्यर्थ है।

"मेरे सामने तो तुम हर पल, हर क्षण रहते हो; तुम्हें भूलना अपने को भूलना है!"

* * * * *

"तो जनाब को मुझे लिखते हुए झिझक आती है, डर लगता है! आखिर सुनूं तो सही, कब से इस 'मेंढी' से डरने लगे? लो आज से अध्ययन समाप्त। जब तक तुम्हारा पत्र न आयगा तब तक न तो पढ़ूंगी, न यूनिवर्सिटी जाऊंगी। खेल-कूद, सिनेमा-नृत्य, आना-जाना, सब बन्द। कॉफी प्रति दिन १५-२० कप पियूंगी। तुम्हें कुछ न कहूँगी, केवल अपने को जलाकर भस्म कर दूंगी।

"सोचती थी, चलो एक तो ऐसा महान मिला जो मेरी बात सुनेगा, मेरा दर्द, मेरी थकावट सब हर लेगा, पर तुमने तो दर्द और भी बढ़ा दिया, थकावट और भी बढ़ा दी।

"सख्त नाराज़ हो मुझसे, तभी तो······ लो नीरा न रही—कुछ न

रहो, रह गया केवल शून्य...... देखो कुमार, तुम भले रानी के बिना रह जाओ, पर नीरा तो कुमार के बिना नहीं रह सकती, मर भी सकती।"

*   *   *   *   *

"एक तुम ही तो हो मेरे सब कुछ ! यह विचार मरने दम तक इस शरीर में रहेगा। इसे कोई भी मेरे मन से नहीं निकाल सकता, न तो तुम, न देवी। नीरा ने जिसे अपना लिया वह 'उसका' हो गया, चाहे वह पत्र डाले या न डाले। नीरा तिल-तिल करके प्राण दे देगी पर 'याद' उसी को करेगी।

"यदि मुझे तुमसे स्नेह न होता तो मैं क्यों इस बुरी तरह से तुम्हें याद करती ? क्यों तुम्हारी याद में शिथिल होकर पड़ रहती ? क्यों हर पल, हर क्षण, तुम मेरे समक्ष रहते ? क्यों तुम इस प्रकार मेरे स्वप्नों में आते ?

"यह सब क्या है, मेरे कुमार ? कुछ तो बोलो !"

*   *   *   *   *

"आज भी तुम्हारा पत्र न मिला। दिल चाहता है, दीवार से सिर टकरा दूँ और फोड़ लूँ इसे।.......... तुम्हें सब अधिकार है, कुमार ! भला, तुम्हारे समक्ष मैं क्या बोल सकती हूँ ?

"मरने से पहले तुम्हें पत्रों की रजिस्ट्री कर जाऊँगी। खुश हो जाओ नीरा मर गई, उसकी भावनाएँ मर चुकीं, वह जिन्दा रहते हुए भी एक हिलती-डुलती लाश के समान है। मनाओ मातम, कह दो सब से, नीरा मर चुकी।

"कठोर से कठोर 'संयम' लगाओ, मुझे क्या ! मैं न तो अब 'राज-हंसिनी' हूँ तुम्हारी, न 'बंजारिन' !

"भला, मैं तुमसे बुरा मान सकती हूँ ? तुम ठहरे मेरे महान् ! और मैं !

"कभी कभी मैं दुनिया की सब से भाग्यवान लड़की स्वयम् को समझने [illegible] पर यह एक ही क्षण रह पाता है, न जाने क्यों ?

अपनी कसम खाकर कहती हूँ, मैं तुम्हारे बिना नहीं जी सकती।

'पागलपन' तुम्हारी रानी को बहुत पसन्द आया, फिर तुम

तेतीसवां परिच्छेद

प्रोफेसर साहब

नीरा के पत्रों ने मेरे हृदय के तार-तार हिला दिए। मैं बुरी तरह आर्द्र, व्यथित व आकुल हो उठा। मन करता था, अभी दूसरे 'प्लेन' से दिल्ली चला जाऊं।

ऐसी ही मनोदशा के बीच दमदम हवाई अड्डे पर उतरा तो सामने जंगले पर खड़ी जेन दिखाई दी। भोला भी पीछे खड़ा था। सारी आर्द्रता, सारी आकुलता अब केन्द्रित हो गई जेन पर — जेन त्याग की सजीव प्रतिमा, प्यार की पुतली, जोन अफ आर्क की प्रतिनिधि। मैं लम्बे डग भरता हुआ आगे बढ़ा, जेन भी बढ़ी, हम दोनों ने हाथ मिलाए। परन्तु मन कहता था कि इतने से भला क्या होगा। बांहें फड़फड़ा रही थीं, आंखें मारे प्यास के मछली सी छटपटा रही थीं लिपट पड़ने के लिए।

किन्तु बेचारे मन को कितनी बार मात खानी पड़ती है। मानव की सभ्यता मन को कुचलने में ही अपनी विजय मानती है, पूरी तरह पीस कर विजय का डंका बजाती है, परन्तु यह मन है कि अमर है। इसको मार, इसकी आदतें भी अमर हैं, जब स्वस्थ हो कर फिर उठता है तो फिर वैसे ही बरतता है जैसे उसकी आदत है। परन्तु, मैं मनमानी न कर सका। जेन भी न कर सकी। वह अमेरीकन है। उसे मनचाहा मिलने की आदत है, परन्तु यह तो भारत भूमि है न! यहां यह सब कैसे सम्भव होगा।

फिर भी मैंने उनका कोमल हाथ कुछ देर तक न छोड़ा। आंखों आंखों में हम दोनों कुछ देर तक मौन संवाद पीते रहे, एक दूसरे को

जी भरकर पीते रहे, प्यार की विद्युत-धारा थोड़ी बहुत आती-जाती रही।
मैंने पूछा, "अच्छी तो थी?"

"बिल्कुल अच्छी।"

"पर दुबली नज़र आ रही हो?"

"मैं हवा बदलने थोड़े गई थी!"

हम दोनों मुस्कराए। मैंने कहा, "पर निखार आगया है चेहरे पर।"

"बातें बनाना बहुत सीख गए हो, लगता है।"

"सीखता किससे, सिखाने वाला तो अब मिला है।"

"सीखने का मन होता है, तो सिखाने वाले हर कहीं मिल जाते हैं।"

अब मैंने भोला पर ध्यान दिया।

"क्यों, भोला, ठीक तो है?"

"हां, भइया, सब ठीक है।"

"तुमने कुछ देख-भाल नहीं की, ये दुबली हो गई!"

"भइया, तोहरे ना रहे पर, ई खान पियत न रहीं ना, दिन-रात पड़ी रहें व टुकुर-टुकुर ताका करें। कभूं कभूं रोवती रहें।"

जेन ने मारे झेंप के दूसरी ओर मुख फेर लिया। बोली, "क्या बेकार बक रहे हो, भोला!"

"हम तो बेकार बकबै करत हैं, बिटिया, बूढ़ने गए न, भइया तुहीं तो दुबराय गये हो, आसाम का पानी अच्छा नहीं रहा।"

"नहीं, भोला, पानी तो अच्छा है, मुझे कुछ अंग न लगा।"

जेन मन्द मन्द मुस्करा रही थी। मैं भी मुस्करा पड़ा। उससे अब बीमारी व तार की बात पूछना ठीक न लगा। सोचा, फिर पूछ लेंगे। प्लेन से सामान आगया था। अपने सूटकेस पहचनवा कर निकलवाये। भोला उन्हें गाड़ी में ले गया और मैं व जेन मोटर में बैठकर चल दिए।

हम रास्ते भर यों ही इधर उधर की बातें करते रहे—मिल पर, हड़ताल पर, राजनीति पर, बाजार दर पर, और न जाने कितने आम विषयों पर बातें किया किए। यदि नहीं की तो केवल एक बात पर जो मेरे

"समय समय की बात है, कभी कभी तो इतना बड़ा हो जाता है कि काटे नहीं कटता।"

हम दोनों मुस्कराए। मैंने दोनों हथेलियों में उसका मुंह लेकर एक बार फिर चूम लिया व सहारे से उठा दिया।

चाय की केतली पर हाथ रखती हुई बोली, "लो, बिल्कुल टंडी होगई, मैं............",

"कौन टंडी होगई ?"

ओह, इस प्रश्न के साथ ही हमारी आखें मिलीं और वह मुग्ध मुस्कराहट बिखर गई कि क्या कहूँ ? ज़रा रुककर वह बोली, "चाय! मैं दूसरी केतली मंगवाती हूं, मगर भोला क्या सोचेगा, चाय कैसे टंडी हो गई।"

"क्यों, यही तो कह गया था, तुमको अच्छी तरह चाय पिलाने के लिए, पीते पीते टंडी हो गई।"

"और कण्ठ तक एक घूंट भी न गया, एक बूंद तक नहीं।"

हम फिर हंसे। कुछ दिखावा बनाए रखने के लिए जेन ने थोड़ी चाय स्नानागार में फेंक दी व दोनों प्यालों में ज़रा ज़रा सी डाल दी। टंडी चाय का एक एक 'सिप' दोनों ने लिया। मैंने कहा, "छिः छिः कितनी टंडी है।"

"तुम्हीं ने तो टंडी की, अब पछताते हो।"

खैर, यह नाटक भी समाप्त हुआ। हम दोनों सैण्डविचेज़ व बिस्किट खाने में लगे। जेन ने ताज़ी गरम चाय मंगाई। वह भी आई। भोला स्वयम् लेकर आया।

हम दोनों को खाते-पीते, हंसते-बोलते देखकर बोला, "अब कितना नीक लागत है, भइया, हमार बंगला भरि गवा। थोड़ी गरम पकौड़ी लाईं, भइया ?"

"हां, ले आ।"

भोला चला गया। जेन ने गरम चाय दी। मैंने 'सिप' किया। बोला,

से न पीती रही, इनडू के आज ठीक से मिलायी।"

भोला तो अच्छी भूमिका दे गया। उसका जाना था कि मेरी बाँहें, दोनों बाँहें, आह्वान की मुद्रा में फैल गईं, परन्तु जेन थी कि अपने स्थान से हिली नहीं। उसकी आँखें ऊपर उठीं व नत हो गईं। तो क्या वह मान किए है!

मैं जरा आगे बढ़ा और उसे दोनों बाहों में भर लिया। बिजलियाँ चमकीं, मेरे मुख पर सावन-भादों की घटा छा गई व रस-वर्षा होने लगी। दिल से दिल मिला, तन से तन मिला, और होंठ से होंठ मिले। धीरे-धीरे उसने अपनी बाहें मेरे गले में डाल दीं। ओह, कितनी तपन थी! बिछुड़न भी क्या एक बला है, न जाने कितनी शिकायतें, कितनी बेचैनी धीरे धीरे मिट रही थी: दो तनों में, दो मनों में विद्युत-कण का आदान-प्रदान जारी था। आंशिक परिपूर्णता प्राप्त हो रही थी।

जरा ही देर में मैंने देखा कि जेन थर-थर काँप रही है, उसके पांव कांप रहे हैं, वक्ष कांप रहा है, बाहें शिथिल पड़ रही हैं, लगा वह गिर जायगी। मैं बाहों में सहारा दिए ही उसे लेकर सोफे पर बैठ गया। वह मेरी गोद में यों पड़ी रही जैसे कोई शिशु हो। मैं उसके केशों व भाल पर यों हाथ फेरता रहा जैसे कभी कभी शीला मेरे साथ करती थी।

बाहरी क्रिया एक सी होते हुए भी बहुधा अन्तर का अर्थ एक ही नहीं होता। इस मिलन में कितना परम सुख था, कितनी तृप्ति थी परन्तु स्थूल स्तर की 'वासना' का नाम भी न था। यह एक विचित्र 'रासलीला' था।

गोद में पड़ी पड़ी जेन बोली, "जी में आता है, युग-युग तक यों ही पड़ी रहूँ, कभी न उठूँ।"

"तो कौन कहता है उठने को, पड़ी रहो न।"

जेन ने कितनी प्यारी बात कही। सच, कितनी प्यारी लड़की है और एक मैं हूँ कि उसे तरसा रहा हूँ। मैंने झुककर हल्का सा प्यार किया। बोली, "चाय ठंडी हो रही है, उठने दो।"

"बस! युग समाप्त हो गया! तुम्हारा युग तो बहुत छोटा है, जेन।"

"समय समय की बात है, कभी कभी तो इतना बड़ा हो जाता है कि काटे नहीं कटता।"

हम दोनों मुस्कराए। मैंने दोनों हथेलियों में उसका मुँह लेकर एक बार फिर चूम लिया व सहारे से उठा दिया।

चाय की केतली पर हाथ रखती हुई बोली, "लो, बिल्कुल टंडी होगई, मैं............"

"कौन टंडी होगई?"

ओह, इस प्रश्न के साथ ही हमारी आखें मिलीं और वह मुग्ध मुस्कराहट बिखर गई कि क्या कहूँ? ज़रा रुककर वह बोली, "चाय! मैं दूसरी केतली मंगवाती हूं, मगर भोला क्या सोचेगा, चाय कैसे टंडी हो गई।"

"क्यों, वही तो कह गया था, तुमको अच्छी तरह चाय पिलाने के लिए, पीते पीते टंडी हो गई।"

"और कण्ठ तक एक घूंट भी न गया, एक बूंद तक नहीं।"

हम फिर हंसे। कुछ दिखावा बनाए रखने के लिए जेन ने थोड़ी चाय स्नानागार में फेंक दी व दोनों प्यालों में ज़रा ज़रा सी डाल दी। टंडी चाय का एक एक 'सिप' दोनों ने लिया। मैंने कहा, "छिः छिः कितनी टंडी है।"

"तुम्हीं ने तो टंडी की, अब पछताते हो।"

खैर, यह नाटक भी समाप्त हुआ। हम दोनों सैण्डविचेज़ व बिस्किट खाने में लगे। जेन ने ताज़ी गरम चाय मंगाई। वह भी आई। भोला स्वयम् लेकर आया।

हम दोनों को खाते-पीते, हंसते-बोलते देखकर बोला, "अब कितना नीक लागत है, भइया, हमार बंगला भरि गया। थोड़ी गरम पकौड़ी लाई, भइया!"

"जा, ले आ।"

भोला चला गया। जेन ने गरम चाय दी। मैंने 'सिप' किया। बोला,

"[illegible]"

"[illegible]
[illegible] अकेला और ....।"

"किस अकेला ?"

इस बार [illegible] रही । वह बोली, "तुमने बहुत दिन बाद लिए ।"

"क्यों ! तुम बहुत उदास थी न ? तुम्हारा तार मिला और मैं चल पड़ा ।"

"यहाँ बड़ा सूना-सूना लगता था । मुझसे अब बर्दाश्त न हुआ ।"

"क्यों, डाक्टर से कभी मुलाकात न हुई ?"

"हाँ आती थी कभी-कभी, पर रोग उनके बस का नहीं था ।"

उदासी जेन के चेहरे पर उभर आ रही थी । वह बोलती गई, "जिनके बस का था वह आकाश के बंधनों में भटक रहा था ।"

"अब तो नहीं भटकता, मैं तो घर गया था ।"

"कहाँ ?" मुँह उठाकर उसने पूछा ।

"भाभी को भी एक तार भेज दिया था ।"

"तार ! कैसा तार ?"

"यही कि तुम सख्त बीमार हो ।"

"सच ?"

"और नहीं तो क्या मैं ...." कहते कहते मैंने तार जेब से निकाला व जेन के सामने रख दिया । उसने पढ़ा व चकित रह गई ।

तार मुझे लौटाते हुए बोली, "तुम्हारी भाभी भी खूब हैं ?"

"आखिर बात क्या है ?"

"बात कुछ भी नहीं है, बस बात का बतंगड़ है ।"

"कुछ साफ कहोगी भी ?"

"कहूँगी ! तुम चाय पी लो, घूमने चलते हैं, रास्ते में ही सब कहूँगी ।"

मेरा मन अत्यन्त आशंकित हो उठा । 'सब' के माने तो यह हुए कि बात काफी लम्बी होगी तभी रास्ते में कहना जेन को ठीक लगा । मैंने

चुपचाप चाय पी। प्रेम-प्यार में आई, नाजुक मिजाज व भावुक हृदय लोप हो गया, व्यवहारिक व कामकाजी बुद्धि ने रास अपने हाथ में ली।

चाय समाप्त करके हम दोनों गाड़ी में बैठे व विक्टोरिया पहुँच गए। झील के किनारे एक बैंच पर हम दोनों बैठ गए। अब जेन ने कहना आरम्भ किया :

"तुम्हारे चले जाने के बाद मेरा मन किसी काम में न लगता था, बिलकुल न लगता था। इसलिये मैं कुछ चुप-चुप, कुछ गुम-सुम सी रहने लगी। एक दिन तुम्हारी भाभी जी पधारीं भाई साहब के साथ। मैंने चाय वगैरा पिलाई व थोड़ी-बहुत गप-शप हुई। बातों के सिलसिले में भाई साहब ताड़ गए कि मैं अकेली हूँ आजकल व मन भी नहीं लगता।

"एक दिन चार बजे आप तशरीफ लाए अकेले। मैंने खड़े खड़े बातें करके टालने की चेष्टा की पर आप थे कि बैठक में जम गए व चाय का आदेश भी भोला को दे दिया। आप लगभग आधा घंटा ठहरे। इस बीच अकेलापन, प्रेम व आपकी निष्ठुरता पर प्रवचन होता रहा। मैं चुपचाप सुनती रही, बीच बीच में 'हां हूँ' करती जाती थी। पर आए मेहमान को कैसे भगाती सो भी तुम्हारे भाई साहब।

"यों ही एकाध बार और उनका आना-जाना होता रहा। मैं रोज़ मनाती कि तुम आजाते तो इस बला से जान छूटती।"

मैंने कहा, 'पर तुमने तो कुछ लिखा नहीं।"

"क्या लिखती, कोई बात भी हो ?"

"तुम्हारी प्रशंसा करते होंगे व तुम्हें अच्छा लगता होगा, तभी न लिखा ?"

जेन एकाएक व्यथित हो उठी। तिलमिला गई। फिर सम्भलकर बोली, "क्यों गालियां बकते हो ?"

'अच्छा, नहीं कुछ कहूँगा, आगे बढ़ो।"

'एक दिन आप किसी नृत्य-समारोह का टिकट दे गए और बोले, 'भाभी जी भी जाएंगी, आप आइयेगा।' बात साधारण सी थी। किसी

दक्षिणी संस्था की ओर से 'न्यूएम्पायर' में हो रहा था। कथाकली के विशेषज्ञ नृत्य करने वाले थे। मैंने कोई विशेष ध्यान न दिया, चली गई उस नृत्य में। वहां जाने पर मार्ईबाहब तो काली अचकन व चूड़ीदार पायजामे में बिल्कुल 'छैला' बने मिले। पूछा, 'मामी जी कहां हैं?' तो बोले, 'उनकी तबीयत कुछ नासाज है।' खैर जब गई ही थी तो क्या लौटती, बैठ गई सीट पर। आप मेरी बगल में बैठे।

"जब हॉल में अंधेरा हो गया व नृत्य चलने लगा तो आपने अपने पांव से मेरे पांव को सहला दिया। मैंने पांव और हटा लिया, तब आपने अपने कंधे से मेरा कन्धा चिप दिया, मैं अपनी सीट पर और भी किनारे दूर दुबककर बैठ गई। अन्त में आपने अपना हाथ मेरे दूसरी ओर के कन्धे पर रखा तो मैंने सब लाजलिहाज छोड़कर ज़ोर की चिकोटी काटी। आपने झट हाथ हटा लिया। इतने में मध्यान्तर हो गया।

"उजाले में मैंने देखा कि प्रोफेसर साहब रसिया की निगाह से मुझे देख रहे हैं व मन्द मन्द मुस्करा रहे हैं। मैं घर चलने पर उद्यत हुई तो आप ने रुकने का हठ किया। हठवश लगभग हाथ पकड़ने जा रहे थे कि मैं छिटककर दूर हो गई व चल पड़ी। बेचारे पीछे पीछे मोटर तक पहुंचाने आए। जब मैं मोटर में बैठी तो बोले, 'कुछ खयाल न कीजिएगा, अभी तो इब्तदाए इश्क है, बाद को ·······'

"इतने में मैंने गाड़ी चालू कर दी व मोटर की घर्र की आवाज में उनकी आवाज डूब गई।

"घर आकर मैं रो पड़ी। और रोने लगी तो बस तार बंध गया, फूट फूटकर रोई। मेरा इतना बड़ा दुर्भाग्य कि जिसके लिए देश छोड़ कर आई वही लम्पटों के हाथ में मुझे छोड़कर वनवासी हो गया। तुम पर भी खूब गुस्सा आया और तुमको मैंने पत्र लिख दिया।"

"अच्छा, मैं उस प्रोफेसर के बच्चे को देखूंगा पर तुमने पत्र में तो कुछ भी न लिखा"

"यह भी कोई लिखने की बात थी? मैंने जितना लिखा था, जानती

थी तुम तुरंत आजाओगे उतने से ही और तुम आगए।"

"वाह रे विश्वास!"

"विश्वास न होता तो आधी दुनिया पार कर यहां आती कैसे!"

"मगर इस भाभी जी को कैसे सब मालूम हुआ?"

"सुनो तो, दूसरे दिन मैं उनके कॉलेज में गई। वहीं पर उन
सारा किस्सा बता दिया। मुझे डर था कि प्रोफ़ेसर साहब तीन बजे
आसपास पधारेंगे इसलिए मैं अकेली चित्र देखने चली गई। लौटने
मालूम हुआ कि आप सचमुच पधारे थे। हां, तो भाभी जी ने मुझ
कहा, 'चिन्ता न करो, मैं उनको ठीक कर लूंगी।' मगर मैं क्या जान
थी कि वे आपको तार दे देंगी।"

"तो इस तार के बारे में उन्होंने तुमको कुछ भी न कहा था?"

"बिल्कुल नहीं।"

"भाभी जी को भी दूर की सूझती है। अच्छा, मैं ऐसा छकाऊं
कि वे भी क्या याद करेंगी और इस प्रोफ़ेसर की तो आंखें निकाल लूंगा।

"नहीं, नहीं, ऐसा कुछ करने की जरूरत नहीं; मैं हाथ जोड़ती
कुमार, इस मामले को तूल न दो।"

"तूल न दो! दर्द लगता है क्या?"

"हां लगता तो है, क्यों न लगे?"

श्रीमती परिन्दर

शिलापन

मेरा स्वभाव बड़ा विचित्र है, जो पास होता है उसकी परवाह नहीं करता और जो दूर होता है उसके लिए मन कुलबुलाता रहता है, तड़पता रहता है। कम यह होता है कि कभी कभी पास वाला अपने को उपेक्षित समझ लेता है और दूर वाले का मेरी तड़पन का क्या पता।

कलकत्ते आते ही मेरे जीवन में एक प्रकार की सहजता आ गई, किसी भी चीज की परवाह न रही, छोटी से बड़ी हर व्यवस्था जेन कर डालती थी। वैसे मैं उसकी परवाह तो कभी भी नहीं करता, होटल तक में रहने का भरोसा कलकत्ते में अधिक करता हूँ पर भीतर की एक भावना जो 'अपना घर' 'पराया घर' व 'होटल' में अन्तर मानती रहती है वह सदैव काम करती है; बाहर से कोई अन्तर न होने पर भी भावना में,—अन्दर ही अन्दर, अन्तर तो रहता ही है।

कलकत्ता 'मेरा घर' है क्योंकि यहां मोना है जो मेरा है, जेन है जो मेरी है, और करे कोई पर व्यवस्था सारी मेरी है, यह भावना एक निराली निश्चिन्तता मन में भरने लगी। सारा वातावरण सरल और शुद्ध प्यार से सुगंधित हो उठा। मैं उसी में परिप्लावित रहने लगा। जेन तो ऐसे बरतती जैसे मैं कोई सचमुच देवता होऊं, इन्सान नहीं, और वह कोई भक्त हो, यौवन का उन्माद लिए लड़की नहीं।

जेन अब काफी प्रसन्न रहने लगी, इसलिए मैं उसकी ओर से एक प्रकार से निश्चिन्त हो चला। सारा ध्यान मीरा पर केन्द्रित हो गया। उसके पत्र याद आए, मन में कुरेद आरम्भ हो गई। कितने दर्दीले पत्र

उसने लिखे थे। मैंने उन पत्रों को फिर से पढ़ा, बार-बार पढ़ा, अकेले में पढ़ा, चुपके से ताकि कहीं जेन देख न ले।

विरह का एक एक वाक्य कलेजे को टूक-टूक कर डालता। मैं अपने को एक बहेलिए सा पाता, उस बहेलिए सा जिसने क्रौंच-वध कर डाला और महर्षि का मन विश्व-भर की व्यथा से भर कराह उठा और उन्होंने महाकाव्य की अमर रचना कर डाली। व्यथा तो मेरी भी महर्षि से *कम न थी। अपने को मैं तीन 'व्यक्तित्व' में बांटकर देखता—क्रौंच का* प्रणयी, बहेलिया और अब महर्षि। पर मुझे किसी महाकाव्य की रचना तो करनी न थी, होनी भी सम्भव न थी, इसलिए सारी व्यथा उमड़-घुमड़ कर विष बनकर तन-मन को खाने लगी। उसका न तो महाकाव्य बना, न महाग्रन्थ।

मैं कुछ कुछ अकेला व उदास भी रहने लगा। अब नीरा को रोज़ पत्र लिखता, उसके पत्र की रोज़ प्रतीक्षा करता। पाता भी, पर कभी कभी जब निराश होना पड़ता तो मन अत्यन्त अस्तव्यस्त हो जाता। जेन पूछती, 'क्या बात है?' तो क्या बताता? कुछ हो भी। मैदान, *विक्टोरिया या गंगा-तीर घूमने निकल जाता; दूरी का न तो ज्ञान रहता,* न ख्याल।

दिन भर एक मीठी लगन लगी रहती। शाम की डाक आशा व निराशा के संदेश लेकर आती। रात का चैन से या बेचैनी से कटना उसी पत्र पर निर्भर करता। जब किसी प्रकार मन न लगता तो रेडियो सीलोन के कुछ गीत सुनता। वे न जंचते तो अपने रेडियोग्राम पर दो पसंद के रेकॉर्ड सुनता, मगर पसन्द क्या? कल की 'पसन्द' आज पसन्द न आती।

वैसे देखा करता बहुत कम था, कारण जेन भांप जाती, मेरे भीतर क्या चल रहा है। वैसे भी वह जानती हो तो क्या पता? इन लड़कियों की निगाहें तीर से भी पैनी होती हैं और अन्तर का भेद बात की बात में मालूम कर लेती हैं।

हां, मेरी बेचैनी की एक दवा थी जिसे शायद जेन कभी न भांप

कहीं न उनसे उनका उत्पन्न हो हुई। अर्थ मतलबी कि नहीं, मुझे पता नहीं। जिस दिन नीरा का मन न आता और मैं बहाना से अधिक दो-चार ही बार में उसका नैन के पास जाता और उसे अहोकाई लिए देखने लगने के लिए करता। यह उसका भी नहीं चाहती तो उसे पंखा ला देता, गुदगुदाकर तैयार कर लेता। जिसका-दर्शन में यह कभी प्रसन्न नहीं थाती। मैं जितना प्रसन्न होता कुछ पता नहीं, क्योंकि नीरा का था मन में गुदगुदी रही। कभी कभी लगते रहें पर मिल का एक बड़ा ध्यान मैं बिल्कुल तो देता न नैन कभी लेकर था मैं हुई हंसी तो हैं भी बिना समझे हंस देता।

जिस दिन मन व मस्तिष्क का संतुलन जरूरत से अधिक होगा, फिर के बाद मैं रात को सोते से प्यार व आलिंगन के साथ नैन को 'गुडनाइट' देता और वह बड़ी खुश सी अपने कमरे में चली जाती।

एक बात और थी। मैं केवल नीरा के मधुर, किन्तु तन और मन से प्यार के ही प्रभाव को नहीं महसूस कर रहा था बल्कि कभी कभी शीला की स्थूल छेड़खानी भी याद आती और कुछ खोया-खोया सा लगता। इस को तो मुझे बिल्कुल ही आशा न थी, स्वप्न में भी नहीं। किन्तु मानव स्वभाव कितनी बड़ी पहेली है, मुझे इसका अभी ज्ञान ही कितना था।

शीला की स्थूल छेड़खानियाँ का मेरी दृष्टि में कोई महत्त्व न था। कभी कभी वे बिल्कुल पसन्द न आतीं, फिर हम दोनों समदुःखी थे इसलिए मात्र सहानुभूति हमारे बीच थी, और कोई सम्बन्ध तो था नहीं। इस विषय पर शीला बहुत स्पष्ट थी और मैं भी। फिर यह कुरेदन कैसी!

कभी कभी सोफे पर बैठे बैठे लगता, कोई पीछे से झुक रहा है मेरे चेहरे पर, किसी के लहराते केश मेरी आँखों पर, माल पर बिखर गये, किसी के होंठ चूमने को झुक पड़े, परन्तु ध्यान से देखता तो कोई न होता।

किसी के चुम्बन, किसी के स्पर्श का मधुर अभाव मेरे अंग महसूस करते। मन की आशा के बिना, जो इन सारी इन्द्रियों का राजा है, इन लोगों ने अपने प्यार व लगाव की दुनिया अलग से बसाई है इसका पता

मुझे अब लगता। मन के व्याकुल होने पर ये सारी इन्द्रियां मारे भय के मौन होतीं पर उसके शान्त व स्वस्थ रहने पर वे भी अपना अभाव लेकर उपस्थित हो जातीं।

धीरे धीरे मुझे एहसास होने लगा इस बात का कि शीला ने मेरी आदतें बिगाड़ दी हैं। किसी ओर से आती, तन का कोई भाग घिसकर चली जाती, न हुआ तो झट से चूम लेती, कुछ न कुछ तो छेड़ ही डालती। पूछने पर हंसकर कहती, "यह कसौटी है सच्चे प्यार की, रोज मन को जांच लेना ठीक है!"

जब मैं पूछता, "तुम मेरा मन जानती हो या अपना?"

तो फट बोल उठती, "दोनों का।" और हम हंस पड़ते।

वातावरण में एक सूक्ष्म माधुर्य व शान्ति के होते हुए भी एक स्थूल माधुर्य की कमी रह रहकर महसूस होती। वही चीज तो मन की व्यग्रता में आराम में अफ़ीम के नशे (मोर्फिया) का काम करती और अब आदत बनकर अफ़ीम (मोर्फिया) की मांग कर रही थी। व्यग्रता न रहने पर भी अब 'दवा' के रूप में नहीं, 'नशे' के रूप में इसकी मांग थी।

वाह रे मानव-स्वभाव!

इस प्रकार का अभाव जब बहुत तीव्र हो उठता, मेरे अंग चरमराने लगते, नसें तनने लगतीं तो मैं कभी कभी जेन के कमरे में आता। यदि पढ़ती-लिखती होती तो चुपचाप पीछे से जाकर उसकी आंखें मूंद देता। वह चकित होकर मेरी बांहों पर अपना हाथ फेरती व झट पहचान लेती। मैं आंखें खोल देता, हम दोनों मुस्करा पड़ते। कभी कभी उसके रूप की स्थूल प्रशंसा करता, अकारण छेड़ता, गुदगुदाता व बहुत साहस करने पर प्यार भी कर लेता, मगर इस व्यापार में बहुत मज़ा न आता, कारण यह एकांगी होता, जेन इस प्रकार के व्यापार में कुछ दिल से भाग न लेती। अच्छा तो उसे भी लगता पर वह न जाने कैसी शंका की दृष्टि से मुझे देखती व मैं सहम जाता। सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता।

मैं सोचता, जेन चढ़ती हुई अल्हड़ जवानी में भी गुदगुदी व

मारा। मुस्कराती, आँखें मींचती, उसने मेरी ओर देखा और बोली, "आज कोई नई शरारत सूझी है क्या ?"

"देख तो रही हो," कहते कहते मैंने धुएं का एक कश और ज़ोर के साथ उसके चेहरे पर फेंका।

बोली, "देखती कहां हूँ, मारे धुएं के कुछ दिखाई दे तब तो!"

"अच्छा, न छोड़ूंगा, अब ध्यान से देखो!"

मैं धीरे धीरे सिगरेट पीता रहा। उसने मुझे देखा। पहले तो उस की आंखों में कौतूहल था, फिर न जाने कैसा भय छागया। बोली, "यह जूठी सिगरेट पीना तुमने कब से सीख लिया!"

"अभी से!"

'नहीं, यह बात नहीं है!"

"फिर क्या बात है?"

"इस बार तुम जब से आश्रम से लौटे हो तब से काफ़ी परिवर्तन देख रही हूँ!"

"मतलब्?"

"यही सिगरेट पीना!"

"और कुछ?"

"ज़रूरत से ज्यादा छेड़खानी!"

"ओह, यह बात है!"

इतना कहकर क्रोध के कारण मैंने सिगरेट फ़र्श पर फेंक दी, और पांव पटकता अपने कमरे में आगया।

मैं जानता था, जेन पीछे पीछे आ रही है इसलिए मैंने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया। जेन ने काफ़ी प्रयत्न किया खुलवाने का परन्तु मैंने न खोला, न खोला।

कुछ देर तक तो मारे गुस्से के अनाप-शनाप सोचता रहा, 'चार दिन की छोकरी मेरे ही ऊपर शासन चलाती है, मुझे अपनी मुट्ठी में रखना चाहती है, उसे अभिमान हो गया है अपने रूप का, अपने गुण का!'

मगर कुछ देर में शान्त होने पर मैंने सोचा, जेन क्या ग़लत कह रही है, उसकी तेज़ निगाहों ने भांपा तो ठीक ही है, मैं इतनी छेड़खानी कहां किया करता था, फिर सिगरेट कहां पीता था, धुम्रां छोड़ने के बहाने मैं तो लगभग पीने लगा था, जेन ने इसे खुद ध्यान से देखा, छोड़ने व पीने के अन्तर को समझा, तब जाकर बोली।

और ठीक ही तो है, मेरे छेड़ने पर प्रसन्न चाहे वह भले होती हो पर उसकी आंखों में आश्चर्य तो नाचता ही था, मुंह से कभी न बोली पर आंखों से कितनी बार प्रश्न किया, "कुमार, तुमने यह कहां से सीखा! इतनी छेड़खानी तुम्हें किस ने सिखाई!"

नहीं, नहीं, यह नहीं चलने का। मेरा गुस्सा व्यर्थ है, ग़लत है, अन्याय है। शीला ने कहा था, 'जेन के साथ कभी अन्याय न करना।' ठीक चेतावनी दी थी उसने। मैं अन्याय न करूंगा। यह गुस्सा मेरा अन्याय है शीला के प्रति। मैं जेन को सारी बातें साफ़ साफ़ बता दूंगा।

भोजन की मेज़ पर हम दोनों मिले मौन, उदास; व्यथा दोनों ओर बराबर थी। धीरे धीरे भोजन चलता रहा, पर मन दोनों में से किसी एक का न लगा। यों ही थोड़ा बहुत खा-पीकर रस्म अदा हुई। हम बैठक में आए, कॉफ़ी के लिए। बैरे के कॉफ़ी लाने में थोड़ी देर थी।

एकान्त पाते ही मैंने कहा, 'जेन, मुझे बहुत अफ़सोस है; मैं लज्जित हूं अपने व्यवहार पर।"

"तुमने मेरे मुंह की बात छीन ली, कुमार। मैं भी बहुत लज्जित हूं। मैं तुम्हें ज़रा भी दुखी देख नहीं सकती।" और कहते कहते उसका गला भर आया।

इतने में कॉफ़ी आगई। न जाने बैरे ने क्या भांपा। हम दोनों का मुंह देखा व कॉफ़ी जेन के सामने रख चला गया। जेन ने कॉफ़ी बनाई दो प्याले, पर मैंने हठ किया कि वह 'हॉट ड्रिंक' ले। बहुत दिनों से उसने ऐसा न किया था। केवल होटल में जाने पर लेती थी, वो भी कभी कभी। उसने मेरी बात मान ली। मैंने स्वयं अनमाने से घोलने

व गिलास निकाले और अपने हाथ से दी। एक दूसरे का स्वास्थ्यपान किया गया। बातें विशेष न हुईं, पर मन कुछ कुछ हल्का ज़रूर हो गया।

मैंने कहा, "मैं ज़रूर कुछ नई आदतें डाल लाया हूँ, जेन, तुम्हें सब बताऊंगा। सच पूछो तो मुझे पहले ही बता देना चाहिए था।"

उसने कहा, "नहीं, नहीं, नहीं कुमार, मुझे तुमसे कैफ़ियत नहीं चाहिए। तुम हरगिज न कहना, मैं सुन न सकूँगी। तुम्हारा मुँह बन्द कर दूंगी।"

"मगर मैं जब तक कहूँगा नहीं, मुझे चैन न पड़ेगी, जेन।"

"और तुम्हारे कहने पर मुझे चैन न पड़ेगी। फिर बोलो न क्या करोगे, *मेरी चैन हरोगे या अपनी?*"

"अपनी," मैंने मुस्कराकर कहा।

"फिर ठीक है, मुझसे कभी न कहना, अच्छा।"

"अच्छा।"

"और लो यह झगड़े का इनाम।" यह कहकर मेरे गले में बाँहें डाल लिपट गई और ज़ोर से प्यार कर लिया। मैं चकित रह गया। हम विदा हुए, परन्तु उस रात नींद न आई।

क्या जेन सब कुछ समझ चुकी थी?

उसे मेरे ऊपर प्यार आया या दया?

जो कुछ भी हो, मैं उस दिन से 'शीलापन' से मुक्त हो गया। मैंने सारी छेड़खानी बन्द कर दी, सिगरेट की ओर तो आंख उठाकर देखा भी नहीं। इसकी प्रतिक्रिया जेन पर निराली हुई।

जेन ने मुझे छेड़ना शुरू कर दिया। दिन भर जहां कहीं एकान्त *मिला कि उसने हल्का सा छेड़ा, बिल्कुल हल्का सा।* कभी कंधा घिस गई, कभी बाल बिखरा दिए, कभी क़लम खींचकर दूसरी जगह डाल दी, कभी चुपके से पीछे से आकर चूम लिया, कभी गले में बाँहें डाल, झट निकालकर चल दी।

इस प्रकार 'शीलापन' मेरे भीतर से निकलकर उसमें समा गया

और वातावरण में शुद्ध प्यार के अतिरिक्त स्थूल माधुर्य भी छा गया जिसकी कमी मैं महसूस कर रहा था श्मशान से आने के बाद, जिसका मैं आदी हो गया था शीला के साथ रहने के कारण।

और प्यार के विशुद्ध मन्दिर में जहां संगमरमर की स्वच्छता व ठंडक तथा धूप की गंध सारे वातावरण में छाई थी कोई सिंहासन पर एक प्रतिमा रखकर दीप जलाने का प्रयत्न कर रहा था चुपके चुपके।

यह किस की प्रतिमा थी ?

पैंतीसवां परिच्छेद

प्रोफेसर से बदला

हम दोनों को भाभी जी के दर्शन के लिए जाना न पड़ा। मेरे कलकत्ते पहुंचने के दूसरे या तीसरे दिन भाभी जी दर्शन देने आगई। यदि न आए तो भाई साहब। ख़ैर, भाभी जी ने अपनी कैफ़ियत दी। उन्होंने बताया कि जेन को छेड़ने के कारण उन्होंने प्रोफेसर साहब को बुरी तरह से डांटा है, परन्तु दोहरा प्रबन्ध करने के लिए उन्होंने मुझे आसाम में तार दे दिया था। जब मैंने पूछा कि जेन को बताया क्यों नहीं तो बोलीं, "मौक़ा न मिला। मुझे अफ़सोस है, जेन, ख़्याल न करना कुछ।" फिर हंसते हुए उन्होंने कहा, "अब लो, कुमार, अपनी मैना सम्भालो, नहीं तो कोई बिलाव झपट पड़ेगा।"

जेन ने कहा, "तोता-मैना को तो बिल्ली-बिलाव से बराबर बचकर रहना पड़ेगा, भाभी जी।" और हम तीनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

मगर प्रोफेसर साहब की शरारत मेरा मन कुरेदती रही। बदला लेने की भावना बराबर काम करती रही, बस यह नहीं सोच पाता कि कैसा करूं।

एक दिन मैंने जेन से सलाह ली तो वह बोली, "तुम आनन्द जैसी कोई घटना न कर बैठना, मैं तुमसे बहुत डरती हूं उस दिन से।"

"मगर प्रोफेसर को चाहिए कुछ ऐसा ही, जेन।"

"नहीं, कुमार, नहीं, इस मामले में तुम बहुत ईर्ष्यालु व बर्बर हो। पता नहीं, कब सभ्य बनोगे।"

"यदि बुज़दिली व नामर्दी का नाम 'सभ्यता' हो तो शायद मैं कभी न बनूं।"

"अच्छी बात है, पर असल की बात तो यह होती है कि सांप भी मरे व लाठी भी न टूटे ।"

"तो कोई तुम ही तरकीब सुझाओ ।"

"बहुत अच्छा, मेरे ऊपर तुम छोड़ दो, फिर देखो मैं कैसा गुल खिलाती हूं ।"

"छोड़ा तुम पर, तुम्हें जैसा ठीक लगे करो ।"

जेन ने प्रोफ़ेसर साहब को रविवार के साढ़े दस बजे के चित्र में 'लाइट हॉउस' में निमंत्रित किया । मेरे लिए बहाना कर दिया कि मैं उस दिन कुछ मित्रों से मिलने जाने वाला हूं इसलिए वह स्वतंत्र है । यह भी बताया कि ऐसे सुअवसर कम मिलते हैं ।

जेन ने प्रोफ़ेसर का टिकट तो भिजवा दिया व संवाद दे दिया कि वह भी वहीं पर मिल जाएगी, हॉल में ।

प्रोफ़ेसर साहब अपनी रेशमी अचकन पहनकर पहुंचे 'लॉइट हॉउस'। थोड़ी देर इन्तज़ार करने के बाद एक सांवली सी लड़की, अठारह-बीस साल की, लाल साड़ी पहने, उनकी बगल में आकर बैठ गई ।

अंधेरे में प्रोफ़ेसर साहब को पता न चला, वह कौन थी । उन्होंने दो-एक बार उसे छेड़ा भी व अपनी हरकतें जारी कीं । मध्यान्तर में उजाले में उन्होंने देखा, यह जेन न थी बल्कि हमारी मेहतरानी की लड़की थी। आंखें उसकी ऐसी थीं कि एक पूरब देखे तो एक पश्चिम । बेचारे बिल्कुल सहम गए । पूछा, "तुम कौन हो ?"

वह बोली, "मेम साहब ने कहा है, वह चाह कर भी आ न सकीं, आपसे 'प्रिंसेज' में मिलेंगी, 'लंच' आप दोनों वहीं लेंगे ।"

उस लड़की ने ही बताया कि इस बात को सुनकर प्रोफ़ेसर साहब जलभुनकर खाक हो गए और उठकर चलने ही वाले थे कि उनके कॉलेज के तीन लड़कों ने आकर नमस्ते की प्रोफ़ेसर साहब को व उस लड़की को भी । प्रोफ़ेसर साहब और भी भिनभिनाए । लड़कों ने उस लड़की से कहा, "आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई । सुना है, आप भी

तो किसी कॉलिज में पढ़ाती हैं।"

वह लड़की कुछ बोली नहीं, केवल मुस्कराती रही। प्रोफ़ेसर साहब ने लड़कों से परीक्षा तथा इधर उधर की बातें कीं। लड़के जाते जाते कहते गए, "जब हमारी परिषद का सालाना जलसा होगा मिसेज़ को लाना न भूलियेगा," और उस लड़की से कहा, "देखिए, आप ज़रूर आइयेगा, हम लोग आपके लिए निमंत्रण-पत्र अलग से भेजेंगे।"

और खिलखिलाकर हंसते हुए तीनों चले गए। प्रोफ़ेसर साहब को काटो तो खून नहीं। इतने में अंधेरा होगया। फिल्म फिर से चालू होगई। प्रोफ़ेसर साहब से न तो रुकते बना, न जाते। अंधेरा होते ही शायद शरम भी दूर हो गई, वे अपनी सीट पर जम गए। मगर अब उस लड़की ने उन्हें छेड़ना शुरू किया और वे थे कि बेचारे सीट के एक किनारे दुबकते चले जा रहे थे। इस लड़की ने काफ़ी छेड़खानी की। जेन ने उसे खूब समझा-बुझाकर भेजा था व सफलता पर और इनाम देने का वायदा किया था इसलिए वह न तो मानने वाली थी, न रुकने वाली।

पिक्चर से निकलने के बाद प्रोफ़ेसर साहब की मर्ज़ी के बिल्कुल खिलाफ़ वह उनको 'प्रिन्सेज़' तक पहुँचा गई। अन्दर घुसने से पहले उन्होंने देखा कि वे तीनों लड़के उनकी ओर एकटक ताक रहे हैं व मुस्करा रहे हैं।

प्रिन्सेज़ में मैंने दो मेज़ें हॉल के दो अंधेरे कोनों में सुरक्षित करवा ली थीं और पहले से ही हम दोनों, एक पर मैं व एक पर जेन, जा बैठे थे। मैंने भाभी जी को आमंत्रित किया था जेन से चोरी, उनको समझ में। बड़ी मुश्किल से राज़ी हुई थीं। वैसे उनको होटल का शौक है, मैं जानता था, इसलिए राज़ी हो ही जाएंगी ऐसा विश्वास था।

सुरक्षित मेज़ का नम्बर उनको दे दिया था, इसलिए 'स्टीवर्ड' बड़े सम्मान के साथ उनको सीधा मेरे पास लाकर बिठा गया। उसी प्रकार प्रोफ़ेसर साहब भी सीधे जेन के पास पहुँचाए गए। जेन ने प्रोफ़ेसर साहब को खूब शराब पिलाई अपने हाथों। सुन्दरी के हाथ का जाम पाकर वे

और भी हंस व मामा सो बैठे। जैन ने स्वयं भी थोड़ी सी पी।

मैंने भी भाभी जी को बड़े चाव से थोड़ी सी पिलाई। उधर का बिल तो प्रोफेसर साहब के जिम्मे पड़ा बिल्ले पूरा न कर सकने पर मैंने उन्हें 'काउण्टर' पर रुका पाया। बेबसी से इधर उधर ताकते पाया तो कह उठा, "वह प्रोफेसर साहब हैं क्या, भाभी !"

भाभी ने उधर देखा, काटो तो खून नहीं।

हम दोनों उठ गए। मैंने आकर प्रोफेसर साहब को नमस्ते की व बिल चुकाया। जैन मन्द मन्द मुस्करा रही थी। प्रोफेसर साहब व भाभी जी के चेहरे पर, लगता था, किसी ने सौ सौ जूते लगाए हों।

दोनों को एक टैक्सी में ठकेलकर हम दोनों ने फुर्सत पाई। जैन के चेहरे पर ऐसा उल्लास छाया था मानों कॉलिज की लड़की टेनिस का मैच जीतकर आई हो। बोली, "अभी तो क्या है, शाम तक देखना क्या होता है।"

हम दोनों वहां से तीन बजे के चित्र में चले गए। बाद को पता चला कि उस दिन घर जाकर दोनों में खूब झगड़ा हुआ, मार-पीट तक की नौबत आगई। दोनों एक दूसरे को गाली दे रहे थे, एक दूसरे पर संदेह कर रहे थे।

इस घटना की चर्चा कॉलेज में भी उन छात्रों ने फैला दी। उनके दोस्तों के बीच भी चर्चा फैली, दोनों कापी मज़ाक के सामान बने।

दोनों को एक दूसरे से बहुत सी शिकायतें थीं। बहुत कुछ कहना-सुनना था। दोनों ने एक दूसरे को सैंध पर पकड़ा था नकब लगाते हुए।

जो भी हो, इस घटना का एक फल तो बहुत अच्छा हुआ। जैन के ही शब्दों में कहूँ तो अच्छा रहेगा। एक दिन वह हंसती हंसती बोली, "कुमार, बिल्ली व बिलाव के झगड़ने से एक तो फ़ायदा हो गया।"

"सो क्या !"

"तोता-मैना की जिन्दगी से डर निकल गया।"

हम दोनों मुस्कराए। मैंने कहा, "तोते को भी कोई डर था क्या ?"

"क्यों नहीं, कहीं बिल्ली झपट पड़े तो क्या करेगी बेचारी मैना ?"
"और कहीं दोनों ने मिलकर तोता-मैना पर झपट्टा मारा तो ?"
"यही तो हो नहीं सकता, कुमार। तुम क्या जानो, तुम तो......।"
"निरे बुद्धू हो, क्यों।" हम दोनों ठहाका मारकर हंस पड़े।
मैंने कहा, "आजकल तुम्हारे डाक्टर का पता न चला।"
वह मुस्कराई। बोली, "चलो, कल मिल आवें।"
"नहीं, जाकर उसे 'लंच' का निमंत्रण दे आओ शनिवार का।"
"तुम भी चलो।"
"अकेले जाते डर लगता है ?"
"हां, क्या पता वह भी कहीं ....।" कहते कहते वह हंस प[ड़ी] व शरमा गई।
"अच्छा, फोन कर दो।"
"तुम्हीं कर देना।"
"तुम्हें क्या फोन पर ही पकड़ लेगा ?"
"नहीं, मेरी आवाज सुनते ही वह बेहोश होने लगता है।"
यह जेन बोल रही थी। कितनी चुहल है उसके मन में, कित[नी] शरारत नाच रही है उसके चेहरे पर। मैंने कहा, "अच्छी बात है, मैं [ ] फोन कर दूंगा।"
"शनि या रवि ?"
"शनिवार।"
"लंच या डिनर ?"
"डिनर।"
"डिनर ?"
"हां, हां, डिनर।"
हमने एक दूसरे को देखा, आंखों से आंखें मिचीं व मुस्करा पड़े। वह मोहकता बस कुछ न पूछिए। मैंने थोड़ा और छेड़ा, "बिचारे डाक्[टर] पर कुछ मन पसीजा है क्या ?"

"डाक्टर पर तो क्या, सारी दुनिया पर मेरा मन पसीज आता है, कुमार, अब तुम पास होने हो।"

"यह तो बहुत खतरनाक है।"

मैं मुस्करा रहा था, पर वह नहीं। जरा रुकी, फिर धीरे धीरे बादल छंटे, मुस्कान सारे चेहरे पर खिल पड़ी। मैं समझ गया, कोई शैतानी की बात कहने जा रही है। बोली, "खतरे से बचना हो तो अपनी चीज सम्भालो।"

"ओह, यह बात है!" मैंने कहा। "अभी तक नहीं सम्भालता क्या?"

"क्या पता!" कहकर वह नाज़ से मुड़कर चल दी। मैंने उसे सरककर पकड़ा व हल्के से बांहों में भरकर प्यार कर लिया। बोला, "अब तो सम्भल गई!"

"उहुक!"

छत्तीसवाँ परिच्छेद

या अल्लाह !

नीरा के पत्रों के कुछ वाक्य इतने मीठे, इतने दर्दीले, इतने चुभते हुए होते कि घण्टों तो क्या महीनों बस कान में गूंजते रहते। उसने लिखा था :

"बस इतना समझो, मैंने जिसे अपना दिल दिया है वह बहुत 'महान' है और आजकल आसाम में है, इससे अधिक कुछ न पूछना, मन भारी है !"

"तुम भी तड़पते हो और मुझे भी बुरी तरह तड़पाते हो, शिकवा करूं तो किससे !"

"अब 'बिछुड़न' की बेला न आयगी, कुमार, 'मिलन' की बेला आयगी।"

"मैं तो सदा तुम्हारे साथ होती हूँ, तुम ही नहीं देखते।"

"मुझे देखो, कितने संतोष से रह रही हूं, इस आशा पर कि तुम आओगे। उसी दिन मेरी साधना भी पूरी होगी।"

"तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध जो उदास रहो।"

"तुम्हें मेरे रोम रोम का प्यार ! हर उमंग, हर तरंग का प्यार।"

"आजकल की शाम बड़ी रंगीन लगती है, बस दिल करता है कि बैठकर देखती रहूँ एकटक, दूर तक !"

"तुम्हारी याद आने पर मैं शिथिल होने लगती हूँ। ऐसा क्यों होता है, कुमार !"

क्यों होता है, भला मैं क्या बताता ! जब बहार आती है तो ऐसा ही

होता है। चढ़ाव की खुशियों व उतार के ग़म का पार नहीं होता।

नीरा की अपनी जिन्दगी कितनी उदास, कितनी दर्दीली व एकाकी हो गई थी सो भी उसी के शब्दों में कहूँ तो अच्छा होगा :

"बहुत ही उदास हो गई हूँ, न मालूम क्यों ! कुछ नहीं अच्छा लगता। न भूख लगती है, जबरदस्ती खाना पड़ता है। मेरी तो ज़िन्दगी ही बदल चुकी है, न तो इस जीवन में खुशी रह गई है, न उत्साह। सोचती हूं, आखिर क्या हो गया है मुझको !"

"यह प्रश्न न मालूम कहां से आता है और कहां पर छुप जाता है। मुझ में अचानक ऐसा परिवर्तन कहां से आगया, कुमार !"

"कहीं जाना भी तो अच्छा नहीं लगता। जी चाहता है, एकान्त में फूट-फूट कर रोऊं, और बस।"

"पर वह भी कहां सम्भव है, मेरे कुमार !"

"बताओ न, मुझे क्या हो गया है ! तुमसे तो मैं कोई छिपाव नहीं रखती।"

नीरा की जिन्दगी की एक और झांकी उसी के मुँह से दूं :

"हर रोज़ यूनिवर्सिटी जाते समय तुम्हें खूब याद करती हूँ, वे क्षण जो मैंने तुम्हारे साथ गुज़ारे थे, वे चित्र जो मैंने तुम्हारे साथ देखे थे। तुम्हारे साथ कभी कभी यूनिवर्सिटी जाना, रात रात जगकर हाथ दिखाना, ये सारी बातें याद आने पर मैं अब भी विचलित हो जाती हूं।"

"न मालूम क्यों, हर पल, हर क्षण, तुम्हारी याद आती ही रहती है। लगता है कि तुम मेरे रोम रोम में, मेरे अंग अंग में बस चुके हो। मेरे मन से तुम्हें संसार की कोई भी शक्ति अलग नहीं कर सकती। कहेंगे पागल है, भला ऐसे भी कोई किसी को याद करता है ! पर क्या करूं, तुम्हें मैं भूल नहीं सकती।"

"न मालूम कब और किस समय मेरे मन में तुम चुपके से आ बसे ! अपने जीवन में मैंने तुमसे अधिक किसी को न चाहा और न·········· मेरे लिए यही बहुत है।"

"'दिल की बीमारी' का पूछा है ?' वो तो तभी से लग गई थी ज
से तुम आए थे ।"

भला, इन पत्रों को पढ़कर कौन होश में रह सकता था ? मैं उन्हें पढ़ता
तड़पता, छटपटाता और चुप हो जाता, जैसे तोता सोने के पींजरे क
तीलों में चोंच मार, सिर पटक, उदास, हताश हो चुप हो जाता है ।

पर यह बन्धन कैसा था ? स्वनिर्मित ! मानव स्वयं ही तो ताना-बान
बुनता है और स्वयं उसमें उलझ-उलझकर मरता है । मैं दिल्ली जान
चाहता था, जाने के बीच बहाने ढूंढता था, *पर जा नहीं पाता था*
मगर ये बहाने किससे ? अपने ही मन को तो बहकाने के लिए । अपने
से ही चोरी ?

'मैं दिल्ली जा रहा हूँ आवश्यक काम से, नीरा के लिए नहीं,' यह
तो उस लालची मन को समझाना था जो हर घड़ी, हर पल 'नीरा-नीरा
की रट लगाए था ।

यह बहाना कहीं जेन के लिए तो न था ?

एक दिन निम्न पत्र आया और मैं बुरी तरह व्यग्र हो उठा । जी में
आया, फ़ोन उठाऊं व सवेरे या आज रात के ही 'प्लेन' से चल दूं दिल्ली
पर क्या ऐसा कर सका ?

"... और फिर देहली कब आओगे ? तुम्हें देखने को बहुत ही मन
करता है । कभी कभी तो मन में आता है कि सब बन्धनों को तोड़कर
तुम तक पहुंच जाऊं । *पर यह कहां सम्भव है ? नारी हूँ न ?*

"चाह कर भी कुछ नहीं कर सकती हूं । अन्दर ही अन्दर घुटकर र
आना पड़ता है । .... कल रात तुम्हें स्वप्न में देखा । बस क्या कहूं
वह नज़ारा दिन भर बेचैन किए रहा । काश, वह सच सच हो पाता ।

"मैं तो तुम्हारे एक एक बोल के लिए तरसती हूँ और एक तुम है
कि इतनी दूर जा बसे । निर्दयी कहीं के ! आखिर कब तक तरसाओगे
मुझे ?

"अब बहुत सह चुकी हूं और कुछ भी सहने की शक्ति नहीं र

दोनों मुस्करा पड़े। फिर जेन बोली, "जानते हो, किसी भी दिन जीजी की शादी का निमंत्रण-पत्र मिल सकता है।"

"सच ? मुझे तो कुछ भी पता नहीं !"

"कुछ भी पता नहीं ? नीरा ने नहीं लिखा ?"

"नहीं तो, शायद उसे पता न हो।"

"हो सकता है।" भेदभरी दृष्टि से मुस्कराती हुई जेन कह गई फिर बोली, "जीजी ने अपने आखिरी पत्र में लिखा था कि 'एक कलाका के चरणों में अपनी सारी साधना, सारी कला, सब कुछ अर्पण कर चुक हूँ। देव प्रसन्न हैं, समर्पण स्वीकार भी कर चुके हैं पर वरदान अभ नहीं मिला। मैं आंचल पसारे प्रतीक्षा कर रही हूँ। वरदान मिलते ह तुम्हे सूचित करूंगी।' तुम देखोगे वह पत्र ? मैं लाऊं ?"

"नहीं रहने दो। मगर वह कलाकार है कौन ?"

"कलाकार ? वही सुरेन्द्र !"

"सुरेन्द्र एक पहेली सा मुझे लगा, जेन। न जाने क्यों मुझे बहु भाया नहीं, गो कि उसकी कोई बुराई मैं नहीं जानता।"

"मगर जीजी तो इतनी बुरी तरह उस पर फ़िदा हैं कि आखें ह मूंद ली हैं। वह कुछ भी देखने, सुनने को तैयार नहीं।"

"तुम कैसे जानती हो ?"

"डान्स हॉल वाली घटना के कारण मेरी भी धारणा उसकी ओ से कुछ बिगड़ गई थी। मैंने जीजी को सावधान करने के लिए हल्का स संकेत किया था।"

"फिर क्या हुआ ?"

"हुआ क्या ? जीजी ने वह साहित्यिक और कलापूर्ण विवेचन दि कि सारी दुनियादारी भूल आध्यात्मलोक को पहुँच गई।"

"जब बहार आती है तो यही होता है, जेन, कुछ भी दिखाई-सुना नहीं देता। तभी तो 'प्यार को अन्धा' कहते हैं। वह अपनी ही कल्प की मूर्ति बनाकर उसका दूसरे में आरोप कर डालता है। इस प्रकार स्थूल

बनी, प्रीति की लौ जलाए एक पांव खड़ी है, उसकी अर्चना को कौन सा दैत्य अपने हाथों ध्वस्त करेगा, कैसे ?

नीरा, प्यार की सदेह पुतली, बहार की सजीव प्रतिमा, प्राणों की बाजी लगाए, विरह-धूनी रमा रही है; इतने कच्चे धागे में जीवन को बांध रखा है कि हल्की सी ठेस लगते ही सब कुछ चूर चूर हो जाय, सर्वनाश हो जाय, सत्यानाश ! ऐसे कच्चे धागे को कौन हत्यारा ठेस देगा ? कौन सा निष्ठुर धक्का देगा ?

जेन-नीरा ! नीरा-जेन ! जे-नी ! नी-जे ! मेरा सिर चक्कर काटने लगा, मैंने आंखें मूंद लीं।

ईस्टर आया। जेन के त्यौहार में मैं बड़ी खुशी से शामिल हुआ। उसके लिए कई हजार रुपये खर्च कर कुछ कपड़े व आभूषण उपहार में दिये। वह बड़ी प्रसन्न थी। इस सिलसिले में क्लब के नृत्य में भी हम शरीक हुए। चार बजे सवेरे तक धमाचौकड़ी चलती रही।

उस रात को अपने हाथ से मैंने कई 'पेग' जेन को पिलाये। वह कुछ कुछ नशे में खो रही थी। नृत्य ये कि परिश्रम के साथ साथ सोई चेतना को जगाने में पंखे का काम कर रहे थे। शोर-गुल, प्यार व नशे के वातावरण में जेन धीरे धीरे होश खो रही थी इसलिए मुझे सावधान रहना बहुत आवश्यक हो गया था।

'नदी पार करने वाले' नृत्य में तो ज्योंही मैंने उसे उठाया वह दोनों बांहें गले में डाल चिपट पड़ी। नदी तो पार हुई पर सभी ठहाका मार कर हंस पड़े। किसी ने चित्र ले लिया।

चार बजे घर लौटते समय वह पूरी निढाल हो चुकी थी और उसे लगभग उठाकर ही पलंग पर ले जाना पड़ा। बाद को सारा किस्सा बताने पर वह बड़ी चकित हुई व लज्जित भी। चित्र देखकर तो वह एकदम से दंग रह गई। बोली, "यों भी कोई अपना होश खोता है ?"

नीरा के दर्दीले पत्र बराबर आ रहे थे। जेन से पता चला कि मेरे आसाम जाने के बाद उसने मेरी विलायत-यात्रा का एल्बम जीजी को

भेज दिया, शायद जीजी ने नीरा के लिए मंगवाया हो। हां, जेन ने उसमें से वे चित्र निकाल लिए जिसमें वह मेरे साथ थी।

जब मैंने पूछा, "तुमने मेरी आज्ञा बिना ऐसा क्यों किया ?"

तो बोली, "मैं तो आपकी पी. ए. हूं, जैसा ठीक लगा कर दिया।"

"अच्छा, तुम्हें समझ आ रही है। तुमने मेरे सूटकेस में भी दिल्ली की सारी तसवीरें भर दी थीं, आखिर तुम्हारे इरादे क्या हैं ?"

"कुछ भी नहीं, जिसे जिस की जरूरत थी उसे वह दे दिया ।"

"और मेरी-तुम्हारी तसवीरें कहां हैं ?"

"वे भी एक एल्बम में हैं।"

"मैं देखूं जरा।"

वह एल्बम लाने अपने कमरे में चली गई और मैं बैठा बैठा सोचता रहा कि जेन कहां तक मेरे दिल के भावों को ठीक ठीक समझती है, वह किस पथ पर जा रही है, उसने अपने चित्र मेरे साथ आसाम के सफर में क्यों न रखे। क्या उसे बहुत प्रिय थे या उनको मेरे लिए अनावश्यक समझा इसलिए ?

इतने में वह एल्बम लेकर आगई। हमारी पहली मुलाकात से लेकर सारे योरप, कलकत्ता, दिल्ली के चित्र थे, कुछ शामिल 'ग्रुप' के थे, नहीं तो बहुधा हम दोनों के थे। मैंने एक एक कर पलटा और न जाने कितने ही मीठे, रसीले, सुखी दिन आंखों में नाच गए।

फिर मैं न जाने कैसी एक बेचैनी, एक कशमकश से आकुल हो उठा।

इन्हीं दिनों में नीरा के एक पत्र से मालूम हुआ कि उसको यूनिवर्सिटी की भी 'मिस १९५५' चुनने का शौक चर्राया है और जानकार क्षेत्रों का कहना है कि इस उपाधि के लिए उसका नाम लिया जा रहा है।

नीरा ने लिखा :

"यूनिवर्सिटी में यह बात जानकर मैं एकाएक झुंझला उठी। मेरी सहेलियों ने तो हंसी-मज़ाक भी शुरू कर दिया। मगर सच सच कहूं,

रास्ते में अकेले होते हो, लगा, मेरे कानों में कोई मधुर गीत गूंज रहा है। आभास होता, बार बार कोई अपनी उंगली से मेरे कपोल छेड़ देता है, कहता है 'तुम सुन्दर हो'; पलकें छेड़ देता है, कहता है 'तुम सुन्दर हो'; .... छेड़ देता है, कहता है, 'तुम सुन्दर हो' और अन्त में कोख में जोर से गुदगुदाकर कहता है, 'रानी, तुम अपूर्व सुन्दरी हो, अनिन्द्य!'

"और मैं हंस पड़ती हूं। मेरी हंसी में उसकी हंसी मिलकर मधुर संगीत सा गूंज उठता है। जानते हो वह हंसी किस की थी? बूझोगे वे छेड़ने वाली उंगलियां कौन थीं? बूझो तो जानूं।

"घर आते ही मैंने किताबें पटक दीं। झट आईने के पास गई, अपनी छाया को देखा—बिखरे केश व मुस्कराते किन्तु सूखे-सूखे होंठ। झट मैंने कहा, 'तो यही सूरत है मिस १६५५ की!' और स्वयं मुस्करा पड़ी। भागकर 'बाथरूम' में गई, जी भरकर स्नान किया, गुनगुनाती रही वही गीत 'परदेसी का प्यार'। स्नान करके श्वेत ऑर्जेट की साड़ी व श्वेत झीना झीना ब्लाउज, चमकीले, श्वेत 'ब्रेसियर्स' पर डाल लिया। केश तो सुखाने थे इसलिए उनको पीठ पर लहरा दिया हाथ के झटके से, फिर आई आईने के सामने 'ड्रेसिंग टेबिल' पर।

"अपनी छाया को देखा, तुम्हारी रानी के दर्शन किये। बस कुछ न पूछो क्या हुआ, कुमार। मैं तो मुग्ध हो गई एकदम से। इतना रूप! भला कहां छिपा पड़ा था? पाउडर नहीं, बिन्दी नहीं, लिपस्टिक नहीं, आभूषण नहीं, वेणी नहीं, कुछ भी तो नहीं था फिर भी चांद अपना सौम्य, मधुर सौंदर्य बिखेर रहा था।

"मैंने कहा, 'हां ठीक है, तुम हो सचमुच की रानी, तुम हो 'मिस १६५५'। तुम तो जानते हो मुझमें 'लड़केपन' की कमी नहीं। मैं स्वयम् लड़का बनकर नीरा पर मुग्ध हुई जा रही थी। काश, तुम देख पाते उस रूप को। मगर अच्छा ही हुआ तुमने देखा नहीं, नहीं तो तुम्हारे होश-हवास गुम हो जाते और तुम मुझे बुरी तरह बेहाल कर डालते।

"अब मैंने बालों को कंधे से झटका दिया। कभी सामने चेहरे पर बिखेर देती व आईने में देखती तो सचमुच लगता झीनी झीनी बदली के बीच से चांद झांकता है। मैं मुस्कराती, मेरी आंखें मुस्करा पड़तीं। कभी उन्हें कंधे पर बिखेर दिया, कभी कंधे से घुमाकर सामने वक्ष पर।

"एकाएक न जाने क्या सूझी। मैंने कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया व ब्लाउज को खोल फेंका। रह गई 'ब्रेसियर'। उसके भीतर छटपटाते श्वेत कपोतों को देखकर मैं एकदम हैरान रह गई व मुस्करा पड़ी। फिर साड़ी भी फेंक दी। चिकना, महीन पेटीकोट रह गया। उसके भीतर से आईने में ही अपने सारे अंगों को देखा, नख से शिख तक। फिर तो मैं स्वयम् अपने पर फ़िदा हो गई, विह्वल, तड़फ उठी, बाँहें फैला दीं आलिङ्गन में भर लेने के लिए। दर्पण के पीछे की सुन्दरी ने भी बाँहें फैला दीं, पर वे भुजाएं वैसी ही फैली रह गईं। अपनी मूढ़ता पर मैं मुस्करा पड़ी। सोचा, 'काश, मैं तुम होती!'

"फिर सारे कपड़े पहन डाले। विधिवत् शृङ्गार किया, गुनगुनाती रही :

मीठी लगन लगी रहती है।
दीपक बाती नेह अगिन बिन,
क्वारी जोत जला करती है।

"गाती रही अपनी ही रूप-माधुरी में, स्वयं कस्तूरी-मृग सी पागल होती रही, मन को समझाती रही, उस छाया से बातें करती रही जो कुछ यों थीं :

'रानी, तुझे इस अनुपम सौंदर्य का अभिमान है। ठीक है, जरूर अभिमान कर। होना ही चाहिए। पर तुझे पता है, यह अमूल्य निधि किसी की धरोहर है। किसी देव पर चढ़नेवाले ये फूल हैं। यह रूप की जलती शिखा किसी देवता की आरती उतारने के लिए है।'

"ओह, यह प्रीति का दीप, यह रूप की जलती शिखा कब तक

आराध्य देव का इन्तज़ार करेगी ? कब तक ? ......कोई बात नहीं, यों ही युग-युग तक, जन्म-जन्म तक प्रतीक्षा करनी पड़े तो भी इस साधना में ही जीवन की सिद्धि है।

"गाते गाते वह कड़ी भी गुनगुना उठी :

कोलाहल के पार क्षितिज से,
जाने कौन बुलावा देता।

"एकाएक रुक गई, बोली, 'यह कौन है, रानी को बुलावा देने वाला ? तू कुछ जानती है ?' मैं मुस्कराई। वह भी मुस्कराई। बोली, 'नहीं'। फिर मैंने ही कहा, 'मैं समझ गई, तू दिल का राज़ बताना नहीं चाहती; प्रियतम का नाम दिल की गहराइयों में छिपाकर रखना चाहती है। ठीक है, रख, नहीं तो बता देने से जादू नष्ट हो जायगा। आ तुझे काजल कर दूं, नहीं तो कहीं किसी की आंख न लग जाय, कोई टोना न कर दे; मगर कहीं तू ने किसी पर टोना किया तो ?'

"वह क्षितिज के पार से बुलावा देने वाला कौन है, कुमार, तुम कुछ जानते हो ? कभी कभी मैं सचमुच क्षितिज के छोर पर एक रूप की झांकी पाती हूं। धीरे धीरे वह प्रतिमा सजीव हो उठती है, फिर बढ़ने लगती है, बढ़ने लगती है और सारे आकाश में छा जाती है, सब कुछ ढक लेती है। वह विराट रूप एकाएक मुस्करा पड़ता है और अपनी लम्बी लम्बी बाहें फैलाकर संकेत से मुझे बुलाता है। मैं चकित रह जाती हूँ, स्तम्भित ! फिर वह रूप जानी-पहचानी सी लगने लगती है, वह रूप परिचित सा प्रतीत होता है, मगर जब मैं कदम आगे बढ़ाती हूं तो सब कुछ अन्तर्धान हो जाता है। ऐसा क्यों होता है, कुमार ?

"मैं सौंदर्य-प्रतियोगिता में भाग न लूंगी। विश्वास रखो ! वह बदतमीज़ी मुझसे बर्दाश्त न होगी, फिर मुझे कोई 'फ़िल्म-स्टार' थोड़े होना है ?

मैंने पत्र पढ़ा। एक बार, दो बार, बार बार पढ़ा; छाती ... से फूल उठी, मन प्रसन्नता से बल्लियों उछलने लगा, परन्तु ... भी बढ़ गई मिलने की। लालची मन बार बार पूछता, ...

तमाशों से मुझे ? मैं कब तक इन्तजार करूँ, मुसाफ़ ! कब तक ? प्रती
की भी कोई हद होती है ? वह मिलन-वेला कब आएगी ? क्या अब भी
हिलेंगे, कुछ भी न करेंगे अपनी नीरा के लिए ? अपनी रानी के लिए ?

जब इतने पर भी मैं मिलन-द्वार तक न जाता तो मन बेचारा
गुस्से में चिढ़कर बोला, "यह कहाँ का न्याय है ? नीरा के लिए कुछ
भी नहीं करते धरते बनता और चैन ……"

मैंने अपने मन को ही डाँट के डपटा, चुप रहो।'

बहुत कुछ मंथन के बाद मैंने नीरा को पत्र लिखा, जिसमें उसके अपूर्व सौंदर्य व उसकी अनुभूति पर बधाई दी तथा उसे अपना एक चित्र बिल्कुल ताजा खिंचवाकर भेजने का अनुरोध किया। यह भी लिखा कि, लगता है, साधना के कारण मुख की कांति व तन-मन का सौंदर्य दिन दूना, रात चौगुना निखरता जाता है।

सुभाषा कौन देता है ? वह विराट प्रतिमा किस की है ? भला, इन *प्रश्नों का क्या उत्तर देगा ? ये भी कोई उत्तर देने योग्य प्रश्न हैं ?* इनका उत्तर तो नीरा को स्वयम् ही मालूम होगा या ईश्वर होगा।

बहुत इन्तजार न करना पड़ा। सप्ताह के भीतर ही रजिस्टर्ड लिफाफा आ पहुँचा। काँपते हाथों मैंने उसे खोला। न जाने कैसी छवि हो, नीरा में कितना परिवर्तन आगया हो। क्या पता उसके विवरण में कहीं अतिशयोक्ति न हो। उस पर बहार छाई है, वह अंधी हो रही है, कहीं कुछ ठीक ठीक सूझता तो होगा नहीं, आखों पर एक जादू, एक मोहिनी छाई होगी जो सब कुछ, हर वस्तु, अपनी छाया तक को विभिन्न रंगों में रंग रही होगी, देख रही होगी।

परन्तु नहीं, नीरा ऐसी नहीं। उसे अतिशयोक्ति की आदत नहीं, सो भी अपनी छवि के बारे में, वह भी मुझसे ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। पर हाथ कंगन को आरसी क्या ?

यह रही वह छवि !

या अल्लाह !!

सैंतीसवां परिच्छेद

जेन का सुझाव

छवि को देखते ही अचानक एक धक्का लगा। धक्का, जैसे दिल पर किसी ने एक घूंसा मार दिया हो; धक्का, जैसे 'प्लेन' उड़ते उड़ते एकाएक सौ, दो सौ फीट नीचे 'ड्राप' कर गया हो। मेरे होंठ खुले और खुले ही रह गए। मैंने कहना चाहा, परन्तु होंठ हिलकर रह गए, आवाज़ गले में ही अटक गई।

'रानी, रानी, रानी' धीरे धीरे दिल ने दुहराया। ओह, इतना सौंदर्य, इतनी माधुरी, ऐसी अनुपम छवि!

यह मेरी 'रानी' है? रानी? मेरी?.........मेरी?.. ......ना,ना, ना। लगा, जैसे हाथ से कोहनूर हीरा छूटकर टूक-टूक हो गया; चांद पर जाने वाले का पहला 'कॉमेट' छूट गया; सारी धन-राशि लिए जहाज़ किनारे पर आकर डूब गया; कलाकार की जिन्दगी भर की साधना का फल संगमरमर की प्रतिमा टूक-टूक होगई।

परन्तु ऐसी भावना क्यों? मन उदास हो गया। खोने की एक विचित्र भावना, एक अजीब उदासी तन-मन पर छा गई; लगा, जैसे मेरा सर्वस्व अभी अभी फिसलकर समुद्र की अनन्त जल-राशि में डूब गया, उसके अतल तल में सदा के लिए खो गया, विलीन हो गया।

आत्माराम का 'हीरामन तोता' फुर्र से अनन्त आकाश में उड़ गया। खाली पींजरा देख आत्माराम अवाक् हो गया।

लगा, जैसे मेरी छाती पर एकाएक पूरी दीवार गिर गई, मैं मौन रह गया। दिल पर पहाड़ टूट पड़ा और उसकी धड़कन बन्द हो गई।

भौंरों सी पुतलियां, सुडौल नासिका, दमकते कपोल, विह्वल प्यासे अधर, नीचे सुघर चिबुक, चांद से इस श्वेत अमृतमय भाग को घेरा देनेवाली दो काली काली वेणियां जिन में एक बड़े कुण्डल को छूती हुई पीछे पीठ पर लहरा उठी, मगर जाते जाते 'रिबन' का फूल कंधे पर छोड़ती गई और दूसरी कंधे तक आते आते 'रिबन' के फूल का बन्धन तोड़ वक्ष पर लहरा उठी।

अब जो देखा, तो बस देखता ही रह गया। आंखों से आंखें मिलीं तो फिर हटने का नाम न लें। दिल धड़कता रहा, पर धक्का शान्त होगया। लगा, अब होश में हूँ व सचमुच छवि देख रहा हूं और छवि है नीरा की। इतना अतुल सौंदर्य! नीरा में इतना परिवर्तन! यह रूप-राशि!

मैं लुब्ध सा, भिखारी सा अब लालची आंखों से देखने लगा। धीरे-धीरे, बहुत धीरे-धीरे सत्य का भान हुआ। मेरे अधर मुस्कराए। छाती अब फूलने लगी। उत्साह जागने लगा। आनन्द रग-रग में भरने लगा। नसें फड़कने लगीं और टकटकी बंध गई।

नीरा! नीरा का रूप तो '१६५५ की विश्व-सुन्दरी' होने योग्य है, युग-युग की अनुपम सुन्दरी घोषित किए जाने योग्य है, ऐसा मुझे आभास हुआ।

रुपया रोज पाने वाले मजदूर को हवाओं की 'लॉटरी' में लाख, दो लाख मिल जायें तो क्या होगा? बच्चे के खेलने के लिए चिकना, श्वेत पत्थर बटोरने वाले भिखारी को जौहरी बता दे कि उसके हाथ में लाखों रुपये का हीरा है तो उसकी क्या गति होगी?

मैं कुछ कुछ ऐसा ही अनुभव कर रहा था। मैं क्या जानता था, इतने थोड़े समय में नीरा में इतना निखार आ गया। अब मैंने समझा कि यूनिवर्सिटी के अधिकारी अंधे नहीं हैं।

'मेरी' नीरा, इतनी सुन्दर!

लगा, जैसे नीरा सुधाकर की पुत्री है और सितारों पर पांव रखती चलती है, चांद की किरणों की डोरी से उतरकर धरती पर आई है, न

जाने कब यही डोरी पकड़ अन्तर्धान हो जाए।

लगा, जैसे मैं उसे हाथ से छू नहीं सकता। वह देवांगना है और मेरा मिट्टी का हाथ।

कभी लगता, जैसे श्वेत, हिमाच्छादित चोटियों पर वह स्वच्छ, धवल हंस पर चढ़ी उड़ती चली जा रही है और मैं नीचे से, धरती पर से, एक-टक देख रहा हूं, परन्तु वह मेरी पहुँच से कितनी परे है, कितनी दूर।

लगता, जैसे वह चांदनी से ही मुँह-हाथ धोती व चांदनी में ही नहाती है। ओस-कण उसके चरणों से छू जाने पर हीरे से चमक उठते हैं।

कुछ न सूझता उस आनन्द की घड़ी में क्या करूं, क्या न करूं? एक बार जी में आया उस इकतल्ले पर से ही नीचे बहती गंगा में कूद पड़ूं। कभी मन में आता कि मैं भी एक हंस पर उड़ चलूं दूर दूर आकाश में, तारों की छाया में, हिम-शिलाओं के ऊपर, बादलों पर पांव रखता, वहां, वहां जहां वह हंस-वाहिनी विचर रही है।

अपनी कल्पना के पागलपन पर मैं स्वयं ही मुस्करा उठा। संध्या की रागभरी किरणों को देखा। 'ऐश-ट्रे' के सहारे नीरा की छवि को इस प्रकार मेज पर रखा कि किरणें पूरी पूरी उस पर पड़ें व बिखर जायें। नीरा से भेंट की पहली संध्या सजीव हो उठी। मन में एक व्यथा, एक कसक धीरे *धीरे जमने लगी, न जाने क्यों?*

बैरे को और कॉफी लाने का आदेश दिया। सिगरेट सुलगाई। शीला की याद आई इस आनन्द की घड़ी में, इस मधुर पीड़ा की वेला में। मुँह से निकल पड़ा, 'ब्यूटी क्वीन'। धुएं का एक कश, जी में आया, छोड़ दूं नीरा पर, पर छोड़ न सका। हवा में छोड़ दिया व धीरे धीरे गुनगुनाने लगा 'प्रसाद' की अमर पंक्तियां :

कनक-किरन के अन्तराल में
लुक छिप कर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रस-कन ढरते,

हे लाज भरे सौंदर्य बता दो
मौन बने रहते हो क्यों ?

कॉफ़ी और बनाई। पीता रहा, पीता रहा। सिगरेट से धुआ छोड़ता रहा, छवि को एकटक निहारता रहा। कुछ देर में लगा कि जैसे छवि के होंठ हिले व कान में गूंज गए नीरा के बोल, 'निर्दयी कहीं के? आखिर कब तक तरसाओगे मुझे?'

योंही बैठे बैठे सूरज का गोला डूब गया। बड़े बड़े पोत, छोटे छोटे स्टीमर व नन्ही नन्ही नावें अपने अपने छोटे-बड़े प्रकाश से जग-मगाने लगीं। हॉवड़ा-पुल पर एक लम्बी प्रकाश-रेखा जगमगा उठी, जैसे वहां गंगा के ऊपर हर रात को दीवाली मनाई जाती हो। इस अंधकार में भी गंगा की धारा कल-कल बहती ही जा रही थी।

मैंने दूर तक गंगा को देखा, गंगा के पाट को देखा, विस्तार को देखा, मटिया बुर्ज के टिमटिमाते दीप दिखाई दिए।

मैं स्वतः बुदबुदाया, संत निमाई के वाक्य :

'पार जाइते होवे, बेला नाय'!

भारी मन व भारी कदम उठाता हुआ गाड़ी में आया, फिर बंगले पर। जेन मेरे इस प्रकार उठकर चले जाने व देर से घर लौटने पर कुछ चिन्तित थी। मैं ज्योंही कमरे में पहुंचा वह मेरे पास आई व बोली, "क्यों, क्या बात है, कुमार, आज तुम बहुत जल्दी उठ गए और अभी तक कहां रहे?"

"गंगा-तीर।"

"गंगा-तीर? वहां क्या कर रहे थे?"

"झख मार रहा था," कहकर मैंने लिफ़ाफ़ा जेन के सामने फेंक दिया। उसने लिफ़ाफ़े में हाथ डाल भीतर की वस्तु निकाली तो वह निकली 'नीरा की छवि'। वह बोल उठी, 'ओह, समझी!' और उस छवि को जरा सा देखकर, ज्यों का त्यों लिफ़ाफ़े में बन्द कर बगल की मेज़ पर डालकर चली गई।

"बुरा क्यों मानूंगा, कहो न।"

मैंने कह तो दिया, मगर मैं जानता था कि यह भूमिका बुरी है जहां किसी ने कहा, 'बुरा न मानो तो कहूँ,' कि मन बुरा मान जाने तथ न मानने का बहाना करने के लिये पूरी तरह तैयार हो जाता है। शायद न भी बुरा मानता पर कह दिए जाने के बाद तो वह सुभाव काम करता है।

"मैं समझती हूं तुम·········।" और एक बार फिर अटक गई

मैंने कहा, "जेन, तुम्हें वह एडिसन वाला मज़ाक याद है?"

फिर तो कुछ न पूछिए उसके चेहरे की शरम! हम दोनों हंस पड़े खूब हंसे। वातावरण स्वच्छ व आसान हो गया। बोली, "अब मैं तीस बार समझती हूं कि·········।"

मारे शरारत के हम दोनों फिर हंसने लगे। बात बीच ही में अटक रह गई। ज़रा शान्त होकर वह बोली, "तुम दो-चार दिन के लिए दि हो आओ।"

"क्यों?" मेरी भृकुटी तन गई।

"योंही।"

"योंही क्यों?"

"चाय पर बढ़ती ड्यूटी पर तुम्हें गवर्नमेंट से बातें नहीं करनी हैं।

मैं मुस्कराया। यह मात्र बहाना था। मैं बोला, "नहीं, जेन मुझे किसी से दिल्ली में बातें नहीं करनी हैं। आने-जाने में पैसे लग हैं। अभी आसाम गया था, अब दिल्ली चला जाऊं। तुम भी क कभी·········।"

"पूरे पागलपन की बातें करते हो, यही न? मैं पागलपन की बा नहीं करती, बिल्कुल ठीक कहती हूँ। तुम दिल्ली हो आओ।"

न जाने यह मानव-स्वभाव कैसा है! स्वयं तो मैं दिल्ली जाने लि तड़प रहा था, छटपटाता था, कोई बहाना ढूंढ रहा था, किन्तु जब स्व जेन ने वही बात कह दी तो मैंने उसे काट दिया, नाराज़ होने लगा, पृ

ताकत के साथ उस सुभाव का विरोध करने लगा। मैंने बड़े जोर के साथ कहा, "मैं दिल्ली जाने की कोई जरूरत नहीं समझता। मेरे पास ऐसे फालतू काम के लिए न तो समय है, न पैसा। तुम जाना चाहो तो कहो, भेज दूं।"

मैंने देखा, जैन के चेहरे का तनाव बढ़ गया, पर वह लगातार संयम से काम ले रही थी। उसने अपने मन, मस्तिष्क व जुबान तीनों पर लगाम लगा रखी थी।

जेन क्या सोचती होगी? यही न कि 'मैं तो तुम्हारे मन की कहती हूँ, कल से ही तड़प रहे हो, छटपटा रहे हो, अस्त-व्यस्त हो, उदास हो। उस छवि ने, नीरा की छवि ने तुम्हारी चैन हर ली है, तुम्हारी सुधि-बुधि हर ली है, तुम स्वयं दिल्ली जाने के बीस बहाने ढूंढ रहे हो, और मैंने कह दिया तो खट्टा लग गया? वाह री दुनिया, यहां तो होम करते हाथ जलते हैं! मैं क्या तुम्हारे मन को नहीं जानती? जो पास रहता है तुम उसकी परवाह नहीं करते, जो दूर रहता है उसके लिए तड़पते हो, छटपटाते हो। आज नीरा दूर है तो तुम उसके लिए तड़पते हो, कल मैं दूर हो जाऊंगी तो मेरे लिए तड़पोगे, छटपटाओगे, पछताओगे।

'मैं जानती हूँ, तुम जाओगे दिल्ली, जरूर जाओगे; पर इस दुविधा में थोड़ा और घुलोगे, मरोगे, छटपटाओगे, तब जाओगे; अन्त में, बिल्कुल अन्त में, जब कोई चारा न रहेगा, तब तुम जाओगे। या कोई पकड़कर तुम्हें लेकर चल दे तो जाओगे। ठीक है, योंही पड़े रहो। कुछ न होगा तो मैं तुम्हें लेकर दिल्ली चल दूंगी। कहूंगी, जीजी ने बुलाया है। मैं तुमको यों तड़पते नहीं देख सकती, नहीं देख सकती। तुमको नीरा से मिलने पर चैन मिलेगी। ठीक है, तुम्हारी चैन में मेरी चैन है। मैं तुम्हें ले चलूंगी। तुम्हारा मन मेरे प्रस्ताव से भीतर ही भीतर खुश हो रहा होगा; परन्तु पुरुष हो न, अभिमान झुकने नहीं देता, सो भी एक नारी के सुझाव के सामने!'

मैं यह सब बात की बात में सोच ले गया। ध्यान में आया कि,

अरे, यह सब तो मैं सोच रहा हूं जेन की ओर से। क्या पता, जेन ऐसा सोचती भी है या नहीं? या उसके ठीक उल्टा सोचती है। मेरा मन सोचता, 'मैं दिल्ली तो जाना चाहता हूँ, पर तुम यों मेरा परदा क्यों फ़ाश कर रही हो, सब तो मुझे थोड़े और परदे खींचकर डालने होंगे ताकि तुमको कुछ भी दिखाई न दे। मैं दिल्ली जाने की बात करता व तुम रोकती तब तो मेरी समझ में कुछ आता भी। मैं कुछ न कहूं व तुम ही दिल्ली जाने की बात करो, नोरा की छवि देखने के बाद, यह तो मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता, कुछ भी नहीं।' ना, ना, मुझे किसी का त्याग नहीं चाहिए, किसी का बलिदान नहीं चाहिए। मैं स्वयम् बलि हो जाऊंगा। दो बार मुल्क की आज़ादी के लिए गोली का सामना किया है, एक बार और सही, पर मुझे किसी की रियायत नहीं चाहिए। जेन मेरे साथ रियायत कर रही है। मैं ऐसी कृपा नहीं चाहता। मैं योंही तड़प तड़पकर मर जाऊंगा, नोरा········· मगर जेन के सुझाव पर मैं दिल्ली न जाऊंगा। हरगिज़ नहीं!

और कोई बातचीत इस विषय पर न हुई। हम दोनों एक दूसरे का मस्तिष्क व मन पढ़ने की चेष्टा करते रहे, फिर अपना समझने का प्रयत्न करते रहे। अन्त में उठ गए।

दिन को 'मिनिस्ट्री ऑफ़ फ़ाइनेन्स' का एक तार मिला जिसमें चाय-कमेटी की मीटिंग के लिए तीसरे दिन बुलाया गया था। दूसरे दिन मिनिस्ट्री का एक पत्र भी मिला उसी आशय का। नीचे दस्तख़त कृष्णवल्लभ सहाय के थे। जल्दी के लिए 'एयर' से आने का सुझाव था।

मुझे तो लगा, आकाश हीरे-मोती बरसाने लगा। मेरे भाग खुले। 'बुज़दिल' को बिना साहस किए वसुधा की सारी सम्पत्ति, सारा सुख, सारा सौंदर्य मिल गया। मैंने मन ही मन मुस्कराते हुए कहा, 'चलो, बिल्ली के भाग्य से छींका तो टूटा।'

जेन इस तार से बहुत प्रसन्न थी, परन्तु पत्र देखकर ज़रा मौन हो गई थी।

खुशी ज़ाहिर न होने देता था। बेचारे को व्यर्थ में डाट पड़ती।
ओर की घुर सुननी पड़ती।

वायुयान उड़ा। उड़ा उस नगरी को जहां मैं अपना सुख-चैन
आया था; उड़ा उस लोक को जो महीनों से स्वप्न बनकर कल्पन
ताने-बाने में बुना पड़ा था; उड़ा उस मंदिर को जो कैलाश से
मानसरोवर पर स्थित है, जिसमें हंस-वाहिनी का वास है। लगता था,
वायुयान इन्द्रलोक, वरुणलोक, यक्षलोक, किन्नर, गन्धर्व आदि ल
को होता हुआ चौदहों भुवन पार कर वहां पहुँचेगा, जहां फूलों की पंखु
से तन-मन निर्मित होते हैं, जहां हल्के-फुल्के पांव धरती पर नहीं प
जहां सब कुछ शुद्ध, शाश्वत, सुन्दर है। जहां सत्यं, शिवम्, सुन
की सजीव प्रतिमा आराध्य देवी के रूप में स्थित है तथा मुझ अकि
के लिए आकुल है।

मन ने दुहराया :

आखिर कब तक तरसाओगे मुझे?
निर्दयी कहीं के!
'ब्यूटी क्वीन', मेरे सपनों की रानी!
मेरे तन-मन की रानी!
मेरे प्राण की, प्यार की रानी!

अड़तीसवाँ परिच्छेद

कुम्हार और माटी

वैसे दिन तो भयानक गरमी के थे, मगर दिल्ली गत वर्षा की एक बौछार हो जाने से धूल बैठ गई थी। नई दिल्ली की सुनसान सड़कों के किनारे किनारे लगे हरे-भरे नीम व जामुन के वृक्षों की पत्तियों ने मुँह धो लिया था। एक निखार, एक ताज़गी, सारे वातावरण में, भीनी-भीनी सी, महकती सी लगती थी। सब कुछ उगता-उगता सा, चम-चम चमकता सा लगता था। वायुमण्डल में उल्लास था। आकाश में अभी भी श्वेत-श्याम बादल-खण्ड यहां वहां तैर रहे थे।

मैं 'प्लेन' से लगभग डेढ़ बजे उतरा। दृष्टि चारों ओर दौड़ाई। आँखें न जाने किस को खोज रही थीं।

बरामदे में बीजी खड़ी दिखाई दीं। मन खिल गया। बीजी—हां, बीजी और?......और क्या! मन किसे ढूंढ रहा है? वह सोने की सजीव प्रतिमा कहां है? कहां?

शायद न आई हो, शायद बीमार हो, शायद गरमी में झुलस जाने के भय से......शायद... ...क्या शायद!

इतने में मैं उल्लास के साथ बढ़ता हुआ बीजी के पास पहुँच गया। बीजी थीं कि बस मुस्कराए जा रही थीं। बीजी, बीजी, करता मैं बीजी से हाथ मिलाने लगा, फिर बीजी को बाहें बांह में भर लिया। बोल उठा, 'मेरी बीजी!'

"तुम तो बस सपना ही हो गए, भैया!"

"और तुम?"

"मैं तो अपने के ताने-बाने से बनी ही हूँ।"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। मैंने पूछा, "तुम अकेली आई हो?"

"हां, बाबू जी नहीं आ सके। तीन बजे से किसी अत्यन्त आवश्यक मीटिंग में भाग लेना है। उन्होंने कहा है कि कुमार से मेरी ओर से क्षमा माग लेना।"

"अच्छा, और सब तो कुशल से हैं?"

"हां, सब कुशल है।"

मेरी आखें अभी भी इधर-उधर ताक रही थीं। न जाने किस दरवाजे से, किस दीवार की ओट से, किस बदली को फाड़कर चाँद निकल आए। जब कहीं कुछ सुझाई, दिखाई नहीं दिया तो मैंने सामान संभलवाकर गाड़ी में रखवाया और मैं व जीजी गाड़ी में बैठकर चले।

हम दोनों चल रहे थे व मुस्करा रहे थे। पर मेरा मन था कि तड़प रहा था, आकुल था; किसी को आँखें खोज रही थीं और जीजी थीं कि मुस्कराए जा रही थीं।

फिर मैं साफ साफ पूछूं ही क्यों नहीं? यह लज्जा कैसी? यह संकोच कैसा? यह शरम क्यों? सो भी जीजी से। जैसी जीजी, तैसी नीरा। मेरा किसी से क्या अधिक या कम सम्बन्ध है? नीरा का नाम लेते इतनी झिझक क्यों?

इतने में मेरे झेंपू मन व तड़पते दिल की रक्षा के लिए जीजी बोल ही तो पड़ीं, "अरे, नीरा के बारे में तो तुमसे कहा ही नहीं।"

इतना सुनते ही मेरा कलेजा धक से होकर रह गया। 'कहा ही नहीं, क्या, जीजी?' मन ने भीतर ही भीतर कहा। ऊपर से मैं उन्मुख हो जीजी का मुख ताकने लगा। वे बोलती गई, "उस पगली से बहुत कहा, चल, पर वह बोली, 'मुझे शरम लगती है।'"

"शरम? मुझसे! भला क्यों?"

"पता नहीं," कहकर जीजी फिर मुस्कराईं।

यह पहेली मेरी समझ में तो कुछ आई नहीं। मगर मैंने सोचा, बच्चो, लगे हाथों दो-एक बात और पूछ लूं, नहीं तो दूसरा विषय छिड़ जाने पर फिर कुछ पूछते-पाछते न बनेगा। मैंने झट पूछा, "है तो कुशल से?"

"हां, हाँ बिल्कुल ठीक है।"

"यूनिवर्सिटी गई है या घर पर है?"

"यूनिवर्सिटी तो आजकल बन्द है, बंगले पर ही होगी। इतने उतावले क्यों हो रहे हो? अभी पहुचते हैं, जी भर के वहीं मिल लेना।"

अच्छा, तो ये हमारी जीजी हैं, बात बात में हँसी फूटती है, बहार बेर पर है, मुझसे भी इतनी चुहल।

मैंने सोचा, अब ज़रा जीजी को दाना चुगाऊं, बड़ी बहकी-बहकी बातें कर रही हैं। मैंने झट कहा, बात को मोड़ते हुए, "और सुरेन्द्र तो अच्छा है?"

"यह उन्हीं से पूछना।"

"तुम्हें कुछ पता नहीं, जीजी?"

"मैं क्या जानूं!"

"मगर तुम बहुत खुश नज़र आ रही हो, जीजी, क्या बात है?"

"तुम आए जो हो, अब भी न जी भर के खुश हो लूं!"

"एक बात और कहूं?"

"दो कहो, रोकता कौन है?"

"तुम पहले से बहुत खूबसूरत लगती हो, जीजी।"

"तुमको शैतानी सूझ रही है, भैया। यह निगाह तो किसी और के लिए सुरक्षित रखो।"

और जीजी मारे हंसी के लोट-पोट होने लगी। फिर उन्होंने ही पूछा, "हमारी जेन तो अच्छी है?"

"बिल्कुल अच्छी।"

"उसे नहीं लाए इस बार?"

"वह आई ही नहीं।"

"अच्छा किया। वह बड़ी समझदार है।"

"तुमसे भी बढ़कर ?"

"नहीं, मुझसे अधिक समझदार तो एक तुम्हीं पैदा हुए हो।" और हम दोनों फिर हंस पड़े।

थोड़ी ही देर में हम बंगले पर पहुंच गए। जीजी ने मेरा सामान अतिथिगृह में रखने का आदेश बैरे को दिया। मुझे अतिथिगृह की ले जाते हुए बोलीं, "भोजन करोगे या भूख मिट गई ?" वे फिर हंसीं।

मैंने कहा, "अभी नहीं मिटी, जीजी, बड़े जोर की भूख लगी है।"

"अच्छा, मुंह-हाथ धोओ तब तक मैं प्रबन्ध करती हूं।"

हम दोनों फिर ज़ोर से हंस पड़े। जीजी कमरे से चली गईं।

मुंह-हाथ धो, बाल, टाई वगैरह ठीक करके 'टॉयलेट' से निकला तो क्या देखता हूं कि कमरे में सोफ़े के सामने की मेज़ पर 'कोल्डड्रिंक' का सामान पड़ा है व नीरा महीन श्वेत साड़ी, श्वेत ब्लाउज, सादे चप्पल, आभूषणहीन, लहराते बिन बांधे केश लिए खड़ी है सोफ़े के पास। पीछे का दरवाज़ा बन्द था। मैं नीरा को देखते ही अवाक् रह गया। सब कुछ सोचा-समझा भूल गया। कल्पना हवा हो गई।

बस मुँह से निकला, *'नीरा!'..... रानी!'*

मंत्र-मुग्ध सा मैं लम्बी, स्वस्थ, मांसल भुजाएं फैलाए आगे बढ़ा। नीरा के चेहरे पर व्यग्रता, आतुरता, आनन्द की एक निराली रेखा खिंच गई। उसके होंठ कांपे पर आवाज़ न निकली। बाहें थीं कि दोनों ज़रा-सी उठकर, ज़रा-सी आगे बढ़कर रह गईं। वह हिली नहीं, यथा स्था खड़ी रही।

इतने में मैं दो-चार कदम पार कर उसके पास पहुँच गया। मुँह से निकला, "नीरा!"

"कुमार!"

और वह मेरी बांहों में थर-थर कांप रही थी। यह भुजपाश धीरे-धी

कसता जा रहा था, कसता जा रहा था। उसने भी तो लम्बी, गोरी, सुडौल बाहें उचककर मेरे गले में डाल दी थीं। हृदय ये जो जोर जोर से धड़क रहे थे, एक दूसरे की धड़कन सुनते थे, एक दूसरे को शान्त होने को कहते थे, पर शान्त न होते थे।

कुछ देर यों ही आलिङ्गन-बद्ध रहे। कितना सुख था, कितनी शान्ति थी, आनन्द रग-रग से बिखर रहा था, कितने कठोर विछुड़न के बाद यह मिलन की वेला आई थी।

नीरा ने अपना सिर मेरे वक्ष में छिपा लिया था। उसने जब जरा-सा सिर उठाया तो उसकी अनुपम छवि देखते ही मुझे याद आया वह वर्णन जो उसने स्वयं अपना दिया था। मुँह से निकल पड़ा :

'ब्यूटी-क्वीन ! मिस १६५५ !'

और अधरों से अधर मिले। अमृत-पान आरम्भ हुआ। चलता रहा, चलता रहा। समय की गति भूल गई। आखिरकार शिथिल हो सोफे पर दो किनारे दोनों पड़े रहे। मौन, तृप्त-अतृप्त!

क्या बातें की जायं ? कुछ सूझता नहीं था। बातें करने को मन भी नहीं करता था, जैसे होठों की, कण्ठ की, दिल की हरकतें बन्द हो गई हों। जी में यही आता था कि वह यों ही सामने बैठी रहे व मैं उसे देखता रहूँ।

बातें भी करूं तो क्या ? जब अंग-प्रत्यंग, रोम-रोम एक दूसरे से अपनी-अपनी कहानी कह रहे हों, तो मुख से क्या कहना।

मेरी आंखें निरन्तर नीरा के मुख पर जमी थीं। नीरा ने अपनी आंखें नीचे झुका लीं। दो-एक बार उठाईं भी तो मुझे यों ही एकटक ताकते देख फिर पलकें नीचे कर लीं। अन्त में वही बोली, "क्या देखते हो ?"

"हंस-वाहिनी को।"

वह मुस्कराई। धीरे से बोली, "प्यास मिटी नहीं ?"

"यह प्यास कभी मिटने वाली है, रानी ?"

"यह टहा 'स्करैश' लो, मिट जायगी।"

हम दोनों मुस्करा पड़े। उसने दो गिलासों में 'स्करैश' व 'फिज' का

ठंडा पानी भरा। मेरी ओर एक गिलास बढ़ाने जा ही रही थी कि जीजी आ धमकीं। आते ही बोलीं, "क्यों, भैया, कुछ भूख-प्यास मिटी या नहीं?"

जीजी तो, बस, पागल हो रही हैं। इसे कहते हैं बहार का आना बहार का छा जाना। नीरा ने पलकें बंद कर लीं। मैंने कहा, "मिटती क्या, जीजी, खाने को तो तुमने कुछ भेजा नहीं, पेय तुम्हारा अभी सामने रखा है।"

हम तीनों एक साथ ही हंस पड़े, पर क्यों?

जीजी बोलीं, "मगर अभी तक करते क्या थे?"

"तुम्हारा इन्तजार!"

हम फिर हंसे। जीजी गहरे में थीं, मगर कटकर रह गईं। बोलीं, "खाने को न था कुछ, पीने को तो भेज दिया था, मगर तुम हो पूरे······।"

"बुद्धू!" नीरा के बोल फूटे।

वह ज़ोर की हंसी छूटी कि, बस, हम तीनों लोट-पोट होने लगे। जीजी ही बोलीं, "भर एक गिलास और, रानी, लाओ शुरू करें।"

तीनों ने एक एक गिलास लिया, 'चीयर्स' के साथ आरम्भ हुआ अब बातें भी आरम्भ हो गईं। मैंने बड़े ही साधारण ढंग से शुरू किया "तार तो मेरा मिल गया था? कब मिला?"

जीजी बोलीं, "कल रात को करीब नौ बजे। मिलते ही बाबू जी ने कहा कि, जरा होटल में भी पता कर लेना। वहां कोई तार दिया हो तो 'रिजर्वेशन' खतम कर देना फोन से।"

"अच्छा, इतना 'प्लान' कर लिया?"

"और अपनी जीजी को समझते क्या हो? फ़ोन मैंने आज सवेरे किया होटल इम्पीरियल, और तुम्हारी 'रिज़र्वेशन' खतम कराई।"

"तो उधर का पत्ता पहले से ही काट रखा है?"

"और क्या? सोचा, जब मीटिंग यहां होनी है तो होटल में ठहरने से लाभ?"

जीजी ने मीटिंग पर जोर दिया। मैंने पूछा, "मीटिंग यहां होनी है, क्या मतलब ?"

"तुम......प्यार अभी नहीं जानते ?" नीरा ने कहा।

जीजी एकाएक हंस पड़ीं। बोलीं, "कह-कह, पगली, 'तुम' कह, अब क्या 'प्यार-प्यार' की रट लगाए है ? शरमाने की क्या बात है ?"

"देखो, जीजी, मुझे तंग करोगी तो मैं उठकर चली जाऊंगी ?"

"चली कैसे जायगी ? गोद तो यहां पड़ी है ?"

मैंने कुछ समझा हो नहीं, वे दोनों क्या बातें करती आ रही हैं। अवाक् दोनों का मुंह ताक रहा था और वे थीं कि एक दूसरे की ओर ताककर हंसतीं व शरमातीं और फिर भी हंसे जातीं। मैंने पूछा, "आखिर मामला क्या है ?"

"मामला बहुत बड़ा है, तभी तो तुमको बुलाया है। जीजी ने कुछ बताया नहीं ?"

"नहीं तो। 'मीटिंग यहां' 'मामला बड़ा' मुझे यह सब गड़बड़ लगता है।"

"विशेष गड़बड़ है, कुमार !"

हम तीनों हंस पड़े। वही फिर बोली, "मामला यों है कि हमारी ११०८ श्री श्री श्री मीरादेवी जी की मंगनी महान् कलाकार श्री श्री श्री सुरेन्द्र जी से परसों होने वाली है।"

"ओह, समझा ! तभी जीजी......।"

"नहीं, भैया, यह बिल्कुल झूठ बोलती है। सरासर झूठ।"

इतना कहकर जीजी उठकर जाने लगीं। मैंने कहा, "नहीं, जीजी, तुम रुको, अभी जा नहीं सकतीं।"

मैंने जीजी की बांह पकड़कर बैठाया और कहा, "जीजी, बधाई ! हार्दिक बधाई!"

वे बोलीं, "मुझे देखने तो दो 'लंच' अभी लगा या नहीं। मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं, और तुम दोनों ......।"

"नहीं, कुमार, जीजी भागने का बहाना बना रही हैं।"

"अब समझा, क्यों कदम-कदम पर जीजी की हंसी छूटती है।"

"और, जीजी के हंसने में फूल बरसते हैं।"

"तुम दोनों मिलकर मुझे परेशान न करो, नहीं तो मैं मीटिंग राज़ खोल दूंगी।"

"तू खोलेगी, जीजी ? ज़रा खोल तो।"

इतना कहकर नीरा ने पकड़ा जीजी को, और लगी उसे छेड़ने, गु गुदाने, परेशान करने। दोनों मारे हंसी के लोट-पोट हो रही थीं। अन्त जीजी ने कहा, "देखते हो, भैया, यह मानती नहीं, मुझे छुड़वा दो।"

"'मुझे छुड़वा दो।' और कलाकार छेड़ेगा तो किस से कहोग मुझे छुड़वा दो ?"

मैं हंस पड़ा, परन्तु चकित था, यह सारा मामला क्या है। मैंने का "अच्छा, अब छोड़ दो, नीरा ! जीजी को बहुत तंग न करो।"

"बड़ा दर्द लगता है अपनी जीजी का, इतना कभी मेरे···" का कहते नीरा ने जीजी को छोड़ दिया।

जीजी ने तुरन्त अस्त-व्यस्त कपड़े ठीक कर कहा, "अच्छा, मैं च करा; तुम दोनों 'लंच' की घण्टी पर आजाना, देर न लगाना।" और जी अर्थपूर्ण हंसी और मुस्कराती हुई चली गई।

अकेले होते ही मैंने कहा, "तुम जीजी को बहुत परेशान करती हो

"मैं परेशान करती हूं ? बड़े आए जीजी वाले। जीजी का ग चुलबुलाता है। वह चाहती है, कोई उसे परेशान करे। तीन महीने जीजी होश में नहीं हैं।"

"तो क्या यह मंगनी वाली बात सच है ?"

"और क्या ? तभी तो बाबू जी ने तुमको बुलाया है।"

"फिर यह मिनिस्ट्री की मीटिङ्ग वाली बात ?"

"बिल्कुल गलत ! जीजी ने बताया नहीं ?"

"नहीं तो।"

होने लगे, या बहुत घबरा गई तो क्या होगा ? बड़ी भद्द होती !"

मैंने उसकी आंखों में आंखें डालकर देखा और उसके कथन की गहराई का भान तुरन्त हो गया।

"अच्छा किया, मुझे थोड़ी देर और तड़पना पड़ा।"

"इन्तजार का मजा तो मिला !"

हम दोनों मुस्करा पड़े, व अपनी अपनी सीट पर जम गए। मेरे बाएं नीरा व दाहिने मीरा थी।

बातों बातों में भोजन कब समाप्त हो गया, कुछ पता न चला। अब लगभग तीन बज चले थे, इसलिए पांच बजे चाय पर मिलने की बात पक्की करके हम तीनों अपने अपने कमरों में विश्राम के लिए चले गये।

मुझे कुछ थकावट का भान हुआ; फिर 'प्लेन' पकड़ने के लिए काफी सवेरे उठा था, तन-मन पर एक सुखकारी शिथिलता छाई थी, इसलिए पलंग पर जाते ही नींद आगई। पांच मिनट के भीतर ही मैं गहरी नींद में विलीन हो गया।

जब आंख खुली तो क्या देखता हूं कि घड़ी में पौने पांच बजे हैं और मेरे पलंग से लगी आराम-कुर्सी पर नीरा पड़ी-पड़ी सो गई है। और तो और, मेरे दोनों पावों को दोनों भुजाओं में समेटकर, चरण पर सिर रखकर सोई है। मैं देखते ही अवाक् रह गया।

यह कब आई ? कब से यों सोई पड़ी है ? बीच में कोई आया तो नहीं ? यदि कोई देखे तो क्या कहेगा ? इस प्रकार के न जाने कितने प्रश्न एक साथ ही मन में उठे। सोचा, जगा दूं। स्वस्थ हो ठीक से बैठ जाय तो कुछ बातें करें। जगाने की सोच ही रहा था कि मेरे सहज लालची मन ने बहकाया, 'क्या जल्दी पड़ी है, जगाने की? कुछ तो तरस खाओ! जानते हो, कितने दिनों बाद, कितनी रातों बाद इतनी गहरी, इतनी सुन्दर, इतनी सुखकर नींद आई है ? तुम कितने निर्दयी हो जो जगाने की सोच रहे हो ? टुक क्षण भर तो सुख से सो लेने दो।'

मैंने कहा, कहा तो क्या मन को समझाया, 'तू समझता नहीं, अपनी

ही डर के मारा है, अभी-अभी कोई आ जाए तो क्या हो ! कोई देखेगा तो क्या सोचेगा ! क्या सोचेगा नीरा के बारे में, क्या सोचेगा मेरे बारे में ! पांच बजने में दस मिनट हैं, अभी बीबी आती होंगी । ना, ना, यह नहीं चलने का । मैं अभी जगाता हूं ।'

मन ने कहा, 'जगा लो, जगा लो, मैं नहीं रोकता, बुजदिल तो तुम हो ही, हर किसी से हर बात से डरते हो । मगर मैं कहता हूं, जगाने से पहले एक निगाह से देख तो लो उस सौंदर्य की प्रतिमा को । इतना सुन्दर मुख, ये बड़ी बड़ी आंखें, पलक बन्द होने पर कैसी लुभावनी लगती हैं, ये कपोल चिकने, सुडौल तुम्हारे चरणों पर लोट रहे हैं । दाहिनी आंख अंगूठा चूम रही है; केश हैं कि पलंग पर बिखर पड़े हैं; कितने आराम से लोट आई है; वक्ष कितने समगति के साथ उठते व गिरते हैं; बिना लिपस्टिक के ही लाल-लाल अधर तुम्हारे चरण चूमते हैं । काश, मैं कलाकार होता, कितनी सुन्दर छवि उतारता ! इस अमर क्षण की झांकी तो उतार लेने दो, तुम भी भर आंख इस रूप-राशि को देख तो लो, जरा पुतलियों को छककर पी लेने तो दो, मुझे भी एकाध बूंद तो ले लेने दो, फिर जगा देना ।'

मैं एकटक उस नैसर्गिक सौंदर्य को निहारता रहा व अकर्मण्य सा पड़ा रहा । मुझे लगा, मेरा मन ठीक ही तो कहता है । वैसे मेरी शिक्षा-दीक्षा ऐसी हुई है जिसमें बताया गया है कि कि मन सदा लालची व निम्न-गामी होता है, उसका कहना कभी न मानना चाहिये, सदा उसे कुचलना चाहिए, उस पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । इसलिए मैं सदा मन के विरुद्ध चलता हूं, भुगतता हूँ, तड़पता हूं और विजय-गर्व से छाती फूल उठती है ।

आज पहली बार लगा कि कभी-कभी मन ठीक बात भी कहता है । कभी-कभी उसकी बात भी माननी चाहिये । और मुझे एकाएक भान हुआ जैसे सारे विश्व की सुख-सम्पत्ति, सारे लोकों का सौंदर्य मेरे चरणों पर लोट रहा है । स्वयं हंस-वाहिनी, वीणापाणि सरस्वती अपने अतुल सौंदर्य,

अतुल प्रतिभा एवं अपूर्व स्नेह के साथ मेरे चरणों में लोट रही है। ध्यान आया, वह सौंदर्य जिस पर विधाता स्वयं मुग्ध थे, सिरजनहार। क्षण भर को मुझे लगा, मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली इस धरती पर अब कोई नहीं। एक बार तो मन में आया कि इस छवि को छककर पी लूं और फिर सदा के लिए आखें मूंद लूं, ताकि और कोई छवि उस मानस-पट पर खिंचे नहीं।

एक बार आभास हुआ कि मेरा पलंग उड़नखटोले-सा ऊपर उठा आकाश में, पुष्पक विमान-सा उड़ चला। चांदनी रात है, (कमरे में दूधिये रंग के 'ट्यूब' का प्रकाश बिखरा था, मन्द-मन्द) हिमालय के धवल शिखरों पर से होता हुआ मेरा पलंग उड़ता जा रहा है। चांद अमृत वर्षा कर रहा है, मैं यों ही अधलेटा पड़ा हूं, इस मंजुश्री का नत-मस्तक चरणों पर लोट रहा है प्रगाढ़ निद्रा में। धवल श्वेत चोटियां दूध में अमृत-स्नान कर रही हैं, पूर्णिमा की रात है, देव देवांगनाएं चांदनी में नाना प्रकार की क्रीड़ा को निकली हैं। वे सभी चकित हो मुझे देखते हैं, मेरे पलंग को, मेरी नीरा को, ललचाई आंखों से। मैं सब की ईर्षा का पात्र बना, फूला नहीं समाता। फिर लगा, जैसे मैं ही चतुर्भुज विष्णु होऊं, चरणों में इन्दिरा लोट रही हों, श्वेत प्रकाश क्षीर सागर की लहरें हों और पलंग का पीठ-पीछे फूल कढ़ा उठा हुआ भाग शेषनाग के सहस्रफन।

यह सब कुछ क्षण-भर में हृदय-पटल पर लहरों सा उठा व मिट गया। हाय रे मानव मन की कल्पना ! तू कितनी सुन्दर है ! कितनी अस्थिर और कितनी क्षण-भंगुर !

इतने में कमरे का दरवाजा बहुत आहिस्ते से खुला। मैं देवलोक से उतरकर धरती पर आया। बीजी दबे पावों कमरे में पधारीं। आते आते दरवाजा पूर्ववत् बन्द करती आईं।

जब वे आ ही गईं तो अब क्या होता ? मैंने भीतर ही भीतर लालची मन को झिड़की दी, जिसका कहना मानते ही मुझे इस नाजुक स्थिति का

सामना करना पड़ा। जीजी ने यह दृश्य देखा व मुस्करा पड़ीं। मैं भी मुस्कराया। वे चुपचाप एक कुर्सी लेकर मेरे सिरहाने के पास बैठ गईं ताकि बातें बहुत धीरे धीरे हो सकें।

जीजी ने आरम्भ किया, बोलीं, "यह पगली यहां आकर सो गई?"

"हां, मगर यह कब से आई है?"

"यही पन्द्रह-बीस मिनट हुए होंगे।"

"तो क्या यह सोई नहीं थी?"

"नहीं तो, हम दोनों साढ़े चार बजे तक तो बातें करती रहीं। फिर मैंने कहा कि जाकर देख आ, तुम जाग चुके हो तो थोड़ा-सा शरबत भेजूं, और यह यहां आकर सो रही।"

"फिर जगा दूं। यों सोना अच्छा नहीं लगता।"

"अच्छा क्यों नहीं लगता? सोने दो न। जबसे तुम गए, इन छः महीनों में यह सोई कहां है?"

मैंने देखा जीजी मुस्करा रही हैं। मैंने कहा, "तो क्या नींद यों ही आनी थी?"

"जानते हो, नीरा बराबर कहती थी, 'मेरे जी में आता है कि इस बार मिलें तो उनके चरणों पर सिर रखकर सदा के लिए सो जाऊं।'"

लगा, जैसे मेरे कलेजे से एक नोकीला तीर पार हो गया। एक धक्का सा लगा दिल को, और मैं सहमकर रह गया।

कैसी अनोखी थी यह कल्पना!

मैंने कहा, "मगर मैं तो नहीं चाहता, जीजी, कि इस प्रकार कोई सदा के लिए सो जाय। शायद तुम भी नहीं चाहतीं।"

हम दोनों ईषत् मुस्कराए। जीजी बोलीं, "सदा के लिए न सही, क्षण भर के लिए तो सो लेने दो। तुम्हारे जाने के बाद से यह कितना रोई है, कितना रोई है, तुम क्या जानो। कभी-कभी तुम पर इतना गुस्सा आता था कि क्या कहूं। न जाने तुम क्यों किसी को इतना प्यार करते हो?"

"कहां, जीजी, मैं तो कुछ भी नहीं करता। प्यार का भला क्या प्रमाण है? व्यवहार में एक कौड़ी का देना नहीं, बिना काम के आता-जाता नहीं, मिलता-जुलता नहीं। फिर वह प्यार बसता कहां है, जिसके खिलाफ़ तुम्हारी इतनी शिकायत है?"

"तुम जानकर भी अनजान क्यों बनते हो, भैया। प्यार हीरे-मोती के उपहारों में नहीं बसता, आने-जाने, मिलने-जुलने में नहीं बसता, वह तो आंखों की राह होकर दिल में जा बैठता है; एक बार घर कर लेने पर फिर तो निकाले नहीं निकलता। कांटा बनकर खटकता रहता है, तड़पा-तड़पा कर जान मारता है।"

"तुम तो प्रेम-शास्त्र की बड़ी पंडिता हो गई हो, जीजी," मैंने मुस्करा-कर कहा।

"पंडिता तुम जिसे न बना दो। मेरी फूल-सी सुकुमार बहन को तो तुमने तड़पा-तड़पाकर मार डाला और कहने चले हो बड़ी पंडिता हो गई।"

मैं भला क्या जवाब देता? चुपचाप सुनता रहा। जीजी कहती गई; "तुम्हें क्या पता, तुम्हारे जाने के बाद वह रोज ही मेरे सामने रो-रो पड़ती, नन्हीं सी बच्ची जैसी। जिसे सदा अकड़ने की आदत थी, उसकी नत पलकें देख मेरा कलेजा टूक-टूक हो जाता। रोज डाक की राह देखती। जब तुम्हारा खत न आता तो आंसू टपने लगते। मैंने भी तुम्हें कितने खत लिखे, तुमने एक का भी जवाब न दिया, फिर मैंने जेन को खत लिखा। उसके पत्रों से पता चला कि तुम स्वयं बुरी तरह बीमार हो व तड़प रहे हो।

"फिर तो उसका और भी बुरा हाल हो गया। कहती, 'कोई मेरे प्राण ले ले, जीजी, पर मेरे कुमार को न तड़पाए।' रोज पत्र लिखती व बिना भेजे रख देती। बोलती, 'मैं उनको कैसे खत भेजूं? वे मुझ पर गुस्सा जो हैं, खत देखते ही और गुस्सा हो जायेंगे।' एक रात को नौ बजे के बाद उसे बड़े ठाठ से 'डिनर-सूट' पहनते देख मैं चकित रह गई। हीरे के कुण्डल भी उसने डाले और ऐसी सजने लगी जैसे इन्द्राणी हो

वह भी मुस्कराने लगी। मैं 'ड्रेसिंग रूम' में चला गया व झट से कपड़े बदल, बाल ठीक कर आ गया। मैंने कहा, "तुम चलो, मैं अभी आया।"

"क्यों, कुछ और काम है?"

"और काम? नहीं तो!"

"फिर? साथ चलते डरते हो कि कहीं बांध न लूं!"

मैं अवाक् उसका मुँह ताकने लगा। फिर अल्मारी से रूमाल निकालने लगा। तब तक नीरा ने आहिस्ते-आहिस्ते कहा:

'मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी।
बांध न लूंगी तुम्हें, तजो भय भारी॥'

हम दोनों साथ-साथ चल दिये। चाय के लिए 'ड्राइङ्ग रूम' में मि० सहाय व मीरा इन्तजार कर रहे थे। वहां जाते ही मैं मि० सहाय से तपाक से मिला। चाय पर यों ही साधारण सी बातें होती रहीं। वातावरण में उल्लास न था। एक विचित्र मुर्दनी सी छाई थी। चाय समाप्त होते ही मैं उठ पड़ा। बाहर देखा, खूबसूरत चाँदनी बिखरी पड़ी है, सो भी रात की एक वर्षा के बाद की चाँदनी, धुले आकाश व धुली धरती की छाती पर।

मैंने कहा, "मि० सहाय, मैं जरा टहलने जा रहा हूँ।"

"तो गाड़ी ले लो।"

है [illegible]
पिता जी से अकड़कर कह रही है। इतना बड़ा परिवर्तन ! क्य
नीरा अथाह समुद्र सी लगी, जिसकी गहराइयों का कोई पार न
लहरों पर चाहे जितना तैर ले। वह पहले तो दृढ़ होकर खड़ी मे
ताकती रही, परन्तु जब मैं चल पड़ा तो वह भी साथ हो ली।

चांदनी दूध सी, अमृत सी बरस रही थी। पेड़ों की डालियों, प
छन-छनकर हम दोनों पर पड़ रही थी व हम चुपचाप चले जा
धीरे-धीरे, मन्थर गति से। नीरा मेरे लिए पहेली होती जा रही थी
क्या सोच रही है, कैसे बरत रही है, मैं कुछ न समझ पा रहा था।

चलते चलते हम दोनों राजपथ पर आए। सामने विस्तृत व वि
इण्डिया गेट (वार मेमोरियल आर्च), दाएं-बाएं घास के सुन्दर लॉन,
पार लहराते जल की नहरें जो इस समय शान्त व स्थिर थीं। चांद 'गे
भीतर से झांक रहा था। हम लॉन पर टहलते हुए नहर के उस वि
आए जहां किसी पुराने खण्डहर के भग्नावशेष पड़े हैं। वहीं जल के
पत्थर की चिकनी शिला पर हम दोनों बैठ गए।

कुछ देर तक यों ही चुपचाप बैठे-बैठे चांद को देखते रहे। मैं
को भूल नीरा की ही बात सोचने लगा। नीरा क्या सोचती है?

कुछ बात तो करनी चाहिए, क्या बातें करूं? इसी उधेड़-बुन में था
नीरा बोली, "कुमार, तुम मेरी बातों की चिन्ता कर दो। मेरी सुख-सुवि
की चिन्ता में उसे केवल मैं दिखाई दी, तुम्हारा पक्ष न तो उसने

समझ पाता।"

"तुम्हें, मैं समझती हूं, कुमार, तुम्हारी यती। मैं तुम्हें ठीक-ठीक समझती हूँ, सो भी आज से नहीं, जिस दिन तुम पहली बार स्टेशन के प्लेटफार्म पर मिले थे उसी दिन से, बल्कि उससे भी पहले से जब तुम्हें देखा न था। युग-युग से, जन्म-जन्म से मैं तुम्हें जानती हूँ, पहचानती हूं। मेरी-तुम्हारी पहचान इस जन्म की नहीं, कुमार, सनातन है; राधा-कृष्ण हमीं-तुम थे और कोई नहीं।"

मैंने चन्द्रमा के धवल प्रकाश में उस प्रदीप्त मुख को देखा जो नैसर्गिक आभा से उदीयमान हो रहा था। मुझे लगा, चाहे मैं अकिंचन कृष्ण भले न होऊं, नीरा तो 'राधा' अवश्य थी। मैं टक-टक उसका मुंह ताकता रहा, टोका नहीं, छेड़ा नहीं। वह कहती गई :

"तुम तो जानते हो, राजा कृष्ण की आठ पटरानियां थीं, परन्तु योगीराज कृष्ण की केवल एक राधा थी और वही केवल कृष्ण को जानती-पहचानती थी। उसी के बोल योगीराज के मुंह से निकलकर 'गीतामृत' बन गए।"

मैं चुपचाप सुन रहा था। सुधाकर सुधा बरसा रहा था। हंस-वाहिनी अपने प्रेम व ज्ञान की वर्षा से मुझे सराबोर कर रही थी। मेरा रोम-रोम 'नीरा-नीरा' कर रहा था और मैं अबोध बालक सा उसका मुंह ताक रहा था। वह रुकी नहीं, बोलती गई :

चरण पकड़ लिए। नीरा ने भर दोनों हाथों को अपने ... कर अपने कपोलों को स्पर्श किया, फिर आँखों को, फिर ... बोली, "अब तुम बराबर मेरे आँचल की छाया में रहोगे, ... मेरी रक्षा की आवश्यकता है, वह अब बराबर मिलेगी।"

"मेरी रानी, मेरी नीरा," कहते हुए मैंने उसके हाथ चूम ... उसने मेरा हाथ छोड़ा नहीं।

हाथ में हाथ लिए हुए बोली, "मेरा स्थान तो तुम्हारे ... पहली भेंट में ही बन चुका था, मैं इसे जानती थी। इन ... मैं अपनी व्यथा से नहीं, तुम्हारी 'तड़पन' की बात सोच सोच ... रही हूँ। मगर अब से तुम मेरे आँचल की छाया में रहोगे ... जानती थी कि तुम इतने भोले, बेबस, निरीह बालक हो। ... संवारूंगी व तुम्हारी रक्षा भी करूंगी।"

"मेरे कुम्हार, तुम्हारे जो जी में आए गढ़ो, यह मिट्टी ... है। आज से तुम कुम्हार, मैं माटी।"

उस गीले वातावरण में भी हम दोनों मुस्कराकर रह गए। ... चाँद व तारों के साक्षीपन में, नहर की लहरों के उन्मुक्त ... पाणि-ग्रहण किया। यह कैसा उलटा हिसाब था, लड़की लड़के ... पकड़े। परन्तु हुआ ऐसा ही।

रात्रि के भोजन का समय हो चला था, अतः हम दोनों ... धीरे, खोये-खोये से चल पड़े।

कुछ न चलेगा। मैं यह पहेली चलने न दूंगा। कल ही सब कुछ स्पष्ट कर दूंगा।

इस घर में न जाने कैसा माया-चक्र है, जो आते ही मति मारी जाती है। आरम्भ से ही 'प्यार' के नाम पर एक षड्यंत्र यहां चल रहा है। बिना मीटिंग के मुझे मिनिस्ट्री के तार से बुलाना—अधिकारों का कितना बड़ा दुरुपयोग मि. सहाय ने किया है। वे भी क्या हैं? जीजी के हाथ की कठपुतली! जीजी यों इतनी सीधी दीखती हैं, मगर हैं पूरी काइयां। उन्होंने होटल में 'रिजर्वेशन' मेरा पहले रद्द करा दिया। मिलने 'एयरपोर्ट' पर अकेले गईं। डरती होंगी, नीरा बना-बनाया खेल चौपट न कर दे। नीरा ने क्या कहा था? 'वैसे मैंने कहा था कि सारी बातें साफ-साफ लिख दो।' ठीक कहा उसने, मगर इस जीजी ने सब कुछ रहस्य की गठरी में बांधकर छिपा रखा।

क्या पता दिन को इस प्रकार नीरा को भेजना भी उसकी योजना में ही हो। नीरा का तुरंत सो जाना, फिर जीजी का विषय छेड़ना, सब कुछ इतना नपा-तुला, जोड़ा-जुड़ाया लगता है जैसे शतरंज का खेल हो। कहने से पहले कितना आर्द्र व भावुक वातावरण जीजी ने पैदा किया, मैं तो हैरान रह गया।

इस प्रकार जब मस्तिष्क अपना ताना-बाना बुन रहा था, हृदय बराबर

मांगी ना, नीरा 'एयरपोर्ट' पर मिलती तो क्या तुम अपना हो
ठीक रख सकते थे ? तुम्हें अपने ऊपर इतना भरोसा था ? दोनों,
दो मेरे प्रश्नों का।

'जोजो ने तुमसे कहने के लिए सोचा होगा, यह बात सही है।
तुम्हारे व नीरा के प्रेम व रुझान को जानती है, जेन के पत्र
को 'तड़पन' भी बनाती रही है, फिर पूछने में कोई हर्ज तो था नहीं
गलती नहीं थी। मगर तुम्हारा यह सोचना कि जोजी ने नीरा को
लिए भेजा था, नीरा इसीलिए सो गई व ऐन मौके पर जाग गई,
ने आर्द्र वातावरण तैयार कर बात छेड़ी, यह सब तो परले दर
'हीनता' है। बुद्धि के विकास से सकीर्णता ही तो प्रश्रय पाती है,
तो कभी इतने 'बुद्धिमान्' न थे।

'और सब की बात छोड़ो, तुम्हें अपनी 'नीरा' पर भरोसा नहीं,
प्रेम की सजीव प्रतिमा, तुम्हारी हंस-वाहिनी, तुम्हारी अपनी 'पत्नी',
क्या कहा :

'मैं बांध न लूंगी तुम्हें, तजो भय भारी !

'क्या तुम्हें इतना आश्वासन काफ़ी नहीं लगता ? जिस कठोरत
साथ उसने जोजी को 'बाहर जाओ' कहा; जिस महानता के साथ उ
तुम्हें डैडी के पास जाने से पहले आश्वासन दिया; जिस दृढ़ता के
वह तुम्हारे साथ निःसंकोच सब के सामने घूमने गई, और जिस म
प्रेम की छाया तले उसने तुम्हें अपने 'आंचल की छाया' प्रदान की,
को 'माटी' मान, स्वयं 'कुम्हार' बनी, क्या वह सब इस बात का साक्षी न

दृढ़ हाथों में तुमने अपनी जीवन-डोर सौंपी है। सारथी पर भरोसा रखो, सब ठीक होगा। जैन की भी रक्षा होगी, प्यार की भी।

'तुम भूल गए, जब तुमने पूछा इस पहेली के बारे में तो नीरा ने क्या कहा? 'माटी को कुम्हार पर भरोसा रखना चाहिए, विश्वास की नाव पार लगती है।' तुम्हीं तो कहते हो, नीरा सरस्वती का अवतार है, फिर अपने को सरस्वती के हाथों में क्यों नहीं छोड़ देते, सरस्वती ने स्वयं तुम्हारा भार वहन करने का वचन जो दिया है।'

यों ही उधेड़-बुन चलती रही मन में, मस्तिष्क में। एक द्वन्द्व, एक महाभारत मेरे अन्तर में चल रहा था। कभी कभी लगता, सब कुछ ठीक है, इसी पथ में सब का कल्याण है। नीरा स्वयं 'कल्याणी' है, उसके हाथ में पड़े रहने में ही सब का भला है। और कभी लगता, मैं इन लड़कियों की बातों में आकर पुरुष की बुद्धि व क्षमता की सहज श्रेष्ठता का अपमान कर रहा हूँ। मुझे अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए व भावुकता को कर्तव्य-क्षेत्र से बिल्कुल निकाल बाहर करना चाहिए।

इसी कशमकश की स्थिति में पड़े-पड़े तीन चौथाई रात गुज़र गई। चाँद अब पूर्व के बदले पश्चिम से अमृत-वर्षा करने लगा, परन्तु मेरी तपन, मेरी उलझन का कोई आदि-अन्त हो तब तो!

रात्रि के पिछले पहरों में ठंडी हवा का झोंका लगा और मुझे नींद आ गई।

'विल' ही मिली है, न नीरा ही!"

"दोनों आपके दोनों पाव चूम रही हैं। मरज़ी आपकी, आ उठाएं, न उठाएं।" फिर रुककर बोला, "आप बड़े आदमी है भाई साहब, फिर 'महान' भी। यदि कभी न उठाने का मन करे तो, व से कम, इस गरीब का तो खयाल रखियेगा।"

मुझे बातचीत का यह तरीका बड़ा ओछा लगा, चाहे इसमें मज़ जितना भी हो। मैंने तुरंत उसकी पीठ ठोकते हुए कहा, "अच्छ अच्छा, मैं जरूर खयाल रखूंगा। दोनों में से कोई एक तो तुम्हें दूंगा मगर अभी जाओ, तुम जरा जीजी से मिल आओ, तब तक मैं नहा-धो तैयार हो जाऊं।"

और इस प्रकार उसे टालकर मैं नहाने-धोने में लग गया। न समय मैं इस 'विल' की बात पर और भी हैरान था। इसे किस ने बत जीजी ने? यह कैसी निराली बात है, नीरा से मेरी 'हां' की बात, अर लाख के 'विल' की बात; सब का सम्बन्ध मुझसे है, मैं एक भी जानता और बातें एक मुंह से दूसरे मुंह 'पक्के सत्य' की तरह फैल रही नीरा कैसी पहेली बुझा रही है मुझसे!

धीरे धीरे मैं विवाह पर ही सोचने लगा। मानव ने यह कैसा र लगा रखा है, एक के लिए केवल एक। यों देखने में तो यह ठीक र है व सुन्दर भी, मगर जब दिल दो जगह बंधा हो तो! यह वित्र क्यों? ईश्वर ने तो इसे बनाया नहीं, प्रकृति इसका इन्तजार करत

समान मौका पाते ही दो दिलों में प्यार की बेल बढ़ा देता है, उनका विवाह हो या न हो, मानव का कानून उसको स्वीकृति दे या न
यदि विवाह का बखेड़ा न होता तो प्रश्न 'कौन एक ?' का तो न उठता। जिसको जितना प्यार करते हैं किए जाते, एक के नु का स्वाभाविक अर्थ दूसरे का 'त्याग' तो न होता। विवाह न होता शायद तलाक भी न होता।

कितने मज़े से हम रहते चले आ रहे थे, लिखते थे, हँसते थे, खे थे, खेलते थे, प्यार करते थे। जीवन के एक चौराहे पर आकर न के कानून ने पूछ ही तो लिया, 'अब केवल एक, कौन एक ?' मैं ह बक्का रह गया। कौन एक ? कौन एक ? कोई उत्तर न मिला। महानता, जो विशालता, जो अथाह प्रेम सारी धरती को अपनी भुजा में समेट लेने को तैयार है उसमें प्रश्न हो उठा, 'कौन एक ?' वहाँ तक की गुंजायश नहीं।

'टॉस' किया गया, 'हेड या टेल ?' वहाँ पर किसी एक को पाने की खुशी उतनी बड़ी नहीं जितना दूसरे को खोने का ग़म है, इसी लिए एक ही सिक्के का 'हेड' पाकर मन 'टेल' के लिए रो पड़ा और 'टेल' पाकर 'हेड' के लिए आँखें भर आईं।

कैसी विडम्बना है ?

मैं क्यों विवाह करूँ किसी एक से ?

कोई एक, क्यों ?

इस प्रकार न तो मेरे सोचने-समझने का कोई अन्त था, न इस समस्या का कोई हल सूझता था। सब कुछ गड़बड़ लगता, विशेष गड़बड़। सुना था, नारी रहस्यमय होती है। नारी हो या न हो, नीरा तो निश्चित रूप से 'रहस्यमयी' हो चली थी पिछली रात से। उसकी एक भी चाल, एक भी हरकत मेरी समझ में न आती। अभी रात को बीबी की बधाई पर चकित था, आज सुरेन्द्र की बधाई पर स्तम्भित हूँ। यह सब क्या है ? क्या ?

टक-टक ताक रहे हो ?"

"सरस्वती को।"

"कभी देखा नहीं ?" मुस्कराती हुई बोली।

"कहां ? मारे शरम के कभी जी भर के देख पाया ?"

"तो लो देखो, तुम्हारे सामने खड़ी हूँ।"

"बस यों ही खड़ी रहो, बस।"

मुझे इधर उधर ताकते देखकर पूछ बैठी, "क्या तलाश कर रहे हो ? कुछ खोगया है क्या ?"

"हां, देख रहा हूं आकाश-गामिनी के पर कहां हैं।"

"अभी तो उड़ना छोड़ धरती पर ही रहने का निश्चय किया है, इसी लिए पर उतार दिए हैं।"

"और मेरा दिल भी तो यहीं कहीं खो गया है, न जाने कहां ?"

"वह तो मानसरोवर की अगाध गहराई पारकर उसके अतल-तल में जा बैठा। क्या तुम उसे खोज पाओगे ? निकाल पाओगे ?"

मैं मुस्कराता रहा। उसी ने फिर कहा, "अच्छा, ये बातें फिर होती रहेंगी। जल्दी करो, तैयार हो जाओ, डैडी को देर हो जायगी।"

"अच्छा, तुम चलो, मैं फिर आऊंगा। तुम बड़ी अच्छी हो न, मैं बाद को नाश्ता कर लूंगा।"

"नहीं, नहीं। फिर मैं कैसे लूंगी ? और इन्कार करूंगी तो सब आंखें फाड़ फाड़कर देखेंगे कल शाम की तरह।"

"पर तुम क्यों न लोगी ?" मैंने चकित होकर पूछा।

पहले तो नन्ही सी बालिका की तरह शरमाई और फिर बोली, "तुम नहीं होते तो अकेले अच्छा नहीं लगता।"

"यह बात है! अच्छा, लो मैं तैयार हुआ।" 'ड्रेसिंग रूम' में जाते-जाते मैं धीरे-धीरे कहता गया :

'इस सादगी पे कौन न मर जाय, ऐ खुदा।
लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं॥'

मैंने कनखियों से देखा कि वह मुस्करा रही थी, शरमा रही थी, कपोलों पर कटोरे बनते जा रहे थे, आँखें विहँस रही थीं।

'लंच' के समय मि॰ सहाय ने बाक़ायदा हम दोनों को बधाई दी। इस बार मैं ज़रा भी चकित न हुआ। फिर उन्होंने पूछा, "सुनता हूँ, तुम किसी प्रकार की रस्म अभी पूरी किए जाने के पक्ष में नहीं हो।"

"मैं! मुझे तो कोई एतराज़ नहीं।"

न जाने कितना बड़ा आश्चर्य उनके चेहरे पर फैलकर बिखर गया। मैंने नीरा को देखा। वह मारे कशमकश के पसीने पसीने होने लगी। मैं मन ही मन खुश हुआ। लो पहेलियां बुझा रही थी न! मज़े चखो।

जीजी ने उसे इस कशमकश से उबारा। वह बोलीं, "कुमार भैया तो पक्ष में हैं, डैडी, परन्तु नीरा इसके पक्ष में नहीं है।"

"नीरा! क्यों?" मि॰ सहाय की भौंहें तन गईं।

"यों ही, डैडी।"

"यों ही! मुझे तेरी एक भी बात समझ में नहीं आती, रानी। कल एक बात कही, तूने मानी नहीं। आज एक अपनी ही ज़िद चलाती है। तू चाहती क्या है?"

"कुछ नहीं," कहकर वह मेज़ से उठ गई।

मि॰ सहाय के चेहरे पर असमंजस व व्यथा दोनों के भयानक चिन्ह बनते, उभरते नज़र आए। यदि इस में किसी को मज़ा आरहा था तो वह सुरेन्द्र को।

मैं उठकर आया तो क्या देखता हूँ कि नीरा मेरे पलंग पर औंधी

पड़ी तकिए में सिर डाले सिसक रही है। आंखें आंसुओं से गीली हो रही हैं। मैंने तुरंत उसे उठाकर मुँह सीधा किया व रूमाल से आंसू पोंछते हुए पूछा, "क्या बात है, नीरा ? तुम्हें इस प्रकार उठकर न आना चाहिए था। मि० सहाय को कितनी व्यथा पहुंची।"

वह एकदम से बिगड़कर बोली, "यही तो बात है, कुमार, डैडी की व्यथा सब देखते हैं, जीजी की व्यथा सब देखते हैं, मेरी व्यथा कोई नहीं देखता, कोई नहीं। मेरा तो जी थक गया, कुमार, एकदम से थक गया……… मन करता है फूट फूटकर रोऊं, खूब रोऊं……… कभी मन करता है कि मैं, बस, मर जाऊं, तुम्हारे सामने मिट जाऊं। मेरा मन बुरी तरह से घायल हो गया है, क्षत-विक्षत। उसे कोई नहीं देखता, सब अपनी अपनी हांकते हैं।"

"आखिर, तुम्हारी व्यथा क्या है ? कुछ मैं भी समझूं।"

"मेरी व्यथा क्या है, तुम समझते हो। तुम न समझोगे तो मेरी व्यथा और कौन समझेगा ? ………जब तक तुम नहीं समझते तभी तक अच्छा है। जब समझ जाओगे तो तुम तड़प-तड़प कर मरने लगोगे व तुम्हारी व्यथा से ही मैं छटपटाकर मर जाऊंगी। इसलिए अभी मुझे अकेले जूझने दो। मैं अपनी व्यथा सह सकती हूं, तुम्हारी नहीं।"

"तुम तो बिल्कुल पहेली बुझाती हो, नीरा, मैं कुछ भी नहीं समझता।"

"जब तक तुम नहीं समझते तभी तक खैर है। समझ जाओगे तो सारा खेल चौपट हो जायगा।"

"मगर तुम डैडी की बात मान क्यों नहीं लेती ?"

"मैं क्या मान लूं ? डैडी दुनियादार आदमी हैं, लेकर देने के आदी हैं। संसार के व्यवहार की यही बुनियाद है, देकर लेना, लेकर-देना। मैं सब कुछ देकर लेना कुछ भी नहीं चाहती। मुझे अच्छा नहीं लगता, ओछा लगता है।"

"मगर यह देने-लेने की बात कैसी है ?"

"कुम्हार अधिक नहीं समझा सकता, कुमार। मगर इतना समझ

लो कि मेरा मन सारे प्रपंचों से दूर होकर, किसी के चरणों पर सब कुछ अर्पित कर, पिघलकर अन्तःरिक्ष में विलीन हो जाने को छटपटा रहा है।" और उसकी आंखें नत हो गईं। मैंने कुछ न कहा।

चालीसवां परिच्छेद

यमुना की नीरा

जीजी की मंगनी को केवल एक दिन तो शेष था। काम बहुत करना था। नीरा एक हठी लड़की ठहरी। उसने जीजी व सुरेन्द्र को 'टैक्सी' का सहारा लेने के लिए मजबूर कर मोटर स्वयं ले ली। बोली, "मुझे तो असली प्रबन्ध करना है। तुम दोनों को क्या है, 'कन्सर्ट' का ही प्रबन्ध तो! कलाकार लोग मुंह बाए बैठे होंगे, जैसे तैसे खबर दिलवा देना।

ताना उसने सुरेन्द्र पर कसा था। बेचारा मुस्कराकर रह गया। नीरा के सामने वह सदा 'बेचारा' बना रहता है।

नीरा ने श्वेत रेशमी सलवार व बेलबूटे वाले चिकने रंगीन कुर्ते पर शरबती रंग की महीन चुन्नी डाल ली। बड़ा व चौड़े 'रिम' वाला धूप का चश्मा तथा पाव में खूबसूरत सैंडल—इस वेश में वह पूरी 'ग्लैमर गर्ल' बन गई। मुझे साथ चलने पर उसने मजबूर किया। मैंने कहा, "यों मुझे साथ साथ बांधे फिरने से लाभ? लोग क्या कहेंगे?"

"लोग तो वही कहेंगे जो उन्हें कहना चाहिये, पर तुम अब एक पल भी मेरी आंख से ओझल नहीं हो सकते।"

"तो क्या सचमुच तुम मुझे अपने आंचल में बांधे फिरोगी?"

"आंचल में नहीं, चुन्नी में!"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। गाड़ी सर्र से चल पड़ी। चला वह स्वयं रही थी। देहली की तपती धूप, उसी में हम चक्कर काट-काटकर पार्टी का सारा प्रबन्ध करते फिरे। जीजी ने स्थान बताकर व सूची बनाकर दे दी थी। हम दोनों को बहुत सोचने-समझने की गुंजायश नहीं थी। वैसे हम

लो कि मेरा मन सारे प्रपंचों से दूर होकर, किसी के चरणों पर सब कुछ
अर्पित कर, पिघलकर अन्तःरिक्ष में विलीन हो जाने को छटपटा रहा है।"
और उसकी आंखें नत हो गईं। मैंने कुछ न कहा।

चालीसवां परिच्छेद

यमुना की नीरा

जीजी की मंगनी को केवल एक दिन तो शेष था। काम बहुत करना था। नीरा एक हठी लड़की ठहरी। उसने जीजी व सुरेन्द्र को 'टैक्सी' का सहारा लेने के लिए मजबूर कर मोटर स्वयं ले ली। बोली, "मुझे तो असली प्रबन्ध करना है। तुम दोनों को क्या है, 'कन्सर्ट' का ही प्रबन्ध तो ! कलाकार लोग मुंह बाए बैठे होंगे, जैसे तैसे खबर दिलवा देना।

ताना उसने सुरेन्द्र पर कसा था। बेचारा मुस्कराकर रह गया। नीरा के सामने वह सदा 'बेचारा' बना रहता है।

नीरा ने श्वेत रेशमी सलवार व बेलबूटे वाले चिकने रंगीन कुर्ते पर शरबती रंग की महीन चुन्नी डाल ली। बड़ा व चौड़े 'रिम' वाला धूप का चश्मा तथा पाव में खूबसूरत सैंडल—इस वेश में वह पूरी 'ग्लैमर गर्ल' बन गई। मुझे साथ चलने पर उसने मजबूर किया। मैंने कहा, "यों मुझे साथ साथ बाधे फिरने से लाभ ? लोग क्या कहेंगे ?"

"लोग तो वही कहेंगे जो उन्हें कहना चाहिये, पर तुम अब एक पल भी मेरी आंख से ओझल नहीं हो सकते।"

"तो क्या सचमुच तुम मुझे अपने आंचल में बांधे फिरोगी ?"

"आंचल में नहीं, चुन्नी में !"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। गाड़ी सर्र से चल पड़ी। चला वह स्वयं रही थी। देहली की तपती धूप, उसी में हम चक्कर काट-काटकर पार्टी का सारा प्रबन्ध करते फिरे। जीजी ने स्थान बताकर व सूची बनाकर दे दी थी। हम दोनों को बहुत सोचने-समझने की गुंजायश नहीं थी। वैसे हम

"नहीं, पहले चलो कहीं खाना खाएं। मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं।"

"तुमको 'नहीं' कहने में कोई खास मज़ा आता है क्या? अच्छा, चलो पहले खाना ही खा लें।"

हम दोनों एक शीत-ताप नियंत्रित रेस्टोरेंट में भोजन करने चले गए। वहां बड़ी शान्ति से एक कोने में बैठे-बैठे धीरे-धीरे बातें करते रहे व भोजन चलता रहा।

गो कि धूप व लू के कारण उसका सारा चेहरा जल गया था तथा होठों पर पपड़ियां पड़ गई थीं, फिर भी नीरा बहुत जंचती थी। वह सचमुच बड़ी खूबसूरत लगती थी। जिधर जाती आने-जाने वाले जरा ठिठक जाते, कोई कोई रुककर भर आंख देख लेते।

पौने तीन बजे होटल से निकलकर हम दोनों फिर से प्रेस गए। वहां कार्ड की छपाई आरम्भ हो गई थी। कुछ छपे कार्डों को देखा व समुचित निर्देश देकर बाहर निकले तो नीरा ने फिर हठ किया 'रोमन हॉलिडे' के लिए। मैं बहुत ज्यादा इन्कार न कर सका। मेरा मन भी तो भीतर ही भीतर इस प्रस्ताव पर फूला नहीं समाता था।

अन्त में ओडियन के पास गाड़ी 'पार्क' कर हम दोनों 'रोमन हॉलिडे' देखने चले गए। रोम नगर के एक-एक दृश्य को जिसे मैंने स्वयं देखा था नीरा को समझाया। उन स्थानों में जेन मेरे साथ थी। जेन की बहुत याद आई, बहुत। अपरिचित पत्रकार और राजकुमारी का अल्हड़ व निर्बाध प्रेम बड़ा मोहक था। कहीं कहीं मेरा मन मारे व्यथा के भर-भर उठा।

नीरा की आंखें हैं जो सब कुछ पकड़ लेती हैं। उसने तुरन्त कहा, "तुमको जेन की याद बहुत सताती है न?"

"हां।"

"मैं आज तार देकर उसे बुला लेती हूं। कल जीजी के साथ ही तुम्हारी व जेन की भी मंगनी यहीं पर हो जाय तो कैसा?"

मेरा मन आश्चर्य व व्यथा दोनों से भर उठा। मैंने तुरन्त कहा,

"पागल तो पगला है!" और मौन हो गया।

नीरा मेरे गम्भीर मौन से तड़प उठी। बोली, "नाराज हो गए न?"

"नहीं तो, तुम्हारी बुद्धि पर तरस आता है।"

नीरा के चेहरे पर एकाएक दुःखी व्यथा व व्यथा छा गई कि मैं उसकी गहराई का कोई अन्दाज न लगा सका। कुछ देर रुककर बोली, "मुझसे कदम कदम पर भूल होती है, कुमार, पर मेरी नजर में मेरा एक भी कदम 'भूल' नहीं लगता। न जाने कैसे तुम्हारी आँखों की दृष्टि में 'भूल' हो जाता है। मैं समझ नहीं पाती, कैसे तुम्हारी मुक्त हँसी को लौटाऊँ। तुम्हारी एक मुस्कान के लिए मैं सब कुछ निछावर कर सकती हूँ, पर फिर भी उसे लौटा नहीं पाती। तुम्हारी व्यथा रग-रग पर बढ़ती ही जाती है। मैं उसे कैसे हर लूँ, कुछ भी तो नहीं सूझता। तुम्हीं कुछ बताओ न!"

"मिट्टी भला कुम्हार को क्या बताएगी!"

हम दोनों फिर एक तरह से मौन हो रहे। दिवस का अन्त हो रहा था। राजकुमारी व राजकुमार का अन्तिम मिलन—मौन-संवाद व विदा बड़ा ही हृदय-द्रावक था। नीरा बोली, "कहीं हमारा भी यों ही अन्त हुआ तो?"

"मिलन की मीठी स्मृतियाँ जीने भर को काफी होंगी।"

नीरा मेरे इस कथन से काँप उठी। न जाने उसने क्या अर्थ निकाला। बोली, "तुम दूर रहकर भी तड़पाते हो और पास होने पर भी। कभी-कभी तो कृपा करो, निर्दयी कहीं के!"

"और किसी को तड़पना ही मीठा लगे तो?"

वह मुस्कराई। मैं भी क्षीण मुस्कराया। हम दोनों हॉल से निकलकर प्रेस में गए व निमन्त्रण-पत्र लेकर बंगले की ओर चल दिए। चलते हुए गाड़ी का रेडियो भोंपे से चालू किया गया। गीत चल रहा था:

सुनहली साँझ फिर आई!
नजर जो द्वार तक पहुँची,
तुम्हारी याद फिर आई॥

नीरा बोली, "देखते हो यह सुनहली संध्या और सोने का बरसता पानी

पेड़ों पर, पक्षियों पर, मकानों पर ?"

"हां।"

"याद है वह कुतुब की सन्ध्या ?"

"याद है तो।"

"तो आज की भी याद रखना। कभी काम आयगी।"

"ये चीजें याद नहीं की जातीं, रानी, ये तो समय आने पर न जाने किस गहरे तल से उठकर स्वयं ऊपर आजाती हैं; एक मीठी स्मृति तड़पा कर, झकझोरकर चली जाती है, बस।"

"अच्छा, मेरे सरताज, भूल जाना, बस ?"

"कोशिश करूंगा।"

हम फिर मुस्कराए। मोटर बंगले पर पहुँच चुकी थी। 'पार्क' करके हम दोनों स्नान करने चले गए अपने अपने विभाग में।

२

सन्ध्या के लगभग साढ़े सात बजे थे। हम सब अभी थोड़ी ही देर हुई संध्याकालीन चाय से फारिग हुए थे कि नीरा बोल उठी, "चलो, भाभी, तुम्हें सैर करा लाऊं।"

"कहां जाऊंगी ! दिन भर हारी-थकी, मैं कहीं नहीं जाती।"

"चलो न, जाओगी कैसे नहीं ?"

"क्यों ?"

"क्यों क्या ! मैं जो कहती हूं, तुम्हारी रानी, चलो तुम्हें चलना पड़ेगा।"

"तुम जाओ न, कुमार भैया को साथ ले जाओ, मैं नहीं जाती," भाभी कहते कहते मुस्करा पड़ीं।

नीरा बोली, "तुम भी बोरे से मोटे हो जाओगी। मैं तुम्हारी दवा करूंगी।" और उसने भाभी को गुदगुदाना शुरू कर दिया। दोनों हंसे जा रही थीं। कुमार मुस्करा रहा था व मैं भी।

अन्त में हार मानकर भाभी ने कहा, "अच्छा, बाबा, जान छोड़ दे,

मैं चलती हूं।"

"हां, अब तुम्हारा मिजाज ठिकाने आया। आजकल बिना हाथापाई के तुम्हारे मिजाज ही नहीं मिलते।"

"बको मत, नीरा, नहीं तो दो चांटे जमाऊंगी।"

"लो न जमाओ। जमाओ चांटे, देखती क्या हो?"

नीरा ने बच्चों-सा हठ करके गाल जीजी के सामने कर दिया। जीजी ने उसके कपोल दोनों अंजुली में भरकर चूम लिए। हम सभी खिलखिला कर हंस पड़े। कपोल को सहलाती हुई बोली, "छिः छिः, जूठा कर दिया। जीजी, तुम बड़ी गन्दी होती जा रही हो।"

फिर सुरेन्द्र की ओर मुखातिब होकर बोली, "कलाकार जी, आप भी तशरीफ ले चलेंगे?"

"नहीं जी, मुझे घर जाना है, दिन भर यों ही इधर-उधर में रह गया।"

"नखरे मुझसे न करना कीजिए। उसके लिए जीजी ही बनी हैं। चुपचाप चले चलिए।"

सुरेन्द्र मुस्कराकर रह गया, जिसके अर्थ मौन स्वीकृति थी। मेरी ओर ताककर हाथ जोड़कर बोली, "महामुने, सन्ध्याकालीन अर्चना के लिए यमुना-तीर पधारने की कृपा करेंगे?"

हम सब हंस रहे थे परन्तु वह होंठ भींचे गम्भीर बनी जा रही थी। मैं सोच रहा था, नीरा को आज क्या हो गया? ऐसी ही तो चुहल उसे सूझी थी कुतुब वाली सन्ध्या को। इसका अन्त कितना कारुणिक रहा। आज फिर वैसे ही उपक्रम जुट रहे हैं, क्या होगा? कहां होगा इसका अन्त?

हम चारों मोटर में बैठकर चल दिए। नीरा चला रही थी, मैं उसकी बगल में बैठा था। जीजी व सुरेन्द्र पिछली सीट पर थे। गाड़ी बनारस से होकर राजघाट पर आई। सामने चतुर्दशी का चांद चम-चम चमक रहा था, धरती और आकाश सब चांदनी में नहा रहे थे। हवा में अभी गर्मी थी, फिर भी हल्की-हल्की सिहरन आरम्भ हो गई थी।

इतने स्निग्ध व मोहक वातावरण में हमारी गाड़ी ने इंडियागेट

पार किया। फिर हम ओखला की ओर बढ़ चले। गाड़ी धीरे-धीरे चल रही थी। नीरा का इरादा हम तीनों में से किसी को मालूम न था। वह बताए तब तो। उसने गाड़ी 'पार्क' की व नदी-तीर की ओर चली। वहां पर चौकीदार से कहकर उसने एक 'मोटर बोट' ली। हम चारों उस पर बैठ गए। नीरा चलाने लगी।

यमुना में हवा के कारण हल्की-हल्की लहरें उठती थीं, जैसे उस को पवन ने स्नेह से स्पर्श किया हो या हल्का-सा गुदगुदा दिया हो। चांदनी जल में यों कांप रही थी जैसे उसका चूर्ण बनाकर किसी ने घोल दिया हो। उस पार बालू थी जो कि चांदी के कणों की भांति चमक रही थी। किनारे पर से कभी-कभी पक्षियों की किलकारी सुनाई देती थी। एका-एक टिटहरी चीख उठी।

वह रात थी या इन्द्रजाल बिछा था। धीरे-धीरे मन शिथिल होने लगा। नसों पर तनाव ढीला पड़ने लगा। एक अजीब अलसाई मुद्रा तन-मन पर छाने लगी। लगभग मील भर चलने के बाद जीजी ने सुझाया कि नाव को किनारे लगा बालू पर बैठा जाय।

जब नाव से उतरते समय जीजी सुरेन्द्र का कन्धा पकड़कर उतरीं तथा सुरेन्द्र ने झट से जीजी की एक कलाई पकड़कर सहारा दे उतारा। मैं देखकर मुस्करा उठा, नीरा भी मुस्कराई। मैं पीछे अटक गया, कारण नीरा नाव को किनारे लंगर से उलझा रही थी। जीजी व सुरेन्द्र एक दूसरे के कन्धों पर हाथ रखे आगे बढ़ गए।

अकेला पाते ही नीरा ने तुरन्त कहा, "क्या ऐसी रात में भी चकवा-चकवी अलग-अलग रहते हैं, कुमार? मिलने से मजबूर?"

"दिन भर तो साथ ही रहते हैं, नीरा, और हर रात के पीछे दिन लगा है।"

हम मुस्करा पड़े। मैं कुछ भी नहीं समझ रहा था कि नीरा के मन में क्या चल रहा है। ऐसे सवाल क्यों?

हम दोनों भी बालू पर धीरे-धीरे पांव रखते चल दिए। बालू के

भीतर हमारे सैंडल धंस-धंस जाते थे। वही फिर बोली, "क्या अब भी जमुना-तीर ऐसी रातों को मोहन की रास-लीला होती है?"

"हाँ, नेरा, आज भी हर राधा को ऐसी रातों में वंशी-ध्वनि सुनाई देती है। वह मस्त होकर, बावली सी यमुना-तट जाती है। वहाँ उसकी मोहन से भेंट होती है व रास-लीला रचाई जाती है।"

नेरा ने मेरे मुँह की ओर देखकर हंस दिया। मैं कहता गया, "मैं मज़ाक नहीं करता, नीरा। बहुत दिनों की बात है, मैं तब स्कूल का विद्यार्थी था। आज़ादी का जोश रग-रग में छाया था। मैं इन्हीं महीनों में आगरे-जेल गया, आंदोलन में भाग लेने के कारण। दो सप्ताह के बाद किसी प्रकार की सजा के बिना छोड़ दिया गया, कारण, इतने क़ैदियों को रखने-खिलाने की व्यवस्था सरकार के पास न थी। छूटते ही जोश ने जेर मारा। ऐसी चांदनी रात में आगरे से मथुरा चल पड़ा। मोहन की वंशी-ध्वनि सुनने व रास-लीला देखने।

"वृन्दावन में राधारानी के मन्दिर में जाने पर ज्ञात हुआ कि मन्दिर के कपाट आठ ही बजे बन्द हो जाते हैं क्योंकि चांदनी रात में कुँजों में, अहाते में मोहन स्वयं आते हैं व रास-लीला होती है। मेरा जोशीला मन हठ करने लगा वह रास-लीला देखने के लिए। मैं अड़ गया व मन्दिर से बाहर आने से इन्कार किया। पण्डे घबराए। बोले, 'प्रेत अन्धा, बहरा या गूँगा बना देंगे।' मैं डरा नहीं। सत्याग्रह करने को तैयार हो गया। जोश तो सवार ही था सत्याग्रह का। अन्त में मेरे साथी ने सुझाया कि यह पण्डों की चाल हो सकती है, ये ही रात को रास-लीला भी करते होंगे व ये ही प्रेत बनकर तुम्हें अन्धा, गूँगा या बहरा भी बना देंगे।

"धर्म के ढकोसले पर मुझे सहज ही प्रतीति आगई व मैंने हठ

ख़याल है?"

. है, संसार में कभी भी न मोहन की कमी रही,
यों ही बराबर वंशी-ध्वनि से गुंजित होता रहा

व नटवर की रास-लीला होती रही।"

"ऐसी रातों को, न जाने क्यों, मेरा मन उदास हो जाता है।"

"तब तो तुम्हें ज़रूर किसी से मुहब्बत हो गई है।"

"धत्!"

हम जीजी के पास पहुंच गए थे। चारों बालू पर बैठ गए। नीरा ने कहा, "कलाकार जी, कुछ सुनाइयेगा अपने कोकिल-कण्ठ से?"

"अच्छा, भारत-कोकिला, मैं सुना रहा हूं। आप ज़रा कान व दिल खोलकर सुनिए," सुरेन्द्र बोला।

"ओ हो, आपके कण्ठ तो अभी से खुल गए!" नीरा ने कहा। जीजी मुस्करा रही थीं। कलाकार ने गाया :

'जाऊं कहां तजि चरण तिहारे।'

श्वेत बालू, श्वेत यमुना का जल, श्वेत चांदनी, श्वेत चांद, श्वेत उसकी जल में छाया, ऊपर से सुरेन्द्र की श्वेत धोती व चुनट वाला महीन कुरता, जीजी की श्वेत साड़ी व ब्लाउज़, नीरा की श्वेत जॉर्जेट की साड़ी व महीन श्वेत ब्लाउज़ और मेरी श्वेत कमीज़ व पैंट, सब कुछ मिलकर ऐसा धवल समां था कि स्वर्ग भी झूठा हो रहा था। उसमें यमुना के शान्त किनारे पर हवा में सुरेन्द्र की तान लहरा उठी, दिशाएं स्वर-लहरी से विभोर हो उठीं। लगता था, हर प्राणी, पशु-पक्षी किसी का चरण पकड़े पड़ा है और बार-बार दुहराता है :

'जाऊं कहां तजि चरण तिहारे।'

मैं भी यही सोचता था। शायद नीरा व जीजी भी यही सोचती हों।

सुरेन्द्र का गीत समाप्त होने पर बधाई दी गई। नीरा ने मारे शरारत के 'सुभान अल्लाह' कहा। फिर जीजी से हठ करने लगी, पर जीजी तो आज अड़ गईं। अन्त में नीरा को गाना पड़ा। उसने एक फिल्म का गीत सुनाया :

'पंछी बावरा चांद से प्रीत लगाए।'

गीत अच्छा बन पड़ा। न जाने कहां से दुनिया भर का दर्द उसके गले

थे मन मस्त और शराब पीने का असर होने लगे थे उसकी आँखों की नीली में नई रस चाँदनी में कुछ रंग दिखाई न दिया।

अब मेरी बारी आई। मैं भला क्या गाता! कभी गाया भी हो तब तो। मगर फिर भी हम अपने बारे में मैंने 'प्रभात' को एक बार गाते सुना था:

'तुमको न मिला है कभी प्यार !'

जोजो ने सुनाया :

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।'

इस गीत पर हम बहुत देर मुग्ध रहे। वातावरण भारी होते-होते बन गया। फिर हम लोग टहलने के लिए उठ पड़े। जोजो व सुरेन्द्र एक ओर निकले व मैं तथा जेन दूसरी ओर। कुहरा रेत पर हम धीरे-धीरे चल रहे थे। चलते-चलते जब मैंने उसकी कमर में हाथ डाल दिया व उसने मेरे कन्धे पर हाथ रख लिया कुछ पता न चला। पर हम चलते रहे चुपचाप। कोई कुछ बोला नहीं।

हवा का एक ठंडा झोंका हमारे तन को स्पर्श कर चला गया। जेन के केश मेरे मुँह पर लहरा उठे। वह मुस्काई। बोली, "जी में आता है, यों ही रात भर, जीवन भर साथ-साथ चलते रहें। न तो इस रात का अन्त हो, न इस चलने का।"

"मैं तो सोचता हूँ, हर रात को यों ही स्वर्ग धरती पर उतर आता है, पर अभागों की आँखें बन्द रहती हैं। सवेरा होते ही वह जादू उड़ जाता है, स्वयं अन्तर्धान हो जाता है तब अभागा मानव आँखें मलता उठता है।"

"जानते हो, अभी तुम्हारे साथ चलते हुए ऐसा लगता है जैसे तुम स्वर्ग के राजा इन्द्र हो व मैं इन्द्राणी तथा हम दोनों के स्वागत में यह चाँद अपनी चाँदनी बिखेरकर कृतार्थ हो रहा है।"

"अभी हम लोग नाव पर आ रहे थे न, तो मुझे आभास होता था जैसे मानसरोवर पर तैरने वाला हंस हो यह नाव व स्वयं देवी सरस्वती उस वाहन पर सवार मुझे लिए विचर रही हों।"

"तुम न जाने क्या-क्या मुझे कहा करते हो ! मुझे डर लगता है, कहीं अभिमान न होने लगे अपने पर।"

"इसमें डरने की क्या बात है, कोई झूठा अभिमान थोड़े होगा !"

"अच्छा बताओ, क्या सचमुच राजा दुष्यंत शकुन्तला को इतना भूल गया था कि बिना अंगूठी के सूरत तक न याद आई !"

बड़ा विचित्र प्रश्न था यह। मैं सुनकर चकित हो गया। इस में तो भयानक निराशा व भविष्य के प्रति अनिश्चितता टपकती थी। मैंने नीरा का मुंह जरा गौर से देखा जो दूध सी चांदनी में धुलकर दुना दमक रहा था। मैंने कहा, "शकुन्तला को शाप था न ऋषि का। हर किसी को ऐसा शाप थोड़े ही होता है।"

"मैं सोचती हूं, कुमार, हर लड़की शकुन्तला हो सकती है, उसे एक दुष्यन्त से प्रेम हो सकता है, और वह दुष्यन्त उसे भूल सकता है, बिल्कुल भूल सकता है, मगर भूल जाने पर······"

"नहीं, नीरा, हर लड़की शकुन्तला हो सकती है, पर वह शाप-भ्रष्ट नहीं हो सकती।"

"अच्छा, तुम बार-बार मेरा मुंह क्यों देखते रहते हो !"

"बताऊं !"

"हां, हां।"

इतने में मैंने उसकी कलाई पकड़कर खींच दी। वह धम से गिर पड़ी रेत पर। मैं भी गिरा व उसे अपनी गोद में लिटाकर उसका मुंह देखते हुए मैंने कहा, "मैं बार-बार देखता हूं, दोनों चांद में से कौन अधिक सुन्दर है, आकाश का या धरती का।"

"कुछ आया समझ में !"

"उहूंक।"

"और गौर से देखो।"

मैंने ऊपर आकाश में देखा, फिर उसके चेहरे पर अंगुलियां फेरता हुआ, केश सम्भालता देखने लगा।

वही बोली, "मैं बताऊं !"

"बताओ !"

"धरती का !"

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। मैंने हल्का सा चुम्बन ले लिया उसके दमकते कपोलों पर। वह झट से उठ पड़ी यह कहती हुई, "अब तुमको शैतानी सूझ रही है, मेरा मुंह जूठा कर दिया।"

"मुंह कहा !" कहकर मैं मुस्कराया व धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा, विद्यापति का एक पद :

'सरस बसन्त समय भल पाओलि,
दखिन पवन बह धीरे।'

मैं तो इधर गीत में व्यस्त था और नीरा ने चुपके-चुपके उठ, पीछे जाकर एक अंजुलि बालू भरकर मेरे गले पर कॉलर के नीचे छोड़ दी जो सारी पीठ पर बिखर गई भीतर ही भीतर।

मैं चमककर उठा। बोला, "शैतानी मुझे सूझ रही है या तुम्हें, नीरा ? अच्छा, रहो मैं तुम्हें बताता हूं।"

इतना कहकर मैं लपका उसकी ओर। वह भागी बालू पर। वह आगे आगे और मैं पीछे-पीछे। जब पकड़ में आने ही वाली हो तो बाएं या दाएं से कन्नी काटकर निकल जाय। हम दोनों जोर-जोर से हाफने लगे, पर वह पकड़ में न आई। अन्त में मैंने अपने सैंडल निकाल फेंके व नंगे पांव बालू पर दौड़ने लगा। उसने भी अपने सैंडल फेंक दिये व नंगे पांव चक्कर काटने लगी। अन्त में वह थककर हाफने लगी तो मैंने एक झटके में उसकी कलाई पकड़ ली। वह धम्म से बालू पर गिर पड़ी। मैं भी गिरा व सम्भलकर उसे दोनों बाहों में जोर से पकड़ा, अपनी गोद में उसे लिटा दिया व एक हाथ से दबाए रखकर दूसरे हाथ में बालू भर उसके ब्लाउज के भीतर वक्ष पर बिखेर दी।

कैसा वह भी समां था। चांद पूरा का पूरा उसके खुले वक्ष, खुली गर्दन व खुले मुख पर दमक रहा था। दौड़ने के परिश्रम से उसके

उरोज बराबर उठते व गिरते थे, फड़फड़ा रहे थे। मेरा मन इस समय काबू के बाहर हो रहा था। मैंने केवल ब्लाउज के भीतर बालू डालकर ही नहीं छोड़ा बल्कि ब्लाउज पर जरा सा हाथ फेर दिया ताकि बालू के कण पूरी तरह अन्दर बैठ जायें।

नीरा हाफती हुई बोली, "राम-राम, यह कैसी बदतमीजी है?"

"हां, तमीज का काम तुमने किया था न?"

"जानते हो, ये बालू के कण कितना चुभते हैं? छोड़ो, मैं ब्लाउज उतार दूं।"

"आओ, उतार दो," कहकर मैंने हाथ ढीला कर दिया।

मगर जब नीरा उठने लगी तो मैंने दोनों बाहें कस दीं। वह भुजाओं के बीच चरमरा उठी। ब्लाउज के सारे बटन पीछे से खुल गए। सामने से वह अलग हो गया। वे श्वेत धवल संगमरमर से उरोज! ओह, मैं देखते ही एकदम से पागल हो गया और भुजाओं में कसी, कांपती नीरा के प्यासे होठों पर मैंने अपने जलते अधर रख दिए।

वह मुश्किल से बोल पाई, "मोहन!"

मेरे मुँह से निकला, "राधा!"

आकाश से चांदनी बरसती रही। सुधाकर मुस्कराता रहा। हम दोनों अमृतपान करते रहे। सुख की शिथिलता से जब अधर अलग हुए तब बाहें ढीली पड़ीं तो नीरा ने अपने अस्त-व्यस्त कपड़े सम्भाले व हम दोनों चल दिए नाव की ओर।

जीजी व सुरेन्द्र न जाने कब से हमारा इन्तजार कर रहे थे। नाव फड़फड़ाती हुई चल दी। मैं सोचता रहा :

वेनिस की जेन!

और यमुना की नीरा!

पेड़ों की झुरमुट से कोयल की निरन्तर कूक आ रही थी :

'पी-कहां?' 'पी-कहां?' 'पी-कहां?'

इकतालीसवाँ परिच्छेद

जीजी की मंगनी

मंगनी जीजी की और दिन भर चक्कर काटते रहे हम दोनों — नीरा व मैं। आज तो उत्साह के पंख हम दोनों को लग गए थे, न जाने क्यों!

निमंत्रण-पत्र बाँटने का प्रबन्ध हमारे जिम्मे था। जहाँ जहाँ हम दोनों जाते बधाई मिलती। मंगनी जीजी-सुरेन्द्र की व बधाई मिलती नीरा को व मुझे। वैसे हम दोनों की बात भी काफी फैल चुकी थी।

जहाँ जहाँ हम जाते, बुजुर्गों से परिचय होता। वे झट कहते, 'यही है मि० कुमार, जिनकी बड़ी तारीफ सुनी है!'

मैं नत-मस्तक सुनता रहता। भला, ऐसे उद्‌गारों का क्या उत्तर था! न जाने इस नीरा ने सारे लोगों से क्या कह रखा है।

नीरा ने अपनी कुछ सखियों का भी परिचय आज कराया जब उनको निमंत्रण देने गई थी। उन में से तीन-चार तो ऐसी हैं जो आज भी स्मृतियों में उलझी हुई रह रहकर कौंध जाती हैं।

उनमें एक है 'मुन्नी' — शायद पूरा नाम सुमन हो या मुन्ना हो, गवर्नमेंट के किसी विभाग के चीफ इंजिनियर की लड़की है। श्वेत गौर-वर्ण, भरा स्वास्थ्य, सुन्दर शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें, यूनिवर्सिटी की ग्रेजुएट, नृत्य व संगीत में पारंगत; और सब से बड़ी बात यह कि बड़ी मिलनसार। वह हम दोनों को देखते ही इतनी खुश हुई कि खुशी छिपाये न छिपती थी। मुन्नी बिल्कुल नीरा का प्रतिरूप थी।

पहले ही परिचय में बोली, "भाई साहब, मेरी सखी को कब तक

तड़पाने का इरादा है ?"

"मैं तड़पाता हूँ, मुम्मी, या तुम्हारी सखी तड़पाती है ?"

इतने में नीरा ने लपककर पकड़ा कान मुम्मी का व बोली, "पहली ही भेंट में तुमने अपनी शैतानी शुरू कर दी ? बन्द करो यह बकवास, नहीं तो !"

"नहीं तो क्या भाई साहब को मेरी चुन्नी में बांध दोगी ?"

हम हंस पड़े। नीरा बोली, "चुप !"

"बड़ी गड़बड़ ख़बरें सुनने में आती हैं, भाई साहब !"

"हां विशेष गड़बड़, तुम चुप रहो ना," नीरा बोली।

"मैं चुप रहूँ ? अच्छा, अभी तो क्या है आज शाम को बताऊंगी।"

"बताना, बताना, बताना, डरता कौन है ? अच्छा, अभी तो चलने दो, काम बहुत है। तुम शाम को ज़रा जल्दी आजाना, अच्छा !"

"अच्छा भाई, आजाऊंगी। कुछ तुम्हारा भी हिसाब बैठने वाला हो तो अभी से चलूं।"

हम हंस पड़े व चल दिए। नीरा ने चलते-चलते कहा, "जल्दी आजाना तो तुम्हारा हिसाब बैठवा दूंगी।"

"एक म्यान में दो तलवार नहीं रहतीं, रानी।"

घूमते-घुमाते हम एक और अफ़सर के घर पहुंचे। पता चला कि पिता व पुत्री दोनों संगीत में पारगत हैं व नीरा के पिता के बड़े मित्र हैं। पिता तो घर में थे नहीं, षोडशी पुत्री कल्पना से भेंट हुई। वह रूप-शिखा, दहकता सौंदर्य देखकर मैं दंग रह गया; तिस पर काला काजल व काली डोरी में चन्द्रमा सा हीरे का 'नैकलेस', उलझी लटें, मैं तो क्या कोई भी देखता तो होश में न रहता। परिवार पंजाबी, नाम बंगाली। बड़ी कला के साथ नमस्ते करके वह हमारे लिए पान लाने भीतर गई। मैं मना करता रह गया परन्तु वह मानी नहीं।

अकेला पाते ही मैंने कहा, "तुम्हारी सखियां तो ऐसी रूप की परी हैं, नीरा, कि कलेजा मुंह को आता है !"

होगी। आप कभी भी नीरा से समय निश्चित कर आजायं।"

"धन्यवाद। मुझे दुःख है कि आप आए बुलाने और मैं आज शाम को न आ सकूंगी।"

"कारण?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"कारण मुझसे न पूछें तो ही भला, पर मैं आ न सकूंगी। किसी और दिन आपसे अवश्य मिलूंगी।"

"जैसी कृपा," कहकर मैंने हाथ जोड़े।

सभी ने नमस्ते की व हम चल दिए। रास्ते में मैंने इस सहेली की कहानी पूछी। नीरा बोली :

"धीरा जी का परिवार बड़ा सुखी व सम्पन्न रहा है। इनके पिता जी का कपड़े का व्यापार था बहुत बड़ा। इनकी शादी भी कपड़े के ही एक व्यापारी से हुई। इनके पति स्वस्थ व सुन्दर थे, कारबार में निपुण पर मैट्रिक तक पढ़े हुए। ये 'आई. ए.' पास हैं। यूनिवर्सिटी छोड़ दी शादी होने पर।

"किस्सा-ए-कोताह यों है कि इनके पति महोदय को शादी के पहले से ही एक मुसलमान लड़की से मुहब्बत थी। मालूम होते ही ये उदास रहने लगीं। पति का प्यार न मिला फिर भी पति का आश्रय व आर्थिक सुख तो था ही। एक दिन पता चला कि वह मुसलमान लड़की इन्तकाल कर गई। समाचार मालूम होते ही इनके पति महोदय ने भी बड़े कमरे में, जिसका दरवाज़ा लोहे का था, भीतर से ताला लगा, शरीर में मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा ली।

"वे कमरे में जलते रहे, चीखते रहे। दौड़कर यह गईं, यह भी देखती रहीं, सब देखते रहे, पर कोई कुछ कर न सका।

"पति की मृत्यु के बाद दूकान, जायदाद वगैरह तो उनके भाइयों ने ले ली। धीरा जी अपने घर आईं। जो कुछ नकदी पास में था वह भाई व भाभियों ने दाब लिया; बेचारी हर प्रकार से छुट गईं। अब एक स्कूल में काम करती हैं, तिस पर हज़ार तुहमतें।"

परदे, नए गिलाफ़, धराऊ फूलदान वगैरह सब ने मिलकर एक निराली शोभा प्रदान कर दी।

घास के 'लॉन' पर बाहर पार्टी का इन्तज़ाम किया गया। छः बजे पूजन-विधि, साढ़े छः पर वर-वधू को मंगनी का आशीष व सात बजे चाय पार्टी थी और आठ बजे से 'कन्सर्ट' का प्रबन्ध था।

सुरेन्द्र तो नए रेशमी सूट में खूब जंच रहा था, मगर जीजी थीं कि अड़ गईं व उन्होंने खद्दर की श्वेत साड़ी व श्वेत ब्लाउज छोड़ और कुछ भी पहनने से इन्कार कर दिया। नीरा ने बहुत समझाया। और भी सहेलियों ने कहा, पर वे न मानीं, न मानीं। बोलीं, "मैं अपने को गलत ढंग से किसी के सामने नहीं रखना चाहती।"

इस मामले में मैं चुप ही रहा, भला क्या बोलता।

हां, नीरा ने बंगलौर-रेशम की चटकीली साड़ी पहन रखी थी। उसी से फबती चोली, कानों में कुण्डल, खूबसूरत 'नेकलेस' व सैण्डल, ऐसी जंचती थी जैसे साक्षात् लक्ष्मी हो और मीरा की नहीं, बल्कि उसी की मंगनी होने वाली हो।

मैंने खद्दर की धोती व कुरता पहन लिया। पांव का चप्पल जरूर नया था। नीरा कुड़कुड़ाई। बोली, "सूट क्यों नहीं पहनते? यह दिल्ली है।"

"लण्डन तो नहीं है?" मैंने मुस्कराकर कहा।

संकेत वह समझ गई। लण्डन के 'फ्रेस्टिवल हॉल', 'गिल्ड-हॉल' वगैरह में दी गई अन्तर्राष्ट्रीय पार्टियों में भी मैंने भारतीय पोशाक अचकन, चूड़ीदार पायजामा व गांधी टोपी पहन रखी थी, फिर यह तो घरेलू मामला था।

जो कुछ नहीं जानते थे, वे तो यों देखकर यही समझते कि सुरेन्द्र की सगाई नीरा से व जीजी की मुझसे होनी है।

साढ़े पांच से ही सुम्मी धमक पड़ी और सारे घर को उसने सिर उठा लिया। कभी जीजी को छेड़ती, कभी नीरा को और सुरेन्द्र को जैसे उंगुलियों पर नचाती। मेरे ऊपर उसने क्यों कृपा कर रखी थी,

पता न चला। एक बार किसी काम-वश जो मैं नीरा के कमरे में गया तो क्या देखता हूं कि मेरी योरप-यात्रा का 'एल्बम' सुम्मी को दिखाया जारहा है। मेरी तसवीरें — रोम, जेनेवा, पेरिस में ली गईं तथा सम्मेलन के विभिन्न अवसरों पर ली गईं, 'फ़ेस्टिवल-हॉल' में व्याख्यान देते समय — बड़े ग़ौर से देखी जा रही थीं। मैंने छेड़ा, "नीरा, तुम्हें इस समय यह क्या सूझी है जब कि घर में इतना सारा काम पड़ा है?"

नीरा के बोलने से पहले सुम्मी ही बोली, "भाई साहब, आप तो छिपे रुस्तम निकले। हमें क्या पता था कि आप इतने बड़े आदमी हैं!"

"क्यों? पहाड़ जैसा? तब तो तुम्हें डरना चाहिए।"

"डरना चाहिए आपसे? आपसे कौन डरेगा? आप तो, बस, निरे बच्चे हैं।"

"तब तो बच्चे को प्यार करना चाहिए।"

"जी हां, और मिठाइयां खिलानी चाहिएं। ये लीजिए चॉकलेट।"

इतना कहते-कहते सुम्मी उठकर आई मेरे पास व चॉकलेट देने लगी। मैंने लेने से इन्कार किया। तब उसने मुँह में देना चाहा। मैंने मुँह बन्द कर दिया। उसने ज़बरदस्ती मेरे मुँह में ठूंस दिया और बोली, "बच्चे यों क़ाबू में थोड़े आते हैं, उनको कभी-कभी ठीक भी करना पड़ता है।"

"मगर प्यार के साथ।"

"आपको क्या पता, भाई साहब, आपको लोग कितना प्यार करते हैं। मगर छोड़िये इस बात को, बेकार में नीरा जल उठेगी।"

"मैं जल उठूंगी? कभी नहीं, सुम्मी, मैं तो चाहती हूं, कुमार को सारी दुनिया प्यार करे," नीरा बोली।

"बस, बस रहने दो, मन में सोचती होगी, कुमार को दिल के ऐसे कोने में छिपा लूं जहां तक दुनिया में किसी की नज़र न पहुंचे, और चली हो बड़ी-बड़ी बातें बनाने।"

"कभी नहीं, सुम्मी, तुम देख लेना।"

"अच्छा, अच्छा, बोलिए, भाई साहब, अपनी जेन रानी को कहां छोड़ आए ?"

"सोचा, दिल्ली में जेन की क्या कमी है जो एक जेन साथ-साथ लिए फिरूं।"

"अच्छा, यह बात है ! और उसकी तस्वीरें ?"

"जाकर आईने में देख लो।"

हम तीनों खिलखिलाकर हंस पड़े। मुन्मी झेंप गई।

धीरे-धीरे लोगों का आना आरम्भ हो गया। कल्पना भी अपने पिता जी के साथ आगई। लगता था, चन्द्रमा की पुत्री है व टोने के डर से काजल तथा गले में काले धागे की 'नेकलेस' डाल रखी है। इतना रूप, इतनी सौम्यता, सच कल्पना को लेकर कुछ कहते सुनते नहीं बनता। आंखें अटक जातीं तो पलक हटने का नाम न लेते।

पूजन का समय आया। आसान पर जीजी व सुरेन्द्र बैठने चले। चलते-चलते जीजी बोलीं हंसती हुई, "आओ न, भैया, तुम भी।"

"यह क्या, जीजी ! मैं भी व सुरेन्द्र भी ?"

बड़े ज़ोर की हंसी छूटी। जीजी झेंप गईं, बोलीं, "तुमको शैतानी सूझ रही है ?"

"कभी, कभी।"

मुन्मी बोली, "जीजी, अदला-बदली कर लो न, खद्दर वाले एक हो जायं व रेशम वाले एक।"

नीरा बोली, "नहीं, बाबा, मुझे जनाने से सगाई नहीं करनी।"

नारी-कण्ठ की हंसी का फौवारा छूट पड़ा। मुन्मी बोली, "जनाने से सगाई नहीं करनी तो क्या बच्चे से करोगी ?"

हम सब फिर हंसे। जीजी व सुरेन्द्र आसन पर जा विराजे। पुरोहित एक आसन पर बैठे, मि० सहाय दूसरे पर। पूजा-विधि आरम्भ हो गई। हम सब खड़े थे। मेरे बगल में मुन्मी थी, दूसरी ओर कल्पना। मुन्मी की बगल में नीरा खड़ी थी पूरी सज-धज के साथ। मुन्मी धीरे से बोली,

"भाई साहब, कितना अच्छा लगता यदि आप व नीरा भी आज आसन पर बैठते। मेरी खुशी का अन्त न होता।"

"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं, मुन्नी, मगर तुम्हारी सखी ने मुझे अस्वीकार कर दिया है।"

"झूठ, सरासर झूठ!"

"पूछकर देख लो।"

नीरा सब सुन रही थी और मारे गुस्से के तमतमा रही थी। करे तो क्या बेचारी, उसके रहस्यमय व्यवहार की यह धज्जी उड़ाना था। मुन्नी ने उसकी ओर मुखातिब होकर पूछा, "भाई साहब सच कह रहे हैं, रानी!"

"हां, बिल्कुल सच, सोलह आने सच।"

मुन्नी ने नीरा का चेहरा देखा व फिर न देखा। पूजन चलता रहा, अतिथियों की भीड़ बढ़ती गई। बात की दिशा बदलने के लिए मैंने कल्पना से पूछा, "यह पूजन-विधि कैसी लगती है, कल्पना!"

"अति सुन्दर।"

"तुम्हारे लिए भी प्रबन्ध करूं!"

वह धीरा मुस्कराई। लाज आखों में, कपोलों पर, होंठों पर नाच उठी, मगर संभलकर बोली, "भाई साहब, किससे आप!"

मुन्नी व नीरा भी इस गुफ्तगू को सुन रही थीं। हम सभी हंस पड़े। मैंने मुन्नी से कहा, "आज रात को अपना गीत तो सुनाओगी!"

"गीत नहीं, आपको पंजाबी 'टप्पे' सुनाऊंगी।"

"और नृत्य!"

"नृत्य नहीं, वह आपको अकेले दिखाऊंगी।"

"क्यों!"

"सब के सामने नाचने से भाभियों को ताड़ाद बढ़ जाती है।"

नीरा, मैं तथा मुन्नी सब हंस पड़े। कितनी शैतान लड़की है यह! मैंने कहा, "तो मुझसे डर नहीं लगता!"

"आपसे! आप तो निरे बच्चे हैं। लेकिन, चलो आइये।"

उसने चुपके से अपनी हथेली पर गरी का एक टुकड़ा बढ़ाया, परन्तु मैं जब लेने लगा तो उसने मुट्ठी बन्द कर ली। मैंने ज़रा और प्रयत्न किया तो उसने और जोर से बन्द कर ली। मैंने प्रयत्न ढीला किया तो उसकी मुट्ठी ढीली पड़ी। फिर मैंने लेना चाहा, तो उसने फिर बन्द कर ली। मैंने कहा, "ललचाती हो, मुम्मी!"

"नहीं, भाई साहब, ललचाते हैं खुले पन्छी को न। बंधे पन्छी को कौन ललचाएगा!"

हम फिर हंसे। पूजन-विधि समाप्त हुई। आशीर्वचन व पार्टी का समय आगया। वैसे समारोह कोई बड़ा न करना था, मगर फिर भी मैंने दो-चार मित्रों व सहपाठियों को, जो विधान-सभा व राज्य-सभा के सदस्य थे, बुला लिया था। मि० सहाय ने एकाध उप-मंत्री को भी बुला लिया था जो बड़े निकट के होते थे। स्त्री-पुरुष सभी मिलाकर लगभग सौ थे। 'लॉन' पर सब पधारे। दो बड़ी-बड़ी कुर्सियों पर सुरेन्द्र व मीरा बैठाए गए। सुरेन्द्र की बगल में मि० सहाय थे। जीजी की बगल में नीरा। नीरा के पास मैं व मेरे बाद मुम्मी, कल्पना वगैरह।

मि० सहाय खड़े होकर बोले :

"मित्रो व बन्धुओ, आज अपनी मीरा की सगाई सुरेन्द्र के साथ एलान करते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है। मैं आशा करता हूं व भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि दोनों का जीवन सुखी हो और धन जन की वृद्धि हो।

"वैसे मैं एक और एलान आज कर देना.........।"

इतने में पीछे से नीरा ने मि० सहाय के कोट का सिरा पकड़कर खींच दिया। वे गुस्से में घूरकर उसकी ओर ताके, परन्तु तुरंत प्रकृतिस्थ होकर बोलने लगे :

"मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि आप भी एक-एक करके को आशीष दें व मंगल की कामना करें। मैं आशा करता 'नीरा को भी आशीष देने आपको निकट भविष्य में ही

पधारना होगा !"

जीजी व मुन्नी ने नीरा व मेरी ओर देखा। नीरा की आंखें नत थीं। मैं अतिथियों की ओर ताक रहा था। 'हियर-हियर' की आवाज आई। अतिथिगण जोड़े-जोड़े में आकर बधाई,वगैरह देने लगे। कोई हंस पड़ता अकारण, अनेक अपने मजाक पर स्वयं हंसते। कोई-कोई जो बड़े पटु थे, सचमुच ऐसा छेड़ते कि जीजी कटकर रह जातीं।

यह सिलसिला दसेक मिनट जारी रहा, फिर चाय-पार्टी आरम्भ हो गई। बैरे इधर-उधर फुर्ती से दौड़ने लगे चार-चार, छः-छः के गुट में। मैं जाकर अपने दोस्तों में बैठ गया। वहां पर सिंह, पाण्डे, उपाध्याय, आचार्य वगैरह जमे थे

चाय पीते-पीते पाण्डे बोला, "अरे यार, सुना है, तुमको अठारह लाख की सम्पत्ति मिल रही है और छोटी 'परी' भी, क्या यह सच है ?"

"मुझे तो पता नहीं, पर तुमको ये सारी खबरें कहां से मिल जाती हैं ? आजकल यही काम रह गया है क्या ?"

"कुमार, हम लोग आदमी चराते हैं, भेड़-बकरी नहीं।"

"चराते हो या स्वयं चर आते हो !"

बड़े जोर का ठहाका लगा। पाण्डे सम्भलकर बोला, "अच्छा, तुमको इन्कार क्यों है ?"

"मुझे ?"

"हां, सुना तो ऐसा ही है। तुम देश-विदेश सब घूम आए, पर लगता है, तुम्हारी स्कूली भावुकता न गई।"

"तुमने गलत सुना है, पाण्डे, इन्कार तो उस 'परी' को ही है। मैं भला ऐसा माल क्यों छोड़ने लगा ? अब उतना सीधा नहीं जितना ……!"

"पर मुझसे कोई कह रहा था, वह तुम पर जान देती है।"

"छोड़ो भी इस बात को, यार, जान देती है मगर बात नहीं सुनती तो क्या लाभ !" सिंह बोला।

"तुम ठीक कहते हो, ठाकुर," मैंने कहा।

"किस के बारे में ? तुम्हारे बारे में, और किस के ?"

"तब तो तुम्हें डरना चाहिये, रानी।"

"मैं क्यों डरूँ, मैं तो चाहती हूं कि मेरी सभी सखियां तुम्हें इतना प्यार करें, इतना प्यार करें कि बस ·····।"

"पर यह है खतरनाक।"

"तुम्हारी प्रशंसा सुनकर मेरे रोम-रोम पुलकित होने लगते हैं, कुमार, न जाने क्यों ईर्ष्या की कोई भावना नहीं जागती। लगता है, जैसे तुम्हारी प्रशंसा, मेरी प्रशंसा है।"

"आज जीजी की सगाई पर मेरा मन बहुत ही खुश है, बहुत ज्यादा।"

"मैं भी विशेष खुश हूं। ऐसा लगता है, जैसे कुछ न पाकर भी मुझे ही आज सब कुछ मिल गया और मैं निहाल हो गई।"

"ठीक ऐसी ही भावना मेरे मन में भी चल रही है, रानी, न जाने क्यों ? लगता है, बसुधा की सारी सम्पत्ति, सारा सौन्दर्य, सारा ऐश्वर्य मुझे मिल गया हो और हाथ लगा कुछ भी नहीं।"

वह लजा गई। झट बोली, "आओ, चलें जीजी के पास।" और उसने यों हाथ पकड़ लिया जैसे किसी बच्चे को कोई पकड़कर ले जाय।

जीजी को उसकी बहुत सारी सहेलियां घेरे बैठी थीं, फिर भी नीरा मारे खुशी के होश में न थी। जाते ही जीजी से चिपट पड़ी और बोली, "लो जीजी, मेरे तन-मन का आशीष व प्यार लो।" कहते-कहते उसने जीजी के कपोल चूम लिए।

जीजी हंसती व शरमाती बोलीं, "हट पगली कहीं की, जब जी में आता है, मुंह जूठा कर देती है।"

"यह क्या, जीजी, मैं जूठा करती हूं तो नाराज होती हो; कलाकार जूठा करेगा तो खिल उठोगी।"

सब की सब खिलखिलाकर हंस पड़ीं। मैंने कहा, "जीजी, नीरा बात तो ठीक कहती है, चाहे तुम मानो या न मानो।" फिर सब हंसे।

जीजी बोलीं, "भैया, अब तुम भी इसकी हां में हां मिलाने लगे।"

खिलखिलाहट से मधुमय हो रहा था, एक अजीब समां छाया था। फोटो भी काफी लिये जा रहे थे। जीजी कहीं 'स्नैप' लेतीं, मुन्नी कहीं लेती। परिवार के एक मित्र राजेन्द्र ने तो हद ही कर दी थी, उसके 'स्नैप' के 'मैनिया' का कोई अन्त न था। वैसे 'स्टूडियो' से 'फोटोग्राफर' भी बुलाया गया था, वह भी रह-रहकर 'स्नैप' ले लेता।

इस 'फोटोग्राफी' की होड़ में एक मजेदार बात यह थी कि मंगनी जीजी व सुरेन्द्र की और सब से अधिक 'स्नैप' लिये जाते मेरे व नीरा के। वैसे आज नीरा काफी चुस्ती व फुर्ती तथा समझदारी से काम ले रही थी। कौन आया, कौन गया, किस के पास 'कार' है, किसे 'टैक्सी' चाहिये, किसे 'हॉट ड्रिंक' 'कोल्ड ड्रिंक', किसे कॉफी, चाय या भोजन चाहिये, पान, सिगरेट, छोटी से बड़ी हर चीज पर उसकी निगाह थी। एक साथ ही वह आधे दर्जन काम करती नजर आती और इधर से उधर 'लक्ष्मी' की तरह डोल रही थी।

कभी-कभी तो उसका इस प्रकार डोलना मुझे अखर जाता, कारण उसे आज मैं अपने पास चाहता था, बहुत पास, वह साथ बैठे तो। एक बार मौका पाकर मैंने कहा भी, "रानी, आज तो लगता है तुम तड़पा-तड़पा कर जान मारोगी।"

"क्यों ?" कहते-कहते मुस्कान कपोलों पर बिखर गई।

"क्यों, क्या ? तुम्हारी वेश-भूषा तो आज तुम्हारी खूबसूरती में चार चांद लगा रही है तिस पर तुम एक क्षण को भी मेरे पास स्थिर-मन बैठती नहीं; बस, कभी यहां, कभी वहां।"

"बिगड़ो न हो, भीड़ थोड़ी छंटने दो, रात तो ढलने दो, फिर आजाऊंगी। भला ?"

"भला !" मैंने मुँह लटकाते हुए कहा।

"देखो, नाराज नहीं होते। आज जीजी की मंगनी है न। हमको-तुमको दोनों ही को खूब खटना चाहिए, सारी व्यवस्था करनी चाहिए।"

"और तुम्हारी व मेरी भी मंगनी आज ही होती तो कौन खटता ?"

'वह ना न जाने कब को हो गई !'' कहते हुए वह मुस्करा गई मन ही मन।
मेरे लिखे अपने गानों का स्वागत व अपने गानों को लिखते देखने का सन्तोष मिला रहा था। ऐसा करने से मैं बालबहुत नेहरू का आनन्द भी सुलभ हो जाता। जैसे 'इलेक्ट्रिकल सिडर' के आसपास हैं कुछ लोग बहन था। होकर सभी दरकार लिए हो उधर हो कान लगाकर बैठ गये। वातावरण में गान का मचलना, गहरी व सुरों की दुनिया भरी सब मग्न हो गई। वे कलाकार मनमुग्ध गायक निकले। जैसे 'हमन' के भागी फिल्म के गीतों को ही गा रहे थे, फिर भी आकर्षण दूसरों से अधिक था। ऐसे गान सुनने पर संगीत का रंग भी बढ़ता जाता था।

कल्पना ने भी बिना किसी नखरे नजाकत के तीन-चार गीत गाए। काफी सुन्दर उसका गला था व अनुकरण भी अच्छा बन पाता था। बहुत सारी आंखें उस पर अटककर रह गईं। इन जलते हुए दीपों में इतनी मिठास !

गुप्पी थी कि निरन्तर मेरे अगल-बगल, आगे-पीछे लगी रहती। एक ओर गुप्पी, दूसरी ओर कल्पना—मैं काफी आकर्षण का केन्द्र बनकर बन बैठा और बहुतों की आंखों में तो शायद खटकने भी लगा। मेरे अधिक फोटो लिए जाने के कारण ये दोनों कुमारियां भी थीं।

बोबी ने बहुत कहने-सुनने पर केवल एक गीत सुनाया :

'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।'

बोबी व सुरेन्द्र दोनों ने रात वाले ही गीत दुहराए। मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ व नीरा के चेहरे पर भी विस्मय की रेखाएं खिंचकर मिट गईं।

एक-एक गीत 'नागिन' के कलाकार व उनकी बहन के भी हुए। दोनों काफी उत्साही लगते थे, सिफारिश की जरूरत न पड़ी थी। एक स्थूल परन्तु सांवली सी लड़की ने गाया :

'कारे-कारे बादरा, न जा, न जा !'

उसने तो बस समां बांध दिया। कितने ही मन व दिल भारी हो उठे।

उधर गीत चलते थे, इधर मुम्मी की शैतानी। कभी पान मेरी ओर बढ़ाती, कभी पान मेरे मुंह तक पहुंचने से पहले छीनकर खुद खा जाती, कभी गरी मुझे देती, कभी देते-देते छीन लेती। मैंने भी दो-तीन बार सुपारी व पान उसकी हथेलियों में चुपके-चुपके रखा, मगर बहुतों ने देखा व घूरकर रह गए।

नीरा का ध्यान आते ही मैं एकाएक तड़प उठा। आज हम दोनों पास होकर भी कितने दूर-दूर हैं! मैंने दो मगही पान उठाये व गया उधर जहां से वह चाय-कॉफ़ी भिजवा रही थी। उसको एक क्षीण-प्रकाशित कोने में मैंने बुलाया, खम्भे के पीछे सलाह करने के लिए। जब पास आई तो मैंने कहा, "मुंह खोलो तो।"

"क्यों, क्या है?"

"कुछ भी हो, मुंह खोलो ना।"

उसने ज्यों ही मुंह खोला मैंने उसमें पान का एक बीड़ा भर दिया, व हाथ में लगा कत्था उसके कपोलों पर पोंछ दिया। बोली, "छिः छिः, गन्दे कहीं के।"

फिर उसने मेरे दूसरे हाथ में पान का एक और बीड़ा देखा। वह बोली, "वह क्या है? मुझे दो।"

मैंने उसे बीड़ा दे दिया। उसने अब मुझसे कहा, "मुंह खोलो।"

मैंने मुंह खोल दिया। उसने मेरे मुंह में पान का बीड़ा भर दिया। हम दोनों की आंखें चमक उठीं। उसने प्यार से मेरा मुंह पकड़ हल्का सा चुम्बन ले लिया और बोली, "आओ बैठो, बेसब्रे नहीं होते, मैं जल्दी ही आऊंगी।"

मैं आकर बैठ गया मजलिस में फिर से। अब मैंने मुम्मी से हठ किया कि वह गाए। बोली, "नीरा को आजाने दो, फिर गा दूंगी, अकेले-अकेले भला क्या सुनोगे?"

बात ठीक ही थी। हम दोनों मुस्कराकर रह गए। जब नीरा आकर मेरे पास बैठ गई तो मुम्मी ने एक गीत गाया, सो भी 'नागिन' का ही:

'जादूगर सइयां, छोड़ मेरी बहियां,
होगई आधी रात, अब घर जाने दो।'

गाते-गाते वह बार-बार मुझे व नीरा को ताक-ताककर मुस्कराती थी
यह बड़ी बुरी बात थी, संकेत जरूरत से ज्यादा स्पष्ट था। पिछली रात
सारा समा मेरी आंखों के सामने नाच गया, शायद नीरा के सामने भी
हम दोनों ने एक दूसरे को एक बार आंखें उठाकर देखा व फिर नज़
नत हो गईं।

मुन्नी गीत समाप्त कर चुकी तो मैंने उसकी नागिन सी लटकती
चोटी खींचकर एक चपत देकर शाबाशी दी व अपनी झेंप मिटाई।

मुन्नी का गीत समाप्त होते ही कल्पना ने गाया :

'भीगा-भीगा है समां, ऐसे में है तू कहां।'

इतनी कच्ची उम्र, इतनी दर्दीली पुकार व दर्दीले कण्ठ पर सभी
हैरान थे। उसका गीत चल ही रहा था कि मुन्नी ने मिश्री के छोटे-छोटे
टुकड़े मेरी ओर बढ़ाए। जब मैं उसकी हथेली से लेने लगा तो उसने
अपनी मुट्ठी बन्द कर ली। मैंने ज़रा ज़ोर दिया तो उसने और ज़ोर से भींच
ली, इस पर मैंने उसकी सारी हथेली अपनी मुट्ठी में लेकर ज़ोर से दबा दी।

'हाय, राम, मर गई,'' कहकर वह चीख उठी। गीत क्षण भर को
रुक गया। उसने जो मुट्ठी खोली तो कोमल हथेली लहू-लुहान हो गई
थी। मिश्री की डली के धारदार किनारे कोमल हथेली व उंगलियों में चुभ
कर फंस गए थे। नीरा झट उसे लेकर वहां से उठ गई। जाते-जाते कहती
गई, 'बड़े ज़ालिम हो तुम!'

मैं मुस्कराकर रह गया।

अब नृत्य की बारी आई। नृत्य का आरम्भ करना था जीजी को,
क्योंकि संगीत का आरम्भ किया था सुरेन्द्र ने। जीजी को नृत्य करना ही
पड़ेगा, इस ख्याल से सुरेन्द्र की आंखें चमक उठीं। जीजी ने काफी मनो-
बल खा, मगर उनकी सहेलियों ने उन्हें ठीक कर लिया। लहर का दक्षे-
सज्जा छोड़ जीजी खूबसूरत रंगीन साड़ी में व नन्ही सी चुस्त कंचुकी में

'जादूगर सइयां, छोड़ मेरी बइयां,
हो गई आधी रात, अब घर जाने दो।'

एकाएक ! वह बार-बार मुझे ही लक्ष्य कर ताल-ताल कर गुनगुना रही थी? वह बड़ी खुश नज़र आती थी, लेकिन [illegible] से ज्यादा स्पष्ट था। जिंदगी [illegible] सारा समा मेरी आंखों के सामने नाच गया, शायद लोगों के सामने भी। हम दोनों ने एक दूसरे को एक बार आंखें उठाकर देखा व फिर नज़रें नत हो गईं।

मुन्नी गीत समाप्त कर चुकी तो मैंने उसकी तारीफ की व पाकेट खोलकर एक नोट देकर शाबाशी दी व अपना प्रेम दिखाई।

मुन्नी का गीत समाप्त होते ही कल्पना ने गाया :

'भीगा-भीगा है समां, ऐसे में है तू कहां।'

इतनी कच्ची उम्र, इतनी बढ़िया गुहार व दर्दीले कण्ठ पर सभी हैरान थे। उसका गीत चल ही रहा था कि मुन्नी ने मिश्री के छोटे-छोटे टुकड़े मेरी ओर बढ़ाए। जब मैं उसकी हथेली से लेने लगा तो उसने अपनी मुट्ठी बन्द कर ली। मैंने ज़रा ज़ोर दिया तो उसने और ज़ोर से भींच ली, इस पर मैंने उसकी सारी हथेली अपनी मुट्ठी में लेकर ज़ोर से दबा दी।

'हाय, राम, मर गई,'' कहकर वह चीख उठी। गीत क्षण भर को रुक गया। उसने जो मुट्ठी खोली तो कोमल हथेली लहू-लुहान हो गई थी। मिश्री की डली के धारदार किनारे कोमल हथेली व उंगलियों में चुभ कर धंस गए थे। वह झट उसे लेकर वहां से उठ गई। जाते-जाते कहती गई, 'बड़े जालिम हो तुम !'

मैं मुस्कराकर रह गया।

अब नृत्य की बारी आई। नृत्य का आरम्भ करना था बीजी को, क्योंकि संगीत का आरम्भ किया था सुरेन्द्र ने। बीजी को नृत्य करना ही पड़ेगा, इस ख्याल से सुरेन्द्र की आंखें चमक उठीं। बीजी ने काफी मनौवल की, मगर उनकी सहेलियों ने उन्हें ठीक कर लिया। खद्दर का ढकोसला छोड़ बीजी खूबसूरत रंगीन साड़ी में व नन्ही सी चुस्त कंचुकी में

पार्वती का वेश धारण कर पधारीं। उनका 'भारत-नाट्यम्' हुआ, फिर कहने-सुनने से 'कत्थकली' भी।

जीजी के नृत्य पर सभी वाह-वाह कर उठे। जीजी तो भारतीय नृत्य की पारंगत कलाकार ठहरीं, फिर क्या कहने। जीजी के बाद कल्पना का नृत्य हुआ। उठती उम्र में इतनी सिद्ध-हस्तता, इतना कौशल, वह थिरकन, वह उभार, वह आंखों का जादू,''बस, सब कुछ इतना सुन्दर था कि कुछ कहते नहीं बनता।

इस नृत्य के समय नीरा व सुम्मी दोनों मेरे पास ही थीं। सुम्मी ने हल्की सी चिकोटी काटी मेरी कोख में। मैंने कहा, "अभी जी नहीं भरा, सुम्मी?"

"आप होश में हैं क्या? मैंने तो समझा था, आप होश ही में नहीं।"

"होश धीरे-धीरे गुम हो रहा है; तुम घबराओ नहीं। तुम्हारी भी बारी आयगी, तब देखूंगा।"

"मैं तो आज नहीं नाच सकती, भाई साहब, मेरे हाथ......"

"सभी तो ठीक हैं। तुम्हारे नृत्य में दर्द व कमाल विशेष होगा, तुम्हें अपना नृत्य दिखाना ही पड़ेगा।"

"हां, भाई साहब, आपको जरूर दिखाऊंगी; मगर आज नहीं, कल। मेरे घुँघरू भी नहीं हैं।"

"मगर यहां तो और घुँघरू हैं। बांध लेना किसी के।"

"सुम्मी के घुंघरू चांदी के हैं, कुमार, बड़ी मीठी ध्वनि आती है," नीरा बोली।

"ओह, यह बात है? अच्छा, नीरा, तुम इसके घर से किसी को भेज-कर घुंघरू मंगवा लो और देखो, सुम्मी, तुम यों न मानोगी तो मैं जीजी से कहला दूंगा।"

"नहीं, नहीं, मेरे लिए आपकी बात सब से ऊपर है; मैं जरूर नाचूंगी, मगर एक शर्त पर।"

"वह क्या?"

"झुकिए, कान में कहूँ।"

कान में उसने मेरे कुछ कहा, मगर नीरा ने सुन लिया। इसलि बात समाप्त भी न हुई थी कि उसने सुम्मी का दूसरी ओर का कान पक कर खींचा और बोली, "यह शैतानी न चलेगी, मेरी सुम्मी रानी!"

"चलेगी क्यों नहीं? क्यों, भाई साहब?"

"जरूर, तुम ठीक कहती हो।"

"क्या?" नीरा ने बड़े ध्यान से मेरी ओर ताककर कहा।

"ठीक तो है।"

"क्या, कल रात को जी न भरा?" उसने बहुत आहिस्ते से कहा और मेरी ओर एकटक ताकने लगी, जैसे आँखों की ही राह कह रही हो, "अब क्या देखना शेष है, मेरे सरताज?"

"उहुँऊ......" मैंने कहा।

"जैसी तुम्हारी मर्जी!" कहकर वह उठ गई।

नीरा व सुम्मी के उठ जाने पर मेरा जी न लगा। इस बीच एकाध और कलाकारों के कण्ठ-स्वर सुनने को मिले, तब तक सुम्मी पूरी सज-धज के साथ नृत्य के वेष में आगई। उसने भी 'कथकली' दिखाया। उसके अंगों की मरोड़ व लचक, उन पर उसका शासन, अंग-प्रत्यंग का लचीलापन, फिर रह-रहकर नये-नये उरोजों का फड़फड़ाना, उठना, सब कुछ बड़े कमाल का था। समाप्त होते ही मैंने उठकर उसे शाबाशी दी व हाथ पकड़कर पास में बिठा लिया।

सुम्मी के बाद नीरा आई, नीचे से ऊपर तक शरबती रंग के झीने-झीने वस्त्र में ढकी हुई। उस झीने वस्त्र के भीतर से भी उसका दहकता हुआ श्वेत तन जगमगा रहा था।

नीरा ने वह नृत्य आरम्भ किया, जो 'सलोमे' नाम की अंग्रेजी फिल्म में किया गया है। नृत्य आरम्भ हुआ। ऊपर का वस्त्र नृत्य की तेजी के [illegible]थ हिलने लगा। हवा में लहरें उठने लगीं। कभी लगता, सरिता की लहरें [illegible]-गिरती हैं; कभी मालूम होता, तेज हवा के झोंकों से किसी का दुपट्टा

फहरा रहा हो; कभी आभास होता, कामदेव की विजय-पताका हवा में लहरा उठी हो; कभी लगता, कोई सर्पिणी केंचुल छोड़ रही हो व छोड़ते समय मारे दर्द के भयानक रूप से विह्वल हो।

झीने वस्त्र के उठने, गिरने, लिपटने, लहराने से नीरा के शरीर के विभिन्न अंग रह-रहकर खुलते व छिपते थे। एक अजीब आँख-मिचौनी चल रही थी। मेरी बाहें फड़क रही थीं, होंठ फड़क रहे थे, नसें तन गई थीं, तन का सारा रक्त धमनियों में, शिराओं में झनझना उठा था।

अन्त में नीरा ने वह झीना-झीना दुपट्टा एक झटके में मेरे ऊपर फेंक दिया। सब के सब आश्चर्य से ताकने लगे। अब रह गई एकमात्र कंचुकी व झीना-झीना महीन विलायती घाघरा। नीरा का लगभग सारा तन इस प्रकार खुला था और वह मस्त मयूर की तरह निरंतर नृत्य किए जा रही थी। कभी-कभी पांवों के उठने पर उसकी गोरी-गोरी सुडौल, सुनहरी रानें तक दिख जातीं। उसका थिरकता हुआ विशाल श्वेत खुला वक्ष, लचीली गोल-गोल लम्बी बाहें और उनका मरोड़, आंखों में नाचता नशा, होठों पर अनन्त पिपासा, कपोलों की व्यग्रता""""बस, वह समां आज भी आंखों में बसा है, कुछ कहते-सुनते नहीं बनता। क्या योगीराज शिव व्यग्र हुए होंगे विष्णु के मोहिनी रूप पर!

मैं व्यग्र हो उठा, छटपटाने लगा। आस-पास के सभी उपस्थित लोग भूल गए। यहां तक कि मुम्मी भी भूल गई, कल्पना भी भूल गई, बस एक ही सूरत, निरन्तर थिरकती, आंखों में, दिल में बस गई, 'नीरा, नीरा, नीरा।'

जी में आता, अभी-अभी उठकर नीरा को अपनी भुजाओं में दबोच लूं, अपनी विशाल छाती में कस लूं। नीरा बार-बार आहत मृगी सी ताकती, जैसे आंखों-आंखों में कह रही हो, 'निर्दयी कहीं के! कब तक तरसाओगे?'

इसी समय जीजी ने आकर एक तार मेरे हाथ में दिया व बोली धीरे से, "अब तो कोई आपत्ति नहीं? काश, यह शाम को आया होता।"

मैंने तार को पढ़ा। पढ़ते ही मेरा उल्लास, मेरी गरमी, मेरा उत्साह

ब्यालीसवां परिच्छेद

नीरा की व्यथा

रात के लगभग दो बजे थे। पूनम का चांद भरा-पूरा पश्चिम दिशा से करुणा की वर्षा कर रहा था। धरती-आकाश, पेड़-पौधे, सभी दूध में स्नान कर रहे थे। अमृत-वर्षा निरंतर जारी थी और सब को सराबोर कर रही थी।

बंगले की छत पर एक चटाई डाल, ऊपर से तोशक व श्वेत चादर बिछा, तकिये के सहारे मैं बैठा था और नीरा श्वेत साड़ी व सादे ब्लाउज में केश बिखराए चुपचाप मेरे पांव पर सिर डाले अधलेटी पड़ी थी। हम दोनों दहकते, तपते चांद को देखते थे, जिसकी निरन्तर अमृत-वर्षा भी हमारी तपन को शान्त करने में असमर्थ थी।

दोनों चुपचाप, मौन बड़ी देर तक पड़े रहे। फिर मेरी गोद में ही करवट बदलती हुई वह बोली, "कुमार, मैं पिशाचिनी हूँ। देखो, जेन को खा गई न? अब तुम सावधान रहना, कहीं तुम्हें भी न···।"

मैंने नीरा के मुँह पर हाथ रखते हुए कहा, "छिः छिः, कैसी बातें करती हो, रानी, अशुभ बातें मुँह से नहीं निकालते।"

"हां, ठीक ही तो कहते हो। अशुभ कर्म सब करते हैं, समझदार अशुभ बातें मुँह से नहीं निकालते।"

"नहीं, रानी, तार का यह अर्थ तो नहीं कि जेन ने अपना अन्त ही कर लिया।"

"तार का अर्थ तुम खूब अच्छी तरह से जानते हो, कुमार: तुम भी जानते हो व मैं भी जानती हूं, और कोई नहीं जानता, कोई नहीं।"

धीरे-धीरे आंचल की हर लहर के साथ चढ़ेगा, व्याप्त होगा। ना, ना, मेरी 'मिट्टी' का अन्त हो जायगा, मेरे सरताज, दूर-दूर, बहुत दूर!"

"रानी, तुम कैसी पागलों जैसी बातें कर रही हो!"

"काश, मैं पागल ही हो जाती। ये होश-हवाश, ये स्मृतियां सभी गुम हो जातीं, खो जातीं। एक मैं हूँ जो तड़प-तड़पकर तुम्हें दुःखी कर रही हूँ, और एक तुम हो जो महान् शंकर की तरह हलाहल पीकर भी न होश खोते हो, न शिवत्व। तुम सचमुच देवता हो, मेरे कुमार, मेरे सिद्धार्थ, मेरे बुद्ध!" इतना कहते-कहते वह फिर मेरे चरणों में लुढ़ककर लोटपोट हो गई। उसके केश व पीठ पर हाथ फेरते हुए मैं धीरज बंधाता रहा।

कुछ देर में जरा शान्त होकर बोली, "सुना है, नागिन अपने बच्चों को स्वयं खा जाती है, कुमार!"

"नागिन नहीं, नाग, रानी!"

"खैर, यहां तो 'कुम्हार' ही 'मिट्टी' को खा गया। 'नागिन' अपने अण्डे-बच्चे को खा गई, नाग को भी खा गई!"

मैं भला ऐसी उखड़ी-पुखड़ी बातों का क्या जवाब देता? अपने दिल का दर्द अपने ही भीतर पीता रहा। यदि जरा भी जाहिर होने देता तो यह नीरा तुरन्त अपना अन्त कर देती। कुछ देर मौन चलता रहा। फिर वही बोली, "मन में आता है, कुमार, कि आग लगा दूं इस सारी दुनिया में। सब धुल्लु जलकर क्षार हो जाय। उसी में मैं भी जल मरूं!"

"और तब मैं वही क्षार लपेटे, गले में सती की मुण्डमाला पहने, त्रिलोक में गाता फिरूं, क्यों?"

उस विषादपूर्ण वातावरण में भी उसके होठों पर एक क्षीण मुस्कान थिरक उठी। मैं निहाल हो गया। मुस्कान के ही बीच उसकी आवाज़ आई, "इतने ऊंचे मेरे भाग्य कहां, मेरे महादेव!"

"तुम स्वयं एक में ही सरस्वती, लक्ष्मी व सती का अवतार हो, रानी, इसे क्यों भूलती हो!"

मैं चुप ही रहा। भला, क्या उत्तर देता ? चुपचाप उसके केशों
हाथ से सहलाता रहा। कुछ रुककर वही बोली, "कल की एक रात थ
एक चांदनी थी और आज की भी यह एक रात है, एक चांदनी है !"

"समय सदा एक सा नहीं रहता, रानी।"

वह कुछ न बोली। मौन चलता रहा। अन्तरिक्ष पर कुछ कुहासा स
कुछ धुँधला बना रहा था। आज फिर उसकी दृष्टि अन्तरिक्ष पर टि
हुई थी।

"इतनी तपन होने पर तो लोहा भी पिघल जाय, कुमार, पर सोने क
यह तन पिघलकर समाप्त क्यों नहीं होता ?"

"रानी, तुम क्यों भूल जाती हो कि 'कुम्हार' का अन्त 'माटी' क
अन्त है ? क्या तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा भूल गई ?"

"नहीं, कुमार, भूली तो नहीं। तुम्हें याद है, जरा सा भ्रम होते ह
जेन कुतुब पर से छलाग मार रही थी। अब क्या वह अभी तक इस
संसार में होगी ?"

"होगी, रानी, जरूर होगी, वह बड़ी समझदार लड़की है। तुम उसकी
चिन्ता न करो।"

"चिन्ता न करूं ?" उसने दांत पीसते हुए कहा, "जी में आता है,
अभी-अभी इस जीजी का गला घोंट दूं और फिर अपना भी अन्त कर दूं।
छुट्टी लग जाय !"

उसका सारा शरीर तन गया, अकड़ गया। मैंने आश्वस्त करते हुए
उसकी पीठ पर हाथ फेरा। तब वह सिसक-सिसककर रोने लगी और मेरे
चरणों पर अपना सिर पटकती हुई बोली, "मेरे देवता, मैंने तुम्हें दुःख
ही दुःख दिया। अब यह कलंक जन्म-जन्म न छूटेगा।"

"नहीं, रानी, नहीं, यों उखड़ी-उखड़ी बातें नहीं करते !"

एकाएक वह उठ बैठी व बड़े भयभीत स्वर से बोली, "अब आज से
तुम दूर-दूर रहना, मेरे राजा, दूर-दूर ! मेरी छाया विषैली है। मैं सचमुच
नागिन हूं। मेरे आंचल की छाया में तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। विर

धीरे-धीरे आंचल को हर लहर के साथ चढ़ेगा, व्याप्त होगा। ना, ना, मेरी 'मिट्टी' का अन्त हो जायगा, मेरे सरताज, दूर-दूर, बहुत दूर!"

"रानी, तुम कैसी पगलों जैसी बातें कर रही हो?"

"काश, मैं पागल हो हो जाती। ये होश-हवाश, ये स्मृतियां सभी गुम हो जातीं, खो जातीं। एक मैं हूँ जो तड़प-तड़पकर तुम्हें दुःखी कर रही हूँ, और एक तुम हो जो महान् शंकर की तरह हलाहल पीकर भी न होश खोते हो, न विकल्प। तुम सचमुच देवता हो, मेरे कुमार, मेरे सिद्धार्थ, मेरे बुद्ध!" इतना कहते-कहते वह फिर मेरे चरणों में लुढ़ककर लोटपोट हो गई। उसके केश व पीठ पर हाथ फेरते हुए मैं धीरज बंधाता रहा।

कुछ देर में जरा शान्त होकर बोली, "सुना है, नागिन अपने बच्चों को स्वयं खा जाती है, कुमार?"

"*नागिन नहीं, नाग, रानी।*"

"खैर, यहां तो 'कुम्हार' ही 'मिट्टी' को खा गया। 'नागिन' अपने अण्डे-बच्चे को खा गई, नाग को भी खा गई।"

मैं भला ऐसी उखड़ी-पुखड़ी बातों का क्या जवाब देता? अपने दिल का दर्द अपने ही भीतर पीता रहा। यदि जरा भी जाहिर होने देता तो यह नीरा तुरन्त अपना अन्त कर देती। कुछ देर मौन चलता रहा। फिर वही बोली, "मन में आता है, कुमार, कि आग लगा दूं इस सारी दुनिया में। सब कुछ जलकर क्षार हो जाय। उसी में मैं भी जल मरूं!"

"और तब मैं वही क्षार लपेटे, गले में सती की मुण्डमाला पहने, त्रिलोक में गाता फिरूं, क्यों?"

उस विषादपूर्ण वातावरण में भी उसके होठों पर एक क्षीण मुस्कान थिरक उठी। मैं निहाल हो गया। मुस्कान के ही बीच उसकी आवाज आई, "इतने ऊंचे मेरे भाग्य कहां, मेरे महादेव!"

"तुम स्वयं एक में ही सरस्वती, लक्ष्मी व सती का अवतार हो, रानी, इसे क्यों भूलती हो?"

सो ये ही। मैंने सम्भालकर उसे उठाया और वक्ष के पास लाया। टप-टप मेरे आँसू उसके मुख पर बिखर गए। मैंने उसका भाल चूमा, आँखें चूमीं, कपोल चूमे। इतना होते-होते उसकी आँखें भी बरसने लगीं, पर मैं रुका नहीं। उसके अधर चूमे, बार-बार चूमे व उसे अपनी भुजाओं में भरकर वक्ष से चिपका लिया।

कुछ देर यों ही पड़े रहने पर मेरे आंसू थमे, उसके भी। वह मौन रही व कब ठंडी हवा के झोंके से उसकी पलकें लग गईं, कुछ पता न चला।

नींद आते ही मैंने उसे वक्ष से उतारकर बिस्तर पर लिटा दिया। हां, उसका सिर अपनी गोद में, अपनी रानों पर टिकाए रखा। भय था, बिल्कुल हटा देने पर जग जाती।

मुझे थोड़ी सी सांस मिली, संतोष भी। नीरा को नींद आगई, इससे बड़ी बात मेरे लिए और क्या हो सकती थी। इस पल भर की नींद के लिए मैं क्या नहीं दे सकता था?

चांद अब भी व्यंग के साथ हम दोनों पर मुस्करा रहा था। चांदनी जब नीरा के इस आंसू से धुले मुख पर पड़ती थी तो इतनी सुन्दर लगती कि क्या कहूं। यह सौंदर्य भी कितना करुण था? कितना मोहक?

सचमुच लगता था, किसी ने सरस्वती की सारी विद्या लूट ली हो और वह चरणों में यहा लुटी पड़ी हो; किसी ने लक्ष्मी का सारा ऐश्वर्य लूट लिया हो और वह लुटी हुई मेरे चरणों में पड़ी हो।

इतने बड़े सदमे के बाद क्या यह सोने की काया जीवित बनी रहेगी? मुझे तो सन्देह होने लगा। यह प्यार की पुतली क्या अपने प्राण रखेगी?

ओह, इन तीन दिनों में क्या से क्या हो गया और इस सारे काण्ड की जड़ में मैं ही अभागा था। मेरी आंखों में भला नींद कहां थी। मैं बैठे-बैठे कभी अनन्त आकाश के छोर पर उठते-गिरते, घुमड़ते कुहासे को देखता, कभी डूबने की तैयारी करते चांद की ओर, और कभी इस चन्द्र-किशोरी को, जो मेरे चरणों में लोट रही थी।

बैठे बैठे मैं निरन्तर अपनी उधेड़-बुन में लगा रहा। वह पहली सं
जब नीरा के प्रथम दर्शन हुए थे, तब से लेकर 'तुरदिल' की घट
साथ-साथ नृत्य और उसका वेमुख करने वाला अन्त, कुतुब हमारे प
का अमर प्रतीक—समाधि ! वहां नीरा की चूड़ियों का तड़क जाना,
अनन्त विरह-व्यथा, आसाम-यात्रा, शीला का अनोखा सामंजस्य,
कुछ एक-एक करके आता व चला जाता।

नीरा के अनुपम सौंदर्य की छवि, मेरी व्यग्रता, जेन का भाग
दिल्ली की पहली सन्ध्या को नीरा का मेरे चरणों पर सोना, उस
करुण अन्त, कल रात की प्यारी-प्यारी विह्वलता और आज का
सजीव करुणा का पांवों पर लुढ़कना—सब कुछ चित्र-पट पर उड़ते-भाग
चित्रों सा बनता, मिटता और फिर-फिर बन जाता था।

जेन ने क्या कर डाला ? जेन से अब भेंट न होगी, न होगी। य
जीजी भी कितनी अनाड़ी निकलीं। इसी ने जेन से पूछा होगा। भल
इसमें पूछना क्या था ? जेन के तप, त्याग व प्रेम की कोई थाह
सकता है ? वह मेरे लिए क्या नहीं दे सकती ? इस अनुमति में भला क्
धरा था ? फिर भी······

जेन से अब भेंट न होगी, न होगी !

मेरा मन एक नई व्यथा से भर उठा। जी कराह उठा। आत्म
कांप उठी !

यदि कहीं जेन ने अपना अन्त ······!

इसी उधेड़-बुन में सवेरा हो चला। पक्षी चहकने लगे। चाद क
आंखें मारे नींद के अलसा गईं, लाल हो गईं। उधर ऊषा ने लाल
ओढ़नी का घूंघट हटाया, एकाध रहे-सहे तारे भी डूब चले। मेरी आंखें
में नींद न आई, न आई।

मैंने आहिस्ते से नीरा का सिर पास पड़े तकिए पर टिका दिया और
उठकर नीचे चला। उसी समय पास के पेड़ों की झुरमुट से कोयल ज़ोर-
ज़ोर से पुकार उठी 'पी-कहां ? पी-कहां ?' मैंने एक बार फिर निगाह भर-

फर सोती हुई नीरा की कमल की पंखड़ियों सी मुँदी पलकों को देखा, सुन्दर सौम्य मुख को देखा, उठती-गिरती छाती को देखा, इस लुटी हुई इन्दिरा को लोटते हुए देखा, सोती हुई गोपा को देखा व नीचे चल पड़ा।

नीचे का दृश्य भी निराला था। 'ड्राइंगरूम' में फर्श की कालीन पर सब तकिया लगाए या बिना तकिये के सोए पड़े थे। जीजी व नीरा के बिस्तर पर भी कोई सोया हुआ था। मेरे बिस्तर पर मुन्नी व कल्पना एक दूसरे की बाहों में कसे पड़ी थीं। तबला, सरोद, वीणा, सितार, बेला, सारे साज-सामान इधर-उधर तितर-बितर पड़े थे। सुरेन्द्र ने शायद जीजी के पलंग पर दखल जमाया था और नीरा के पलंग पर उसकी दो सहेलियां दखल जमाए पड़ी थीं। घर भर में सन्नाटा छाया हुआ था।

इस समय भी यदि कोई जाग रहा था तो वह थीं जीजी। कपोलों को हथेली पर टिकाए एक आराम-कुर्सी पर चुपचाप पड़ी थीं। जीजी ने ज्यों ही मुझे देखा, आंखें उठाईं।

जीजी की आंखें देखते ही लगा, ये रात भर आंसुओं से धुलती रही हैं, कुछ लाल-लाल, कुछ सूजी-सूजी सी, कुछ खोई-खोई सी।

मैंने जीजी को संकेत से अपने पास बुलाया। वे आईं और 'भैया' कहकर ऐसे अटक गईं जैसे गला भर आया हो। मैंने जीजी को बाईं भुजा में बाईं ओर भरते हुए कहा, "जीजी, तुम ज़रा भी चिन्ता न करो। यह तो अपना-अपना भाग्य है। तुमने सब कुछ ठीक ही किया पर मेरा दुर्भाग्य मिट न सका।"

"नहीं, भैया, मैंने ......" कहते-कहते जीजी की आंखें डबडबा गईं।

मैंने तुरन्त कहा, "अच्छा, काम की बात सुनो। मैं अभी-अभी सवेरे के 'प्लेन' से कलकत्ता जाऊंगा। जेन की खबर लेनी ही होगी। मैं मुँह-हाथ धोता हूँ, तब तक तुम फोन करके जगह आरक्षित करालो।"

मैंने झटपट मुंह-हाथ धोया व ठंडे जल से भरे टब में कूद पड़ा। जी भरकर स्नान किया। तबियत में थोड़ी ताज़गी आई। वस्त्र बदले, धुली पैंट व 'हवायन शर्ट' पहनकर तैयार हो गया। जीजी ने आकर बताया

मेरे पास कोई उत्तर तो था नहीं। मैं उस सुप्त हुई प्यार की प्रतिमा को देख रहा था और कोयल थी कि निरन्तर 'पी कहां, पी कहां' की रट लगाए थी। सुनकर बहुत धीरे से नीरा बोली, "सुनते हो यह पुकार!"

"सब कुछ सुनता हूँ, रानी!"

"फिर रुको मैं भी ......!"

इतने में जीजी चाय की 'ट्रे' लिए आ गईं। जीजी को देखते ही नीरा के तेवर बदल गए। करुणा की मूर्ति एकाएक क्रोध से कांप उठी। तुरन्त बोली तड़पकर, "तो यह सारा षड्यंत्र भी तुम ही कर रही हो, जीजी! कर लो, जी भर के कर लो, जीजी, न जाने किस जन्म का बदला तुम ले रही हो ......!"

मैंने देखा, जीजी मारे भय के थर-थर कांपने लगीं। लपककर जीजी के हाथ से चाय की 'ट्रे' मैंने ले ली व मेज पर रख दी। जीजी चुपचाप अपराधी की तरह खड़ी थीं और नीरा चण्डिका-रूप पकड़ती जा रही थी। उसकी भर्त्सना अभी भी जारी थी :

"ऊपर मुझे सोया देखकर जल्दी-जल्दी इनका सामान बांध-बूंध विदा कर रही हो। वाह री मेरी जीजी, वाह! ओह! तुम्हारे मन में जरा भी दया नहीं, जरा सा प्रेम नहीं, बहन का खयाल नहीं, क्यों, मेरा यों वध कर रही हो, जीजी? क्या रात से अभी तक तुम्हारा जी न भरा? जिस दिन से कुमार आए, उस दिन से तुम इन दोनों के पीछे पड़ी हो, आखिर क्यों? अब और मेरे पास क्या है, जीजी, जो तुम यों लूटने लगी हो, राम, राम इतने ......!"

"अब बस करो, नीरा, जीजी का अपमान सभी गुरुजनों का अपमान है," मैंने तेज होकर कहा।

इस शोर-गुल से मुन्नी व कल्पना की आंखें खुल गईं। कल्पना तो फिर करवट बदलकर सो गई, पर मुन्नी इस दृश्य को देखकर चकित रह गई। वह उठ बैठी व फिर खड़ी हो गई।

उधर से मि० सहाय भी उठ आए। आते ही बोले, "क्या सवेरे-

सवेरे ऊधम मचा रखा है, नीरा !"

बस अब क्या था, 'ऊधम' शब्द सुनते ही नीरा का क्रोध भ
पड़ा। बोली, "ऊधम ! ऊधम मैंने मचा रखा है, डैडी, या आपने
इस जीजी ने मचा रखा है ? मेरा सर्वस्व लूट लिया, ऊपर से कहते
ऊधम मचा रखा है मैंने !"

"चुप रहो, नीरा, क्या बकवास लगाए है ?" मि० सहाय कड़क उठे

मगर आज नीरा दबने को बिल्कुल तैयार न थी। तमककर बोल
"बकवास नहीं, डैडी, कान खोलकर सुन लो, और तुम भी सुन लो, जी
मैं कलकत्ता जा रही हूँ और अभी कुमार के साथ। देखती हूँ, मुझे कौ
रोकता है ?"

"मैं रोकूंगा, नीरा, मैं ! तुम हरगिज़ कलकत्ता नहीं जा सकती
जहां इस बंगले से तेरे कदम उठे कि फिर लौटकर न आ पायेंगे। सो
समझ ले अच्छी तरह से, तुझे तो अठारह लाख का ......।"

"डैडी, अपनी दुनियादारी अपने पास रखो। मैं आपको खूब जान
हूं। इसी प्रकार आपने मेरी मां का भी......।"

"नीरा !" मि० सहाय गरज उठे।

मैंने जीजी को संकेत किया। वे डैडी को लेकर कमरे से चली गई
उसके जाते ही नीरा एक आराम कुर्सी पर धम्म से गिरकर सिसक
सिसक कर रोने लगी। मुम्मी ने उसे सम्भाला। मैं हतप्रभ सा सब कुछ
देखता रह गया।

चलने का समय आ पहुंचा। चाय धरी की धरी रह गई। मैंने नीरा
की बाह पकड़कर उठाया व बोला कि वह साड़ी बदलकर तैयार हो जाय
व चले मेरे साथ। वह खुश हो गई। आंखें चमकने लगीं, पांवों में
बिजली की गति आ गई।

जल्दी-जल्दी उसने मुंह-हाथ धो कपड़े बदल डाले। मुम्मी भी जल्दी-
जल्दी तैयार हो गई। नीरा ने थोड़े से कपड़े व अपने आभूषण एक
'सूटकेस' व एक 'अटेची' में डाल लिए। हम तीनों गाड़ी में बैठे पीछे।

ड्राइवर गाड़ी चला रहा था।

हमारे विदा होते समय 'पोर्टिको' में जीजी व डैडी खड़े थे। मैंने विदा का हाथ दिया तो उन्होंने प्रत्युत्तर दिया परन्तु जब नीरा ने भी वैसा ही हाथ दिया तो उन्होंने प्रत्युत्तर न दिया।

ओह, बंगले से 'एयर पोर्ट' के इस थोड़े से सफर में नीरा की खुशी देखने ही लायक थी। लगता था, उस का रोम-रोम मुस्करा रहा है, अंग-अंग हंस रहे हैं, खुशी के आधिक्य से तन कांप-कांप उठता है, हिल-हिल जाता है, आंखें हैं कि अपने में समाती नहीं। कभी लगता, नीरा मोटर में से ही उछलकर हवा में उड़ जायगी। सुम्मी इस सारी घटना से भयभीत लगती थी। उसे शायद कुछ भी सूझ न रहा था, क्या ठीक है, क्या बे ठीक?

मैं गम्भीर था पर प्रसन्न दिखने का बराबर प्रयत्न कर रहा था। 'मैं नीरा को नहीं ले जाना चाहता।' ऐसी भनक पड़ने पर, जरा सा आभास होने पर भी नीरा लौट पड़ती, चाहे मारे व्यथा के उसके प्राण ही क्यों न निकल जाते।

रास्ते में जरा अपने को काबू में करके बमुश्किल वह बोल पाई, "सचमुच हर रात के पीछे दिन होता है, कुमार!"

"मैंने क्या गलत कहा था?" मैं मुस्कराया।

"ओह, पहले ही सफर में तुम मुझे इस प्रकार ले गए होते तो इन छः महीनों की मृत्यु-वेदना से मैं भी बच जाती व तुम भी!"

हर चीज़ तभी होती है, रानी, जब उसका समय आता है। पहले नहीं, पल भर भी पहले नहीं।"

"क्यों, सुम्मी, तुम कुमार से सहमत हो?"

"मैं यह सब नहीं समझती, नीरा।"

"आज तुम गुम-सुम क्यों हो, सुम्मी? देखो, तुम्हारी सखी आज अपने मन के देवता के साथ जा रही है, सदा के लिए। अब ये पाव लौटकर नहीं आयेंगे पिता के घर—डैडी की आज्ञा है, बाबुल का घर

सदा के लिए छूट रहा है, सुम्मी, और तुम ऐसी घड़ी में गुम
पड़ी हो !"

"क्या करूँ, नीरा, मन में जो कुछ देखती हूँ, मेरा हाल कुछ
ऐसा हो गया है। जो चाहता है, बस फूट-फूट कर रोऊँ पर न जाने
रुलाई नहीं आती।"

"छिः, तुम्हारी तो मति मारी गई है। एक बार जी भर कर देख
अपनी सखी को और उसके देश को। क्या पता फिर कभी यह
साथ-साथ देखने को मिले, न मिले !"

इसी प्रकार की बातों में रास्ता कट गया बड़ी तेजी से। हवाई अड्डे
पर आते ही मैंने लपककर पूछा, "कलकत्ता के लिए एक 'सीट'
और होगी ?"

"जी नहीं, अभी-अभी आखिरी 'सीट' बुक हो गई।"

"फिर मेरा टिकट 'कैन्सल' कर दीजिए।"

"जी, यह भी नहीं हो सकता। जहाज़ अब पन्द्रह मिनट के भीतर
छूटने वाला है। आप जल्दी करें।"

मैंने नीरा की ओर देखा। लगा, जैसे नीरा डूब रही है। उसकी
आँखें बुझ रही हैं। मुझे कुछ भी सूझ न रहा था। कुछ देर असमंजस में
पड़ा रहा। इतने में नीरा एक सोफे पर धम्म से जाकर पड़ रही।

मैंने सुम्मी को अलग बुलाया व पूछा, "सुम्मी, तुम अपनी सखी को
मेरी अनुपस्थिति में सम्भाल लोगी ? यदि तुम ऐसा वचन दो तो मैं कुछ
निश्चिन्त होकर कलकत्ता जाऊँ।"

सुम्मी मौन थी, सोच रही थी क्या उत्तर दे। इतने में 'काउण्टर-
क्लर्क' ने मेरी ओर जिज्ञासा से देखा। मैंने सुम्मी से फिर पूछा, "बोलो,
सुम्मी, तुम मेरी धरोहर को सुरक्षित रख सकोगी ? मेरी एक मात्र प्रार्थना
व भीख है तुम से। बोलो, मेरी धरोहर रख सकोगी ? समय आने पर
लौटा सकोगी ? देर हो रही है, सुम्मी। 'प्लेन' अभी-अभी उड़ेगा।"

"एक शर्त पर, भाई साहब।"

"वह क्या ? जल्दी बोलो।"

"जब मैं सम्भाल न सकूंगी तो आपको तार करूंगी। मेरे तार पर आप अवश्य आकर अपनी धरोहर सम्भाल लें।"

"अच्छी बात है, मंजूर।"

और मैंने लपककर 'काउण्टर क्लर्क' को टिकट वगैरह दिया व सामान का वज़न कराया। 'प्लेन' पर जाने का आदेश इसी बीच हो गया।

मैं दौड़कर नीरा के पास गया। उसे अपनी भुजाओं के सहारे उठाकर साथ-साथ ले चला। परन्तु वह थी कि जैसे डूब रही थी। 'रेलिंग' के सहारे उसे खड़ा किया। विदा की घड़ी आ पहुँची। वह 'रेलिंग' के इस पार व मैं उस पार।

मैंने निःसंकोच सुम्मी के सामने ही नीरा का भाल चूम लिया व बोला, "हम शीघ्र मिलेंगे, रानी, प्यार में भरोसा रखो।"

"जिन्दगी के इस पार या उस पार।"

क्षीण-स्वर में वह बोली। मैंने हल्की सी चपत उसके गाल पर लगाई, और हम दोनों के चेहरे पर न जाने कैसी व्यथा में नहाई मुस्कान चमककर बुझ गई। जाते-जाते मैंने सुम्मी का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "मेरी धरोहर का ध्यान रखना, सुम्मी।"

"तुम भी वायदा न भूल जाना भाई साहब।"

और हाथ छोड़ मैं 'प्लेन' में जा बैठा। 'प्लेन' उड़ चला मेरे प्यार की नगरी से।

और नीरा?

कहीं इस 'प्लेन' में आग ही लग जाय तो। चलो! मेरा भी अन्त हो जायगा, मैं भी वहीं पहुंच जाऊंगा जहां नीरा व जेन पहुँच रही हैं।

न जाने क्यों अपनी बर्बादी व नुकसान की भावना से मन को संतोष मिलता, मगर केवल सोचने से कुछ थोड़े ही हो जाना था!

'होस्टेस' दैनिक-पत्र दे गई थी जो पास में पड़ा था। उस पर नज़र गई तो ऊपर ही दिखाई दिया — थाई देश में विमान-दुर्घटना — पन्द्रह की मृत्यु!

सोचने लगा, बार-बार, विमान दुर्घटना, 'क्रैश — क्रैश — क्रैश!' कहीं मेरा भी 'प्लेन'.........।

इस उधेड़-बुन में मेरा तो सिर फटने लगा। इसका कहीं कोई अन्त तो दिखता न था, मगर ज़रा देर में मेरी आखें मुँदने लगीं व मैं धीरे-धीरे सो गया, रात भर की थकावट व जागरण के कारण प्रकृति ने अपनी कमी को पूरा करने के लिए तन को मजबूर किया।

जिसके मन में तूफान चल रहा हो, बवण्डर उठते हों, जो सर्वनाश के मुँह पर बैठा हो, उसे क्या नींद कभी निर्बाध-गति से आती है?

मन ने माना नहीं, नींद में भी उसकी उधेड़-बुन आरम्भ हो गई। मैं स्वप्न देखने लगा। ओह, कितना मोहक था वह स्वप्न! और कितना दर्दीला हो गया उसका अन्त!

मैंने देखा कि आश्विन का मास है। आकाश स्वच्छ, सुन्दर, धुला हुआ सा है। महालक्ष्मी-पूजन का पर्व है। आश्विन की पूर्णिमा को— पूर्णिमा की वह चटकीली रात, जिसमें कैमरे से चाँदनी में फोटो आ जाते हैं, पूर्णिमा की वह रात, जिसमें खीर खुले आकाश में रखते हैं और वह अमृत-मय हो उठता है।

पूर्णिमा का चाँद था कि सिर पर चमक रहा था। आधी रात थी, तन सिहराने वाली मन्द-मन्द बयार डोल रही थी। धरती-आकाश सब कुछ दूध में नहा रहे थे। और दल के दल पुरुष, स्त्री, बालक मानसरोवर में स्नान करने आरहे थे। मैं भी जा रहा था। यह मानसरोवर एक

तालाब था, जिसमें स्नान करने से इस पर्व को अमृत-स्नान का
मिलता था।

तालाब पर पहुँचते ही मैंने देखा कि यह श्वेत संगमरमर का
है। चारों ओर लगभग पचास सीढ़ियां बनी हैं, जिन पर ऊपर चढ़ना
है। चाँदनी रात में ये श्वेत सीढ़ियां इतनी चमकती थीं, पावों-तले इ
शीतल व सुखकर लगती थीं कि आभास होता, ये स्वर्ग का सोपान हैं।

सीढ़ियों के ऊपर एक 'प्लेटफ़ॉर्म' था, जो चारों ओर से तालाब
घेरे हुए था। लगभग बीस-पच्चीस फीट चौड़ा संगमरमर
'प्लेटफ़ॉर्म'। तालाब भी यही आधा मील चौड़ा व दो-तीन मी
लम्बा था।

'प्लेटफ़ार्म' के ऊपर चढ़ते ही चारों ओर नर-नारियों के झुण्ड दिख
दिए। कोई वृद्ध-वृद्धा न थे। सभी श्वेत, स्वच्छ वस्त्र पहन कर आ
थे। ये वस्त्र लम्बे व ढीले थे, तथा पवन के झोंकों पर लहरा उठते
विशेष कर युवतियों के।

तालाब था कि चाँदनी से धुलने व चाँद के चमकने से सचमु
क्षीर-सागर हो रहा था। हिलता, डोलता, काँपता, चमकता था। लगत
बस, प्रीति-कुण्ड है।

इस कुण्ड में स्नान का महात्म्य भी बड़ा सुन्दर था।
प्रीति-प्यार का जोड़ा आधी रात को इस तालाब में साथ-साथ स्नान क
उनकी प्रीति सदा बनी रहेगी व वे दोनों विष्णु-लक्ष्मी के समान धन
ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो जीवन भर क्षीर-सागर में स्नान का सुख प्राप्त कर
रहेंगे — बिछुड़न की बेला कभी न आएगी।

मैं स्वच्छ, महीन, श्वेत चुन्नीदार धोती पहने व एक श्वेत रेशम की
चादर कांधा सौंती डाले नंगे पांव इस 'प्लेटफ़ॉर्म' पर खड़ा था, व प्रसन्न
बदन खिल-खिलाते, हंसते हुए लड़के-लड़कियों के जोड़ों को आते देख
रहा था। मेरा मन भी मारे प्रसन्नता के भरा आ रहा था और सोच रहा
था, 'मेरे देश के सभी जन यों ही स्वस्थ हों, प्रसन्न हों, युवक-युवती एक

दूसरे से सच्ची प्रीति में बंधे हों, तो क्या कहना, देश सचमुच स्वर्ग हो जाय' ।

हवा के झोंकों से युवतियों की श्वेत साड़ियों के पल्ले लहरा उठते तो मन में गुद-गुदी पैदा होने लगती ।

एक बार मैंने अपनी ओर भी देखा । धोती के बंगालीनुमा पहनाव के कारण चारों ओर लहरें ही लहरें बनी थीं। काला सोती चादर डालने से भी वक्ष पर एक ओर लहरें बन रही थीं। ये लहरें न केवल धवल दूध सी चाँदनी में चमक रही थीं बल्कि पवन के झोंकों पर लहरा भी उठती थीं। पानी में ज़रा झाका तो देखा, मेरे केश भी कुछ बड़े व घुंघराले हैं, जो मुख के चारों ओर लहरा रहे हैं। मैं स्वयं अपनी आंखों में कोई 'ग्रीक हीरो' सा लगा। शायद कोई 'ग्रीक या रोमन' 'हीरो' की रोम में देखी हुई मूर्ति मन में बस गई हो ।

इतने में क्या देखता हूं कि पानी में एक बड़ा स्वच्छ, श्वेत व सुन्दर हंस तैरता आरहा है — शान्त धीमी गति से उसका तैरना, गरदन का मोहक मोड़ और उस पर सवार स्वयं सरस्वती, लम्बी श्वेत साड़ी में *लिपटी, जिसके श्वेत पल्ले व श्वेत चुन्नट हवा में लहरा रहे थे। ओह, कितनी मनोरम है छवि इस सरस्वती की! भरापूरा स्वस्थ शरीर, ग्रीशियन लड़की सी मुद्रा व शरीर की गठन, लहराते कुंतल—सोचने लगा, अरे यही तो वह रूप है, वह सौंदर्य है, जिसने सिरजनहार की भी मति मारी थी, जिसने ब्रह्मा को पागल बना दिया था।...... ... किन्तु आज तो महालक्ष्मी-पूजन की रात्रि है। यह सरस्वती क्यों? या लक्ष्मी ही तो नहीं? सवारी सरस्वती की ले ली हो रात-भर के लिए ।*

उस हंस के पास आने के साथ एक संगीत, एक मधुर स्वर हवा में गूंजने लगा, जो धीरे-धीरे तेज़ होता जाता था, कैसा है स्वर यह!

यह तो कोई नैसर्गिक स्वर-लहरी जान पड़ती है। इसमें वीणा की गुंजन का आभास है, पर जो कुछ भी हो, ऐसी मनोहर 'ट्यून' कभी सुनी नहीं, मन बरबस मत्त होता जा रहा है ।

हंस जब मेरे बहुत पास आगया तो क्या देखता हूँ कि यह ठ
है। देखते ही मुस्कराती हुई दोनों बाहें फैलाए मेरी और बढ़ी आ
है। मैंने भी दोनों बाहें फैला दीं। वह हंस से उतरी व मुझ से
गई। मैंने कहा, "नीरा, कब से तेरी राह देख रहा था!"

"मैं कोई नीरा नहीं, मैं तो सरस्वती हूँ!"

"सरस्वती? सच?"

"और नहीं तो क्या?"

सरस्वती को भी तो इस रात्रि को स्नान की आवश्यकता
सकती है।

मैं मुस्कराया व पीछे हट गया। पूछा, "तो क्या सरस्वती भी स
करेंगी?"

"अवश्य!"

"मेरे साथ?"

सरस्वती मुस्करा उठी। मैंने कहा, "अहो भाग्य!"

बाहों में बाँहें डाल 'प्लेट-फार्म' के एक ओर मैं उसे ले गया। व
पर सरस्वती ने बहुत आहिस्ते-आहिस्ते अपने वस्त्र उतारने आरम्भ कि
मुझसे बोली, "आँखें मूँद लो"। मैंने आँखें दोनों हाथों से मूँद ली,
उंगलियों के बीच से कभी-कभी उस अनुपम अनावृत सौंदर्य की झ
आँखें पा लेतीं।

उसने ऊपर की लहराती चुन्नी पहले उतारी, फिर लम्बी चौड़ी श्वे
साड़ी घूम-घूम कर धीरे-धीरे अलग की, फिर महीन-महीन वस्त्र का सा
भी अलग हुआ, फिर ऊपर की कसने वाली चोली भी।

अब रह गया मात्र 'बेदिङ्ग सूट' जो श्वेत चमकते शीशे या चाँदी
किस चीज का बना था। ओह वह रूप! कैसे कहूँ उस झाकी के
मैं बाधूँ उस देवी के नैसर्गिक सौंदर्य को? वे सुडौल, स्वस्थ,
ऊपर से कसता उठता हुआ वक्ष, श्वेत वक्ष-स्थल, वह केश-
चाँद से भी सुन्दर चमकीला वह मुख!

उसने कहा, "आंखें खोलो।"

मैंने आंखें खोलीं और एक बार नीचे से ऊपर तक उस वेष को देखा। लगा, जैसे होश गुम हो रहे हों। बाहें फैल गईं। मैंने कहा, "नीरा!"

"नहीं, सरस्वती, तुम दूर-दूर रहो अभी।"

"नहीं, नहीं, बस एक बार!"

"नहीं, तुम अनावृत हो जाओ। मैं दूसरी ओर देख रही हूं।"

उसने मेरी ओर पीठ मोड़ दी। मैंने पीछे से भी देखा, पीठ की वह सुडौल गठन, बगल का चिकना चढ़ाव-उतार, चिकना सुन्दर कन्धा, लटकती मृणाल सी भुजाएं, सचमुच कदली-स्तम्भ सी चिकनी सुडौल टांगें। मैं तो सुध-बुध ही खो रहा था। जैसे-तैसे करके मैंने भी चादर खोल फेंकी, धोती खोल फेंकी, रह गया मात्र मेरा 'बेदिङ्ग सूट' सो भी आधा ही था, 'अण्डरवीयर' नुमा। मैंने एक बार अपने को भी देखा—विशाल मांसल भुजाएं, चौड़ी खुली छाती, उतरती मोटी-मोटी, गोल-गोल रानें, सुडौल पिण्डलियां, मन ने कहा, 'तुम कुछ बहुत बुरे नहीं हो।' फिर स्वयं बुदबुदाया, 'सरस्वती इस रात्रि को कृपा करे तब तो!'

मैंने कहा, "देवी, इधर कृपा हो!"

सरस्वती ने मुड़कर मुझे देखा। दोनों मुस्करा उठे। मैंने फिर बाहें फैला दीं। वह बोली, "नहीं जल में कूद पड़ो।"

मैं जल में कूद पड़ा। वह भी कूद पड़ी। दोनों स्नान करने लगे। कभी डुबकी मारते, कभी तैरते, पर मैं भय से कभी उसे छेड़ता न था। उसने एक बार जल के छींटे मेरी आखों पर मारे। मैं भी कुछ ढीठ हो हो गया। मैंने जल का छींटा उसके मुख पर हल्का सा मारा। वह मुस्करा उठी। एक बार उसने मेरे पाव जल में घसीट दिए। मैंने भी अब छेड़ना शुरू कर दिया। एकाध बार जल के भीतर कलाई पकड़ ली, एकाध बार पाव पकड़ लिया।

हमारा स्नान चलता रहा। एक बार वह तैरते-तैरते चुपके से मेरी

पीठ पर सवार हो मेरी आँखों को पीछे से मूँदने लगी दोनों हाथों से। वह स्पर्श-सुख पीठ पर, गले पर, आँखों पर मुझे बेहोश करने लगा, कुछ देर तक तो मैं चुपचाप इस स्पर्श-सुख का आनन्द लेता रहा, फिर छिटक कर जो पीछे मुड़ा तो वह खिलखिलाकर हंसती पानी पर तैरती भाग चली। मैंने पीछा किया, वह और तेज़ भागी, मगर भाग कर जाती कहाँ!

पहले उसके कमल से लाल व कोमल चरण मेरे हाथ पड़े। उनको पकड़ते ही वह झट से मुड़कर मछली सी छुड़ाने लगी। चरण छूट गए। वह फिर तैरती हुई भागी। मैं थकना न चाहता था, मैंने इस और ज़ोर लगाया। इस बार लपककर पाव की पिंडली पकड़ ली। उसने छुड़ाने के लिए फिर छटपटाना शुरू किया और मैं उस चंचल रूप के पिंजरन का सुख लेने लगा। जब किसी तरह वह न छूटी तो मुड़कर उसने लपक कर मेरा हाथ पकड़ा। फिर तो क्या था, मैंने उसे पूरी तरह बाँहों में भरकर साथ ही डुबकी मार दी। वह सुख! किन शब्दों में बाँधूँ उसको? कैसे!

हम तुरंत जल के ऊपर आए। मैंने देखना चाहा कि देवी नाराज़ तो नहीं हो गई, मेरी उच्छृंखलता से। पर नहीं वह तो मन्द-मन्द मुस्करा रही थी।

फिर तो क्या था, मैंने बार-बार छेड़ना शुरू किया। जल के भीतर उसके अंग-प्रत्यंग का मैंने स्पर्श किया, बाँहों में कसा, अपने वक्ष से कहीं भी चिपका लिया, परन्तु वह सदा चिकनी मछली की तरह छूटकर निकल जाती, वैसे बहुत भाग तो पाती नहीं। बाद को देखा, उस की आँखों में निमन्त्रण थी। अब मेरी चेष्टा बिना भी वह स्वयं कभी मेरे वक्ष में सिमट जाती, कहती, 'थक गई हूँ, तैरा नहीं जाता,' बहाना बुरा नहीं था।

जब सब प्रकार की जल-क्रीड़ाएँ समाप्त हो गईं तथा हम जल में ठंडी सिहरन से, दाँत-दाँत तक बजने लगे तो उसी ने कहा, "निरंजी चलो के, कुछ धूप खा लें!"

बस, हमारा स्नान समाप्त हुआ, जल-क्रीड़ा का अंत हुआ। दोनों

तालाब में एक स्थान पर कमर बराबर जल में खड़े हुए अगल-बगल में। साथ-साथ हाथ में जल लेकर चन्द्रदेव को अर्घ्य दिया व सनातन अमर प्रीति का वरदान मागा। तत्पश्चात् जल में ही एक-दूसरे को भुजाओं में भर कर आलिङ्गन-बद्ध हो, एक दूसरे के अधर चूमे व अलग हो गए।

गीले वस्त्र वहीं जल में बहा दिए गए। सूखे वस्त्र पहने गए व हम दोनों 'देवी-देवता' अब गगन-विहार को निकले। हंस की पीठ पर एक बटन था, जिसे दबाते ही उसकी पीठ पर एक तख्ता खुल गया व दो छोटी निकल आईं, बहुत छोटी-छोटी सी। वही तख्ता घूमकर हमारी पीठ का टेक बन गया।

हम दोनों उस पर पास-पास बैठ गए। जगह कम होने से हमारी दशा तंग रिक्शे पर बैठने वालों की सी हो रही थी। कभी-कभी हिलने-डोलने से घिस-घिस जाते थे। तन में मन में, शिराओं में खून तेजी से दौड़ने लगता था।

एक बटन के दबाने ही हंस पानी पर तैरने लगा, चल पड़ा, आगे बढ़ा। सरस्वती ने इस बटन को और दबाया तो वह तेज हो चला। दो मील तक जल पर हम इसी प्रकार बढ़ते गए। शीतल सुगंधित वायु का झोंका मुँह पर लगता रहा, हमारे वस्त्र हवा में फड़फड़ाते रहे। दोनों किनारों पर जल में युवक-युवतियों को स्नान करते, हंसते, छेड़ते, किलोलें करते, अर्घ्य देते, प्रतिज्ञा करते देखते हम दोनों चले जा रहे थे।

कितनी नैसर्गिक थी वह छटा!

एकाएक सरस्वती ने दूसरा बटन दबाया व हंस पानी से ऊपर उठ गया। उसके डैने, श्वेत सुन्दर, फैल गए और वह आकाश में उड़ने लगा। उड़ चला, ऊपर, ऊपर, और ऊपर।

नीचे लहराता श्वेत संगमरमर का तालाब, स्नान करते नन्हे-नन्हे नर-नारी, पेड़-पौधे, ऊपर स्वच्छ आकाश में चमकता एकमात्र देदीप्यमान चन्द्रमा और गगन-विहारी हम दोनों 'देव-देवी'।

यही हमारे सुख की चरम सीमा थी। देवी वहीं विचरती हुई बोली,

पीठ पर सवार हो मेरी आंखों को पीछे से मूंदने लगी दोनों हाथों से। वह स्पर्श-सुख पीठ पर, गले पर, आंखों पर मुझे बेहोश करने लगा, कुछ देर तक तो मैं चुपचाप इस स्पर्श-सुख का आनन्द लेता रहा, फिर छिटक कर जो पीछे मुड़ा तो वह खिलखिलाकर हंसती पानी पर तैरती भाग चली। मैंने पीछा किया, वह और तेज़ भागी, मगर भाग कर जाती कहां!

पहले उसके कमल से लाल व कोमल चरण मेरे हाथ पड़े। उनको पकड़ते ही वह झट से मुड़कर मछली की छटपटाने लगी। चरण छूट गए। वह फिर तैरती हुई भागी। मैं थकना न चाहता था, मैंने फिर ज़ोर लगाया। इस बार लपककर पाव की पिंडली पकड़ ली। उसने छुड़ाने के लिए फिर छटपटाना शुरू किया और मैं उस चंचल रूप के बिछुलन का सुख लेने लगा। जब किसी तरह वह न छुड़ा सकी तो मुड़कर उसने लपक कर मेरा हाथ पकड़ा। फिर तो क्या था, मैंने उसे पूरी तरह बांहों में भरकर साथ ही डुबकी मार दी। वह सुख! किन शब्दों में बांधूं उसको? कैसे!

हम तुरंत जल के ऊपर आए। मैंने देखना चाहा कि देवी नाराज़ तो नहीं हो गई, मेरी उच्छृंखलता से। पर नहीं वह तो मन्द-मन्द मुस्करा रही थी।

फिर तो क्या था, मैंने बार-बार छेड़ना शुरू किया। जल के भीतर उसके अंग प्रत्यंग का मैंने स्पर्श किया, बांहों में कसा, अपने तन से कई भी चिपका दिया, परन्तु वह सदा चिकनी मछली की तरह छटक कर निकल जाती, वैसे बहुत भाग तो पाती नहीं। बाद को देखा, उस की आंखों में विह्वलता थी। अब मेरी चेष्टा बिना भी वह स्वयं कभी मेरे वक्ष में सिमट जाती, कहती, 'थक गई हूं, तैरा नहीं जाता,' बहाना बुरा नहीं था।

जब सब प्रकार की जल-क्रीड़ाएं समाप्त हो गईं तथा वह व मैं दोनों शिथिल हो, हांफ-हांफ तक जाने लगे तो उसी ने कहा, "चलें तो कहीं यह, रूप काफ़ी मान लेते नाथ।"

बस, हमारा स्नान समाप्त हुआ, जल-क्रीड़ा का अंत हुआ। दोनों

तालाब में एक स्थान पर कमर बराबर जल में खड़े हुए अगल-बगल में। साथ-साथ हाथ में जल लेकर चन्द्रदेव को अर्घ्य दिया व सनातन अमर प्रीति का वरदान मांगा। तत्पश्चात् जल में ही एक-दूसरे को भुजाओं में भर कर आलिङ्गन बद्ध हो, एक दूसरे के अधर चूमे व अलग हो गए।

गीले वस्त्र वहीं जल में बहा दिए गए। सूखे वस्त्र पहने गए व हम दोनों 'देवी-देवता' अब गगन-विहार को निकले। हंस की पीठ पर एक बटन था, जिसे दबाते ही उसकी पीठ पर एक तख्ता खुल गया व दो सीटें निकल आईं, बहुत छोटी-छोटी सी। वही तख्ता घूमकर हमारी पीठ का टेक बन गया।

हम दोनों उस पर पास-पास बैठ गए। जगह कम होने से हमारी दशा तंग रिक्शे पर बैठने वालों की सी हो रही थी। कभी-कभी हिलने-डोलने से घिस-घिस जाते थे। तन में मन में, शिराओं में खून तेजी से दौड़ने लगता था।

एक बटन के दबाते ही हंस पानी पर तैरने लगा, चल पड़ा, आगे बढ़ा। सरस्वती ने इस बटन को और दबाया तो वह तेज हो चला। दो मील तक जल पर हम इसी प्रकार बढ़ते गए। शीतल सुगंधित वायु का झोंका मुँह पर लगता रहा, हमारे वस्त्र हवा में फड़फड़ाते रहे। दोनों किनारों पर जल में युवक-युवतियों को स्नान करते, हंसते, छेड़ते, किलोलें करते, अर्घ्य देते, प्रतिज्ञा करते देखते हम दोनों चले जा रहे थे।

कितनी नैसर्गिक थी वह छटा!

एकाएक सरस्वती ने दूसरा बटन दबाया व हंस पानी से ऊपर उठ गया। उसके डैने, श्वेत सुन्दर, फैल गए और वह आकाश में उड़ने लगा। उड़ चला, ऊपर, ऊपर, और ऊपर।

नीचे लहराता श्वेत संगमरमर का तालाब, स्नान करते नन्हे-नन्हे नर-नारी, पेड़-पौधे, ऊपर स्वच्छ आकाश में चमकता एकमात्र देदीप्यमान चन्द्रमा और गगन-विहारी हम दोनों 'देव-देवी'।

यही हमारे सुख की चरम सीमा थी। देवी वहीं विचरती हुई बोली,

पीठ पर सवार हो मेरी आंखों को पीछे से मूंदने लगी दोनों हाथों से। वह स्पर्श-सुख पीठ पर, गले पर, आंखों पर मुझे बेहोश करने लगा, कुछ देर तक तो मैं चुपचाप इस स्पर्श-सुख का आनन्द लेता रहा, फिर छिटक कर जो पीछे मुड़ा तो वह खिलखिलाकर हंसती पानी पर तैरती भाग चली। मैंने पीछा किया, वह और तेज भागी, मगर भाग कर जाती कहां!

पहले उसके कमल से लाल व कोमल चरण मेरे हाथ पड़े। उनको पकड़ते ही वह झट से मुड़कर मछली सी छटपटाने लगी। चरण छूट गए। वह फिर तैरती हुई भागी। मैं थकना न चाहता था, मैंने जोर और लगाया। इस बार लपककर पांव की पिंडली पकड़ ली। उसने छुड़ाने के लिए फिर छटपटाना शुरू किया और मैं उस चंचल रूप के विलुलन का सुख लेने लगा। जब किसी तरह वह न छुड़ा सकी तो मुड़कर उसने लपक कर मेरा हाथ पकड़ा। फिर तो क्या था, मैंने उसे पूरी तरह बाहों में भरकर साथ ही डुबकी मार दी। वह सुख! किन शब्दों में बांधूं उसको! कैसे!

हम तुरंत जल के ऊपर आए। मैंने देखना चाहा कि देवी नाराज तो नहीं हो गई, मेरी उच्छृंखलता से। पर नहीं वह तो मन्द-मन्द मुस्करा रही थी।

फिर तो क्या था, मैंने बार-बार छेड़ना शुरू किया। जल के भीतर उसके अंग-प्रत्यंग का मैंने स्पर्श किया, बाहों में कसा, अपने तन से कहीं भी घिस दिया, परन्तु वह सदा चिकनी मछली की तरह छटक कर निकल जाती, वैसे बहुत भाग तो पाती नहीं। बाद को देखा, उस की आंखों में विह्वलता थी। अब मेरी चेष्टा बिना भी वह स्वयं कभी मेरे वक्ष में लिपट जाती, कहती, 'थक गई हूं, तैरा नहीं जाता,' बहाना बुरा नहीं था।

जब सब प्रकार की जल-क्रीड़ाएं समाप्त हो गईं तथा वह व मैं दोनों विह्वल हो, होश-हवास तक खोने लगे तो उसी ने कहा, "निर्दयी कहीं के, क्या आज जान ले लोगे!"

बस, हमारा स्नान समाप्त हुआ, जल-क्रिड़ा का अंत हुआ। दोनों

तालाब में एक स्थान पर कमर बराबर जल में खड़े हुए अगल-बगल में। साथ-साथ हाथ में जल लेकर चन्द्रदेव को अर्घ्य दिया व सनातन अमर प्रीति का वरदान मागा। तत्पश्चात् जल में ही एक-दूसरे को भुजाओं में भर कर आलिङ्गन बद्ध हो, एक दूसरे के अधर चूमे व अलग हो गए।

गीले वस्त्र वहीं जल में बहा दिए गए। सूखे वस्त्र पहने गए व हम दोनों 'देवी-देवता' अब गगन-विहार को निकले। हंस की पीठ पर एक बटन था, जिसे दबाते ही उसकी पीठ पर एक तख्ता खुल गया व दो सीटें निकल आईं, बहुत छोटी-छोटी सी। वही तख्ता घूमकर हमारी पीठ का टेक बन गया।

हम दोनों उस पर पास-पास बैठ गए। जगह कम होने से हमारी दशा तंग रिक्शे पर बैठने वालों की सी हो रही थी। कभी-कभी हिलने-डोलने से घिस-घिस जाते थे। तन में मन में, शिराओं में खून तेजी से दौड़ने लगता था।

एक बटन के दबाने ही हंस पानी पर तैरने लगा, चल पड़ा, आगे बढ़ा। सरस्वती ने इस बटन को और दबाया तो वह तेज हो चला। दो मील तक जल पर हम इसी प्रकार बढ़ते गए। शीतल सुगंधित वायु का झोंका मुँह पर लगता रहा, हमारे वस्त्र हवा में फड़फड़ाते रहे। दोनों किनारों पर जल में युवक-युवतियों को स्नान करते, हंसते, छेड़ते, किलोलें करते, अर्घ्य देते, प्रतिज्ञा करते देखते हम दोनों चले जा रहे थे।

कितनी नैसर्गिक थी वह छटा!

एकाएक सरस्वती ने दूसरा बटन दबाया व हंस पानी से ऊपर उठ गया। उसके डैने, श्वेत सुन्दर, फैल गए और वह आकाश में उड़ने लगा। उड़ चला, ऊपर, ऊपर, और ऊपर।

नीचे लहराता श्वेत संगमरमर का तालाब, स्नान करते नन्हे-नन्हे नर-नारी, पेड़-पौधे, ऊपर स्वच्छ आकाश में चमकता एकमात्र देदीप्यमान चन्द्रमा और गगन-विहारी हम दोनों 'देव-देवी'।

यही हमारे सुख की चरम सीमा थी। देवी वहीं विचरती हुई बोली,

"आओ, इस मुक्त आकाश में, धरती व स्वर्ग के बीच तुम्हें अमरप्रीति का वरदान देदूं।"

देवी मेरी ओर झुकी। उसने मेरे गले में अपनी बाहें डाल मेरा सिर झुका लिया व मेरे कपोलों को चूमने लगी, फिर अधरों को चूमती रही, चूमती रही।

इतने में पास ही दूसरा हंस उड़ता दिखाई दिया। उस पर श्वेत-वसना जेन बैठी थी। जेन की निगाहें हम दोनों की निगाहों से एक बार मिलीं, व उसने न जाने कौन सा बटन झट दबाया। उसके हंस में आग लग गई, अग्नि की लपटें आकाश में धुम्रकेतु सी चमक उठीं।

जेन व उसका हंस दोनों नीचे की ओर तेज गति से गिरने लगे। इसी समय, 'हाय जेन' कहकर सरस्वती भी हंस से लुढ़ककर गिर गई। मैं भौंचक्का हो ताकने लगा। जोर से चिल्लाया :

"सरस्वती! नीरा! नीरा!"

मेरी आंखें खुल गईं। दौड़कर 'होस्टेस' मेरे पास आई व मुझे सम्भालने लगी। उसने पूछा, "क्या है, मि० कुमार, कैसी तबियत है?"

"ठीक है, धन्यवाद, मैं एक भयानक स्वप्न देखकर जाग पड़ा।"

"जी हां, आप चिल्ला पड़े थे।"

"मैं चिल्लाया भी? क्या चिल्लाया?"

"नीरा! नीरा!"

"ओह!"

मैंने चारों ओर देखा, सबके चेहरों पर एक अजीब उदासी छाई थी, हवाइयां उड़ रही थीं। मैंने पूछा, 'होस्टेस' से, "क्या बात है? ये लोग इतने आतंकित क्यों हैं?"

"कुछ नहीं, मुझे दुःख के साथ आपको बताना पड़ रहा है कि 'प्लेन' में 'इंजिन-ट्रबल' हो गया है, कहीं 'लेंडिङ्ग' सम्भव नहीं दिखता।"

"अच्छा!"

"अभी-अभी तो बड़े जोर से 'प्लेन' कई सौ फ़ीट नीचे 'बम्प' कर गया, तभी तो आप चिल्ला पड़े।"

"ओह, यह बात है!"

मन ही मन मैंने कहा, 'मैंने तो समझा था, जेन का विमान जलकर नीचे गिरा।' प्रत्यक्षतः मैंने कहा, अच्छी बात है, "धन्यवाद!"

'होस्टेस' चली गई व मैं चुपचाप और यात्रियों के चेहरों को देखने लगा। जब मृत्यु सामने आंख-मिचौनी खेल रही हो तो वह भी दृश्य देखने ही लायक होता है।

सब के चेहरों पर अप्रत्याशित मृत्यु की छाया झलक रही थी। मेरे आगे की सीट पर एक बगाली युवती बैठी थी। वह किसी सम्भ्रान्त उच्च-मध्यम वर्ग की महिला जान पड़ती थी। उम्र होगी यही छब्बीस-सत्ताईस, काफी 'अपटूडेट' लगती थी। दो बच्चे साथ में थे, एक लड़का चार-पाच वर्ष का व एक बच्ची डेढ़ दो वर्ष की।

बच्ची को उसने गोद में ले लिया था और लड़का, जो बड़ा ही स्वस्थ व सुन्दर था, घोर चंचलता से काम ले रहा था। वह बराबर मा की गोद में चढ़ने का प्रयत्न करता, बच्ची को घसीट कर हटा देने का प्रयत्न करता, कभी मां का पल्ला खींचकर फेंक देता, कभी ब्लाउज नोच लेता, कभी सिर के केश खींचता, कभी घुटनों पर पांव रखकर चढ़ बैठता; और मा थी कि चुपचाप इस दुर्गति को बर्दाश्त कर रही थी व आंखों से अविरल अश्रु-प्रवाह हो रहा था।

मेरे बाईं ओर दो सीटों पर एक योरोपियन जोड़ा था। दोनों युवा व सुन्दर थे। युवती तो चुपचाप अपना सिर पुरुष के कंधे पर टिकाए बैठी थी, पर पुरुष बड़ा ही गम्भीर व चिन्तित लग रहा था।

धीरे-धीरे युवती के नयनों से आंसू आने लगे। पुरुष ने उसे बाईं भुजा में भरकर चुपचाप अपने रुमाल से उसके आंसू पोंछ डाले।

थोड़ा आगे की सीट पर दो अधेड़ अवस्था के सज्जन बैठे थे, एक तो मारवाड़ी थे व दूसरे उनके ब्राह्मण पुरोहित लगते थे। मारवाड़ी ने तो

तुरन्त माला निकालकर उसे फेरना शुरू कर दिया व ब्राह्मण ने गीता देव वाली छोटी सी गुटका निकालकर गीता-पाठ आरम्भ कर दिया। वैसे मारवाड़ी के चेहरे पर अधिक आतंक था उस ब्राह्मण की अपेक्षा।

'होस्टेस' ने बड़ी शान्ति व संजीदगी के साथ सूचना दी कि बनरौली 'एयर पोर्ट' पर उतरने का प्रयत्न किया जा रहा है, सब सावधान हो जायें व पेटियाँ बांध लें।

'पेटियां बांध लीजिए' की बत्ती भी जल उठी। उसने सब का निरीक्षण किया व मेरे पास आकर बोली, "मि० कुमार, आपने पेटी नहीं बांधी?"

"जी नहीं।"

"बांध लीजिए, 'प्लेन लैण्डिंग' की कोशिश कर रहा है।"

"मैं जानता हूं।"

"फिर बांध लीजिए न।"

"मैं कोई आवश्यकता नहीं समझता।"

"क्यों?"

"बताना भी आवश्यक नहीं समझता।"

"ओह, पेटी तो आपको बांधनी ही होगी।" इतना कहकर मेरी सीट के आसपास बाहें डालकर उसने 'स्ट्रेप' खोज निकाला, व पेटी मेरी कमर में बांध दी। ऐसा करते समय उसके मुंह से निकली गरम सांस मेरे मुंह पर बिखर गई व उसके 'सेण्ट' से नाक भर गई। मैंने पूछा, "आप मेरे बारे में इतनी व्यग्र क्यों हो रही हैं?"

"यह तो मेरा कर्तव्य है, पर आप बड़े विचित्र आदमी हैं, आपको जीवन का मोह नहीं?"

"नहीं, मिस, मुझे तो मृत्यु से ही मोह है, तुम उसके आने का पथ न रोको तो भला।"

वह मुस्कराती हुई पीछे की तरफ चली गई। इतने में एक बड़ा 'बम्पिंग' हुआ। इस 'बम्पिंग' के साथ योरोपियन युवती तो बिल्कुल युवक की गोद में लुढ़क गई, फिर उठी भी नहीं। पुरुष उसे अपनी गोद में

सम्भाले रहा। सभी मौन थे, कोई कुछ बोलता न था।

इस 'धक्के' पर युवती मां की गोद से बच्ची गिर गई। उसने झट उसे सम्भाला। बच्ची रो पड़ी। मा ने बायें हाथ से गोद में बच्ची को सम्भाला व दाहिनी भुजा में बच्चे को भर लिया। कभी इस बच्चे को चूमती, कभी उसको। उसने दोनों बच्चों को छाती से चिपका लिया। और उसके अश्रु थे, जो निरन्तर प्रवाहित हो रहे थे—गंगा-जमुना से।

'प्लेन' कुछ सम्भला। 'होस्टेस' धीरे से आकर बोली, "मि० कुमार, आपने कभी किसी से प्यार किया है?"

"क्यों?"

"देख रही हूं, आपको अपने जीवन का मोह नहीं, मृत्यु का भय नहीं, तो कम से कम प्यार का मोह तो होता?"

"मैंने अपने प्यार का गला अपने ही हाथों घोंट दिया, अब मोह कैसा?"

"ओह!" एक प्रकार से वह चीख पड़ी।

"तुमने कभी किसी को प्यार किया है?" मैंने बड़े ही शान्त भाव से पूछा। 'होस्टेस' जरा रुककर बोली, "हां किया है। मगर······।"

"मगर क्या?"

"जालिम ने पैसों के लोभ से एक दूसरी लड़की से शादी कर ली।"

"फिर तुम्हें मोह कैसा?"

"नहीं, मि० कुमार, इस मृत्यु की बेला में आप से भला क्या छिपाऊं। एक बार उसको देखने का मोह इन आंखों में उलझा है। माना उसने बहुत सितम ढाए हैं मुझ पर, मगर यह प्यार तो ऐसा अन्धा है कि मैं बार-बार, जन्म-जन्म उस पर मरती रहूँगी। उसको देखे बिना यह प्राण न निकलेंगे, ये पलकें न बन्द होंगी, चाहे यह तन इसी प्लेन' में जलकर खाक हो जाए।"

"मगर तुम्हारा तन तो सचमुच सुन्दर है, मिस, शायद मन भी हो।"

"यही तो उसने भी एक दिन कहा था। तब से मैं सचमुच सुन्दर

हो गई अपनी निगाहों में, उसकी निगाहों में और शायद दुनिया भर की निगाहों में भी।"

इतना कहकर वह अपनी सीट पर चली गई।

इसी समय एक और बड़े ज़ोर की 'बम्पिंग' हुई। पण्डितजी का गीता-पाठ तेज हो गया, मारवाड़ी की माला ज़ोर-ज़ोर से चलने लगी। योरोपियन युवती ने दोनों बाहों में युवक की कमर को कस लिया व उसकी गोद में पड़ी रही। बंगाली युवती ने दोनों बच्चों को ज़ोर से चिपका लिया छाती में और ज़ोर से। बच्चे अब रो पड़े, रोने लगे।

राम राम करके किसी प्रकार सफलता-पूर्वक 'प्लेन' उतर गया। सभी के चेहरों पर खुशी व जीवन की मुस्कान छा गई।

युवती माँ ने आंचल से बच्चों के आंसू पोंछ दिये व मुस्कान भरकर उन्हें बार-बार चूमने लगी। अपने आंसू पोंछना शायद भूल गई। वे बरौनियों में ही उलझे रहे व कपोलों पर निशान छोड़ गए।

योरोपियन युवती ने गोद से उठकर युवक के नयन पोंछे व अपने भी। तथा झट से सबके सामने उसने युवक को हल्का सा चूम लिया। दोनों मुस्करा उठे। यह थी जीवन की मुस्कान!

हम लोगों को बमरौली में लगभग एक घण्टा इन्तज़ार करना पड़ा। फिर दूसरा 'प्लेन' तैयार हो गया। युवती माँ बच्चों के साथ इलाहाबाद नगर में चली गई, मारवाड़ी व पंडित जी दिखाई न दिए। योरोपियन जोड़ा इस 'प्लेन' में भी था। कुछ और यात्री थे, मैं था व वही 'होस्टेस।'

हम ज्यों-त्यों करके दमदम पहुंच ही गए।

मैंने मृत्यु मांगी तो न मिली।

वह आकर चली गई।

द्वार खटखटाकर चली गई।

ठीक ही तो है, 'मनचाही को मांगने से मृत्यु भी नहीं मिलती।'

चौवालीसवां परिच्छेद

जेन चली गई !

बंगले पर पहुँचते-पहुँचते मेरा रोम-रोम जेन-जेन करने लगा। मेरी जेन कहां है? सोचा, अब आई, अब आई, 'ड्राइंगरूम' से, 'बेड रूम' से, 'लॉन' से बाहर से, कहीं से।

मेरे सामने भोला आकर सिर झुकाए खड़ा हो गया। मैंने पूछा, "जेन कहां है, भोला?"

"का बताईं, सरकार, कालिह वो कहीं चली गयन व हमार के एक खत देइ गयन, जे अपने भइया के दे दिहौं।"

"चली गई?"

"हां, भइया।"

"कहां गई?"

"हम का जानी?"

दुःख व क्रोध से मेरा दिमाग बिगड़ उठा। मैंने चिल्लाकर कहा, "हम का जानी के बच्चे, जाकर, खत ला!"

भोला मारे भय के भागा। सब नौकर इधर-उधर, सिर झुकाए, दीवार व पल्लों के पीछे हो गए। मैं गुस्से में भरे शेर की तरह इधर-उधर बरामदे में ही टहलने लगा।

इसी बीच सामान [illegible] लिया गया। व टैक्सी वाला चला गया। भोला [illegible] हाथ में रख दिया। यह वही परिचित

आशंका से एक बार मेरा रोम-रोम कांप उठा। भय के कारण पत्र खोलते न बना। मैं जरा सा हिचका व फिर लिफाफे का किनारा उंगलियों से नोचता हुआ बैठक में चला गया।

वहां खड़े-खड़े ही पत्र खोलकर पढ़ा, जो इस प्रकार था :

मेरे प्रिय कुमार,

तुम्हें व नीरा को हार्दिक बधाई! मैं जा रही हूं तुम्हारे पथ से दूर, अपने देश को, तुम मिलने का प्रयत्न न करना। मेरे लिये तुम सदा रहोगे, वही मेरे प्रियतम कुमार! सुखी रहो, आबाद रहो, तुम दोनों।

तुम्हारी प्रियतमा (कभी की)

जेन,

मैंने पत्र पढ़ा और वह हाथ से छूट पड़ा। मैं दोनों हाथों से सिर दबाकर सोफे पर धम्म से गिर पड़ा। भय के कारण कोई नौकर सामने न आया। भोला सामने हाथ जोड़े जरूर खड़ा था, परन्तु संकेत पाते ही वह भी चला गया, बे-मन से, व्यथा से भरा हुआ, बेबस, मजबूर।

मेरे प्यार के कोमल तन्तु को जीजी ने एक ही झटके में दोनों ओर से तोड़ डाला, सो भी अनजाने। दोष भला किसे देता?

जीजी को? नहीं!

नीरा को? नहीं!

जेन को? नहीं!

दोषी तो मेरी खोटी किस्मत थी, जिसे लेकर मैं जन्मा था। जो कोई मेरे प्यार के संसर्ग में आया, बराबर तड़पता ही रहा। यही तो है मेरा उपहार!

मेरे दुर्भाग्य ने अपने दोनों हाथों में दो कुसुम-कलियों को लेकर साथ ही मसल डाला। लुट हो गया नीरा का, लोप हो गया जेन का, लुट गया मैं, मेरा प्यार, अभागा प्यार, जन्म-जन्म का भूखा-प्यासा प्यार!

क्या करूं, कैसे करूं, कुछ भी तो समझ में नहीं आता था। सोचने के लिए, दौड़-धूप करने के लिए कोई गुंजायश तो थी नहीं।

उसने स्पष्ट लिखा था, 'जा रही हूँ···दूर, बहुत दूर, अपने देश को।' ओह, जेन सचमुच दूर चली गई, बहुत दूर, इस स्थान से दूर, मन से, हृदय से, प्राणों से दूर! ··उसने क्या लिखा है ? 'तुम्हारे पथ से दूर!'

उसके कमरे में जाने का मेरा साहस न हुआ। लगता, न जाने कौन सी चीज़ छूते ही फोड़ा फूट पड़े, या न फूटे तो भी मारे चोट व दर्द के कसक उठे ।

मेरा सूना घर, सूना बंगला। घर की लक्ष्मी चली गई, त्याग व बलिदान के पंख लगाकर। प्यार की दुनिया उजड़ गई। उजड़ गई, और ! · और !

इस जीवन का अन्त न हुआ, न हुआ !

बड़ी देर तक यों ही चुपचाप बैठा रहा। लगता, मेरे प्यार का 'प्लेन' 'क्रैश' कर गया, उसमें आग लग गई व दो कोमल कलिकाएं उसमें जलकर ढेर हो गईं। मैं अभागा बुजदिल उसी 'प्लेन' में से भाग आया।

अब इस जीवन में क्या रस रह गया ? स्थूल दृष्टि से साधारण सुख का जीवन तो बराबर बिताता रहा हूँ व बिताता रहूँगा, परन्तु वह प्रीति का दीपक न जाने किसने कब अनजाने इस आत्मा में जला दिया। वह जलता रहा, जलता रहा। आंधियां आईं, वह कांप उठा। किसी ने अपने आंचल की छाया कर दी। लौ बुझी नहीं, कांपकर रह गई, फिर भी प्रीति-प्यार की ज्योति में हम पलते रहे, पनपते रहे. अनमोल सपने खुली आंखों देखते रहे।

महाकाल ने अपना हाथ बढ़ाया और इस प्रेम की लौ को गुल कर दिया। घटाटोप अन्धकार छा गया, भीतर, बाहर, चारों ओर। अब तो कुछ भी दिखाई नहीं देता, कुछ भी सूझता नहीं।

मेरा तो दिल ही डूब गया, जग ही डूब गया, तड़पूं तो किस पर ! छटपटाऊं तो क्या ! ठेस लगे भी तो किसे !

सामने ठंडा जल व 'ऑरेंज स्क्वैश' न जाने कब भोला रख गया था। मैंने गिलास में डालकर ठण्डा जल पिया, एक गिलास, दो गिलास।

फिर उसी ठप्पे जन को प्यारे-प्यारे 'मिस' करने लगा जैसे कोई 'गुड्डा' हो।

एकाएक ध्यान आया, 'आत्म हत्या!'

क्या करूंगा अब जी कर?

"मिस, चाहिए। मिस ''कहां मिलेगा? दिमाग तेजी से काम करने लगा। ध्यान में आया, डा० कोन्स, हां, डा० कोन्स। क्या पता, वह जेन के जाने के बारे में भी कुछ जानता हो। मैं झट उठ पड़ा। फोन उठाया, 'रिंग' किया डा० कोन्स मिल गये। मैंने अभिवादन के बाद पूछा, "कुछ जानते हो, जेन इस समय कहां है?"

"ओह, जेन? वह तो कल 'पैन अमेरिकन एयरवेज' से न्यूयार्क चली गई।"

"कल चली गई?"

"जी हां, परसों वह बहुत घबराई हुई मेरे पास आई व तुरन्त अमेरिका जाने की इच्छा प्रकट की। मैंने कारण पूछा तो न केवल उसने बताने से इन्कार किया, बल्कि फिर न पूछने का भी आग्रह किया। मैंने फिर न पूछा। बड़ी मुश्किल से अमेरिकन 'एम्बेसी' से मिलकर इतनी जल्दी व्यवस्था हो पाई।"

"काश, यह व्यवस्था न हो पाती!"

"तो क्या आपको उसका जाना मालूम न था?"

भला, इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर देता? मैंने फ़ोन रख दिया।

भोला ने मौका पाकर हाथ जोड़ कहा, "भइया, तोहरे बड़े मेम-साहब एक अउर जिनिस दे गई हैं।"

"वो क्या?" मैंने रूखेपन से कहा।

मेरी ओर तालियों का एक गुच्छा बढ़ाते हुए उसने कहा, "ई रहो ऊ जिनिस।"

मैंने गुच्छा ले लिया और उसका अर्थ कुछ-कुछ समझने लगा। गुच्छे को तो जेब के हवाले किया, फिर 'गुसल' तैयार करने को कहकर 'लॉन' में टहलने लगा।

सूरज डूबने जा रहा था, किरणें रोज ही की तरह लाल, सुनहरी थीं, पर क्या उनके अर्थ हर रोज, हर किसी के लिए एक से होते हैं ! कभी उन में राग भरा होता है, प्रीति-प्यार भरा होता है; वे पिचकारी से किसी को सराबोर कर देती हैं व कभी-कभी लपटती अग्नि-शिखा सी लगती है। अग्नि-कुण्ड, जिसमें सब कुछ जलकर भस्म हो गया।

कल इन किरणों में कुछ और ही था।

आज इन किरणों में कुछ और ही दिखाई दिया।

ऐसा लगा, जैसे इस सूरज के गोले के डूबने के साथ, डूब गया मेरे प्यार का लण्डन-पेरिस ! डूब गई मेरे प्यार की नगरी दिल्ली, सारा जग डूब गया। स्नेह की किरणें सिमटकर सूरज के लाल-लाल गोले के साथ ही डूब गईं। मेरे प्रेम का सूर्य डूब गया, किरणें उसी में सिमटकर अन्तर्धान हो गईं। अब रहा क्या !

घनीभूत अन्धकार ! तनमें, मनमें, प्राण में, आत्मा में !

मेरी प्रीति का दिया बुझ गया !

मेरी दुनिया में अंधेरा छा गया !

आकाश देखा, पक्षी जोड़े-जोड़े में उड़ते जा रहे थे, अपने-अपने घोंसलों को। एक बार मनमें आया निकालूं बन्दूक, ढेर करदूं इनके प्यार की नगरी को, इनकी प्रीति की चहक को। परन्तु न जाने क्या सोचकर चुप रह गया।

ठंडे पानी में जी भरके स्नान किया तो भीतर कुछ ताज़गी व ठंडक मालूम हुई। कपड़े पहनकर मोटर निकाली व चल दिया, विक्टोरिया मेमोरियल।

दूज का चांद आकाश में निकल आया था और कुछ ऊपर भी चढ़ चुका था। चांदनी घास के 'लॉन' पर, तालाब के जल पर व फूलों पर बिखर रही थी। एक सुहावनी सुगंध भी हवा में आन पड़ी।

मैं तालाब के किनारे चुपचाप एक बैंच पर जा बैठा, जहां से चन्द्रमा की पूरी छाया जल में डोलती, कांपती दिखाई देती थी।

एक यह चांदनी रात थी जिसमें हर ओर से लुटा हुआ मैं अकेला मुसाफ़िर जिन्दगी के एक घाट पर बैठा था। ऐसा लगता था, किसी ने चीरकर मेरा दिल व दिल की सारी दुनियां ही निकाल ली है और उसके स्थान पर लौह-पिंजर निर्मित एक कृत्रिम दिल बैठा दिया है, जिसमें जीवन-यापन के लिए यंत्रवत धड़कन होती है, परन्तु स्पन्दन नाम की कोई चीज़ नहीं होती।

बड़ी रात तक बैठा रहा, चौकीदार दो-तीन बार आकर याद दिला गया समय की। मुझे सुख-दुःख कुछ भी तो न महसूस होता था। यह कैसी चोट थी? न जाने कैसा धक्का था? मैं सोचता, पागल होने पर क्या होता होगा? मैं पागल तो नहीं हो रहा हूं? परन्तु मुझे स्वयं कैसे पता चलेगा मुझे क्या हो रहा है; या मैं पागल हो रहा हूं या नहीं!

'सुन्न' जैसा तन-मन दोनों हो रहे थे। कुछ ढंग की हरकत इनकी मालूम न होती। कोई मीठी, खट्टी, तीखी स्मृति भी न जागती। वह पागल सा चांद को, जल में उसकी डोलती छाया को देखता था, देखता जाता था।

अन्त में बड़ी देर हो जाने पर उठकर गाड़ी में बैठा व चल दिया बंगले पर। खाना खाने की इच्छा न थी, और न खाने में रुचि ही थी, हां-ना, कुछ भी तो न था। टाल ही गया।

पलंग पर चला गया सोने पर नींद!—उसे न तो आना था और न वह आई। लोग ढेर सी बातें सोचते सोचते जगे रह जाते हैं, उनको नींद नहीं आती। मगर यहां तो दिमाग कुछ सोच ही नहीं रहा था। न जाने कैसी एक भावना सूनेपन की, खालीपन की भावना मन पर, दिल पर छाई हुई थी। एक विचित्र हल्कापन मालूम हो रहा था।

भारी बोझ लेकर चलने वाले के सिर पर से एकाएक बोझा उतार लाजिए तो उसे जैसा भान होता है, वैसे ही लगता था। जिन्दगी भर खद्दर पहनने वाले को महीन 'मर्सराइज्ड' स्वदेशी धोती पहनने को दीजिए, उसे जैसा लगता है, कुछ वैसा ही मैं अनुभव कर रहा था।

दात तोड़ने से पहले कोकीन का 'इंजेक्शन' देने पर दांत हिलते समय जैसा रोगी महसूस करता है, मैं कुछ वैसा ही अनुभव कर रहा था।

लगता, न जाने क्या खो गया है, कुछ गिर गया है, कुछ भूल गया है, कुछ चुरा लिया गया है; परन्तु खोई हुई चीज़ की गुरुता का भान होने पर जो एक हल्कापन महसूस होता है, वह मुझे हुआ।

आँखें एकटक ताकती थीं, सो ताकती रहीं छत पर, दीवार पर, मगर उनमें नींद न आई।

पलक लगने का नाम न लेते। सुना है, देवताओं के पलक नहीं लगते, मगर पत्थर की नकली आँखों के भी पलक नहीं लगते और न शायद उनमें कोई स्पन्दन होता है, न कोई अनुभूति।

मेरी आँखें देवता की तो नहीं, परन्तु पत्थर की ज़रूर हो गई।

मुझे क्या हो गया?

मैं अपने से ही यह प्रश्न बराबर करने लगा।

दो बजे रात को जब कहीं से दो का घण्टा सुनाई दिया तो मैं व्यग्र हो गया। सोचा क्या करना चाहिए? कुछ तो करना चाहिए! कुछ भी!

ताली का गुच्छा अभी भी जेब में पड़ा था। उस पर हाथ पड़ते ही जी में आया, देखूं जेन क्या-क्या रख गई है!

मैं इतना सुभग्य तो पावों को काफ़ी था। कोई शृंखला-बद्ध, मैं थोड़े सोच रहा था। चुपचाप बिस्तर से उठा। दबे पावों चप्पल को अंगूठे व एड़ी से दबाता जेन के कमरे के सामने गया। खड़ा हुआ सोचने लगा, 'खोलते ही इसमें से जेन निकल आए तो?' कितना मज़ा आए! और कहीं वह जेन का प्रेत हुआ तो? अरे बाप रे!

ताली जेब से निकाली मैंने, परन्तु हाथ में वे खनक उठीं। मैं चौंक पड़ा। अपने ही घर में चोर सा व्यवहार कर रहा था, न जाने क्यों?

एक ताली को लटकते ताले में डाला, परन्तु घुमाया नहीं, रुक गया। मैं क्या सोच रहा था?

ताली के गुच्छे को यों ही ताले में लटकता छोड़ मैं चुपचाप उसे देखने लगा। कुछ देर तक यों ही देखता रहा, फिर मुस्कराया व बिना पुकार ही ताली निकाल कर जेब के हवाले की व दबे पांव अपने बिस्तर पर लौट आया।

नींद!

नींद कहां से आती?

इसे भी तो जेन लेती गई!

'पैन अमेरिकन एयरवेज़' में।

रात के लगभग बारह बजे एक 'एक्सप्रेस' जवाबी तार दिल्ली से आया। मीरा ने कुशल-क्षेम पूछी थी। लगता है, रेडियो से इस इंते-इंते बच जाने वाली विमान-दुर्घटना का समाचार उसे मिल गया या या किसी और जरिये से मालूम हुआ हो।

तार को मैंने पढ़ा और ताकता रह गया। मेरी कुशल-क्षेम! मेरी कुशल-क्षेम का विमान-दुर्घटना से कितना कम सम्बन्ध था! और अब न तो कुशल ही मेरे पास थी, न क्षेम!

तार पड़ा रहा, मैंने कोई उत्तर न दिया।

दूसरे दिन नीरा व मीरा दोनों के पत्र मिले। बात कोई विशेष न थी, केवल पूछा था, 'तुम कैसे हो, जेन कैसी है?'

पत्र पाने पर तार की भी सुधि आई। उसका उत्तर दे दिया, जवाबी था न? एक पत्र मीरा को लिखा दो पंक्तियों का, उसी को नीरा को भी दिखा देने के लिए आदेश दिया।

मेरे पास लिखने को था भी क्या? मैं सकुशल हूँ, जेन उड़ गई अपने देश को। बस!

दूसरे दिन भोला के द्वारा मालूम हुआ कि जेन को पहुँचाने हवाई-अड्डे तक डा० जोन्स, प्रोफेसर साहब तथा भाभी भी गई थीं। प्रोफेसर साहब ने सामान बंधवाने में काफी मदद की, शायद भाभी जी ने भी। वे तीन विलगे एक दिन पहले भी शाम को तशरीफ लाए थे व काफी 'ड्रिंक'

किया था। हां, जेन ने दो दिन से खाना न खाया था, पी भी नहीं कुछ।

यह भी मालूम हुआ कि बंगला छोड़ते समय उसकी आंखों से शबनम बरस रहे थे, जिसे समेटने के लिए डा० जोन्स ने अपना रूमाल पेश किया, मगर उसने लेने से इन्कार किया।

चलते-चलते प्रोफेसर साहब ने कहा था, 'चलिए, मेम साहब, बिना समझे-बूझे आदमियों का भरोसा करने का यही फल होता है, आजकल !'

ये थे मेरे लोग। जो जल्दी-जल्दी मेरी प्रीति की प्रतिमा को धकेलकर धरती के दूसरे छोर पर भेजने में पूरी चुस्ती दिखा रहे थे।

बाद को कमल से मालूम हुआ कि विदाई के पहले संध्या को प्रोफेसर साहब ने अपने घर पर जेन को आमंत्रित किया था, दो-चार और आदमियों को भी बुलाया था, किन्तु स्वीकार करके भी जेन गई नहीं, शायद फ़ोन कर दिया कि तबियत ठीक नहीं।

मैंने सोचा, यारों को यह सुअवसर प्राप्त हो गया था बिना मांगे। क्या डा० जोन्स ने विदाई की रात को उसे पीने-पिलाने, डान्स वगैरह का हठ न किया ? करना तो चाहिये था। एक निराश एवं उदास सुन्दरी तो कितनी आसानी से ज़रा सी सहानुभूति दिखाने पर ऐसे आग्रह मान सकती है।

किन्तु भोला से ज्ञात हुआ कि उस सांझ को जेन कहीं नहीं गई। अपना कमरा बन्दकर चुपचाप पलंग पर पड़ी रही, बीच-बीच में घूमती टहलती और फिर पड़ी रहती।

जाते समय, भोला ने बताया, उसके हाथ में संतरे के रंग का रेशमी रूमाल था, जिससे वह अपने आंसू पोंछ रही थी। सन्तरे के रंग का रेशमी रूमाल !

इसे तो मैंने पेरिस में जैन को भेंट किया था, मेरी प्रीति की पहली पताका, पहली निशानी, पहला उपहार !

तो क्या जेन सचमुच चली गई ? मेरी जिन्दगी सचमुच उजड़ गई ? अभी कहां ठीक ठीक मान हो पाता है, अभी तो एक स्पन्दनहीन-सूनापन

छोड़ कुछ भी नहीं लगता।

मुझे याद आया, मेरे पिता जी के स्वर्गवास होने का समाचार, वर्षों पहले मुझे तार से मिला था। तार पढ़कर भी मेरे मन ने विश्वास न किया। विश्वास करने पर भी महसूस न किया। मैं गाँव गया तब भी कुछ न लगा। यही सोचता, कहीं होंगे, अब आए, तब आए।

जब गंगा-किनारे उनकी अस्थियाँ देखीं व आले पर कई दिन से न छुई गई गीता तथा माला देखी, तो नयनों से अश्रुकण ढुलकने लगे, ढुलकते रहे।

जेन के विषय में भी कुछ ऐसा ही सा हो रहा था जेन सदा के लिए चली गई, अब मुझसे कभी न मिलेगी, कभी नहीं। मैं यह पूरी-पूरी तरह महसूस न कर पाता था, फिर भी यह तो लगता ही था कि मैं अब जीता-जागता पुतला नहीं बल्कि 'मैडमटूसाई' के कला-भवन (लन्दन) की मोम की प्रतिमा हूँ।

मुझे जहाँ तक याद है, एक बार शीला ने ऐसी शैतानी की थी। फलों के बर्तन में केले के गुच्छे, संतरे, सेब पड़े थे। उसने भोजन की मेज पर मेरी ओर पेश किये। मैंने सामने पड़ा हुआ सुन्दर केला उठा लिया, मगर हाथ लगाते ही वह ढेर हो गया। वह केला खोखला था, सो भी मोम का बना हुआ। हाँ, रंग-रूप में और केलों के ही समान था इसी से भ्रम हो गया। मगर इसमें न तो सार था, न रस।

मैं सोचता हूँ कि मैं भी कुछ उसी मोम के केले के समान हो गया। रंग-रूप ठीक बाहर से, मगर भीतर न तो सार रहा, न रस। दोनों ही जेन लेकर चली गई अपने देश, 'पैन अमेरिकन एयरवेज़' से।

यों ही दिन बीतने लगे, बीत चले। मेरा मन किसी काम में न लगता। कार्यालय के काम व व्यवसाय की ओर मैंने विशेष ध्यान देना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि पैसा पहले से भी अधिक आने लगा, जमा होने लगा, मगर उसका उपयोग?

मुझे क्या करना था इन ढेर से पैसों का? शान्दें वाली बेचैनी लिए

आतीं। देर से कार्यालय से लौटता। बंगला सूना-सूना लगता, कोई स्वागत की मुस्कान न होती। तुरन्त नहा-धोकर, कपड़े बदल भाग जाता गाड़ी लेकर। फिर किसी 'पार्क' में या गंगा-किनारे बैठा रहता, घण्टों बैठा रहता। वहां से जी भर जाता तो किसी रेस्टोरेन्ट में जा बैठता। वहां थोड़ी-बहुत पीता तब देर से घर आता। रात को खाना खाता, कभी न भी खाता।

क्लब का सदस्य था, कलकत्ता क्लब का; मगर वहां जाना बन्द कर दिया। क्या करता जाकर? तरह तरह के लोग, तरह तरह की बातें होतीं, शगूफे छूटते, मुझ से बर्दाश्त न होता।

वैसे भी मैं परिचितों से, स्त्रियों से, सोसायटी से कुछ दूर दूर, अलग-अलग रहना चाहता था।

छुट्टियों के दिन पहाड़ हो जाते। काटे न कटते थे। छोटी हाज़िरी के बाद से ही गाड़ी की सफाई में लग जाता गो कि उसकी उतनी आवश्यकता न थी। बेकार में पुर्ज़ों को खोलता, साफ करता, फिर 'फिट' करता। जब कभी धूप चढ़ जाती, मैं पसीने से लथपथ हो जाता व सारे कपड़े गन्दे हो जाते, तो मैं छोड़कर स्नान आदि करता। 'लंच' लेता व थोड़ी देर आराम करता।

आराम!

आराम हो कहां पाता? उसे तो जेन हर ले गई!

तीसरे पहर मोटर लेकर योंही निकल जाता जी. टी. रोड पर या दमदम रोड पर या डायमंड हारबर रोड पर। व्यर्थ में पचास-साठ मील जाता। सड़क के किनारे किसी पुलिया पर या पेड़-तले बैठा रहता और फिर मन न लगने पर लौट आता।

हां, उन• ... जेन के साथ आया करता था। न ... आने से क्या हो? ... ने भाग रहा हूँ, किसी ... भी, अनजान में भी,

पर, यह है कौन ?

इधर कई परिवर्तन आगये मुझमें। मैंने एक तरह से बाक़ायदा 'ड्रिंक' करना शुरू कर दिया, घर पर पर भी बोतलें रखने लगा। वैसे देखें कभी पागल या वाचाल न हुआ, पर इस प्रकार संयत करने का अनवरत प्रयत्न जारी रहा।

सिनेमा भी बहुत देखने लगा। बराबर 'सेकेण्ड शो' में जाता व रात के एक बजे या दो बजे से पहले न लौटता, क्योंकि 'शो' के बाद 'ड्रिंक' का कार्यक्रम चालू होता।

नृत्य का भी चस्का लग गया। भारतीय हो या विलायती, मैं किसी को छोड़ता नहीं। सप्ताह में दो नृत्य तो अनिवार्य से हो गए। हां, स्वयं नृत्य करना बन्द कर दिया। ऐसा करते समय भी लगता, मैं किसी से भाग रहा हूँ, किसी से बचने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

घुड़दौड़, में भी जाने लगा। वहां जाने से न जाने कैसी एक प्रकार की शान्ति मिलती। जितनी देर वहां रहता मन बारबार कहता, 'सब कुछ इन्सान के जोड़ने घटाने से ही नहीं होता, भाग्य व सितारे भी कोई चीज़ हैं, उन पर भरोसा करना सीखो।'

क्या इस भाग्यवाद का रेस से कुछ सम्बन्ध था ?

फिर घोड़ों के दौड़ने तथा खम्भे के पास पहुँचते समय हज़ारों दिल एक साथ ज़ोरज़ोर से धड़कने व उछलने लगते थे। इस क्रिया में कभी-कभी मेरा दिल भी हल्का सा धड़कता, थोड़ा सा उछलता, और मैं हाथ रखकर महसूस करता कि वह बिल्कुल लौह-पंजर तो शायद नहीं है।

एक रात को मैं 'रोमन हॉलिडे' फिर से देखने चला गया। 'रोमन-हॉलिडे' से मैं बराबर बचता था, जैसे रेन से सम्बन्धित बहुत सारी चीज़ों से क्या-क्या, दूरदूर सा रहता था। हमारी स्मृतियों का पुँजीभूत चित्रण इस 'फ़िल्म' में था, इसलिए मैं कभी जाता न था।

मगर उस रात को न जाने क्या सूझा। दिल में एक हरकत हुई। शनिवार का दिन था, घुड़दौड़ से लौटा था। 'क्वॉलिटी' में बैठा बैठा देर

के पीता रहा, फिर मैदान में घोर अन्धेरे में मोटर पर चक्कर काटता रहा। जब मन नहीं लगा तो चल दिया 'रोमन हॉलिडे' देखने। शायद उस दिन दिल में खुजली महसूस हुई। बिना खुजलाए चैन न पड़ती।

कैसे समझाऊँ उस भावना को। जहाँ कहीं हल्की खुजलाहट हो रही हो हल्के से खुजला देता, रह रह कर कितना प्यारा लगता है, कितना सुखद! आदत हो जाने पर तो बिना जरासा सहलाए, जरासा घिसे, जरा खुजलाए चैन ही नहीं पड़ती।

शायद उस रात को कुछ ऐसा ही अभाव जान पड़ा। कोई विशेष चाव तो था नहीं, और न सोचा समझा प्रोग्राम था। जिधर ही चाव उठा ले गए, मैं उसी ओर लुढ़क पड़ा।

मगर एक बार जो देखना शुरू कर दिया तो फिर भागकर कहा जाता। स्मृतियों को कुरेदन आरम्भ हुई। दाद की खाज की तरह जितना खुजलाओ उतनी ही खुजलाने की पिपासा बढ़ती गई। लहूलुहान हो गया दिल, मगर उठकर आ न सका। देखता रहा, देखता रहा, रोम नगरी के परिचित स्थान, वे सड़कें, वे महल, वे पत्थर तक, जिन पर मैं व जेन साथ-साथ बैठे थे।

आज पहली बार दिल ज़ोरज़ोर से धड़कने लगा। आज पहली बार लगा कि जेन बंगले में नहीं है, कौन जाने शायद बंगले पर हो। मैं घायल होकर बंगले पर लौटा,—पूरी तरह घायल होकर।

खाना तो क्या खाता! आधी रात पार हो चुकी थी। नौकरों को सोने जाने के लिए कह दिया। स्वयं जाकर पलंग पर पड़ रहा। आँखें अधमुँदी थीं। लगा, जैसे जेन ने खुली खिड़की से झाँका, एक बार, दो बार। मैं उछल पड़ा, खिड़की पर गया परन्तु उसका तो कहीं पता न था।

बादल गरजे, बिजली कड़की और फिर छहर-छहर पानी बरसने लगा। मैं चुपचाप पड़ा रहा। ऐसी रात में मन न जाने कैसा अन्यमनस्क हो गया, पर जेन का पता न था। दो एक बार और खिड़की पर गया परन्तु ठंडी हवा का झोंका व बाहर भीगते पेड़-पत्ते छोड़ कुछ भी

इस प्रकार मैंने अपने दिल पर न केवल छुरी से प्रहार किया, बल्कि मारे चोटों के उसे क्षत-विक्षत कर डाला। मैं बराबर अपने ही हाथों अपना खून किए जा रहा था, दिल को मसलता खून-खून करता जा रहा था।

मेरी हालत उस बच्चे सी हो रही थी जिसने मुट्ठी में खुला 'ब्लेड' बन्द कर लिया हो, और 'ब्लेड' की धार हथेलियों में, अगुलियों में धंसती जा रही हो। वह ज्यों ज्यों धसती जाती है, बच्चा जोर जोर से रोता है और जितना ही रोता है, उतने ही जोर से मुट्ठी बाधता है और 'ब्लेड' और धंसती जाती है।

लगा, जैसे मैंने इसी रात को जेन का खून किया हो और अब उसके तन पर के वस्त्र व आभूषण लूटने आया होऊं।

इस से पहले भी दिए गए मेरे जितने उपहार थे, सब कुछ वह छोड़ गई थी। जालिम ने अपनी एक भी चीज़, एक भी स्मृति न छोड़ी। एक रुमाल तक नहीं, एक चित्र तक नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।

यों कोई अपने को जड़ से मिटा डालता है ?

'ड्रेसिङ्ग टेबल' के पास गया। उसमें अपनी छाया को ही देखकर डर गया। सचमुच मेरा रूप खूनी व लुटेरे सा लगता था। दराज को खोलकर देखने लगा, कहीं कुछ भी तो न मिला।

यों कोई अपने को खींच लेता है ?

सब से नीचे वाले दराज में जेन की 'लिपस्टिक' का एक टुकड़ा मिल गया। मुझे तो लगा, जैसे कोई मणि मिल गई, गाड़ी हुई निधि मिल गई हो। क्षण भर को लगा, जैसे जेन ही मिल गई। मैंने उसे हाथ में लिया व टकटक ताकने लगा।

इस 'लिपस्टिक' ने जेन के अधरों को अवश्य स्पर्श किया होगा।

बस टपटप आसू आंखों से झरने लगे। एक बार यह प्रवाह जब जारी हुआ तो बस रुकने का नाम न लिया। वर्षा बाहर जारी थी, अन्दर भी जारी रही। मैं वहीं बैठ गया, शीशे के सामने। कभी उस 'लिपस्टिक'

पैंतालीसवां परिच्छेद

दुःख के बादल

यों ही दिन पर दिन बीत चले। बरसात आई भी और गई भी। आषाढ़ के प्रथम दिवस के बादलों को भी मैंने उमड़ते-घुमड़ते देखा, मगर यक्ष की भांति उन मेघदूतों के हाथ कोई संदेश कहीं न भेज सका।

मेरी अलकापुरी दूर थी, बहुत दूर!

नीरा के पत्र बराबर आते, परन्तु उनमें संयम दिन पर दिन बढ़ता जाता था। फिर भी उसके हृदय की मर्मान्तक पीड़ा कहीं न कहीं, किसी भी एक शब्द से फूट पड़ती व मैं बेचैन हो जाता।

वैसे नीरा के पत्रों के उत्तर मैं कम ही देता था, जो देता भी वह बहुत संक्षेप में।

इन दिनों शीला का ध्यान बहुत आया, परन्तु मैं आसाम गया नहीं, उसे कुछ लिखा भी नहीं। अक्तूबर में पहाड़ियों पर चला जाना अच्छा होता, खासकर दार्जिलिंग का मौसम था, कालिम्पोंग तो बहुत ही सुन्दर होता, परन्तु मैं कहीं न गया। विज़गापट्टम से मेरे एक मित्र का निमंत्रण आया कुछ दिन समुद्र व पहाड़ियों की गोद में समय बिताने के लिए, परन्तु मैं न हिला, न हिला।

जैन के भी तीन चार पत्र आए। उसने एक प्रकार से आदेश के रूप में लिखा कि मैं नीरा से विवाह कर लूं, परन्तु यह आदेश ही उसे रोक रखने के लिए काफी था। मैं किसी के प्यार की कब्र पर शादी के फूल नहीं उगाना चाहता था। यह विचार भी न जाने कैसा घिनौना

लगता। फिर प्यार की दुनिया बार बार थोड़े ही बसती है।

जेन के पत्रों से यह भी पता चला कि उसने आजन्म कुमारी रह
का निश्चय कर लिया है, तथा एक 'मेडिकल मिशन' की सदस्या भी
गई है। उसने वहां जाने हो 'मेडिकल कॉलेज' में दाखिला ले लिया
इरादा यह था कि पूर्ण रूप से डाक्टर हो कर अपना जीवन 'मेडिकल
मिशन' (एक प्रकार का सेवा मिशन) को अर्पित कर देगी।

उसने बड़े दर्दीले ढंग से लिखा :

'जिस प्यार को तुमने ग्रहण न किया उसे अब मैं तिल-तिल कर के
बूंद-बूंद करके सैकड़ों, सहस्त्रों प्राणियों को बांटना चाहती हूँ। आशीष
दो कि मेरा यह उद्देश्य तो अधूरा न रहे। भगवान तुम्हारे प्यार की
यह दुनियां फिर से बसाए। पूरी तरह, अच्छी तरह।"

इस पत्र को पढ़कर मैं तड़प उठा था हफ्तों उसके शब्द कानों में
गूंजते रहे। 'तिल-तिल करके बूंद-बूंद करके बांटना चाहती हूँ' कितना
अपूर्व त्याग है यह, कैसा बलिदान है यह, प्रेम की वेदी पर!

जीजी के पत्रों से यह भी मालूम हुआ कि नीरा ने बहुत क्षमा
मांगते हुए जेन को पत्र लिखा था। उसमें अपने को दोषी ठहराया था
और अन्त में अनुरोध किया था, 'मेरी प्यारी जेन, तुम जानती हो, कुमार
तुम्हारे बिना जीवन में कभी प्रसन्न न रह सकेंगे। मुझे केवल कुमार की
खुशी चाहिए, इसलिए मैं तुमसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं, कि
तुम लौट आओ और कुमार से विवाह कर लो। मैं स्वयं अपने हाथों
तुम्हारा विवाह रचाऊंगी।'

कुछ इसी आशय का पत्र जीजी ने भी जेन को लिखा था, मगर जेन
अपने पथ से टली नहीं, रत्ती भर भी टस से मस न हुई। उल्टे कुमार
की ही खुशी के लिए नीरा को उसने विवाह का आदेश लिख भेजा। इस
पत्र-व्यवहार की खबर मुझे बहुत बाद को लगी, जब जीजी ने एक बार
उसे बतौर 'ट्रम्प-कार्ड' के इस्तेमाल किया।

इस बीच जीजी व सुरेन्द्र बहुत कम मिलने जुलने लगे थे। नीरा के

पत्रों से पता चलता था कि जीजी कुछ कुछ उदास व निराश सी रहती हैं। दो बार नीरा व जीजी ने सुरेन्द्र को पुष्पा के साथ नृत्य करते देखा था। जीजी की शान्ति हरने के लिए तो इतना ही काफी था।

विजया-दशमी के बाद नवम्बर के मध्य में नीरा का एक पत्र मिला बहुत घबराया हुआ सा। केवल इतना लिखा था :

"तुम जानकर चकित रह जाओगे कि परसों सुरेन्द्र की मंगनी पुष्पा के साथ होने वाली है। खबर है कि उसी दिन पुष्पा के पिता श्री अपनी आधी जायदाद की 'विल' भी सुरेन्द्र को भेंट करेंगे। वैसे यह बिलकुल पक्की खबर नहीं है, अफ़वाह भी हो सकती है।

"मैं जीजी को कैसे बचाऊँ, कुछ तो बोलो, कुमार, कुछ सुझाओ।"

यह समाचार पाते ही मेरी तो सुधि बुधि खोने लगी। सुरेन्द्र के कमीनेपन पर बहुत गुस्सा आया। जी में आया कि आनन्द जैसी दशा एक बार उसकी भी कर डालूँ, परन्तु कुछ सोचसमझ कर चुप रह गया।

मन को चोट बहुत पहुंची। मैंने जीजी को तुरंत सान्त्वनाभरा पत्र लिखा तथा इसप्रकार के कमीने आदमी के साथ जीवनडोर बांधने से बच जाने पर बधाई दी। मगर इससे होता क्या? प्रीति-प्यार हिसाब-किताब तो जोड़ना जानता नहीं। जीजी बस पागल सी हो रहीं।

नीरा को मैंने एक आदेश भरा पत्र लिखा जिसमें उसे बताया कि वह बराबर जीजी के साथ रहे, जीजी का मन बहलाए, स्वयं बड़ी बहन बन जाय। तूफ़ान पार हो जाने पर सब कुछ ठीक हो जायगा।

वैसे मैं जानता था, यह तूफ़ान न तो जल्दी पार होगा और न 'सब कुछ' ठीक होगा। यदि पेड़ जड़ से न उखड़ेगा तो कुछ बड़ी-बड़ी डालियों का बलिदान तो होगा ही, जियेगा भी तो ठूंठ होकर।

मैंने नीरा को यह भी लिख दिया कि वह स्थिति बराबर बतलाती रहे व काबू में न होने पर आवश्यकता समझे तो मुझे तार दे दे, मैं तुरंत दिल्ली आजाऊँगा।

जीजी के लिए भला क्या न करता ?

नीरा की जीजी, जैन की जीजी, मेरी जीजी !

इक्के-दुक्के मुम्मी के पत्र भी आते ही रहते। उसे अपनी धरोहर का पूरा ख्याल था। दो माह पहले उसने लिखा था कि नीरा के पेट में दर्द उठा करता है।

मैंने सोचा कोई साधारण दर्द होगा।

अक्तूबर के पत्रों से मालूम हुआ कि डाक्टर को दिखाया गया था। 'अपेंडिसाइटिस' होने का संदेह है, 'एक्स-रे' से ठीक ठीक पता चलेगा।

नवम्बर के एक पत्र में नीरा ने लिखा :

"कल से पेट में भयानक पीड़ा हो रही है। अब भी लगता है जैसे कोई आंतों को खुरच रहा हो। फिर भी खुश हूँ। तुम्हारी याद विशेष आती है।"

मैं इस पत्र को पढ़कर तिलमिला उठा। लगा, जैसे नीरा की बीमारी गम्भीर होती जा रही हो। उधर जीजी का मामला हर क्षण, हर पल कसता जा रहा था। हम सभी का ध्यान इन दिनों उसी पर केन्द्रित था। नीरा अपनी व्यथा, अपना प्यार भूल जीजी में लग गई। मैं भी अपने दिल की पीड़ा को दबाकर जीजी को सम्भालने में लग गया।

इस बुरी घटना से एक लाभ भी हुआ। अब नीरा लगभग रोज़ ही मुझे पत्र लिखने लगी व बिना किसी प्रकार के संकोच या संयम के मैं उत्तर भी देने लगा। पत्रों के इस प्रतिदिन के आदान-प्रदान ने एक प्रकार से फिर हम दोनों को अनजाने बहुत पास ला दिया। पत्रों में ज़्यादातर चर्चा तो जीजी की ही रहती, परन्तु अपने विषय में भी दो चार शब्द हम लिख ही जाते। जैसे एक पत्र में नीरा ने लिखा :

"आजकल उदास रहती हूँ, न मालूम क्यों ? किसी भी काम में मन नहीं लगता, एक प्रकार का वैराग्य सा छा गया है इस जीवन में। सब कुछ निरर्थक सा लगता है।"

फिर :

"बस इतना जानती हूं कि बहुत उदास रहती हूँ। किसी वस्तु की कामना करती हूं पर वह मिल नहीं पाती। चारों ओर घोर निराशा ही निराशा दिखाई देती है। हंसे हुए एक युग बीत गया।

"कौन हंसाए?"

इस प्रकार के पत्र जब भी आते, मैं तड़प उठता, एक नये सिरे से व्यग्रता छा जाती। कभी-कभी जीजी भूलने लगती, जेन भूलने लगती, सब कुछ भूलने लगता, रह जाती मात्र नीरा, व उसकी व्यथा।

इन दिनों जीजी के भीतर भयानक तूफ़ान चल रहा था, जिसकी एक झांकी उनके इस पत्र से स्पष्ट मिल जाती है :

"भैया, आज कितनी अशान्त हूं, पर सच्ची आत्मा की आवाज भगवान तो सुनेंगे ही — जो चाहे करलें, लोग! यह लम्बी कथा है, मिलने पर सुना दूंगी, समझे?

"अस्थिर व अशान्त मस्तिष्क अभी बहुत लिखने में असमर्थ है। बहन का स्नेह लेना, भैया, उसका मूल्य आंकना!"

इन्हीं दिनों नीरा के मन की दशा उसके इस पत्र से मालूम हुई :

"कल रात डैडी, जीजी व मुम्मी ताश खेलते रहे। मैं भी कोई आध घंटे तक साथ-साथ खेलती रही, फिर सोने चली गई, पर नींद न आई। तुम्हारी याद कल विशेष आई। सारी रात करवटें लेकर बिताई।

"आज मुम्मी मामा के घर गई है, कल फिर आयगी। वह तो चली गई और मैं फिर से रह गई अकेली। जिस समय वह आई थी, मैं रो रही थी। मेरी आतों में बेहद दर्द महसूस होता है, तुम्हें यह पत्र बड़ी मुश्किल से लिख रही हूँ।"

आखिर सुरेन्द्र की पुष्पा के साथ मंगनी वाली बात सच्ची निकली। झट से शादी का दिन भी तय हो गया। घटनाएं बड़ी तेज़ी से, अप्रत्याशित रूप से घटने लगीं। ऐसा लगता, जैसे हर रोज कोई अशुभ समाचार मिलने वाला हो। सब कुछ यों घटता जैसे किसी पर हमारा वश न हो, किसी का वश न हो।

क्या नियति की गति इसे ही कहते हैं!
मेरा भाग्य-चक्र यही है।

दिनकर आते-आते सुरेन्द्र का विवाह पुष्पा के साथ हो भी गया। शादी की रात को ही जीजी ने 'आत्महत्या' का पूरा प्रबन्ध कर लिया था, किन्तु नीरा व मुन्नी की सावधानी से जीजी कुछ न कर सकीं। वे बिगड़तीं, छटपटातीं व बकती रहीं, मुन्नी व नीरा ने उनको जरा सा हिलने भी न दिया। दिन भर साथ साथ रहीं। रात भर गोद में डाले रहीं।

जीजी बीमार तो हो ही गईं। तेज बुखार हो गया, मगर उन्होंने आत्महत्या का संकल्प एक शर्त पर छोड़ा, जिसे सबको खुले रूप से मानना पड़ा। जीजी ने प्रतिज्ञा कर ली कि वे अपना जीवन 'सर्वोदय समाज' को अर्पण करेंगी, सो भी तुरत ही। किसी सेवा-आश्रम में जाकर रहेंगी।

यह सब कुछ पल भर में हो गया।

नीरा का पत्र पढ़कर मैं रो पड़ा। आंसू बह चले। नीरा ने लिखा था :

"मेरे कुमार, आज मेरा रहा-सहा सहारा भी टूट गया। जीजी की दुनियां उजड़ गई। हम दोनों बहनें छुट गईं। जीजी मेरी 'मा' भी थीं, कुमार, तुम तो जानते हो। अब किसके आंचल में सिर छिपाकर रोऊंगी, कुमार, बोलो न?

"जीजी दो एक दिन के भीतर ही कहीं चली जायेंगी, बताती नहीं कहां जायेंगी। आज उन्होंने एक मोहरबन्द लिफाफा तुम्हें भेजा है। कहती हैं, कुमार भैया का उत्तर पाने पर ही कहीं जाऊंगी।

"मुन्नी की शादी की बात चल रही है। मैं भला उसमें कौन सा मुँह लेकर शामिल होऊंगी? बोलो, मेरे कुमार? चुप क्यों हो?"

इस पत्र को पढ़कर मेरा रोम रोम कांप उठा। मेरी व्यथा का अन्त न था। जीजी का मोहरबन्द लिफाफा भी मुझे मिला। खोलने पर उसमें एक पत्र मिला व एक 'विल'।

जीजी ने लिखा था :

"मेरे ही भैया, यहां एकदम से इतनी अप्रत्याशित घटनाएं घट गईं कि यह मस्तिष्क और भी खराब हो गया। फिर भी जीवन तो खेना ही है। 'साबरमती' व 'शान्तिनिकेतन' की आवाज बारबार कान में गूंज रही है। मैं देहली छोड़ना चाहती हूं, सच, बहुत परेशान हूँ।

"जाने से पहले मैं आंचल पसारकर तुमसे एक भीख मांग रही हूं। आशा है इस दुखियारी बहन को तुम और भी दुःखी न बनाओगे, उसके प्यार का मूल्य आंक सकोगे।

"पहली भीख तुम्हारे प्यार की है। अपने चरणों में अपनी रानी को, मेरी नीरा को स्थान देना स्वीकार कर लो व दूसरी, नीरा की इस 'विल' पर स्वीकारात्मक दस्तखत कर दो और मेरे लिए भगवान से प्रार्थना करो कि मुझे सब कुछ सहने की शक्ति दे।"

मैंने पत्र पढ़ा, एक बार, दो बार, बारबार। कुछ भी तो न सूझता था, क्या उत्तर दूं, क्या नहीं। जब तक जेन का तार जारी रहेगा मैं भला कैसे इस बन्धन में बंधता, परन्तु निराश जीजी की एकमात्र इच्छा, एकमात्र प्रार्थना भी कैसे ठुकराता? जीजी स्वयं तो छुट गईं, पर जाते जाते, लगता था, बहन को आबाद देखना चाहती थीं। क्यों न हो, जीजी भी तो जेन के ही सांचे में ढली हैं, त्याग व बलिदान की सजीव प्रतिमा। मूर्ख सुरेन्द्र ने जीजी का मूल्य न समझा।

पत्र का उत्तर भी तुरंत देना था। जीजी इस उत्तर की आशा में बैठी थीं और उत्तर पाते ही दिल्ली छोड़ देने वाली थीं।

मैं बेहद परेशान हो गया। मेरे कशमकश व उधेड़बुन का अन्त न था। अब तो पहले वाले वलवले दिल में थे नहीं; न उमंग थी, न अरमान रहे परन्तु फिर भी यदि जीना है तो कुछ जवाब तो देना ही होगा।

सारा दिन इसी कशमकश में बीत गया, परन्तु न तो चित्त ठिकाने रहा, न मन स्थिर हो सका। मस्तिष्क बराबर अपना ताना-बाना बुनता रहा। मुझे हर दशा में खन्दक दिखाई देती [illegible] जायें।

बीजी की प्रार्थना स्वीकार करके मैं बीजी को प्रसन्न कर सकता था नीरा को उसके प्यार की दुनियां नये सिरे से दे सकता था, उसके हाथ में स्वर्ग रख सकता था ; मगर मैं जेन की निगाह में गिर जाता नीचे नीचे, बिलकुल नीचे।

और सब से बड़ी बात तो यह थी कि मैं स्वयं अपनी निगाह में इतना गिर जाता कि स्वयं से घृणा हो जाती।

मुझे ध्यान आया, शीला के बाग में एक पेड़ की जड़ में एक वन-लता फैल गई थी। उसने बुरी तरह से पेड़ के तने को जकड़ रखा था, जमीन से आठ-दस फीट की ऊंचाई तक। पत्तियां हरी-भरी लहरा रही थीं व नन्हे नन्हे फूल भी मुस्करा रहे थे।

एक दिन मैंने देखा, माली बड़ी बेरहमी से उस लता को खींच-खींचकर उखाड़ रहा था परन्तु वह गुंथा हुआ गुम्बज हिल-हिलकर रह जाता। अन्त में दो और मजदूरों के साथ माली ने जोर लगाया और थोड़ी देर में उखाड़ ही तो फेंका। लता बिखर गई धरती पर, फूल मुरझा गए। लता का अन्त हो गया।

मैंने शीला से पूछा, ऐसा क्यों किया गया तो बोली थी, "वह वन-लता थी। उसके स्थान पर दूसरी अच्छी लता लगाई जायगी।" मैंने कहा कि मुझे तो उस वन-लता का बड़ा दर्द लगा, तो वह हंसने लगी।

कुछ दिनों बाद मैंने देखा कि नई विलायती लता तो उगी व फैली भी, परन्तु वन लता एक दम से न गई। वह भी बीच-बीच में उगकर गुंथती रही व पेड़ के तने को दोनों ने ढक लिया। मैंने शीला का ध्यान आकर्षित किया उधर, तो बोली थी, 'माली वन-लता को चुन चुनकर खींच देगा।'

मैंने कहा था, "शीला अब तो रहम करो, दोनों को उगने दो, गुंथने दो, कितनी सुन्दर लगती हैं। अब यदि वन-लता को उखाड़ोगी तो तुम्हारी विलायती लता भी साथ ही उजड़ जायगी।'

वह बहुत हंसी व बोली थी, "तुम स्वभाव से बहुत कोमल हो,

कुमार ! तुम्हें इन लताओं तक का दर्द सालता रहता है !"

"यही तो मुश्किल है, शीला, इन लताओं की मुस्कान के साथ मुस्करा सकूँ या नहीं, पर इनके दर्द से कराह तो उठता ही हूँ !"

फिर मैंने शीला को बताई थी अपने आंवले के पौधे की कहानी। बनारस से बड़े-बड़े कलमी आवलों का पौधा लाकर रोपा गया मेरे बाग में। मैं उसे बहुत प्यार करता था, रोज संवारता, जल भी देता। उसके सुन्दर पत्तों को प्रतिदिन देखा करता।

एक दिन एक सांड़ कहीं से घुस पड़ा व उस नन्हे से पौधे का सिर ठीक बीच से काटकर चबा गया। फिर तो वह आंवला न पनपा, न जिया। सूख ही गया। मर गया। उस दिन मैं खूब रोया, खूब रोया और रात को खाना न खाया। कई दिन तक मन न लगा। आंवले के पास जाकर उसे हाथ से सहलाता, चूमता व रो पड़ता। मगर न तो मेरा प्यार उसे जीवन-दान दे सका और न मेरे आंसू।

कुछ ऐसी ही टेढ़ी-मेढ़ी समस्या मेरे जीवन में आ अटकी थी। एक वनलता को उजाड़कर दूसरे को बसाने की बात थी। मन कहता, 'एक तो उजड़ ही चुकी है, दूसरे को बसाने में भला क्या आपत्ति है ?' हृदय कहता, 'वैसे तो दोनों उजड़ चुकी हैं, मगर क्या सचमुच वन-लता उजड़ चुकी है ? क्या पानी पाते ही वह फिर उग न आयेगी ?'

मैं स्पष्ट देख रहा था कि मेरे लिए सुख नाम की चीज़ किसी भी पथ में नहीं थी। इसलिए उस पर विचार करना व्यर्थ समझा। प्रश्न था, अब किसे सुख पहुंचाऊं व किसे नाराज़ करूं ? सुख किसी को पहुंचे या नहीं, नई ठेस मैं किसी को न देना चाहता था। उसी को बचा रहा था। पर क्या मैं बचा पाता ?

एक बात तो स्पष्ट थी। मेरे लिए कोई भी पथ सुखकर न था और मेरे मन व हृदय के सुख में ही जेन व नीरू का भी सुख निहित था। इसलिए न तो जेन को किसी पथ में सुख मिल सकता था और न नीरू को ही।

इस प्रकार ये तीन तो किनारे लगे, इनके भाग्य में किसी भी रूप में सुख नहीं। रह गई जीजी, सो उन्हें क्यों नई ठेस दी जाय!

इसी प्रकार गुनता रहा, मथता रहा मन को, मस्तिष्क को। कभी-कभी सब कुछ बड़ा स्पष्ट लगता व फिर पटाक्षेप हो जाता, पहाड़ियों पर घिरे वाले कुहरे की भांति, बादलों की भांति।

दिन भर परेशान रहा, शाम को गंगा-तीर जाकर बैठा रहा। एक बार मन में आया कि किसी जलस्रोत में बैठकर कहीं चलदूं दूर देश को, इस समस्या से छुट्टी मिल जाय। फिर मैं अकेले ही मुस्करा उठा। सोचा, मेरा 'भागू' मन और क्या हल निकाल सकता है।

बड़ी रात को बंगले पर लौटा। रात को खाना न खाया। बहुत चाह कर भी मन स्वीकार न कर सका। लगभग एक बजे रात तक जब नींद न आई, करवटें बदलते ही समय बीत गया तो मैंने आल्मारी से वह 'स्नैप' निकाला जिस में नीरा लड़के के वेष में जेन को चूम रही थी।

उस 'स्नैप' को देखता रहा, देखता रहा, और जी भर आया। लगा, जैसे मेरे हाथ इन दोनों के खून से रंगे हों। कितनी प्रसन्न मुद्रा में दोनों थीं। मैंने इन कलियों को मसलकर दो किनारे फेंक दिया।

परन्तु यह सब तो प्रश्न को टालने का बहाना था। मेरा 'टालू' मन इधर उधर कर रहा था, क्योंकि किसी फैसले पर पहुँच नहीं पा रहा था।

अन्त में उकताकर मैं बाहर 'लॉन' पर चला गया। जाड़ों की रात थी। वैसे ठंडक बहुत न थी, मगर रात गीली-गीली हो रही थी ओस क्यों से। अन्धेरी रात, घोर अन्धेरा, भयानक कालापन, ऐसी स्याही, जो लगता, कभी किसी प्रकाश से मिट ही न सकेगी। और तारे थे कि दूरस्थित बहुत तेज़ बिजली के बल्ब की तरह चमक रहे थे आकाश के चन्दोवे पर। सब से निराली बात तो यह थी कि उनके चमकने से अन्धेरा दूर न होकर और भी गाढ़ा हो जाता था। तारों के प्रकाश से अंधेरा गहरापन प्राप्त करता था और अन्धेरे के गहरेपन से तारों को और भी ज्योति

मिलती थी। । वे और भी तेजी से चमकते थे।

मैंने देखे आकाश के दो सिरों पर प्रज्वलित तारे चमकते हुए, जैसे मेरे ही भाग्याकाश के काले पट पर वे चमक रहे हों—नीरा व जेन ।

लगभग दो बजे रात को कमरे में लौटा, और लौटकर भी अपने को वहीं पाया जहां जीजी का पत्र पाने पर था। अन्त में कागज़ तथा कलम लेकर लिखने बैठा, मगर क्या ? यही तो पता नहीं था अब तक!

अन्त में कई बार लिखने व फाड़ने के बाद मैंने निम्न प्रकार का पत्र जीजी को दूसरे दिन भेज दिया :

"मेरी, जीजी, तुम्हारे जीवन में घटने वाली अप्रत्याशित घटनाओं का विवरण जानकर बहुत दुःख हुआ। मैं तो तड़प उठा, पर नियति के सामने सिर झुकाने के सिवाय चारा ही क्या है। तुम इस परीक्षा में स्वर्ण सिद्ध होंगी, मैं अच्छी तरह से जानता था। भगवान से मैं सच्चे हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम्हारे त्याग व बलिदान के जीवन को सफल बनाए और तुम्हें सब कुछ सहने की शक्ति दे, तुम स्वयं शक्ति का अवतार बनो, और क्या !

"तुमने मुझसे आंचल पसार कर भीख क्यों मागी, जीजी ? तुम्हें तो आदेश करना था। मुझे तुम्हारी इस भीख से ठेस लगी। तुम मेरी जीजी हो, मेरी प्यारी जीजी, आदेश करने का अधिकार तो न खो दो।

"नीरा को अपने चरणों में स्थान देने का प्रश्न कहां उठता है, जीजी, तुम्हें क्या मालूम नहीं, मैंने आत्म-समर्पण उसके सामने कर दिया है। वह कुम्हार है, मैं माटी। वह जो चाहे, जैसा चाहे मुझे बना सकती है। समर्पण के बाद से मेरा अलग व्यक्तित्व ही कहां रहा जो किसी के 'प्यार' या 'विल' को स्वीकार या इन्कार करे।

"आशा है तुम अपने भैया को ठीक ठीक समझोगी। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि तुम मुझे गलत न समझोगी।

"हो सौ प्यार व वन्दना के साथ,

तुम्हारा ही, भैया।"

छयालीसवाँ परिच्छेद

साबरमती आश्रम में

जीजी आखिर चली ही गईं। उनको कोई रोक न सका। नीरा की सारी सफलता जीजी को मृत्यु के इस पार तक रोकने में सीमित रही, इससे आगे जीजी ने किसी की कुछ न सुनी। दिल्ली से पहले प्रयाग गईं। इतना ही उन्होंने बताया कि वे कहीं जाने से पहले अपनी माँ से भी बढ़कर ममता रखने वाली तथा पालने वाली बुआ से ज़रूर भेंट करेंगी।

जीजी के प्रस्थान की बात नीरा के ही शब्दों में कहूँ तो अच्छा। नीरा ने लगभग बारह पृष्ठों में उसका विवरण दिया था। कुछ अंश यों है।

"प्रिय कुमार,

कल रात की 'ट्रेन' से जीजी प्रयाग चली गईं। प्रयाग तो क्या—समझो, अनजान पथ पर चली गईं, सदा के लिए। अब शायद इस जीवन में भेंट भी न हो। जाते समय उन्होंने कहा, 'वैसे मैंने यह ज़िन्दगी सेवा के लिए रख ली है, पर तुम लोग हर प्रकार से यही समझना कि जिस जीजी को तुम लोग जानते थे वह अब मर गई। यह जीजी का पुनर्जन्म है, कायाकल्प। पुरानी ज़िन्दगी का तो श्राद्ध इसी दिल्ली में हो गया।

"हम सब की आँखों से आँसू झरते रहे, पर जीजी की आँखों से आँसू न निकले। जब उन्होंने मुझे अपनी बाँहों में भर कर प्यार किया व सब के सामने चूम लिया, तो मैं फफक-फफककर रोने लगी और जीजी की आँखों से बस, 'नीरव' मोती लुढ़कने लगे, लुढ़कते रहे।

"मुम्मी भी बहुत रोईं। स्टेशन पहुँचाने केवल हम दोनों गई थीं। ...जी ने और किसी को न जाने दिया। कल्पना तो बंगले पर ही इतना ..., इतना रोई कि सभी चकित रह गए। जीजी ने उसे भी चूमकर ...श्वस्त किया।

"डैडी ने स्टेशन जाने से इन्कार कर दिया। वे रोए, बहुत रोए। ...के मरने के बाद से उनको जीजी ही तो सम्भालतीं थीं, कुमार। ...नको भी व मुझे भी। अब मुझे कौन सम्भालेगा? और कौन सम्भा-...लेगा डैडी को?

"मेरा प्यार तो पहले ही लुट चुका था, अब घर भी लुट गया। मैं कितनी अभागिनी हूँ, कुमार, बचपन में माँ को खा गई, जवानी में अपने प्यार को, फिर जेन को, और अब जीजी को। मैं सचमुच नागिन हूं, कुमार, नागिन जो अपनी ही सृष्टि को खा जाती है, और तुम्हारा जीवन अपने विष से मैंने कितना विषाक्त कर दिया।

"सच, कुमार, अब तो घबरा के मर जाने को जी करता है। 'आत्म-हत्या'—यह प्रश्न कई बार मेरे मन में उठा है और इसे करने का प्रयत्न भी किया है, फिर भी न जाने किस आशा की प्रेरणा से यह रह रहकर उठने वाला संकल्प हृदय के भीतर ही खो जाया करता है। न जाने कौन शान्ति व सुख की एक क्षीण रेखा, मेरे भाग्याकाश में खींच देता है और मैं मुग्ध हो फिर से जीवन की डोर पकड़ लेती हूं।

"जानते हो, विदा की घड़ी में जीजी ने कान में क्या कहा? जाने दो, नहीं बताऊंगी, तुम बेकार में तड़प उठोगे। तुम्हारा पत्र जीजी को मिल गया था दिन को ही। वे बड़ी खुश थीं। कहती थीं, 'भैया ने मेरी लाज रख ली।' तुम भी निकले खूब? सब कुछ मेरे सिर पर ढकेल कर स्वयं किनारे हो गए।

"ओह, पेट में भयानक पीड़ा होने लगी। अब तो आज बस ही करूं क्षमा करना अपनी रानी को। यह दर्द, तो लगता है, जान लेक ही रहेगा।

"मुन्नी और कल्पना तुम्हें बहुत याद करती हैं, नमस्ते भेज रही हैं। तुमने क्या जादू किया है उन पर ? मगर तुम्हें कौन प्यार नहीं करता। तुम हो ही इस लायक।

"लो मेरे रोम रोम का प्यार लो।"

जेन के चले जाने के बाद मेरे दिल पर जो सदमा पहुंचा था वह अभी भी ज्यों का त्यों था। तब तक जीजी की विदाई ने दूसरी गहरी ठेस लगा दी। सचमुच नया जन्म जीजी का हो या न हो, काया-कल्प करें या न करें, सेवा बन पड़े या न बन पड़े, मगर फ़िलहाल जीजी के प्यार की दुनियां तो सदा के लिए उजड़ ही गई। तूफ़ान उनके जीवन-वृक्ष को ठूंठ बना गया, उनका सचमुच श्राद्ध हो गया दिल्ली में।

नीरा ने लिखा था कि जीजी ने कई बार कहा, 'तेरा कलाकार आए तो उसे मेरे पास न भेजना। मैं उसकी सूरत तक देखना नहीं चाहती।' भला जीजी ने ऐसा क्यों कहा ? कलाकार तो किसी भी दशा में न आता। जीजी जानती थीं, नीरा जानती थी, सब जानते थे, फिर यह बार-बार की चेतावनी क्यों ? क्या सचमुच जीजी सुरेन्द्र की सूरत तक देखना नहीं चाहती थीं, या अन्तिम दर्शन की लालसा इस निषेधात्मक रूप में प्रकट हो रही थी ?

कौन जानता है। कौन कहे ? प्रीति की तो रीति ही निराली होती है। इतना सताए जाने पर भी सितमगर के एक दीदार, एक झलक की लालसा लगी ही रह जाती है, और कभी-कभी उतना ही शेष जीवन भर के लिए सम्बल बन जाता है।

इन दिनों मेरे व्यापार की व्यवस्था भी काफ़ी बढ़ गई थी। बढ़ती क्यों नहीं, अपने जीवन व प्यार-सम्बन्धी किसी काम में तो मन लगता नहीं था, इसलिए सारा का सारा ध्यान व्यापार ही पर जम गया था। काम दिन पर दिन बढ़ने लगा था। पैसों की आमद बढ़ती जा रही थी, पैसे जिनकी कोई विशेष या महत्वपूर्ण उपयोगिता मेरे जीवन में न थी।

इन्हीं दिनों में मुझे अहमदाबाद एक दिन के लिए जाना आवश्यक

गया। एक वार्ता चल रही थी। उसे अन्तिम रूप देना था। मैं उड़ कर बम्बई गया और वहां से अहमदाबाद। दिन भर तो काम में व्यस्त रहा, शाम को साबरमती की सुधि आ गई।

साबरमती-आश्रम, जहां कोटि-कोटि भारतीयों के हृदय-सम्राट, देश के राष्ट्रपिता ने अपने जीवन के सबसे बड़े तप की साधना की, उस तपोभूमि का दर्शन तो करना ही चाहिए था।

वहां पहुंचा कुछ मित्रों के साथ। मोटर बाहर ही रोक दी गई। फाटक के भीतर घुसते ही मन आर्द्रता से भर उठा। हृदय बार बार कहता, यही तो वह भूमि है जिस पर बापू प्रतिदिन चलते थे, जहां 'बा' का निवास था, जहां महादेव भाई ने अपना जीवन बापू की सेवा में लगा दिया, जहां से बापू डांडी-यात्रा को निकले, इस प्रतिज्ञा के साथ कि या तो भारत को स्वतन्त्रता मिलेगी या मेरी लाश सागर की लहरों पर होगी। वहां वे फिर लौट कर आए!

उस तपोभूमि के प्रति न जाने कैसी ममता जागती-उमड़ती आ रही थी। वहां के प्रधान ने हमारा बड़ा सम्मान किया व स्वागत के बाद हमें ले चले स्वयं आश्रम दिखाने के लिए। आश्रम ठीक साबरमती के तट पर तो है ही। वहां से नदी-तीर तक जाने का पथ भी है।

उन्होंने हम लोगों को हृदय-कुंज दिखाया। वे स्थान दिखाए जहां बापू ने अपने ऐतिहासिक उपवास किए थे, वे स्थान जहां स्वतन्त्रता-संग्राम के ऐतिहासिक फैसले किए गए थे। इतना सादा व साधारण स्थान न जाने कैसे पन्द्रह वर्ष तक भारत की राजनीतिक राजधानी बना रहा। परन्तु इस साधारणपन में ही तो असाधारणता थी।

अब हम उनके निवास-स्थान को देखने चले। बा की कोठरी देखी, फिर बापू की कोठरी में आए। वहां पर बापू का पहना हुआ एक कुरता भी रखा था। वही कोठरी, वही स्थान जहां बापू महीनों, बरसों दिन रात रहे; वही कुरता जिसे उन्होंने पहना; वही तख्त जिस पर बैठकर न जाने उन्होंने कितनी आध्यात्मिक व राजनीतिक गुत्थियां सुलझाईं, न जाने

कितने आध्यात्मिक प्रपंच व हृदय-मंथन हुए। देखते ही मेरा तो हृदय भर आया, गला रुंधने लगा। मैं वहीं फर्श पर बैठकर 'बापू बापू' करके रो पड़ा। मेरे साथी चकित हो गए, अधिकारी ने मेरी बांह पकड़कर उठाया व सान्त्वना देने की कोशिश की; परन्तु यह बांध जो एक बार टूटा तो टूट ही गया।

अन्धेरा हो चला था। सन्ध्या की प्रार्थना के लिए देर हो रही थी। बरामदे के अन्धेरे में सभी आश्रमवासी एकत्रित होकर क्रमबद्ध बैठ गए थे। प्रतीक्षा प्रधान अधिकारी की हो रही थी और वे मुझे सम्भालने में लगे थे। मन ज़रा स्वस्थ हुआ तो मैं मन ही मन शरमाया। मैंने सचमुच कैसा बचपना कर डाला।

उनके आग्रह से हम लोग भी प्रार्थना में शामिल हुए। अधिकारी ने अपनी बगल में एक विशेष आसन पर मुझे स्थान दिया। शायद यह मेरे आंसुओं की कीमत थी। मैं मन ही मन फूल उठा। प्रार्थना आरम्भ हुई, सारा वातावरण शान्ति व सरलता से भर उठा। श्लोक व प्रार्थना-गीत धीमे-धीमे मन्द स्वर में गाए गए। फिर प्रधान अधिकारी ने कुछ आदेश दिये व हमारे विषय में भी दो शब्द कहे।

प्रार्थना का नेतृत्व करने वाली एक नवयुवती थी जिसे मैं अन्धेरे में देख न सका। वैसे आवाज़ बड़ी सुरीली व मोहक थी। अन्त में उसने एक सुन्दर भजन अकेले गाया। तभी उसकी आवाज़ स्पष्ट सुनने को मिली। गीत था :

"प्रभु आवन की मैंने सुनी आवाज़।"

यह भजन मीरा का था। कण्ठ परिचित सा लग रहा था, पर यह भ्रम भी तो हो सकता था। मैंने मन को रोक रखा। प्रार्थना समाप्त होने पर प्रकाश कर दिया गया। उस विद्युत के आलोक में मैंने जब उस युवती को देखा तो आंखों को विश्वास न हुआ। बिल्कुल दंग रह गया। लगा, जैसे हृदय की धड़कन बन्द हो जायगी।

वे हमारी भाभी थीं जो मन्द-मन्द मुस्करा रही थीं, परन्तु भजन के

भावावेश में उनकी बरौनियों से अभी भी आंसू उलझे हुए थे।

हम दोनों को इस प्रकार मुस्कराते व नमस्कार करते देख अधिकारी ने पूछा, "क्या आप लोग एक दूसरे को जानते हैं?"

जीजी ने ही कहा, "जी हां, ये मेरे कुमार भैया हैं।"

"और ये मेरी जीजी," मैंने तुरन्त जोड़ दिया।

प्रधान भी मुस्कराए व हम दोनों को बातें करने के लिए छोड़कर चले गए। फिर तो साबरमती के तट पर उस तारों-भरी रात में टहलते-टहलते मैं व जीजी न जाने कितनी बातें करते रहे। जीजी ने आश्रम के काम व संयम-नियम का विशेष विवरण दिया। हरिजन बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का बड़ा विशेष प्रबन्ध था। उन्होंने यह भी बताया कि किस प्रकार महत्वशाली लोग सेवा-भाव से जीवन-यापन करते हैं और हरिजन-सेवा में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं।

जीजी ने मेरे या जेल के बारे में कुछ भी जानने की जिज्ञासा न प्रकट की। मेरे व नीरा के बारे में भी कुछ न पूछा, यहां तक कि उस के बारे में भी उन्होंने कुछ न पूछा, जिसके विषय में उनके बिना पूछे ही यदि मैं एक भी शब्द बता देता तो जीजी का रोम-रोम आशीष देता इस तपस्विनी वेष में भी। परन्तु मुझे कुछ भी मालूम हो तब तो!

नीरा की बढ़ती बीमारी के विषय में मैंने जरूर चर्चा की। जीजी जरा देर के लिए चिन्तित हो गईं परन्तु फिर दूसरे ही क्षण मुस्कराने लगीं। जीजी ने कहा, "भैया, तुम्हारी भावुकता घटने के बदले दिन पर दिन बढ़ती जा रही है!"

"सो कैसे, जीजी!"

"तुम बापू की कुटिया में फूट-फूटकर रो पड़े!"

"तुमने तभी मुझे देख लिया था क्या! मुझे तो यह सोच-सोचकर बड़ी रुलाई आ रही थी कि हाय मेरी जीजी किसी ऐसे आश्रम में तप कर रही होगी, भरी जवानी में 'तिहारे' के लिए!"

"चलो झूठे कहीं के, बातें बनाना अब बहुत सीख गए हो, लगता

है। और यह 'तिहारे' कौन है?"

"तुम नहीं जानतीं? सचमुच? बता दूँ?"

"बताओ न, मैं सचमुच नहीं जानती।"

"तुम इतनी जल्दी भूल गईं, 'आऊँ कहाँ तजि चरण तिहारे?'"

जीजी जरा देर के लिए चुप हो गईं, फिर सिर नीचे कर धीरे-धीरे बोलीं, "क्यों मरे मुर्दे उखाड़ रहे हो, भैया? वह दुनिया अब पीछे छूट गई, बहुत पीछे।"

"मैं भी इस दुनिया से ऊब गया हूँ, जीजी, पता नहीं ये आँसू आ के लिए थे या यों ही ईर्ष्या से विषादभरा मन मोती सारे ही मोती बिखेरने लगा। अच्छा, सुनो, क्या मुझे इस आश्रम में स्थान नहीं मिल सकता?"

"तुम्हारे लिए तो मैंने दूसरे ही आश्रम की व्यवस्था कर रखी है, तुम इसमें आकर क्या करोगे?"

"वह कौन सा आश्रम है, जीजी?"

"तुम इतने नासमझ क्यों बनते हो, भैया, याद रखो, यदि मेरी नीरा को कुछ भी हुआ तो मैं तुमसे पूछूँगी। वह मेरी धरोहर है, तुम्हारे हाथ में।"

"मगर मैं तो स्वयं एक धरोहर हूँ नीरा के हाथ में, जीजी। उसने इसे स्वीकार भी किया है, फिर मैं उसको क्या कर सकता हूँ? मैं तो गीली मिट्टी हूँ नीरा के हाथ की। वह चाहे जो बनाए, देव-प्रतिमा, या आरती का दीप या यों ही मसलकर रास्ते पर फेंक दे पापियों के पद-चले कुचले जाने के लिए।"

जीजी ने विषय बदलने के लिए कहा, "आओ, तुमको आश्रम का बना हुआ खद्दर दिखाऊँ।"

हम दोनों वस्त्र-भण्डार में गए। मैंने वहां पर कुरते का कपड़ा, कुछ धोतियां व चादरें खरीदीं। कुछ रूमाल भी। जीजी ने पूछा, "साड़ी न लोगे?"

"किसके लिए, जीजी ?"

"नीरा के लिए।"

"वह खद्दर की साड़ी पहनती कहां है। कहो तो तुम्हारे लिए ले दूं?"

"मेरे लिए तो यहां बहुत हैं, क्या करोगे लेकर ?"

"यहां बहुत हैं तो दिल्ली चलो चलो, वहां तो कम होंगी। मैं आकर तुम्हारे लिए ले जाया करूंगा।" जीजी मुस्कराईं। उन्होंने पूछा, "तुम लौटते हुए दिल्ली से होकर जाओगे ?"

"क्यों ? नहीं तो। कोई काम हो तो उधर से ही चला जाऊंगा।"

"काम मेरे पास क्या धरा है ? वैसे नीरा से मिलते जाते तो अच्छा। पांच महीने हो गए तुम्हें उसे मिले।"

"मिलने से दर्द ही तो हम मोल लेते हैं, जीजी दवा तो नहीं होती ? फिर मिलने से लाभ ?"

"रोगी दवा का सेवन ही न करे तो वैद्य क्या करेगा, भैया ?" कहकर जीजी मुस्करा पड़ीं।

"नीरा तो नहीं, किसी और से मिलना हो तो कहो, सिर के बल चला जाऊं, अभी, इसी क्षण।"

"तुम्हारा बचपन कभी न जायगा, भैया। अरे, मुझे दिल्ली में किसी से क्या लेना-देना है ? अच्छा, वे छोटे रंगीन रुमाल अच्छे हैं, कुछ ले लो, जिसे मन करे, भेंट कर देना।"

"कलाकार को भी ?"

"हां, कलाकार को भी," कहकर जीजी हंस पड़ीं। उस हंसी में कितना दर्द छिपा था, उसे मैं ही जानता हूं। मैंने जीजी को अधिक न छेड़ा। कुछ और कपड़े, रुमाल तथा एक जोड़ा साड़ी व ब्लाउज़ के कपड़े ले चलने को तैयार हुआ। जीजी फाटक तक पहुंचाने आईं।

चलते चलते उन्होंने हिदायत की कि उनसे भेंट होने की बात दिल्ली में किसी से न कहूं। मैंने कहा कि दिल्ली जाता ही कहां हूं तो बोलीं, "साड़ी बता रही है, तुम दिल्ली जा रहे हो।" मैं मुस्कराकर

गया। जीजी ने कसम धराई पर मैंने कसम खाने से इन्कार कर दिया।

चलते चलते मैंने पूछा, "कलाकार के लिए कोई संदेश।"

जीजी ने मुस्कराकर हाथ जोड़ दिये।

दूसरे दिन कुछ और साड़ियां व अन्य कपड़े खरीद कर मैं दिल्ली मेल से चल पड़ा। रास्ते भर मन में नीरा से मिलने की, नीरा से भेंट की, एक अजीब गुदगुदी छाई थी। साबरमती में जीजी से भेंट का सुख अभी बिल्कुल ताज़ा था। यह भेंट भी कैसी थी! लगता था, जीवन-नदी के दूसरे पार मुलाकात हुई हो। और नीरा! दुखी हुई बीमार नीरा से भेंट न जाने कैसी होगी!

कलकत्ता से चलने के पहले ही मुम्मी का एक पत्र मिल चुका था जिसमें 'एक्सरे' रिपोर्ट का विवरण था। 'अपेंडिसाइटिस' का सन्देह बिल्कुल ठीक निकला, 'ऑपरेशन' आवश्यक बताया गया था।

रास्ते भर राजपूतों के एक सहस्र वर्ष के इतिहास को, राजस्थान की वीर-भूमि के कण-कण में बसने वाले शौर्य व प्यार को, मैं बार बार सोचता रहा। मन ही मन दुहराता रहा। मीरा और पद्मिनी की भूमि पर से गुज़र रहा था, राणाप्रताप व सांगा की बनाई गढ़ियों के दर्शन हो रहे थे। कदम कदम पर जी में आता था, उठाकर बालू को प्रणाम करूं। और 'ट्रेन' सन-सन पार करती जा रही थी। कंटीलो झाड़ियां व बबूल, काली मटमैली रेत, पहाड़ियों पर गढ़ियां व गढ़, कहीं कहीं थोड़े बहुत झोंपड़े व खेतों का थोड़ा हराभरा टुकड़ा—यही तो है यह वीरभूमि। इसमें रहने वालों का जीवन सचमुच कितना दुस्तर होगा, जीवन-यापन का कोई साधन नहीं दिखाई देता था। जल की भयानक कमी, उद्योग-धन्धों का नाम नहीं। भला, इन फूस के झोंपड़ों व थोड़ी सी हरी-भरी भूमि से हमारे वीर राजपूत कितना कर वसूल कर पाते होंगे! राजा, महाराजा, किलेदार, जागीरदार और न जाने क्या, क्या!

तभी तो शूरता उनके लिए जीवन का आवश्यक अंग बन गई। जयपुर आया। मन में एक लालच जागा कि उतर कर देखूं, जयपुर का

अपूर्व सौन्दर्य, हवाई महल, चांदनी चौक, बाजार, नगर, बड़े बड़े फाटक वेध-शाला वगैरह, मगर न जाने कौन मन के भीतर बार बार आग्रह कर रहा था, चलो चलो, दिल्ली चलो। न जाने कौन वहां पथ पर आंख बिछाए बाट जोह रहा होगा।

परन्तु बाट कौन जोहता, मैंने अपने पहुंचने की सूचना तो किसी को दी न थी। देता भी क्या? लुटे हुए घर में किसको सूचना देता? एक बार ऐसा लगा कि केवल सुरेन्द्र ने ही इस घर को नहीं उजाड़ा बल्कि मैंने भी उतनी ही निर्दयता के साथ इसे उजाड़ा है। मैंने उसमें प्यार की एक रंगीन दुनियां बसाई। जल्दी, बहुत जल्दी, सुरेन्द्र से बहुत पीछे, और उसे उजाड़ भी मैंने ही डाला अपने ही हाथों, पहले, सुरेन्द्र से बहुत पहले। मुझ से कौन कहे, 'निर्दयी यह तुमने क्या कर डाला?'

भीजी के जाने के बाद से नीरा एक भी दिन शायद स्वस्थ व प्रसन्न न रही। उसके पेट का दर्द बढ़ता ही गया। दिल्ली स्टेशन पर मैं रात के लगभग नौ बजे, पहुंचा। सोचा, सीधे होटल चलूं। रात को किसी के यहां जाना ठीक नहीं, सो भी इतनी रात को।

किन्तु लालची मन ने बीस बहाने किए। आंखें किसी से मिलने के लिए, किसी को तुरन्त देखने के लिए तड़प रही थीं। मन ने बहकाया 'न जाना उसके पास, कुशल-क्षेम तो पूछ लो। कह देना सवेरे मिलूंगा सोचो न, यहां आकर भी तुमने सूचना तक न दी तो क्या सोचेंगे मि सहाय और क्या सोचेगी नीरा, तुम्हारे प्यार की पुतली?'

इस प्रकार अपने ही मन के बहकावे में मैं आ गया। मैंने मि० सहा को फोन किया। वे बंगले पर ही थे। फोन उन्होंने ही उठाया। मे एकाएक आने पर आश्चर्य प्रकट किया। अहमदाबाद से आना जान उनकी उत्सुकता शान्त हुई, परन्तु सूचना न देने की बात लेकर उन्हो खीझ प्रकट की और आदेशात्मक ढंग से बोले कि मैं सीधे बंगले चला आऊं।

मैंने फोन का चोंगा रख दिया।

क्या बात समाप्त हो गई?

अजी, बात तो प्रारम्भ ही न हो सकी। मारे संकोच के यह ज़ुबान हिली तक तो। सोचा था, मि० सहाय तो कहीं गये होंगे। पर मैं [illegible] इसलिए टेलीफ़ोन वही उठायगी। यदि किसी बैरे या नौकर ने उठाया तो, तो भी नीरा को बुला लूंगा, परन्तु ऐसा कुछ भी तो न हुआ। 'मन की मन ही में रही।'

मैं वहां ठहरने के लिए चल पड़ा परन्तु क्या वह अब कोई ठहरने का स्थान था? ठहरना तो मेरे फ़ोन करने का ध्येय भी न था। मैं तो किसी मधुमय कण्ठ की निभी घुली आवाज़ को सुनने के लिए ललचा गया था। वैसे वहां ठहरने पर भी अब क्या मैं नीरा से उतने मुक्त रूप में मिल सकूंगा जितना जोशी की छत्र-छाया तले मिल सकता था?

वहां सचमुच रात को ठहरने के लिए जाना उचित नहीं था परन्तु अब क्या होता? मि० सहाय कह चुके थे व मैंने तो 'अच्छा' कह भी दिया था।

परन्तु वहां जाने के लिए क्या इतना बाव काफ़ी था?

बीस बहाने न जाने के हो सकते थे, बीस बहाने होटल में ठहरने के हो सकते थे; मगर यहां बहाना सुनता कौन है? ज़रा ढील दीजिये न मन को प्रेम के पथ पर और वह कुलांचे भरने लगता है। एक दीदार की उतावली मुझे बरबस 'टैक्सी' में लिए जा रही थी, मि० सहाय के बंगले की ओर।

उचित-अनुचित का ज्ञान ताक पर रह गया। प्यारी आखें मुझे खींच ले चलीं प्रेम मन्दिर की ओर!

बंगले पर पहुँचते ही 'पोर्टिको' में 'टैक्सी' लगी नहीं कि 'ड्राइंगरूम' से मि० सहाय निकल पड़े। उन्होंने मुझे यों बाहों में भर लिया जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया हो। मैं भी बड़े चाव से मिला।

पर यह क्या? मि० सहाय की आखों में अश्रु!

ये आनन्दजनित है? या विषादजनित?

जो भी हो, मैं तो उनको देखकर दंग रह गया। इन थोड़े से दिनों ही, लगता था, वे दस बरस बूढ़े हो गए। बालों में एकाएक न जाने तनी ढेर सी सफेदी कहां से आ गई, चेहरे पर शिकनें पड़ गईं, माथे र झुर्रियां छा गईं। भरा-पूरा चेहरा दुबला होकर कुछ लम्बा व कोणा-कार-सा लगने लगा था।

सचमुच मि० सहाय की चोटों का अन्त ही न था और बहुत सारी चोटों का जिम्मेवार तो मैं भी था।

हम दोनों बैठक में आए। एक सोफा पर एक किनारे पर मैं बैठ गया व आराम कुर्सी पर वे। साधारण कुशल-क्षेम की बातें हुईं। मीरा व रानी को लेकर न तो उन्होंने कोई बात की और न मैंने। किन्तु मेरी आंखें निरन्तर कमरे के भीतरी द्वार पर लगी थीं। नीरा अब आई, अब आई, पर कहां आई!

आंखें थक गईं, दुखने लगीं, निराश हो चलीं, परन्तु नीरा के आने के लिए किसी दरवाज़े का परदा न उठा। मन तड़पता रहा, दिल धड़कता रहा, परन्तु रानी न आई, न आई।

नीरा है कहां? गई कहां?-मुन्नी के घर, कल्पना के घर? नहीं, नहीं। इतने में ही मि० सहाय बोले, "तुमने तो अभी खाना नहीं खाया होगा?"

"जी नहीं।"

"अच्छा, मैं देखता हूं। मैं तो, भाई, समाप्त कर उठा हूं।" यह कहते कहते वे उठ पड़े व अन्दर चले गए।

वे तो चले गए और मेरे मन ने अपना ताना-बाना बुनना शुरू कर दिया। ठीक सालभर हो गया, शायद हफ्ता दस दिन कम हों, एक वह सन्ध्या थी—पहली सन्ध्या इस बंगले में। यही तो कमरा था और यही अंगीठी। मैं उस कुर्सी पर बैठा था जहां से मि० सहाय अभी अभी उठे थे। और वही पीछे का दरवाजा था जिसका परदा उठाकर साक्षात् सर-स्वती, श्वेत वसना सामने आ खड़ी थी, बैठने के लिए। 'किबला आप,

किबला श्राप' पर हम दोनों हंस पड़े थे और तब मेरा हाथ पकड़कर दबाते हुए उसने स्वयं मुझे कुर्सी पर बैठा दिया था।

ओह, कितनी उत्सुकता व चाव के साथ उसने पूछा था, 'अच्छा, सच सच बताइये। आप मुझ से बहुत नाराज हैं न ?'

'नहीं तो !'

'मेरी कसम !'

इतना प्यार ! सो भी हमारी मुलाकात की पहली ही सन्ध्या में। कोई कैसे जीता होगा इतना प्यार पाकर...यहीं, यहीं तो उसने अपने नन्हे से रेशमी रूमाल से मेरे भाल का पसीना पोंछा था। क्या कह रही थी, पोंछने से पहले ? 'लीजिए, आप तो फिर पसीने से तर हो चले।' जब रूमाल मुझे वापिस करने लगी तो बोली, आपकी निधि आपके पास।' और मैंने झट रूमाल को चूमकर जेब में रख लिया था।

कितनी अदा के साथ उसने कहा था, 'अभी से यह हाल !'

कहां है, कहां है वह नीरा, मेरे प्यार की सजीव प्रतिमा, कहां है मेरी रानी, रानी मेरी ? कहीं तो उसका पता नहीं। सो गई है क्या ? हो सकता है, देर भी तो होगई।

मि० सहाय इतने में आ गए व बोले कि खाना तैयार है। मैं मुंह-हाथ धोकर 'डाइनिंगरूम' में चलूं। क्या करता, दुःख, आश्चर्य व उत्सुकता लिए अपने कमरे—अतिथिगृह—में गया। मुंह-हाथ धो, कपड़े बदल, चल पड़ा डाइनिंगरूम' की ओर। अभी भी आंखें इधर-उधर खोज रही थीं किसी को।

खाना अकेले खाने बैठ गया। बैरा मौन 'सर्विस' किए जा रहा था। बहुत सोच-समझकर, सम्भाल कर बड़े ही संयत स्वर में मैंने पूछा, "नीरा सो गई क्या ? बड़ी जल्दी !"

"नहीं, हजूर, वे तो अस्पताल में हैं !"

"अस्पताल में ! कब से ?"

"कल से, हजूर !"

मैं अभी 'सुप' ही तो ले रहा था। हाथ का चम्मच हाथ में ही रह गया। मैंने 'नैपकिन' से हाथ-मुंह पोंछ लिया व उठ गया। सिर चकरा गया। मन ने कहा, 'यहां तक नौबत आ गई?'

लम्बे डग भरता हुआ मैं अपने कमरे में गया और एक आराम कुर्सी पर आकर धम्म से पड़ गया। हृदय निरन्तर पुकार रहा था, 'नीरा-नीरा-नीरा!'

हाय नीरा, तेरी यह दशा? कुछ भी समझ में न आता था। जेन गई, जीजी गई और अब नीरा भी चल पड़ी। खिज़ां ने इतनी बुरी तरह से चमन को उजाड़कर वीरान कर दिया कि बहार आते-आते ठिठक-कर रह गई।

कुछ देर यों ही रहने के बाद मन ने पूछा, 'अभी उसका ऑपरेशन हुआ है या नहीं? कहीं हो तो नहीं चुका व बुरा हाल हो? इसीलिए तो मि० सहाय की आंखों से आंसू नहीं बरस पड़े?' इतना सोचते सोचते मैं आकुल हो उठा। एकदम से उठ पड़ा व बैठक में आया, परन्तु वहां था कौन? मि० सहाय तो न जाने कब के सोने चले गये थे। 'डाइनिंग-रूम' में फिर से गया। 'कुक-बैरे' भी सोने जा चुके थे। इधर, उधर देखा, झांका, ताका। कहीं कोई दिखाई न दिया। अब किससे पूछता, 'नीरा का क्या हाल है?'

नीरा का जो भी हाल हो, मगर इस असमंजस व शशोपज की स्थिति में मेरा तो बुरा हाल हो रहा था। नींद यों ही पलकों से भाग गई। मैं आराम-कुर्सी पर पलंग के किनारे पड़े पड़े सोचता रहा, नीरा की क्या दशा होगी। अब तो सवेरा होने का इन्तजार करने के सिवाय कोई चारा न था। क्या पता नीरा की बुरी हालत हो, बहुत बुरी ''आखिर मि० सहाय की आंखों से आंसू क्यों?

ऐसा लगा, जैसे नीरा की हत्या मैंने ही की हो। सारा मिलने का उत्साह तो पस्त पड़ गया। दुःख, भय, आशंका ने हृदय में डेरा डाल दिया। मन पीड़ा के कारण कराह उठा। नींद आने का तो अब कोई

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

इरविन अस्पताल में

सवेरे की छोटी हाजिरी के समय मि० सहाय मेज़ पर मिले। मैंने बड़े साहस के साथ निःसंकोच नीरा के बारे में पूछा। उन्होंने बताया कि 'ऑपरेशन' के लिए इरविन अस्पताल में एक कमरा ले कर उसे दाखिल कर दिया गया है। अभी कुछ 'टेस्ट' व कुछ 'इंजेक्शन' चल रहे हैं। 'ऑपरेशन' हफ्ते के भीतर हो जायगा। वैसे यह साधारण आपरेशन' है, परन्तु.......... खून के जमने का समय उसका बहुत ज्यादा है, खून में गर्मी बहुत है, अतः उसे ठीक किया जा रहा है।

'खून में गर्मी बहुत है' सुनकर मैं मन ही मन मुस्कराकर रह गया। 'ऑपरेशन' का साधारण न होना समझकर मन कुछ चिन्तित हो गया, परन्तु मैंने अपने चित्त की व्यग्रता ज़ाहिर न होने दी। जलपान समाप्त हो जाने पर हम दोनों मोटर में बैठे व चल दिए अस्पताल के लिए। रास्ते में कोई विशेष बातें न हुईं, कारण यह था कि शायद हम दोनों में से एक भी अपने मन की व्यथा दूसरे पर ज़ाहिर नहीं करना चाहता था। दर्दनाक विषय एक साथ ही ढेर से उपस्थित हो गए थे। ज़रा सा छेड़ने से भी ठेस लगने या पीड़ा बढ़ने का भय था। वैसे हम दोनों ही जानते थे कि एक दूसरे के मन में क्या चल रहा है।

इरविन अस्पताल मि० सहाय के बंगले से बहुत दूर नहीं पड़ता। हम तुरंत ही वहां पहुँच गए। मुझे एकाएक अप्रत्याशित रूप से पाकर नीरा इतनी खुश हुई, इतनी खुश हुई, कि कुछ कह नहीं सकता। उसका सारा प्रयत्न डैडी के सामने इस खुशी को छिपाने में, दबा रखने में

मुस्कराई।

ओह, कितनी दर्दीली थी वह मुस्कान! मैं उसकी विरह-व्यथा व प्यार की गहराई को नापने का प्रयत्न कर रहा था। मैंने हंसते हुए कहा, "यदि ऐसी बात है तो बताओ मैं कहां से आरहा हूं?"

"और तुम चाहे जहां से भी आए हो पर सीधे कलकत्ते से नहीं आरहे हो।"

हम दोनों हंस पड़े। मैंने कहा, "तुम ठीक कहती हो, मैं अहमदाबाद से आरहा हूँ।"

"अहो भाग्य, मुझ अभागिनी पर रहम तो आया। देवता पसीजे तो, देर से ही सही!" और उसने करवट बदल ली पलंग पर, शायद उमड़ते आसू छिपाने के लिए।

मैं एक कुर्सी पर कुछ दूर बैठा था। मैंने कहा, "यह क्या, रानी, तुम इस आनन्द की घड़ी में क्या करती हो?"

"जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलती।"

"कुछ मेरी भी सुनोगी?"

"नहीं, कुछ भी नहीं।"

मैं अपनी कुर्सी पर से उठा व उसके पास गया। उसकी पीठ मेरी ओर थी, मुंह उसने फेर लिया था। उसके कंधे को पकड़ कर करवट बदलवाते हुए मैंने कहा, "जरा, देखो तो मेरी ओर।"

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया व पलंग के पास खड़ा रहा। उसने अपनी दो बड़ी बड़ी आखें मेरे चेहरे पर गाढ़ दीं। जरा देर यों ही मौन रहने के बाद मुस्कराती हुई बोली, "निर्दयी कहीं के, तुमने बहुत तरसाया मुझे इस बार।"

"सच?" कहते कहते मैंने उसका हाथ चूम लिया।

"बुजदिल," कहते कहते वह हंस पड़ी व बोली, "छोड़ दो हाथ मेरा, कोई देखेगा तो क्या कहेगा?"

"कहेगा क्या? तुम कह देना कि ये मेरे.........।"

"लाखों में नहीं, रानी, करोड़ों में कर आया हूं, शायद अरबों में।"

"खरबों में नहीं ? ज़रा सुनूं तो, तुम्हारा सौदा काहे का था ?"

"तुम सुनोगी तो उछल पड़ोगी। बोलो, इनाम दोगी ?"

"तुम जो मांगोगे।"

"पक्की ?"

"पक्की !"

हम दोनों ने एक दूसरे के हाथ पर हाथ मारकर शर्त पक्की की, फिर मैंने कहा, "अच्छा तैयार हो आओ सुनने के लिए।"

"मेरा सारा तन कान हो रहा है।"

हम हंस पड़े। मैंने कहा, "मैं जीजी से मिलकर आ रहा हूँ।"

"सचमुच !" कहकर वह उछल पड़ी व उठ बैठी। एकाएक उठ-र बैठने से पेट में जोर की पीड़ा उमड़ आई।

'आह' करके वह कराह उठी व पेट पकड़ लिया हाथों से। मैं घबरा ठा। ज़रा ही देर में शान्त हो गई व पस्त होकर लेट गई। बोली, "यह र्द अब मेरी जान लेकर रहेगा, कुमार।"

उसके मुँह पर हाथ रखते हुए मैंने कहा, "छिः छिः, ऐसी बात मुँह े नहीं निकालते।"

"तो तुम, सचमुच जीजी से मिले थे ?"

"हां, नीरा, क्या मैं तुमसे मज़ाक कर रहा हूं ?"

"नहीं तो, वह कहां मिल गईं तुम्हें ?"

"बापू के साबरमती आश्रम में।"

"हां, तब तो वह मिली होंगी। कैसी हैं मेरी जीजी ?"

"बहुत अच्छी। वहां तो वह इतने थोड़े दिनों में ही नेता हो गई हैं। प्रार्थना का सायं-प्रातः वही नेतृत्व करती हैं।"

"बहुत दुबली हो गई हैं ?"

"नहीं तो, वैसे वह मोटी ही कब थीं ?"

"कुछ मेरे बारे में पूछती थीं ?"

"बहुत।"

"दर्द होने पर क्या करती हो ?"

"तुम्हें गालियां देती हूं और क्या ?"

हम दोनों हंस पड़े। उसने कहा, "जानते हो, मुझे हंसे एक युग हो गया।"

"क्यों ? सुम्मी, कल्पना तुम्हें नहीं हंसाती ?"

"कौन किसको हंसाता है, कुमार, मैं हंसती-हंसाती हूं तो सभी हंसते हैं। मैं उदास रहती हूँ तो कोई हंसता-हंसाता नहीं।"

"मगर तुम सुम्मी को घूंसे बहुत मारती हो, उसे कभी कभी सचमुच चोट लगती होगी।"

"तुम्हें क्या पता ? उसे अच्छा लगता है। दो-चार दिन नागा होते ही उसका जी बुलबुलाने लगता है। खुद आती है, छेड़ती है, घूंसे खाती है तो तबीयत ठिकाने लगती है।"

"तुमने लिखा था, उसकी शादी की बात हो रही है ?"

"हां, पर तुम क्यों घबरा रहे हो ? प्रस्तावित (प्रास्पेक्टिव) हो क्या ? कहो तो प्रबन्ध करूं।"

"तुम ? तुम प्रबन्ध करने लगी थी तो एक तो सात समुन्दर पार पाताल-लोक भाग गई। अब और क्या इरादे हैं ?"

"जानते हो, सुम्मो और कल्पना दोनों तुम पर जान देती हैं ?"

"सच ? और तुम नहीं देती ?"

"उहुँक, मगर तुम्हारा जादू है बड़ा तेज़।"

"कामरूप से सीखकर आया हूं न ?"

"मेरे ऊपर तो कम से कम अभ्यास न करना।"

"तुम्हारे ऊपर क्या अभ्यास करूंगा। तुमने तो खुद ही मुझे 'भेड़ा' बना रखा है।"

"मैंने ? नहीं तो। बल्कि तुम्हीं गुस्से में आते हो तो मुझे 'भेड़ी' कहते हो।"

हम फिर हँस पड़े। वह रुककर बोले, "आज कितना अच्छा लगता है!"

"क्या?"

"तुम्हारा यहाँ होना, मेरे पास।" रुककर, "आज तो मृत्यु भी मेरे सामने हाथ पसारे तो मैं मुस्कान दे दूँ।"

"मृत्यु को नहीं, देवी, मुझे ही मुस्कान दे दो तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ," हाथ जोड़ मैंने कहा और हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

नंदा बोली, "आओ तुमको आज कॉफी पिलाऊँ।"

"नहीं, नहीं, मैं अस्पताल की कोई चीज मुँह नहीं लगाता।"

"अच्छा! और अभी अभी किसके हाथ से तुमने मुँह जूठा किया था?" कहकर उसने अपनी हथेली दिखाई, जिसे ज़रा देर पहले मैंने चूम लिया था। हम मुस्कराकर रह गए। उसने घंटी बजाई, 'बॉय' आया व कॉफी का आदेश दे दिया गया।

ज़रा देर में कॉफी आ गई। नंदा ने अपने हाथ से दो प्याले बनाये। एक मेरी ओर बढ़ाते हुए बोली, "कितने दिन हो गए, तुम्हें अपने हाथ की कॉफी पिलाए हुए।"

ज़रा सा 'सिप' करते हुए मैंने कहा, "जानती हो नन्दा, हर कॉफी के प्याले के साथ तुम्हारी कितनी याद आती है?"

"जानती हूँ, बेहद याद आती है और तब तुम आधा, चौथाई प्याला पीकर शेष छोड़ उठ जाते हो, यही न?"

"तुम तो आज ज्योतिषी जैसी बात कर रही हो।"

"ज्योतिषी नहीं सुन्दर, मैं मिट रही हूँ धीरे-धीरे। जानते हो, कुछ दिनों में केवल 'तू ही तू' रह जायगा, 'मैं' मिट जायगा।" वह खोल हँसी। उस हँसी के पीछे छिपी वेदना को पहचानकर मैं कराह उठा। मन भारी हो गया। मैं ज़रा मौन हो गया। तब बोली, "अभी क्यों उदास होने लगे। यह प्याला तो जी भरकर पी लो। क्या पता मेरे हाथ से फिर कॉफी मिले या न मिले।"

"देखो, रानी, तुम ऐसी निराशाजनक बातें करोगी तो मैं उठकर चला जाऊंगा।"

"अच्छा, नहीं कहूंगी, मेरे सरताज, तुम कॉफी तो पीओ। क्षण भर को हम मौन हो गए। नीरा ही बोली फिर, "गत वर्ष इसी महीने में तो तुम आए थे? साल अभी पूरा न हो पाया और लगता है, जैसे एक युग बदल गया, एक दुनिया बदल गई, एक ज़माना बदल गया।"

"और हम तुम कितना बदल गए, रानी!"

"मैं तो न जाने कितनी बड़ी हो गई और मोटी भी!"

"और खूबसूरत भी। 'ब्यूटी-क्वीन'!"

"धत्! तुम तो यों ही आकाश में चढ़ाए रखते हो। तुम्हारी बातें सुन सुनकर मैं मारे अभिमान के फूली नहीं समाती।"

"एक बार तो तुम्हें सचमुच मैंने अपने साथ आकाश में चढ़ाया था।"

"कब?"

"जब मैं यहां से पिछली बार कलकत्ता जा रहा था।"

"अरे बाप रे, तुमने हम सब की जान ऐसी धुक-धुक में डाल रखी थी, कि कुछ पूछो नहीं। रेडियो से मालूम हुआ शाम को कि विमान दुर्घटना-ग्रस्त होकर बच गया। हमें कुछ सदेह होने लगा। प्राण नहीं में समा गए। तुमको तार दिया गया। और जनाब ऐसे नवाब निकले कि तुरंत तार का उत्तर देने तक की परवाह न की। तुम्हारी चिट्ठी व तार दोनों साथ मिले, तीसरे दिन। उन दिनों तुम पर इतना गुस्सा आता था, इतना गुस्सा आता था कि क्या कहूं। जी में आता था कि ········!"

"पकड़ कर चबा जाऊं, क्यों?"

"छिः छिः, हां तुम आकाश में चढ़ने की बात कर रहे थे न?"

"हां, रात भर का जागा था। इसलिए 'प्लेन' में बैठने के थोड़ी देर बाद मुझे नींद आगई और मैंने महालक्ष्मी-पूजन की रात्रि को भरी चाँदनी में मानसरोवर में स्नान व आकाश में उड़ने का स्वप्न देखा, सरस्वती के

साथ।"

मैंने उस अनुपम स्वप्न की पूरी कहानी विस्तारपूर्वक नीरा को सुनाई। केवल अंतिम भाग न सुनाया और उसके स्थान पर जोड़ दिया कुछ और रुचिकर भाग। वह मुग्ध होकर सुनती रही और अंत में बोली, "तुम सचमुच मुझे सरस्वती बनाकर छोड़ोगे।"

"कल्पना क्या है, तुम सरस्वती का अवतार तो हो ही।"

"तभी तुमने अब बाकायदा पूजा करना आरम्भ कर दिया है!"

"मैंने? नहीं तो, किसने कहा तुमसे?"

"मेरे दिल ने। क्या तुम फूलदानों के बीच 'ड्रेसिंग टेबल' पर 'न्यूटे-कोले' का चित्र रखकर अगरबत्ती जला आरती नहीं उतारते? ठीक ठीक बोलो?"

"नहीं, हरगिज नहीं।"

"झूठे कहीं के! एक बार तुम्हीं ने लिखा था। वह पत्र मैं अक्सर अपने साथ रखती हूं। कहो तो 'पर्स' से निकालूं?"

"नहीं, भाई, नहीं, मैं मान गया। अब बारह बज रहे हैं। चलो तुम्हें घर से खाना खिला लाऊं।"

"सचमुच!" उसकी आंखें चमक उठीं।

कुछ सोचकर बोली, "अच्छा रुको, मैं पूछ देखती हूं।" और उसने एक पुर्जे पर 'रेजिडेंट सर्जन' को लिखा शाम तक की छुट्टी के लिए। 'नर्स' पुर्जा लेकर गया व तुरन्त लौट आया। डाक्टर ने छः बजे शाम तक की इजाजत दे दी। फिर तो क्या था उसकी खुशी का पार न रहा। वह पलंग से उछल पड़ी, जैसे कुछ दुःख हो न हो। बच्चों जैसी उत्सुकता, कुतूहल व हाथ-पांव में चंचलता नाच उठी। इतनी बड़ी खुशी में एकान्त ऐसे पर न आने पर क्या करती, मगर यह तो अस्पताल का कमरा था।

नीरा ने जल्दी जल्दी कपड़े बदल लिए। हल्की सी क्रीम करके दस मिनट में चलने को तैयार हो गई। नर्स व 'वार्ड बॉय' को बुलाकर समझा दिया कि छः बजे तक लौटेंगी।

हम दोनों कमरे से निकले तो नर्स मुस्करा रही थी। नीचे 'शोफ़र' गाड़ी लिए इन्तज़ार कर रहा था। हम दोनों बैठ गए व गाड़ी चल पड़ी बंगले की ओर। ठंडी हवा का झोंका मुँह पर लगा तो हम दोनों की तबीयत खिल उठी। चलते चलते मैंने पूछा, "क्या सोच रही हो तुम ?"

"सोच रही हूं कि अभी तो तुम्हारे साथ का सुख उठा लूं जी भरके, क्या पता बाद को हम मिल सकें या नहीं ?"

'तुम बिल्कुल पागल हो, नीरा, ऐसी बातें क्यों करती हो ?"

"तुम नहीं जानते, कुमार, तुम साथ होते हो तो लगता है, मेरा सब कुछ भरा-पूरा है। तुम नहीं होते तो सारी दुनिया उजाड़ व सुनसान लगती है।"

"सो तो होता ही है।"

"यह भावना दिन पर दिन तीव्रतर होती जा रही है।"

"बार बार चोटों के लगने से अनुभूतियों के तार सख्त होने के बदले और भी नाज़ुक हो जाते हैं, रानी।"

"पर एक लाभ भी होता है।"

"वह क्या ?"

"तुम्हारे साथ एक दिन भी बिता लेने पर लगता है, एक जीवनभर का सुख मिल गया। इस प्रकार के एक एक दिन के लिए मैं एक एक जन्म तक प्रतीक्षा कर सकती हूं।"

मैं मन ही मन तड़प उठा। नीरा दिन प्रति-दिन दर्द व प्यार की न जाने किन गहराइयों में पैठती जा रही थी, जो मेरी पहुंच से परे थीं, मेरी समझ से दूर थीं।

हमारी गाड़ी बंगले पर पहुंच गई। हम दोनों को साथ उतरते देख नौकर-चाकर चकित रह गये परन्तु प्रसन्न भी दिखाई दिए। मैं अपने कमरे की ओर चला तो बोली, "नहीं, कुमार, आज मेरे कमरे में चलो।"

"क्यों ?"

"यों ही मेरा मन कहता है इसलिए।"

मैंने क्षणभर के लिए उसका चेहरा देखा। कितना आग्रह भरा था वहां! चुपचाप उसके साथ साथ उसके कमरे में चल दिया, आगे आगे वह, पीछे पीछे मैं।

कमरे में पहुँचते ही वह बोली, "देखते हो, जीजी बिना यहां कितना सूना-सूना लगता है।"

"बहुत सूना लगता है, नीरा,""और जीजी का पलंग क्या हुआ?"

"उसकी भी एक कहानी है।" बेंत की चार गद्दीदार कुर्सियां एक मेज़ के चारों ओर रखी थीं। एक पर स्वयं बैठती हुई तथा दूसरी पर मुझे बैठने का इशारा करती हुई वह बोली, "तुम तो जानते हो हो कि जीजी व मैं, दोनों इसी कमरे में सोती थीं। जीजी का पलंग उधर था, मेरा इधर।"

"हां।"

"जीजी के चले जाने के बाद हर रात को मैं जब अपने पलंग पर सोती तो जीजी का खाली पलंग देख रुलाई आ जाती। जीजी के जाने पर उसकी सारी चीज़ें मैंने एक कमरे में बन्द करवा दीं। हर चीज़ को छूते ही आंखें भर आती थीं। अन्त में इस पलंग को भी मैंने हटवा ही दिया। कमरे की सजावट भी बदलकर नए सिरे से कर दी।"

"अच्छा किया तुमने, नहीं तो बराबर दंशन होता रहता सुधियों का"

"सो तो अब भी होता रहता है, कुमार, ये सब तो मन को बहकाने व बहलाने की तरकीबें हैं। देखूं ज़रा खाने पीने के लिए क्या बना है।"

"नहीं, रानी, तुम न जाओ, मुझे अकेले अच्छा न लगेगा यहां।"

वह ज़रा सा रुकी, मेरी ओर ताकी व मुस्कराकर बैठती हुई बोली,

"क्यों अकेले डर लगता है, इस कमरे में? लो नहीं जाती।"

उसने घण्टी का बटन दबा दिया। मैंने कहा, "अकेले इस कमरे में तो क्या, हर कमरे में डर लगता है, रानी, यह बंगला इतनी मीठी दर्दीली स्मृतियों से भर गया है कि कदम कदम पर दंशन होता रहता है। ऐसा भान होता है कि किसी कोने में जीजी का सुख है तो कहीं [illegible] है, कहीं

भयानक काले बिच्छू हैं, तो कहीं जहरीले काले सर्प। कब क्या छूने से कौन डस लेगा, पता नहीं चलता। कल रातभर मैं सो न सका, इन्हीं के मारे और शायद दूसरी रात तो यहां ना ही बिता सकूं।"

इतने में बैरा आ गया। उससे नीरा बोली, "देखो, तुम सारा खाना लाकर मेज पर रखो और तब घण्टी दो। मैं आकर स्वयं परसूंगी।"

"जो अच्छा," कहकर बैरा चला गया। तब नीरा बोली, "अब तुम्हीं सोचो मैं इस घर में दिन-रात कैसे रहती हूं, और कैसे जीती हूं। एक तुम हो कि एक रात भी यहां रह नहीं सकते।"

"सचमुच तुम्हारे लिए यह सब सहना बड़ा ही दुस्तर है।"

"ऐसा मन करता है कि तुमको लेकर कहीं भाग जाऊं दूर देश में, विदेश में।"

"तो क्यों नहीं ले भागती? भला मिट्टी की क्या मजाल है, जो कुम्हार से ऐंठ सके।"

"न जाने क्यों नहीं कर पाती। शायद मुझ में साहस की कमी है।"

"साहस ही नहीं, रानी, साहसिकता की भी कमी है। प्रेमपथ पर, चलने वालों को दोनों की आवश्यकता समय-समय पर पड़ती है।"

"अभी तो ऐसा लगता है, जैसे मैं तुमको लेकर अस्पताल से भाग आई हूं, एक विचित्र सुख का अनुभव हो रहा है। अगर कभी यहां से भी ले भागूं तो?"

"मिली मिलाई चीज को ले भागने में मजा नहीं आता, रानी, फिर अस्पताल से तो मैं तुम्हें लाया हूं, तुम कहां मुझे लेकर भागी हो?"

हम दोनों हंस पड़े। वह बोली, "ओह, तुम मुझे भगा लाए हो! मैंने तो समझा था कि मैं तुम्हें चुरा लाई हूं।"

इतने में भोजन की घण्टी बज उठी और हम दोनों भोजन-गृह की ओर चल दिए। नीरा ने बड़े करीने से मुझे खाना परसा। अंग्रेजी ढंग का खाना व अंग्रेजी तरीके से खाने पर भी उसने पूरी भारतीयता का सम्मिश्रण करने की चेष्टा की। परसते परसते बोली, "मन करता है कि मैं स्वयं

भय से मैंने विषय बदल दिया। तुरन्त मैंने कहा, "अच्छा बोलो, हम लोग अस्पताल से भाग तो आए, मगर इस दोपहरी में करेंगे क्या?"

"करेंगे क्या?" कुछ सोचती हुई बोली। फिर एकाएक उसका चेहरा खिल उठा, मैं समझ गया, कोई शैतानी सूझ गई उसे। बोली, "क्या करेंगे। प्यार करेंगे।"

हम हंस पड़े। फिर उसने कहा, "चलो, तुम को औद्योगिक प्रदर्शिनी दिखा लाऊं।"

"मगर तुम तो थक जाओगी। यों ही 'इन्जेक्शन' लग रहे हैं, कहीं रत बढ़ गई तो डाक्टर बहुत नाराज़ होगा।"

"ठीक कहते हो तुम, यों ही तुम्हारे आने से मेरी हरारत बढ़ [?] है।"

"हरारत बढ़ गई है या शरारत?"

"जो भी समझो, फिर क्या करोगे? चलोगे 'पिक्चर' देखने?"

"कोई अच्छी 'पिक्चर' चल रही है?"

"'पिक्चर' मैंने आजकल देखी ही कहां, तुम आए हो तो थोड़ा शौक कर लूंगी।"

"मंगाओ आज का पत्र।"

उसने फिर घण्टी का बटन दबाया। 'बैरे' को पत्र लाने को बोली। वह दे गया। मैंने पूछा, "अंग्रेज़ी देखोगी या हिन्दी?"

"दोनों।"

हम हंस पड़े। मैंने सारी सूची देखी। उसमें नाम मिल गया, किशोर साहू का 'मयूरपंख'। मैंने कहा, "फिर चलो 'मयूरपंख' तुम्हें दिखा लाऊं, हिन्दी चित्र में अंग्रेज़ी मेम।"

"तुमने देखी है? तुम्हें पसन्द आई थी?"

"देखी तो है, बस, ठीक ही ठीक है कोई बहुत अच्छी नहीं।"

"अच्छा चलेंगे उसी में। मुन्नी को भी बुला लूं?"

"बुला सको तो बुला लो।"

"नटखट" कहकर उसने एक चपत जमा दी।"

"अब चलने लगे तुम्हारे हाथ ? मैं फिर धर दूंगा कस के। जानती हो न ? सौ सुनार की और एक लोहार की।"

"मगर यह तो पता नहीं, कौन सुनार है व कौन लोहार।"

"फिर आओ देख ही लें कौन क्या है ?" मैं जरा सा उठने लगा।

"अच्छा मान गई, तुम लेटे ही रहो, मेरे मिट्टी के शेर!" और उसने मेरे सिर पर, कपोलों पर यों हाथ थपथपाना आरम्भ किया जैसे मैं कोई छोटा बच्चा होऊं।

जब उसकी यह क्रिया बन्द न हुई तो मैंने उसका हाथ पकड़ लिया व बोला, "अब बस भी करोगी ?"

"तुम्हें सुला रही हूँ न !"

"और मेरी नींद भाग रही है, तुम्हारी इस हरकत से।"

"अच्छा ! मैंने तो समझा, आ रही है," बड़ी श्रद्धा के साथ उसने कहा। मैं क्या उत्तर देता; उसकी आखें, उसके कपोल, उसके होंठ मुस्करा रहे थे।

"लाओ मैं तुम्हें सुला दूं," मैंने कहा।

"सुला दो, तो जानूं, तुमने सचमुच कामरूप में कुछ सीखा है।" चुनौती देते हुए वह बोली।

"तुम पलकें बन्द कर लो," मैंने कहा।

"इतना बड़ा त्याग ! मुझ से तो न होगा इस निगोड़ी नींद के लिए।"

"तुम्हें मेरी मदद तो करनी ही पड़ेगी इस जादू में।"

"अच्छी बात है, लो, मैं पलकें मूंद लेती हूं।"

उसने पलकें मूंद लीं। मैंने उसके सिर पर तथा कपोलों पर हाथ बढ़ाकर थपकियां देना शुरू किया, जरा देर यों ही पड़ी रही, फिर बोली, "कितनी मीठी लगती है, तुम्हारी थपकी।"

"तो सो जाओ न।"

"सदा के लिए।"

मैं चकित रह गया, परन्तु तुरन्त बोल पड़ा, (ज़रा सी भी देर होने से या हिचकिचाहट होने से नीरा को भयानक ठेस पहुंचती, मैं जानता था, जान पर बन आती उसकी) "स्वीकार किया, बस।"

"मेरे कुमार! मेरे नाथ! मेरे देवता!" कहते कहते वह मेरी ओर बढ़ी व हम दोनों आलिंगन बद्ध हो गए। मारे आनन्द के हमारे नयनों से अश्रु बरसने लगे।

कुछ स्वस्थ होकर वह उठी व अपनी तिजोरी से 'विल' निकाल लाई। मैंने उस पर दस्तख़त कर दिये जब कि दस्तख़त की कोई ख़ास आवश्यकता न थी। दस्तख़त समाप्त होते ही उसने मेरा दाहिना हाथ पकड़कर चूम लिया, और मुस्करा पड़ी, उसकी बरौनियों में अभी भी मोती के दाने उलझे पड़े थे। 'विल' को यथास्थान रखती हुई बोली, "आज तुमने मुझे निहाल कर दिया, कुमार, मेरे जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी हो गई।"

"मगर मुझसे भी बढ़कर तो बुज़दिल तुम निकली।"

"कैसे?" आराम कुर्सी पर लेटते हुए वह बोली।"

"इतनी सी बात कहने के लिए तुम इतने दिनों तक साहस न बटोर सकीं?"

"साहस की मुझ में कमी नहीं, कुमार, पर तुम्हारा सहज समर्पण व तुम्हारी सरलता मेरी जिम्मेदारियों को बढ़ा देती थी। मैं तुम्हें कुछ भी ऐसा करने को नहीं कह सकती जिसमें तुम्हें तनिक भी हिचकिचाहट महसूस हो।"

"अच्छा अब तो इस 'विल' के अनुसार मैं अठारह लाख का स्वामी बन गया।"

"और नहीं तो क्या!"

"और मैं इस 'विल' करने वाली को ही मांगूं तो?"

"तुम कैसे अनाड़ी सौदागर हो, कुमार, अपनी चीज़ भी मांगा करते हैं?"

"फिर क्या करते हैं?"

"घबराती क्यों हो, रुको न, मैं अभी बताए देता हूँ।"

इतने में नीरा ने उसका कान पकड़ा व बोली, "और ही से तुम्हारा क्या मतलब था, री?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, मेरा मतलब अपने से था।"

हम हंस पड़े। नीरा ने उसका कान छोड़ दिया परन्तु मैंने कलाई न छोड़ी। तब बड़ी मिन्नत के साथ बोली वह, "भाई साहब, मुझे तो माफ ही कीजिए कलाई टूट जायगी मेरी, बड़ी नाजुक है। जिसकी पकड़नी चाहिए, उस बेचारी को तो सालभर से तरसा रहे हैं, व कलाई पकड़ते हैं मेरी!"

"किसकी रे?"

"नीरा की।"

"ओह, नीरा की? उसकी कलाई मैं क्या पकड़ूंगा उसने तो खुद ही मेरा पाणिग्रहण किया है।"

इस पर हम तीनों हंस पड़े। मैंने मुन्नी को एक चपत जमाते हुए कलाई छोड़ दी। उसने कहा, "भाई साहब, तीन बजने में केवल दस मिनट हैं, आप झटसे तैयार हो जावें।"

"अच्छी बात है," कहकर मैं उठ गया और सूटकेस से साड़ी, ब्लाउज, रूमाल वगैरह निकालकर नीरा व मुन्नी के सामने ढेर कर दिये यह कहते हुए, "यह सब तुम लोगों के लिए है, अपने अपने पसन्द की चुन लो।"

"इतनी ढेर सी?" नीरा बोली।

"जी हां," मैंने कहा।

नीरा ने पहला अवसर मुन्नी को दिया, फिर स्वयं एक चुनकर पहन ली और शेष आलमारी में रख दी।

पांचेक मिनट के भीतर हम तीनों कनॉट प्लेस चल दिये व 'ड्रेस-सर्किल' में जाकर बैठ गए 'मयूर पंख' देखने। मेरी बगल में नीरा बैठी थी व उसके बाद मुन्नी। फिल्म आरम्भ हुई। बयपुर के राजकुमार को मेंट

नों की विदेशी मेम के साथ हुई। मुन्नी ने धीरे से नीरा के कान में कहा, "ये रहे भाई साहब हैं, नीरा, और यह मेम।"

"मगर यह सपना तो किसी का नहीं," नीरा बोली।

मैंने आश्चर्य और ... उनकी बातें सुनीं। थोड़ी देर में [illegible] बोली, "अब मैं समझ गई, यह फिल्म तुम्हें क्यों पसन्द आया।"

"क्यों, रानी?"

"जाने दो बेकार में लड़ोगे।"

"नहीं, तुम बताओ न।"

"बताना क्या है? इसमें तुम्हारी मेम रानी है भाई साहब," मुन्नी बोली।

"ध्यान से देखो कहीं नीरा भी होगी," मैंने कहा।

"मगर यह तो लेखिका है, भाई साहब, तुम्हारी मेम भी कुछ लिखती-लिखाती है?"

"हां जी, लिखती क्यों नहीं?"

"क्या लिखती है?"

"चिट्ठियां लिखती है नीरा के पास।"

हम तीनों जोर से हंस पड़े। इधर उधर कुछ लोगों ने भकचकाकर हमें देखा। फिल्म चलती रही। आगरे के ताजमहल और दिल्ली की कुतुब के दृश्य अनमोल रहे। जयपुर के सौंदर्य का तो कहना ही क्या! स्मृति विश्वास राजकुमारी बनकर आई तो मुन्नी ने कहा, "भाई साहब, ठीक कहते थे, यह रही नीरा।"

"मगर यह लड़कानुमा लड़की नहीं है मेरी तरह," नीरा बोली।

हम फिर हंस पड़े। धीरे-धीरे फिल्म का अन्त भी आ ही गया। दो प्रेम के द्वन्द्व में पिसते राजकुमार का मन्दिर में शान्ति के लिए जाना, अन्त में राजकुमारी के चरणों की शरण लेना, विदेशी लेखिका का धीरे-धीरे चला जाना व 'प्लेन' में उड़ जाना, स्वप्न के दृश्य बड़े दर्दीले व मोहक थे। अन्तिम दृश्य के समय मेरा जी भर आया। नीरा ने मेरी ओर ताक

व बोली, "तुम्हारी व्यथा मैं समझती हूँ, कुमार, इसी से"" । इतना कहते कहते वह रुक गई, शायद मेरी गीली आंखों को उसने देख लिया हो।

उजाला होते ही मुम्मी बोली, अंग्रेजी में, "मुझे बहुत अफसोस है, भाई साहब!"

हम तीनों मुस्करा पड़े। तब उचककर बोली, "ओह, चित्र दिखाने के लिए धन्यवाद।"

देर काफी हो गई थी। नीरा चाहती थी कि कहीं कॉफी पीकर तब हम चलें अस्पताल; मगर समय हो रहा था, गाड़ी भी मि० सहाय के लिए भेजनी थी, इसलिए हम वहां से सीधे अस्पताल गए।

हमारी मजलिस अस्पताल के कमरे में जमी। जाते हुए नर्स व डाक्टर ने हम तीनों को देखा व मुस्कराए। गाड़ी लौटा दी गई मि० सहाय के लिए। शोफर को कह दिया कि मि० सहाय को बंगले पर पहुंचाकर वह हमें लेने आ जाय लगभग सात बजे।

नीरा ने कमरे में ही कॉफी मंगवाई। हम तीनों बड़े चाव के साथ कॉफी पीने लगे।

कॉफी पीते पीते मुम्मी ने पूछा, "कब तक रहेंगे, भाई साहब?"

"कब तक? आज रात को जा रहा हूँ।"

ऐसा मालूम हुआ जैसे नीरा को कोई तीर लग गया। जरा सा चौंककर वह शान्त हो गई, तब स्वस्थ स्वर में बोली, "आज तुम्हारा जाना जरूरी है?"

"हां, रानी, दिल्ली के लिए तो चला न था, वहां ढेर से काम मेरा इन्तजार कर रहे होंगे।"

दोनों हंस पड़ीं। मुम्मी बोली, "भाई साहब, आपका सबसे बड़ा काम तो यहां आपका इन्तजार कर रहा है। आप आज ही आए व आज ही चले भी जायगे क्यों यह कैसी बात?"

"आज ही नहीं, कल रात को आया था, मुम्मी।"

"और उस बंगले में दूसरी रात ये बिताना नहीं चाहते, मुम्मी,"

आयु, इतना नशा भरता आ रहा था कि कोई भी चूमने को ललचा जाए।

अब मुँह बनाते हुए कुछ खीझ के साथ कल्पना बोली, "नीरा, तुमने भाई साहब के आने की खबर मुझे क्यों नहीं दी सवेरे।"

"मुझे भी कहां पता था, री। ये तो···" नीरा को बीच ही में सुम्मी ने बात करते हुए रोक दिया और झट बोल उठी, "यह खबर हम लोगों को क्यों देने लगी, कल्पना, रानी को खलल न पड़ जाता?"

"बको मत," नीरा बोली।

"भाई साहब, फिर तुम्हारा जाना आज रात को तो स्थगित रहा।"

"हां, भाई साहब, कृपा करके," हाथ जोड़ते हुए कल्पना ने कहा।

"एक साड़ी व ब्लाउज़ इसे भी दे देना, बहुत हाथ जोड़ रही है," मैंने नीरा से कहा, हम सब हंस पड़े. वह झेंप गई।

"अहोभाग्य, मेरा भी ध्यान तो आ गया, नज़रे इनायत तो हुई है," कुछ सम्भलकर कल्पना बोली।

"ये तेरी बड़ी तारीफ़ करते हैं, कल्पना," नीरा बोली।

"और कलाई मेरी पकड़कर तोड़ते हैं," सुम्मी ने कहा।

"तड़पाने ही के लिए तो?" कल्पना बोली।

सब गम्भीर हो गये, हंसी का फ़ौव्वारा न जाने कहां लोप हो गया। कुछ रुककर कल्पना ही बोली, "सचमुच, भाई साहब, कभी-कभी आपकी याद बहुत आती है।"

"बहुत?" सुम्मी ने कहा। हम क्षीण मुस्कराए।

"तो मैं अब चलूं?" रानी की ओर उन्मुख हो मैंने पूछा।

"जैसी तुम्हारी मर्जी।"

"तुम तो ज़रा सा भी रोकती नहीं, नीरा, तुम एक बार कह दो तो भाई साहब अभी रुक जायें," कल्पना बोली।

हमारी व रानी की आखें मिलीं व चमककर रह गईं।

"तभी तो कहना और मुश्किल हो जाता है, पगली, तुम्हारे चले जाने पर यह बहुत रोएगी, कुमार, इसको कैसे तसल्ली बंधाऊंगी?" नीरा

ने कहा।

भला इस प्रश्न का मैं क्या उत्तर देता।

मुन्नी बोली, "तो सचमुच आज चले ही जाओगे, भाई साहब?"

"हां, मुन्नी, तुम चलो और मुझे पहुँचा दो," मैंने कहा।

इस बात पर सबका ध्यान नीरा की ओर गया। आंखों ही आंखों में सब ने एक दूसरे के मन की समझी परन्तु किसी ने कुछ कहा नहीं। मैं अन्यमनस्क भाव से नीरा की मेज पर पड़ी पुस्तकों को देखने लगा। सामने ही 'प्रसाद' की 'आंसू' पड़ी थी, नरेन्द्र का 'प्रेम-गीत' और 'सिद्धराज' का 'विरह-गान' भी था। उसे हाथ लगाया तो एक निशान लगा पृष्ठ खुल गया, जिस पर उनका अमर गीत था :

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे!'

मैंने चुपचाप पुस्तक यथा-स्थान रख दी। इतने में मुन्नी व कल्पना कमरे से बाहर जा बरामदे की 'रेलिंग' पर खड़ी हो गई। एकान्त पाते ही नीरा बोली, "अब कब मिलोगे?"

"अब तो रात-दिन तुम्हारे पास ही रहूंगा, रानी!"

"अहोभाग्य, तुमने इस बार मेरी सब साध पूरी कर दी। मैं तुमसे बहुत खुश हूं, कुमार, बहुत। तुम आ गए तो मैं अब जी लूंगी।... तुम्हारे लिए, लगता है अब मुझे जीना ही पड़ेगा, तुम मुझे मरने भी न दोगे।"

"नहीं, रानी, मरने का नाम तो न लो। 'कुम्हार' के न होने पर 'मिट्टी' क्या रह सकेगी?"

"'मिट्टी' अब 'कुम्हार' की पलकों में रहेगी, कुमार, पलकों में, रात-दिन!"

"अच्छा, चलूं, अपना बराबर ध्यान रखना, व समाचार देती रहना।"

"तार देने पर आ तो जाओगे?"

"फिर के बल आऊंगा, रानी, जरूरत पड़े तो 'ट्रंक-कॉल' करना

देना।"

"लाओ, तुम्हारे चरणों की धूल तो ले लूं," कहते कहते वह झुक पड़ी व पाव से सचमुच धूल ले माथे पर चढ़ाने लगी।

मैंने उसे बाहों में भर लिया व बोला, "शर्मिन्दा न करो, रानी!"

"यही धूल तो मेरा सम्बल है, कुमार, यही मेरी गति-मुक्ति है व जीवन भी," रानी बोली।

हम दोनों का गला भर आया था। इसी समय सुम्मी व कल्पना कमरे में आ गईं। मैंने नीरा को छोड़ दिया व उसके कपोल हाथ से थपथपाकर बोला, "भरोसा रखना, सब ठीक होगा।" और उसका हाथ उठाकर आहिस्ते से चूम लिया। आज उसके मुँह से न निकल सका, 'बुज़दिल'!

कल्पना की ओर मुख़ातिब होकर मैंने कहा, "अच्छा चलूं, कल्पना, तुम नीरा का बराबर ध्यान रखना।" उसके कपोल थपथपाते हुए मैंने कहा, "और देखो, रोते नहीं बहुत, इससे आखों का जादू नष्ट हो जाता है। उसने हाथ जोड़ दिये व क्षीण मुस्कान के साथ बड़ी बड़ी आखें मोती बरसाने लगीं।

इसी समय कहीं से रेडियो पर 'रेकार्ड' सुनाई दिया धीरे-धीरे :

'मसीहा बन के बीमारों को, किस पर छोड़े जाते हो!

तसल्ली भी दिए जाते हो, दिल को तोड़े जाते हो।'

"आ, सुम्मी, चलें," कहते हुए मैं सुम्मी का हाथ पकड़ कमरे से बाहर हो गया। जाते जाते भी मुड़कर देखा—नीरा के सजल नयन, जुड़े हाथ, दिल का सारा दर्द मुख पर छाया हुआ, वह करुणा व प्यार-भरी झांकी!

न भूली, न भूल सकेगी, आज भी आखों के सामने है!

हम जल्दी जल्दी बंगले पर आए। सुम्मी ने मेरा सारा सामान ठीक किया। आज जीजी नहीं, आज जीजी नहीं, सारे घर में यही सूनापन गूंज रहा था। इस बंगले की चहकती चिड़िया आज अस्पताल में पड़ी थी।

खण्डहर के प्रेत की भांति मि० सहाय इस खोखलेपन को भरने का, कम करने का असफल प्रयास कर रहे थे।

मैं उनसे विदा लेने गया। वह भी दृश्य बड़ा दर्दीला व दिल हिलाने वाला था। वे यों मिले व विदा हुए जैसे उनके सहारे की लकड़ी कोई छीनकर भाग जाय। चलते चलते मैंने कहा, "जब कभी जरूरत पड़े, मुझे हुक्म कीजियेगा, मैं सिर के बल हाज़िर हो जाऊंगा, मुझे अपना ही समझें।"

"मैं क्या समझूं, कुमार, तुम तो खुद समझदार हो, सब समझते हो। जब जैसा ठीक लगे, करते रहना। अब मेरा कोई न रहा, मैं किसी का न रहा, स्वयं अपना भी न रहा। जब अपना ही भरोसा नहीं तो किसका भरोसा करूं? जाओ, सुखी रहो, जहां भी रहो। कभी कभी सुधि लेते रहना।"

यह बड़ी दर्दनाक विदाई थी, नीरा से भी दर्दीली। हमारी आंखें डब-डबा आईं। सुम्मी रो पड़ी एकदम से 'चाचा जी' कहकर। मि० सहाय ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "यों नहीं रोते, बेटे, जा, तू कुमार को स्टेशन तक पहुंचा आ, गाड़ी तैयार है।"

और हम चल पड़े बंगले से दिल्ली स्टेशन। रास्ते में हम दोनों मौन थे। सुम्मी का मन स्वस्थ न हो सका था। वह मेरे कन्धे पर अपना सिर टेके बगल में चुपचाप बैठी रही। मैंने भी उसे छेड़ा नहीं। कुछ देर के बाद बोली, "भाई साहब, लगता है, जैसे हम लोग अब हंस नहीं सकेंगे।"

"नहीं, सुम्मी, देखो न, आज ही दिन को हम कितना हंसे!"

"तभी तो उसका मोल आंसुओं से चुका रहे हैं।" कहते कहते उसकी आंखों से मोती फिर ढुलकने लगे।

"यदि आपने ध्यान न दिया तो नीरा जिएगी नहीं, भाई साहब, वह तड़प-तड़पकर जान दे देगी पर आपसे कुछ कहेगी नहीं," सुम्मी बोली, कुछ रुककर।

"सो तो मैं जानता हूं, सुम्मी, पर तुम किस मर्ज की दवा हो? उसे

तो मैंने तुम्हारे हाथ में धरोहर रखा है। वह जान दे देगी तो मैं तुम्हीं से वापस मागूंगा।"

"और मेरे सम्भाले न सम्भली तो?"

"मुझे बुला लेना, मैं तुरन्त आ जाऊंगा।"

"जी अच्छा, मगर देर न कीजियेगा, नहीं तो बड़ा पर्दा गिर जायगा।"

"नहीं, मुन्नी, मैं तुरन्त आऊंगा, उड़कर आऊंगा।"

वह कुछ देर चुप रही। फिर सीधी बैठ मेरी आंखों में आंखें डाल बोली, "लगता है, अब हम लोग मिल न सकेंगे।"

"कैसी उखड़ी उखड़ी बातें करती हो, मुन्नी?"

"उखड़ी बातें नहीं, भाई साहब, देख लीजिए, जीजी का पता नहीं, चाचा जी का यह हाल, रानी अस्पताल में; कोई भी तो इस डूबते घर को उबारने वाला नहीं। कोई कुछ कहता नहीं, पर मुँह सभी आपका जोहते हैं।"

"पर तुम जानती नहीं, मुन्नी, मैं तुम्हारी सखी के हाथ की कठपुतली मात्र हूं, गीली मिट्टी, नीरा के हाथों की। वह अब जो कहे, मैं कर डालूं, परन्तु वह तो कुछ कहती नहीं।"

"आख वाले को कुछ कहा नहीं जाता, भाई साहब, वह सब कुछ स्वयं देखकर, परखकर समझ जाता है।"

"पर मेरा तो कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं। वह नीरा में ही आत्मसात् हो गया। नीरा भी इसे जानती है।"

"जानती मैं भी हूं, भाई साहब, तभी तो उसका भार दूना हो जाता है और वह उसके नीचे दबकर मरने लगी है, पर आपसे कुछ कहती नहीं। खैर, आपको मैं क्या समझाऊं। मगर आप दर्द बहुत बोते हैं।"

"मैं बोता कुछ भी नहीं, मुन्नी, प्यार व दर्द सबके मन में यों ही बसा रहता है। हां, किसी के छेड़ देने मात्र से उभर आता है, पर इसीलिए छेड़ने वाला दर्द बोने वाला तो न हुआ।"

कुछ रुककर बाहर अंधकार में ताकती हुई बोली, "आपने उस बार

अड़तालीसवां परिच्छेद

नख-क्षपारम्भ

कल ही तो क्रिसमस था—बड़ा दिन, महात्मा मसीह का जन्मदिन, न जाने कितने दुखियों का सारा दुख-दर्द छूने मात्र से हर लेते थे। और इसी दिन मेरे सबसे बड़े दर्द की स्मृति हुई थी। यही तो दिन था सालभर पहले, मैंने कितने प्यार के साथ राजघाट, लाल किले व कुतुब में बिताया था नीरा व जेन के साथ, सुरेन्द्र व जीजी के साथ। आज वे सभी स्थान मेरे प्यार की समाधि बन गए।

यही दिन था जब जेन ने कुतुब पर से छलांग लगाने की चेष्टा की थी, यही दिन था जब नीरा की कलाई की चूड़ियां तड़क गई थीं कुतुब के कुंज तले। यही दिन था जब मेरा प्यार पनपा, पला, खिला व मुरझा भी गया। कितना प्यारभरा था वह सवेरा, कितनी दर्दीली थी वह सांझ!

और साल भर बाद कल के क्रिसमस को हम कहां थे? कहां? सब प्यार के साथी बिछुड़ गए, सबकी जिन्दगी अस्त-व्यस्त होकर बिखर गई। जेन निराश होकर सात समुद्र पार परियों के देश में उड़ गई। जीजी के जीवन-वीणा के तार टूटते ही वह साबरमती पहुंच गई। सुरेन्द्र ने जीजी के प्यार की दुनिया उजाड़कर पुष्पा के साथ गृहस्थी बसा ली। मि० सहाय ने एक पाव मारे दर्द के क़ब्र में रख दिया। और नीरा?

नीरा कदाचित् मुझसे निराश हो, मृत्यु-शय्या की खोज में इरविन अस्पताल पहुंच गई। फिर भी न जाने किस आशा पर वह अब भी जीवन की कच्ची डोर पकड़े लटक रही है। उसकी आंखों की प्यास व मन की लालसा मरी नहीं, दोनों बराबर चमकती रहती हैं। फिर भी जूझ रही

'अब तो घबरा के यो कहते हैं कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाए, तो कहां जायेंगे?'

यही तो सोच रहा हूँ इस अस्पताल के कमरे में बैठा बैठा, कि मरकर भी चैन न मिली तो कहां जायेंगे?

मुझे आज याद आती है बचपन की एक बात। हमारे गांव में एक बड़ा ही सुन्दर व बलिष्ठ भैंसा था। वह बच्चों को मारता न था। व उसकी पीठ पर चढ़े चढ़े फिरते थे। निर्द्वन्द्व वह खेतों में, गांव के कछार में विचरता था। कभी किसी के खेत में यदि उसने मुँह डाला भी तो लोग केवल हांक देते थे, कोई उसे मारता न था।

स्वस्थ-सुडौल शरीर, व छोटे छोटे गोल घूमे हुए सींग, जब वह चलता तो खेतों का राजा सा लगता था। एक रात को उसने किसी की फसल चर डाली। उस गरीब के पास शायद बहुत खेत न था। जो कुछ भी था,सात कट्ठा था वह नष्ट हो गया। अभागे ने मारे गुस्से के उठाया भाला व गंगा की कछार में भैंसे को तलाश कर चुपके चुपके उसके पास जा भरपूर ताकत के साथ उसकी कोख में भाला धंसा दिया। भैंसा छटपटाकर उठा। इस आदमी ने भाला खींचने की कोशिश की परन्तु खींच न सका, उसमें इतनी ताकत कहां थी? फिर भाले में शायद भीतर कान (अंकुश) भी था।

भैंसा मारे पीड़ा के उस भाले को लिए लिए खेतों का चक्कर काट आया, परन्तु न तो वह भाला निकला, न व्यथा गई। जो देखता, उसके प्यार व दर्द से 'ओह, ओह' कर उठता। सभी कहते, 'किस निर्दयी ने यह हत्या की है?' नदी-तीर की हरी-भरी फसलें भैंसे के पावों-तले रौंदी जाकर तहस-नहस हो रही थीं परन्तु उस समय किसी को फसल की चिन्ता न थी, सभी भैंसे की चोट से व्यथित हो गए थे।

अन्त में उस चोटीले भैंसे ने जाकर गंगाजल में पनाह ली। बहुत दौड़-धूप करने व छटपटाने से भाला और भी भीतर ही घुसा था ... नहीं था। एक तो जाड़े के दिन, दूसरे हिम-शिखरों से आने ...

पढ़ती रही, मगर बाद को जब उसने मेरे व्यग्र चेहरे पर कुछ अध्ययन किया तो एकाएक बोल उठी, "क्या बात है, मि० कुमार, तुम इतने व्यग्र क्यों? यहां आते ही मुर्जी की याद सताने लगी क्या?"

"नहीं, शीला, जेन अमेरिका चली गई।"

"अमेरिका चली गई!" बड़े आश्चर्य से उसने कहा।

फिर एकाएक क्रोधित होकर बोली, "मुझे कुछ कुछ इसका आभास हो रहा था। तुम घोर निर्दयी हो, कुमार, निष्ठुर, कायर! और तुमने नीरा से शादी कर ली या नहीं?"

"जब जेन ही नहीं, तो नीरा से शादी करके क्या करूंगा?"

"तब नीरा भी मौत के पथ पर होगी। मुर्जी ठीक कहती थी, कुमार, तुम सचमुच बुद्धू हो, निरे बुद्धू! अब तुम नीरा की भी जान लेकर ही रहोगे।"

"शीला!" मैं चिल्ला पड़ा।

हम दोनों के गुस्से का कोई अन्त न था। एकाएक हमारी आंखें छलछला आईं। पहले उसी ने कहा, "मुझे अफ़सोस है, कुमार, बहुत अफ़सोस है!" और पहले की ही भांति उसने मेरे गले में दोनों बांह डाल चूम लिया। बोली, "मुझे तुम्हारी व्यथा का भान न हो सका, कुमार!"

"तुम अपनी खुशी में मेरी व्यथा भूल गई, शीला, उसकी गहराई नाप न सकी!"

"मुझे बहुत-बहुत अफ़सोस है, बेहद अफ़सोस है।"

मेरी आंखों से आंसू दरते रहे और वह इस प्रकार से चुपकर रोकने की चेष्टा करती रही जैसे रास्ते में ठेस लग जाने पर रोते हुए घर आते बच्चे को मां चूम-चाटकर चुप कराए।

कुछ स्वस्थ होने पर मैंने कहा, "शीला, तुम जानती नहीं, मैं प्यार की तीन तीन क़ब्रें इस दिल में छिपाए तुम्हारे पास आया हूं और एक तुम जो कि ......"

'मैं अब समझ गई, कुमार, तुम्हें मुझ से मरहम की आशा दी
ठीक आशा थी, मैं अवश्य कोशिश करूंगी। जैसे तुम्हें मरहम तो स
दे सकूं गी, हां प्यार से घाव को सहलाने की चेष्टा करूंगी।"

"चाहे उससे घाव घटे या बढ़े।"

हम दोनों आंसुओं के बीच भी खीझ मुस्काए।

सांझ होते ही चाय के बाद हमलोग सरिता-तीर घूमने निकल गये। रास्ते में तथा वहां शिला-खण्ड पर बैठकर मैंने सारी व्यथा शीला को बता दी।

रात को अप्रत्याशित बादल घिर आये और आकाश बरसने लगा, बरसता रहा रातभर, फिर दिनभर। दिन को ही मुन्नी का तार मिला:

'नीरा का रक्तस्राव बन्द नहीं हुआ।'

मैं तड़प उठा। शीला व्याकुल हो गई। तीसरे पहर तार का जवाब लिखकर भेजते हुए मैंने दाहिने हाथ के बीच की उंगली पीस डाली दरवाजे के बीच। वह पिचककर रह गई। मन को कुछ संतोष हुआ, न जाने क्यों?

पानी बरसता रहा, दिनभर और फिर रातभर। न तो बन्द हुई यह वर्षा और न बन्द हुआ नीरा का रक्तस्राव।

मेरे अन्दर का 'रक्तस्राव' भी जोर जोर से होने लगा। दूसरे दिन मैं उड़ चला कलकत्ता। शीला भी मेरे साथ आई, मगर कलकत्ते में दो तीन घंटे मेरे साथ रहकर वह राधानगर चली गई, वहां विलियम उसके पथ में आंखें बिछाये उसका इन्तजार कर रहा था। मेरे व्यग्र मन को कहीं चैन न थी। क्या करूं, क्या न करूं, यही द्वन्द्व मन में चल रहा था। रातभर नींद न आई। प्रभात के पहले पहर में नींद आगई। थका मन, थका तन — दोनों विश्राम लेने लगे। भोला ने भी न जगाया। आंख खुली बजे। आठ बजे का 'प्लेन' पकड़कर दिल्ली जाना था नीर

उठा। भागकर 'बाथ-रूम' में गया। जल्दी जल्दी में

टब में से निकलते समय संगमरमर के फ़र्श पर पांव फिसल गया। एक चीख निकल पड़ी। भागकर भोला आया। मुझे दर्द में कराहता हुआ पड़ा देख उसने सम्भाला। उसके सहारे मैंने कमरे में आने की चेष्टा की, पर पांव ने कि जवाब दे गये। मैं फिर वहीं बेबस पड़ा रहा। भोला नौकर को बुलाकर बड़ी मुश्किल से मुझे सोने के कमरे में ला सका। मेरे दर्द की सीमा न थी। दर्द इस चोट का — दर्द नीरा के रक्तस्राव का।

डा० चड्ढा को फोन कर बुलाया गया। वे तुरंत आए। उन्होंने पूरी जांच पड़ताल की और गम्भीर हो गए। मैं समझ गया, शायद बहुत गड़बड़ हो गई हो। खैर, उन्होंने बताया कि अस्पताल में 'एक्स-रे' करने के बाद ही कुछ ठीक ठीक पता चलेगा, परन्तु दर्द कम करने के लिये एक 'इंजेक्शन' दे गये। फिर क्या था मैं अपना टूटा पांव व टूटा दिल लिए हुए इस कमरे में आगया।

यहां पर रेखा मेरी कितनी बड़ी सम्बल है! आज सवेरे से ही कुछ उदास सी है। मैंने पूछा कि वह 'ऑपरेशन थियेटर' में रहेगी या नहीं, तो बोली कि वहां तो कोई दूसरी नर्स होगी। खैर, मैंने उसको वहां उपस्थित रहने के लिए कहा। डा० चड्ढा से भी कह दिया है। मुस्कराकर उन्होंने स्वीकार कर लिया। सोचता हूँ 'बोन-सेटिङ्ग' तो डा० चड्ढा कर लेंगे, यह 'हार्ट-सेटिंग' कौन करेगा? कौन?

कल यहां कितनी चहल-पहल थी। अस्पताल में महात्मा मसीह का जन्म-दिन बड़े ठाट-बाट से मनाते हैं। मैंने कल यहां के बड़े बड़े डाक्टरों को 'ग्रीटिंग-कार्ड' भिजवा दिये थे। उन्होंने भी अपनी क्रिसमस-पार्टी का प्रधान-अतिथि मुझे बनाया था गो कि मैं शरीक न हो सका। रेखा प्रबन्ध में लीन थी परन्तु मेरे प्रधान-अतिथि होने पर फूली नहीं समाती थी।

पता नहीं कल जेन ने कैसे क्रिसमस मनाया होगा? पता नहीं कल नीरा का कितना खून और गिरा होगा? पता नहीं.......... ....पता नहीं...... ..... कुछ भी पता नहीं!

नौ बज गये और यह भोला आकर कमरे के बाहर जम गया। यह

इतना उदास क्यों है ! क्या सोचता है, उसकी गोद का पला हुआ 'भइया' सचमुच मौत के द्वार से न लौटेगा ? यह अप्रत्याशित भय क्यों ?

कमल भी आ ही गया। उसे मैंने बहुत मना किया था कि आपरेशन में पहले आने की कोई जरूरत नहीं, शाम को आकर मिल जाना, परन्तु वह भला क्यों मानने लगा। उसकी कोमल बुद्धि में तो 'भाई-साहब' देवता हैं, इन्सान हैं ही नहीं।

कमल के भी मन में, अपने प्यार की दुनियां लेकर मेरे प्रति क्या एक सहानुभूति की क्षीण रेखा खिंच गई है ? क्या पता, पर वह तो मुझे इतना मानता है, इतना चाहता है, जितना प्रो० साहब को भी नहीं चाहता, भाभी जी को भी नहीं मानता। उसके आते ही मैंने पूछा, "क्यों कमल, तुमको तो मैंने शाम को आने को कहा था, तुम अभी से कैसे टपक पड़े ?"

"जी नहीं माना, भाई साहब, आगया। आप नाराज न हों।"

"नहीं, नहीं, इसमें नाराज होने की कोई बात नहीं," मैंने हंसते हुए कहा। "तुम कॉलेज नहीं गये आज ?"

"कॉलेज तो बन्द है दो तारीख तक।"

"ओह, ठीक है। ऑपरेशन तो काफी देर तक होगा, तब तक तुम यहां क्या करोगे अकेले ?"

"अकेला नहीं हूँ, भाई साहब मेरे साथ ········· ।"

"अर्पणा होगी ?"

"जी नहीं," शरमाते, मुस्कराते हुए उसने कहा, "मेरी पुस्तकें होंगी, उन्हें साथ लेता आया हूँ।"

"ठीक है। कुछ चाय-कॉफी वगैरह पिओगे ?"

"जी नहीं।"

इतने में 'बॉय' एक ट्रे में कॉफी, कुछ फल व बिस्किट दे गया मैंने पहले ही आदेश दे दिया था। कमल से बोला, "कॉफी बनाओ तो

कमल !"

हम दोनों मुस्कराये। मीरा की रूमाल वाली बात हम दोनों के मन में एक साथ ही उठकर रह गई।

वह बोला, "डर लगता है, भाई साहब।"

इतने में रेखा आई। आज उसने श्वेत साड़ी व श्वेत ब्लाउज़ पहन रक्खा था। इस सादगी में वह कितनी खूबसूरत लगती थी। इस समय कार्य में व्यस्त होने से उसके हाथ पांव में स्फूर्ति आगई थी। फिर भी दमकता हुआ चेहरा आज की उदासी लेकर एक विचित्र मोहकता पैदा कर रहा था।

चुपचाप आकर उसने कमरे में कुछ चीज़ें इधर-उधर ठीक कीं। बोली कुछ भी नहीं। मैंने कहा, "नाराज़ हो क्या, रेखा ?"

वह मुस्कराई, कपोलों पर मुस्कान छा गई, पर बोली अभी भी नहीं। कमल उसे बड़े ध्यान से देख रहा था। मैंने रेखा को छेड़ने के लिए कहा, "क्या देख रहे हो, कमल ?"

कमल के बोलने से पहले ही रेखा ही बोल उठी, "मेरा मुँह !" हम तीनों हंस पड़े। रेखा ही बोली, "आप कपड़े बदल डालिए, अब ऑपरेशन-थियेटर में जाना होगा।"

"मैं यों तो नहीं जाऊंगा। तुम एक प्याला कॉफी बनाकर पिला दो, फिर कपड़े बदलूंगा।"

मेरी ओर कुछ देर तक ताक कर बोली, "सच, मि० कुमार, आप बहुत परेशान करते हैं।"

"और यदि किसी को परेशान होना ही पसन्द हो तो ?"

"जिसे होगा उसे होगा, मुझे नहीं है।"

मगर मुस्कान थी कि कपोलों पर बिखरी आती थी। वह बनावटी झुंझलाहट के साथ बोली, "आप कपड़े बदलिए ना।"

"नहीं, बदलता।"

"अच्छा, बाबा, मैं हार गई। लीजिये, कॉफी बनाये देती हूं।"

मेरे मुँह पर से पार हो गया। रेखा ने मेरी आंखों पर हाथ रखा। मैंने आंखें मूंद लीं।

इसी समय ऐसा आभास हुआ कि मैं अपने गांव में गंगा के विशाल तट पर खड़ा हूँ एक पीपल के पेड़ तले। दिन गर्मी के हैं, परन्तु आकाश नीला व स्वच्छ है। गंगा का नीला-स्वच्छ जल कल-कल बह रहा है। गंगा की छाती पर से ठंडी हवा का झोंका बराबर आ रहा है। उस पार बालू चम-चम चमक रही है।

मैं एक हाथ से पीपल की एक डाली पकड़े व दूसरे से जेन का सहारा लिए खड़ा हूं। इतने में गंगा-पार से एक बड़ा श्वेत हंस तैरता आता दिखाई देता है और उसी पर धवल वसना वीणापाणि साक्षात् सरस्वती हैं।

हंस किनारे आया, सरस्वती उतरीं और मेरे पास आईं। उनके आते ही जेन मेरा हाथ छुड़ा गंगा की ओर धीरे-धीरे चल दी। सरस्वती मेरी बगल में आकर खड़ी हो गईं, उनका रूप नीरा से बहुत मिलता जुलता है।

मैंने कहा। "मुझे नींद आ रही है, मैं सोऊंगा, नीरा!"

"सो जाओ न, यहीं पेड़-तले, बड़ी अच्छी हवा गंगा से आ-रही है।"

"यहीं जमीन पर सो जाऊं?"

"हां, हां, मैं अपना उत्तरीय बिछा देती हूं, तुम मेरी गोद में सिर रखकर सो जाओ।"

"तुम 'आंचल की छाया' करोगी?"

"अवश्य," वह मुस्कराकर बोली।

मैं इसी प्रकार लेट गया। लेटते लेटते बोला, "सत्यवान इसी प्रकार सावित्री की गोद में सोया था।"

"तभी तो सावित्री ने यमराज से लड़कर भी उसे छीन लिया।"

और मुझे नींद आ गई।

लगभग दो बजे मेरी आंखें ज़रा सी खुलीं। पहली नज़र उस श्वेत-वसना पर पड़ी जो पलंग के पास शायद निरंतर खड़ी थी। मुंह से निकल

उसने मौन रहने का संकेत किया। मैं फिर होश खो बैठा। दूसरी बार शायद रेखा भी खड़ी थी। मैं भ्रम में पड़ गया, बोल उठा, "नीरा-जेन, जेन-नीरा, रानी!"

मेरी आँखों से अश्रु-प्रवाह आरम्भ हो गया।

मुझे हिलने-डुलने की पूरी मुमानियत थी फिर भी सत्ताईस तारीख को, ऑपरेशन के दूसरे दिन, मन जरा स्वस्थ होते ही, चोरी-चोरी नीरा को पत्र लिखा व मुम्मी के पते पर भिजवा दिया।

इस पत्र को जब मैंने कमल को पोस्ट करने को दिया तो वह चकित रह गया। बोला, "यह नीरा जी को पत्र लिखा है, भाई साहब?"

"और किसे लिखूंगा रे?" मैं मुस्कराने लगा।

"आप को डाक्टर ने अभी हिलने-डुलने से मना किया है न?"

"यह तन जिसका है, यह मन जिसका है, यह मिट्टी जिसकी है, उस के लिए हिलने-डुलने की मुमानियत तो भगवान भी न करेगा, कमल!"

कमल की आँखें सजल हो आई और वह चुपचाप चिट्ठी छोड़ने चला गया।

दूसरे दिन शाम को मैं कुछ ठीक था, कम से कम होश में तो था ही, दर्द साधारण था। ऑपरेशन सफल हुआ था। वैसे हिलना-डुलना बहुत बातें करना मना था।

मिलने वालों की खासी भीड़ थी दूसरी शाम को। हित-मित्र, शुभ-चिन्तक जिसने भी सुना दौड़ा दौड़ा आया, देखने के लिए, मिलने के लिए। आज मैं एकाध शब्द तो सबसे बोल ही सका। वैसे रेखा मन ही मन बहुत खीज रही थी।

शीला फिर आई मिलने। इस बार उसने विलियम का परिचय मुझ से कराया। मैं सचमुच, उससे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। शीला के वर्ताव में कलकत्ता आकर, विलियम से मिलकर भी मेरे प्रति कोई परिवर्तन नहीं आया। वह बड़ी बेतकल्लुफी से मेरे पास कुर्सी खींचकर बैठ गई; मेरे सिर पर हाथ फेरा, मेरे कपोल थपथपाये वह हंसते हंसते

बोली, "कुम्मू, तू निरा बुद्दू है!"

हम मुस्कराये। मैंने उसकी हथेली चूम ली, जब वह मेरे होठों के पास थी। विलियम मुझे सरल प्रकृति का स्वस्थ, हंसमुख व मिलनसार युवक लगा। मैंने मुस्कराते हुए कहा, "विलियम तुमने न जाने इन पर क्या जादू किया है! ये तुम्हारे बिना पागल सी रहती थीं।"

वह मन्द मन्द मुस्कराने लगा। शीला बोली, "मूर्ख!"

फिर शीला ने ही बताया कि उन दोनों ने यह क्रिसमस कलकत्ते में ही बिताया व नव-वर्ष दिवस तक यहां रहकर अपने अपने स्थान को चले जायेंगे। दोनों ग्रेट ईस्टर्न में ठहरे थे।

सत्ताईस तारीख की ही रात को लगभग ग्यारह बजे मैंने रेखा को छेड़ा। धीरे-धीरे मैंने कहा, मैं तुम्हारे करते मौत के द्वार से लौट आया, रेखा, तुम्हें क्या दूं, इस जीवन-दान के बदले?"

"मुझे?" चकित होकर उसने कहा और फिर खोई खोई सी लगने लगी। अन्त में बहुत आहिस्ते से बोली, मुझे आप क्या देंगे? आप तो स्वयं मेरे लिए बहुत बड़ी निधि हैं।"

मैं अवाक् रह गया। यह क्या बोल रही थी? रेखा को हो क्या गया।? मैंने ज़रा रुककर कहा, "मैं तो तुम्हारा कोई नहीं, रेखा, तुम मेरी जीवन-दाता हो।"

"यह आप क्या जानें, मि० कुमार। आप तो निरे बच्चे हैं।"

धीमी मुस्कान उसके होठों पर खेल गई। मैं भी मुस्कराया, पर समझा कुछ भी नहीं। वह किसी काम में व्यस्त थी न जाने क्या बना रही थी मेरे लिए। उसने फिर सिर उठाया, व भीगी पूरी आंखें मेरे चेहरे पर गड़ाकर बोली, 'भगवान् जानता है, इन दो दिनों में मेरे ऊपर क्या गुज़री है, मगर उसने मेरी लाज रख ली व आप ठीक भी हो चले। आपने जब मुझे 'नीरा रानी' कहकर पुकारा, मैं तभी सब कुछ पा गई। मेरे लिए आपका वह क्षणिक भ्रम, क्षणिक मोह ही बहुत है मि० कुमार।"

"नीरा! तुम क्या जानती हो नीरा के बारे में?"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने मेरे सिरहाने से 'ब्यूटी-क्वीन' का 'स्नैप' निकाला व मेरे सामने रखती हुई बोली, "ये हैं नीरा देवी, जो आपकी सांस-सांस में, रोम-रोम में बसी हैं। आपने जब जब मुझे प्यार से देखा है, छेड़ा है, बातें की हैं, हमेशा वे आपकी निगाहों में, मन में बसी रही हैं। मेरा अहो भाग्य, जो मुझ में कोई समता आपको नजर आ गई।"

"तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो, रेखा, तुम्हारा स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। मैंने तुम से बातें की हैं, तुम्हें छेड़ा है, किसी नीरा के भ्रम में नहीं।"

"मि० कुमार, आप अपने को उतना नहीं जानते, जितना मैं आपको इन थोड़े दिनों में जान चुकी हूं। थोड़े दिनों क्या, पहली ही निगाह में मैंने आपको पहचान लिया था। आप मेरे सामने खुली पुस्तक हैं।"

"ओर मिरे बच्चे! पागल कहीं की। बड़ी लगी पुरखन बनने। तुम्हें नीरा की बात किस ने बताई?"

"मैंने अपने ज्योतिष से जान लिया।" वह मुस्कराई।

"तुम्हारा ज्योतिष कहीं शीला के साथ साथ तो नहीं काम करता?"

वह समझ गई व मुस्करा पड़ी। बोली, "जी हां, आपका अन्दाज सही है। आपने कितनी ही बार जब मुझे 'नीरा रानी' कहकर पुकारा, मेरा हाथ पकड़ लिया, आंचल खींचा मुँह ढकने के लिए, तो मैं रो पड़ी। ऐसा एकाध बार आपने शीला के सामने भी किया तो उन्होंने मुझे सब समझा दिया। तब से मैं फूली नहीं समाती। मेरे पांव गर्व से धरती पर नहीं पड़ते।"

"तो यह बात है, तुम सब ने मिलकर मेरे खिलाफ़ षडयन्त्र किया है!" मैंने हंसते हुए कहा।

"अब आप चुप हो जांय, बहुत बातें कर चुके, थकावट हो जायगी।"

कुछ देर के बाद मुझे कम्बल उढ़ाती हुई बोली, "अब आप सो जायें, आंख मूंदते ही नीरा देवी के दर्शन होंगे।" वह मुस्कराई। इतना मज़ाक़!

"साक्षात् नीरा देवी तो मेरे सामने खड़ी है, रेखा !"

"यह आपका भ्रम है। भगवान करे यह भ्रम कुछ देर तो बना रहे। मैं जानती हूँ, मि० कुमार, आपने जब किसी में कुछ 'नीरापन' पाया है, उसे प्यार किया है, और आप जिसमें ही जितना 'नीरापन' पाते हैं, केवल उतना ही प्यार करते हैं उसे।"

"यह भेद तुम्हें किसने बताया ? शीला ने ?"

"नहीं, यह तो मैंने स्वयं की अनुभूति से जाना है।"

"तब तो तुम्हें बड़ी निराशा हुई होगी ?"

"नहीं तो, ऐसा पुरुष कहां मिलेगा जो अपने प्यार की प्रतिमा को हर कहीं देख सके और जहां जितनी झांकी पाए उतने ही आरती-दीप जलाए।"

"आज तुम्हारा मन ठीक नहीं, रेखा, तुम जाओ मैं सोऊंगा।"

"मैं भी तो सुलाने ही आई हूँ, और बातें करके जगाए जा रही हूँ। कितनी बुरी हूँ मैं !"

मुस्कराते हुए उसने कम्बल मुझे उढ़ा दिया। इसी बहाने जाते-जाते बोली, "आपकी एक और चोरी पकड़ी है मैंने।"

"सो क्या ?"

"आपने चुपके चुपके दिन को चिट्ठी लिखी है नीरा जी को।"

मैं क्या उत्तर देता ? मुस्कराने लगा। वही बोली, "मैंने कमल के हाथ में देखी व समझ गई। सचमुच आप आदमी नहीं देवता हैं, मि० कुमार। धन्य हैं नीरा जी, जिन को आप इतना प्यार करते हैं।" इतना कहते हुए निःसंकोच भाव से उसने मेरा मस्तक चूम लिया व बोली, "अब सो जाइये।"

मैं कुछ भी न बोला। वह चली गई। उस के जाने पर मैंने "बेड-लैम्प" के मन्द प्रकाश में 'ब्यूटी-क्वीन' को फिर से देखा—नीरा, जिस ने मेरा तन, मन सब 'नीरामय' कर रखा था, जिसके बिना मैं हर पल तड़पता था, छटपटाता था, और पाकर भी नहीं पाता था।

अब तो ऐसा लगता है सारी दुनिया भूल जायगी, रह जायगी केवल नीरा ! नीरा ! नीरा !

आंख लगते ही मैं नीरा, उसकी बीमारी और कभी न बन्द होने वाले रक्तस्राव के स्वप्न देखने लगा।

अट्ठाईस तारीख को मैंने डा० चड्ढा की मदद से अपने कमरे से ही दिल्ली ट्रंक-कॉल किया। अस्पताल के अधिकारियों ने बताया कि नीरा की दशा में कोई परिवर्तन नहीं है, वैसे कोशिश पूरी हो रही है व सफलता की आशा है।

मैं दिनभर उसी चिन्ता व उधेड़-बुन में रहा। रेखा मेरा बराबर ध्यान रखती रही। जब वह जान ही चुकी थी तो मैंने नीरा के बारे में उस से कोई दुराव न रखा। यह भी बता दिया कि नीरा का ऑपरेशन हुआ है और उसका रक्तस्राव बन्द नहीं होता। वह सहज भाव से बोली, "काश, वे यहां होतीं, तो मैं उनकी सेवा करके जन्म सफल करती।"

"अभी तो मेरी ही सेवा करके मुक्ति-लाभ करो।" कहते कहते मैं हंस पड़ा।

वह बोली, "क्यों मि० कुमार, आप कभी उनको दिखायेंगे मुझे ?"

"देखने की इतनी लालसा क्यों ?"

"न जाने क्यों ? मन करता है, मैं उनको एक बार आंख भर देखूं।"

"मन में ईर्ष्या जाग रही है क्या ?"

"छिः छिः, आप कैसी बातें करते हैं। कहां वे साक्षात् देवी सरस्वती का अवतार, और कहां मैं एक साधारण नर्स।"

तो यहां तक नौबत पहुंच चुकी है ! इसे यह भी मालूम है कि मैं नीरा को सरस्वती मानता हूं। खैर, मैंने प्रत्यक्षतः कहा, "देखो, रेखा, तुम चाहे नर्स हो या जो भी, पर तुम साधारण नहीं, यह बात मेरी मान लो।"

"आप जब मुझपर असाधारणता का आरोप कर रहे हैं तो मैं इसे सहर्ष स्वीकार करती हूं, चाहे मुझमें हो या ना," वह मुस्कराती हुई बोली।

उन्तीस तारीख को मुझे मुम्मी का तार मिला जिसमें नीरा की हालत सुधरती बताई गई थी और मुझे बुलाया था। मैं मारे खुशी के फूल उठा। पर करूं क्या? क्या करूं? कुछ भी सूझता न था।

मेरी ऐसी हालत न थी कि मैं दिल्ली तक पहुंच सकता। चाह कर भी, लाख प्रयत्न कर भी मैं मजबूर था।

वह तार मैंने रेखा के सामने फेंक दिया। वह पढ़कर खिल उठी। *कमल ने भी वह तार देखा और फूला न समाया।*

तीस तारीख को फिर तार मिला व पत्र भी। उन दोनों से मालूम हुआ कि हालत काफी सुधर चुकी है व रक्तस्राव बिल्कुल बन्द हो चुका है। लगा, जैसे नया जीवन, नया उत्साह, नई दुनिया के दरवाज़े मेरे लिए खुल रहे हैं, जैसे काली अंधियारी रात सो रही हो व उषा आंखें खोल रही हो, प्यार की अंगड़ाई लिए हुए।

अब रेखा का छेड़ना दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है परन्तु नीरा को ही लेकर। कमल सचमुच प्रसन्न है नीरा के समाचार से। और भोला! उसे क्या, उसका 'भइया' खुशी के मारे खिला खिला सा रहता है वो उसे और क्या चाहिये!

उधर शीला विलियम से मिलकर मेरे बारे में पूरा षड्यंत्र रच रही है। वह चाहती है इसी नव वर्ष दिवस को······। धत्

इकत्तीस तारीख की शाम को वह धमक पड़ी विलियम के साथ व ज़मीन-आसमान एक कर नीरा के साथ अस्पताल में ही ट्रंक-कॉल कर बातें करने का प्रबन्ध उसने किया।

हे भगवन्! युगों बाद फिर वही सुमधुर वीणा-ध्वनि मैं कैसे सुन सकूंगा! क्या कहूंगा! क्या पूछूंगा!

सम्भल भी न पाया था कि शीला ने फोन का चोंगा हाथ में पकड़ा दिया। मैंने बड़े ज़ोर से कहा, 'नीरा, नीरा, नीरा!'

कोमल क्षीण स्वर सुनाई दिया :

'हां, मैं हूं, नीरा, और दो चार बार नाम पुकारिये ना, कितना अच्छा

लगता है ?'

"छिः पगली कहीं की, यही कहने के लिए ट्रंक-कॉल किया है ?" पर मुझे इतनी घबराहट क्यों हो रही है, यह अस्त-व्यस्तता कैसी ? कुछ सूझता ही नहीं, क्या कहूँ, क्या पूछूँ ? अनजाने पूछ बैठा, "नीरा, नीरा तुम कैसी हो ?"

"मैं ? डाक्टर जाने, मैं क्या जानूं ?"

"शैतान कहीं की ! कभी सीधी सी बात नहीं करती।" अरे, यह तो मेरे बारे में भी कुछ नहीं पूछती। यह सब क्या माजरा है ? मैंने झुंझला कर कहा, "तो फिर डाक्टर को ही फोन पर बुलाओ।"

"डाक्टर ही से तो बातें कर रही हूँ।"

"अच्छा, तो यह बात है !" जरा रुककर बोली, "इतने उतावले क्यों हो रहे हो ? अच्छा तो हो लेने दो, तुम भी अच्छे ......।"

अरे यह बात क्या है ?

"काहे की उतावली, नीरा ?"

"काहे की ? इतने भोले न बनो।"

"नहीं, रानी, मेरी बात मानो। मैं कुछ भी......।"

इधर कनखियों से देखा, शीला के चेहरे पर शैतानी की हंसी बिखरी पड़ती थी।

"मान तो लो। कभी तुमने अपना हाथ मेरे हाथ में दिया था। आज मैं......।"

"हां, हां बोलो न, रुकती क्यों हो ?"

"संकोच लगता है।"

"तुम्हें ? और फोन पर ?"

"नव-वर्ष के दिन का हमारा 'एन्गेजमेण्ट' स्टेट्समेन के कलकत्ता, दिल्ली संस्करण में निकलवा दो। मुझे नहीं मालूम था कि तुम इतने उतावले ....।"

मैंने फोन के चोंगे को चूम लिया व बोला, "बधाई, नीरा, बधाई !

लाख लाख बधाई······पर यह नहीं तो···"

"क्यों, शीला दीदी ने कुछ बताया नहीं तुम्हें ?"

"नहीं तो !"

"तब तो तुम [illegible] बुद्धू हो, कुन्नू !"

हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े व फोन रख दिया।

शीला ने तुरन्त सारा रहस्य खोल दिया। उसने बताया, किस प्रकार सवेरे ही उसमें व नीता में ट्रंक-कॉल पर बातें हुई थीं व उसने सब कुछ तय कर लिया था, बिना मुझे बताये।

मेरे ऊपर बधाइयों की वर्षा होने लगी, व मैं अपनी खुशी में आगे स्वर्ग की कल्पना में खो गया।

उस रात मेरी आँखों में नींद न थी। न जाने किन किन सपनों में खोया रहा, विचरता रहा। अरे, वह स्वर्ग तो अपार था, वह सुख का मनोहर प्रवाह था, जिसमें हर कहीं राजकुमार-राजकुमारी का एक जोड़ा पंख फैलाये कभी तैरता, कभी उड़ता था, बसन्त अनुचर की तरह साथ-साथ लगा था, चाँद मुस्कराता था, तारे आनाकानी कर खिलखिला पड़ते थे।

आधी रात हुई तो रात के सन्नाटे को चीरती हुई कहीं से गीत-ध्वनि सुनाई दी :

'गया दिसम्बर जाने दो,
आई जनवरी आने दो,
दिल से दिल टकराने दो।'

मैं मुस्करा पड़ा। दूर पर गिरजे से घंटे की निरन्तर ध्वनि आने लगी। किले से तोपें छूटीं। मैंने समझा, मेरे जीवन का नया अध्याय आरम्भ होने के स्वागत में यह सब हो रहा है।

मैं फिर अपने कल्पना-लोक में खो गया। पलकें सपनों से बोझिल हो रही थीं, न जाने कब लगीं।

उनचासवाँ परिच्छेद

उपसंहार

हमारा विवाह हुए आज पाँच वर्ष हो गये। हमारे सुखों का अन्त नहीं। नीरा ने मेरे खोखले जीवन के कोने-कोने को भर दिया है, वह 'शक्ति' बनकर उसमें बैठ गई है। हम दोनों के उत्साह का अन्त नहीं। हम थकना तो जानते ही नहीं! लगता है, सारी धरती को स्वर्ग बनाकर ही चैन की सांस लेंगे। पर ऐसा हो कहां पाता है!

हां, अपनी 'टी-स्टेट' की लघु परिधि को हमने धरती का स्वर्ग बनाने का निश्चय कर लिया है। नीरा छः महीने आसाम में चाय के बाग में रहती है व छः महीने कलकत्ता। मेरा भी कार्यक्रम कुछ ऐसा ही रहता है। मजदूरों के जीवन को उन्नत बनाने का हमने व्रत सा ले लिया है। हमारी पहली पंच-वर्षीय योजना इस दिशा में पूरी हो चली है। जीजी भी हमारा हाथ बंटाने आश्रम से आगई हैं। हमारे चाय-बगीचों में ही उन्होंने हमारे अनुरोध से एक आश्रम की स्थापना कर ली है।

जीजी का आश्रम तो क्या है, मजदूरों के जीवन उन्नत बनाने के लिये बहुमुखी योजनाओं का केन्द्र है। वहीं पर स्कूल, अस्पताल, मजदूर-पंचायतघर व खेल के मैदान हैं। साथ ही मुर्गी पालने, सूअर पालने, मधुमक्खी पालने व पशु-पालन के फार्म हैं। यह फार्म पूर्णतः मजदूरों की ही भलाई के लिए चलाये जाते हैं। जीजी इन सब कामों व योजनाओं में जीती-जागती मूर्ति हैं। सारा मजदूर-समाज उनको 'जीजी' कहता है।

हमारी जीजी प्रत्येक की जीजी बन गई हैं। चरखे-करघे को भी उन्होंने आश्रम में स्थान दिया है। ग्रामोद्योग-संघ की देख-रेख में उन्होंने हाथ

प्रतियोगिता वगैरह करते हैं। प्रहसन में नीरा व मीरा के अनुराग-विराग को लेकर एक ऐसी नकल उतारते हैं कि हंसते-हंसते दर्शकों के पेट में बल पड़ जाते हैं।

इस समाज में शादी-विवाह, मुण्डन सब कुछ होता है। विवाह पर की जाने वाली फिजूल-खर्ची बिल्कुल बन्द कर दी गई है। किसी शुभ दिन पर एक साथ आठ-दस विवाह आश्रम पर ही जीजी की देख-रेख में होते हैं। नीरा सारे समाज को लघु जलपान के लिये निमंत्रित करती है। सब खूब उत्साह व जोश से भाग लेते हैं, फिर जी भरकर रातभर नाचते-गाते हैं। नीरा को इसका रस मिलता है परन्तु जीजी नाच-गान से दूर दूर ही रहती हैं।

नई शादी होने वाले जोड़ों का घर बनाने में कोई श्रमदान देने से हिचकता नहीं, परन्तु वह बड़ी बड़ी अनूठी होती है। सभी काम करते रहते हैं व नये जोड़ों के जीवन को लेकर खूब छींटा-कशी करते, हंसते व रस-विभोर होते रहते हैं।

और इस प्रकार के व्यापार के महल में नव-दम्पति का पदार्पण होता है जिस घर की हर ईंट में किसी के स्नेह-दान का इतिहास लिखा रहता है।

यह है हमारी नन्हीं सी दुनिया—दुनियां मीरा की, नीरा की, मेरी व मेरे मज़दूर-समाज की। इस छोटे से राम-राज्य की रानी नीरा है, मैं·· छोड़ो भी! और जीजी! वह त्याग व बलिदान की जीवित प्रतिमा! जीजी!

इधर हर वर्ष हमने एक माह के लिए अवकाश निकालकर खूब भ्रमण भी किया है। काश्मीर व ऊटी जाने के बहाने उत्तर व दक्षिण भारत की सैर नीरा के साथ खूब की है। हमारा चार वर्ष का मुन्ना भी काफी होनहार लगता है। क्यों न हो, उसे नीरा का प्यार व मीरा की शिक्षा-दीक्षा जो प्राप्त है।

इस वर्ष समय निकल सका तो योरुप व अमेरिका भी जाने का विचार है। नीरा व मुन्ना साथ चलेंगे ही। मुन्ना को जहां खुले संसार की शिक्षा-

दीक्षा मिलेगी, यहां हम कुछ अपना कारबार भी बढ़ा सकेंगे। नीरा के कारबार की भी अच्छी देखभाल हो जायगी।

और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जैन का निमन्त्रण पूरा होगा। वह एक बहुत बड़ा 'शिशु-कल्याण' चलाती है व उसी में अपना जीवन लगा देने का विचार रखती है। नीरा उसे भारत लाना चाहती है। न जाने कहां तक यह सम्भव होगा।

मुझे यही बातें कुछ अजीब, अटपटी सी लगती हैं फिर भी सब कुछ भाग्य पर छोड़ दिया है। अब जो होना हो सो हो।

हमारा मुन्ना भी इस जैन को जानता है। यकायक ही 'मम्मी' कहता है और कभी कभी स्नेहवश उसकी छवि पर वात्सल्य दान भी करता है।

और मैं? कभी कभी किसी अकेली सूनी घड़ी में वर्षभर के सिर मस्तक दर्द उठकर मेरे सारे अस्तित्व को हिला देता है, जैसे '[illegible]-पेन' हो और फिर सब कुछ शान्त हो जाता है।

नीरा इन पंक्तियों को जानती है, समझती है, परन्तु बोलती कुछ भी नहीं। उसका इलाज भी क्या है।

मैं समझ नहीं पाता कि इस सुख के साम्राज्य की नींव मेरे व नीरा के अनुराग पर खड़ी है या नीरा व जैन के त्याग-विराग पर। कौन जाने! कौन कहे!